हिन्दवी भाषा और उसका साहित्य

डॉ. छगन लाल गौड़

हिन्दवी भाषा और उस



Sahitya Ratnalaya
Kanpur

साहित्य रत्नालय

कानपुर : २०८००१

हिन्दवी भाषा और उसका साहित्य

(विशेष सन्दर्भ–शेख अशरफ का नौसरहार)

लेखक

प्रा०डा० छगनलाल भोलारामजी गौड़

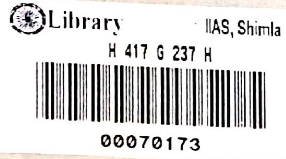
एम० ए०, साहित्यरत्न, पी–एच० डी०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

आर० बी० अट्टल कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय,

गेवराई (मराठवाड़ा)

This book is published with financial assistance received from the Marathwada University under the scheme of the University Grants Commission for the Publication of learned research works including doctoral thesis.



साहित्य रत्नालय
37/50, श्रद्धानंद पार्क, कानपुर–208001
द्वारा प्रकाशित
△
1979 १९७९ संस्करण
△
विनीत प्रेस
108/27, लेनिन पार्क, कानपुर–208012
द्वारा मुद्रित

मूल्य : 75.00

Hindavi Bhasha Aur Uska Sahitya. : Dr. Chaganlal Gaur : Rs 75.00

निवेदन

प्रस्तुत शोध-प्रबंध की सामग्री प्राप्त करने के लिए मुझे हैदराबाद तथा अलीगढ़ की यात्रा अनेक बार करनी पड़ी। हैदराबाद में स्थित इदारे अदबियात उर्दू, सालार जंग म्यूजियम, आजाद लायब्रेरी, स्टेट लायब्रेरी तथा अनेक निजी ग्रंथालयों का पर्याप्त उपयोग हुआ है। अलीगढ़ स्थित–अंजुमन तरक्की–ए–उर्दू हिन्द तथा अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के ग्रंथालयों का भी मुझे महत्वपूर्ण सहयोग मिला। विशेष रूप से इन दोनों नगरों में स्थित उर्दू-हिन्दी के प्राचीन हस्तलिखित संग्रहालयों के अधिकारियों तथा संचालकों ने पूरी सहायता की, मैं उन सभी का कृतज्ञ हूँ।

आधारभूत सामग्री फारसी लिपि में लिखी होने के कारण जो कठिनाइयां मेरे सामने थीं, उनको दूर करने में मुझे प्राचार्या श्रीमती सईदासुलताना जहूरअली, डा. अकबरुद्दीन सिद्दीकी तथा डा. श्रीराम शर्मा का अविस्मरणीय, प्रेमपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इन सभी श्रद्धेय महानुभावों का आभार मानना औपचारिकता होगी। श्रीमती सईदाजी तथा डा. सिद्दीकी ने लिप्यंतर कार्य में मुझे बहुमूल्य सहयोग दिया। डा. श्रीराम शर्मा ने 'संहिता' को आद्यंत पढ़कर मुझे आश्वस्त किया।

इस प्रबंध के माध्यम से हिन्दवी भाषा, और उसके अखिल भारतीय साहित्यिक स्वरूप का विवेचन होने के साथ ही महाराष्ट्र, विशेष रूप से मराठवाड़ा में रचित हिन्दवी की एक महत्वपूर्ण रचना 'नौसरहार' प्रथम बार प्रकाश में आ रही है। यह मेरे लिए परम समाधान का विषय है। इस कार्य में मराठवाड़ा विश्वविद्यालय ने मुझे कई बार यात्रा-अनुदान देकर प्रोत्साहित किया, एतदर्थ मैं आभारी हूँ।

यह शोधकार्य मराठा विश्वविद्यालय के यू. जी. सी. प्राध्यापक डा. भालचंद्र राव तेलंग के कुशल मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ है। गुरुवर्य तेलंग जी ने मुझे जिस वात्सल्य भाव से गत सात वर्षों में मार्गदर्शन किया है, वह शब्दातीत है। आपकी निरंतर प्रेरणा ही मुझे इस कठिन विषय से चिपके रहने का धैर्य देती रही है। उन सभी विद्वानों का मैं ऋणी हूँ, जिनके ग्रंथों के अध्ययन से मुझे मार्गदर्शन, सहयोग एवं बहुमूल्य सन्दर्भ-सामग्री मिली है।

उर्दू-फारसी लिपि में लिखित प्राचीन भाषा के ग्रंथों का शुद्ध लिप्यंतर अपने आप में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। हिन्दी-हिन्दवी की ध्वनियाँ उस लिपि में ठीक से व्यक्त नहीं हो पातीं। दूसरी ओर उन ग्रंथों के प्रतिलिपिकार फारसी वर्णों

को पूरे और शुद्ध रूप में लिखने में सम्भवतः आलस्य कर जाते हैं, यथा नुक्तों और जेर-जबर का प्रयोग, हे, ये तथा वाव का प्रयोग करने में बड़ी अनियमितता दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में शोध कर्ता-पाठालोचक को कई बार अपनी बुद्धि और अनुभव पर ही निर्भर करना पड़ता है। मैं इस दायित्वपूर्ण कार्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही कर सकेंगे। अपनी सीमा में मैं अभी पूरी तरह संतुष्ट नहीं हूँ।

इन सारी कठिनाइयों के होते हुए भी विगत सात वर्षों के अपने कठिन परिश्रम को आज मूर्तरूप में देखकर मुझे प्रसन्नता है। अंत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा मराठवाड़ा विद्यापीठ का आभार मानना भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ क्योंकि इस प्रबंध के प्रकाशन का पूरा श्रेय उन्हीं की अतिशय महत्वपूर्ण योजना है।

ग्रंथ के प्रस्तुत रूप में सुधी पाठक जो भी दोष या अभाव देखें, उसकी सूचना मुझे देने का अनुग्रह, यदि वे कर सकें तो मैं उनका ऋण कभी नहीं भूल सकूँगा। आगामी प्रकाशन प्रसंगों में उन सुझावों का उपयोग हो सकेगा।

२१ फरवरी, १९७९ —छगनलाल गौड़
१३, देवगिरि कॉलनी, औरंगाबाद

भूमिका

खड़ी बोली-हिन्दी का इतिहास लिखने तथा उस की उपभाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के भी अनेक प्रयास हुए हैं, किन्तु इसकी विभिन्न विकासावस्थाओं के अनुसंधानात्मक अध्ययन की दिशा में संतोषप्रद प्रयास का अब भी अभाव दिखाई देता है है। इस विषय में प्रायः अध्ययनार्थ पर्याप्त एवं प्रामाणिक सामग्री के अभाव का कारण माना जाता रहा है। इस स्थिति का निदान तभी हो सकता है, जबकि देश के विभिन्न पुरालेख संग्रहालयों, ग्रंथालयों में अज्ञात रूप में पड़ी हुई सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए सुनियोजित एवं ठोस प्रयास किये जाएं। इस दिशा में एक प्रयास के रूप में प्रस्तुत प्रबंध का निर्माण हुआ है।

हिन्दी का प्रारम्भ से ही आन्तर भाषा (लिंग्वा फ्रांका) के रूप में विकास हुआ है, जो उसका परम्परागत-उत्तराधिकार में प्राप्त एक गुण ही है। शैशवकाल में ही, ऐतिहासिक कारणों से, वह देश के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँच गयी। अदम्य जिजीविषा सम्पन्न भाषा होने के कारण आवश्यकता के अनुसार उसने संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ ही अरबी-फारसी की शब्दावली एवं मुख्यतः उन सभी स्थानीय भाषाओं और बोलियों के शब्द-सहयोग को स्वीकार किया जो उस के सम्पर्क में आयीं। इन सारे सम्पर्कों के कारण मध्य काल में व्यापक एवं क्षेत्रीय आधार पर हिन्दी की अनेक शैलियों का विकास होता हुआ दिखाई देता है। इन शैलियों में हिन्दुई, हिन्दवी, रेख्ता, रेख्ती, दक्खिनी, गूजरी, हिन्दुस्थानी, उर्दू इत्यादि नाम ऐसे हैं जिनका प्रयोग हिन्दी के अर्थ में, उस की विशिष्ट शैली अथवा बोली के रूप में अथवा उसके मिलते-जुलते रूप में किया गया है। इन सभी नामों का ऐतिहासिक महत्व है तथा इन सभी शैलियों की उपलब्ध सामग्री का अध्ययन-विश्लेषण वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी को सहज-स्वाभाविक एवं व्यापक बनाने में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

हिन्दुई या हिन्दवी संज्ञा का प्रयोग हिन्दी के पर्यायवाची अर्थ में किया जाता है और बहुतांश यह सत्य है। इन दोनों शब्दों या संज्ञाओं की उत्पत्ति का मूलाधार एक होते हुए भी दोनों की अर्थाभिव्यंजक सीमाएँ भिन्न रही हैं। मोटे तौर पर भाषा के जिस व्याकरणिक ढांचे को आज खड़ी बोली या हिन्दी कहा जाता है, उसी के आरम्भिक व्यक्तित्व को हिन्दवी कहा गया है।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे एक प्राचीन साहित्यिक भाषा ब्रज, अवधी, मैथिली के समान ही माना है।

डॉ० बाबूराम सक्सेना ने 'दखिनी हिन्दी' में कहा है—इस भाषा के तीन ही नाम मिलते हैं।

हिन्दवी-हिन्दी और दख्खिनी। वे स्वीकार करते हैं कि इन तीनों नामों में सर्वाधिक प्राचीन नाम 'हिन्दवी' है। यही नाम उत्तर में अमीर खुसरो से पहले मु० औफी (१३-१४वीं शताब्दी) से इंशाअल्ला (१८-१९वीं शताब्दी) तक विशेष रूप से चलता रहा है। दक्षिण की मुस्लिम रियासतों में १४वीं शताब्दी तक रचित साहित्य की भाषा के लिए भी यही नाम प्रचलित रहा।

इस 'हिन्दवी' भाषा और इस के साहित्य पर गहरी पैठ के साथ किया गया कोई 'शोध कार्य' अब तक प्रकाश में नहीं आया है, यद्यपि एतदर्थ विपुल मात्रा में प्रामाणिक सामग्री का अब पता लग चुका है। इस सामग्री का प्रकाश में आना आज की दोनों महत्वपूर्ण भाषाओं हिन्दी और उर्दू के भाषिक विकास को स्पष्ट एवं साहित्य भण्डार को समृद्ध कर सकेगा।

प्रस्तुत प्रबंध ने 'हिन्दवी' भाषा और उसके 'साहित्य' दोनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'भाषा'—स्वरूप के अध्ययनार्थ प्रमाणभूत सामग्री के रूप में ई० सन् १५०२ (हिजरी ९०९) में, तत्कालीन अहमद नगर की निजाम शाही में सूफी संत शेख अशरफ द्वारा रचित मसिया अथवा मसनवी—"नौसरहार" का सम्पादन किया गया है।

हिन्दवी साहित्य में अमीर खुसरो, ख्वाजा बन्दे नवाज (१४वीं-१५वीं शती) की उपलब्ध रचनाएँ अभी भी साहित्य जगत में वादविवाद के झमेले में उलझी हुई हैं। प्रत्युत शेख अशरफ का 'नौसरहार (१५वीं शती) इन संशयों से सर्वथा मुक्त एवं सर्वाधिक प्राचीन रचना है। उर्दू साहित्य के इतिहास कारों ने 'नौसरहार' को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं अपित भारत में लिखा गया पहला और महत्वपूर्ण मसिया माना है। इस की भाषा और विषय के सम्बन्ध में कवि स्वयं कहता है :—

बाजां कीता हिन्दवी में। किस्सए मकतल शाह हुसेन। पृ० ५

नौसरहार की पाण्डुलिपियाँ

नौसरहार की दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं।' एक इदारे अदबियात उर्दू, हैदराबाद' में तथा दूसरी 'अंजुमन तरकी-ए-उर्दू-हिन्द, अलीगढ़' में सुरक्षित है। हैदराबाद की प्रति अधिक सुवाच्या=और सुन्दर अक्षरों में लिखी गयी है और प्राचीनतम है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० मुहिद्दीन कादरी 'जोर' को यह प्रति नान्देड में=प्राप्त हुई थी। इसके लिपिक ने इसे चान्दूर (जिला नान्देड) में लिखा था। इसमें लगभग १८०० छंद (बहरें) है तथा यह ७२ पन्नों (१४४ पृष्ठों) में लिखी है।

अलीगढ़ की प्रति का प्रथम पृष्ठ नष्ट हो गया है तथा यह नवें बाब के आरम्भ में ही समाप्त हो जाती है अतः यह पता नहीं चलता कि अंत के कितने पन्ने नष्ट हो गये हैं। बीच के पन्नों को भी दीमकों की कृपा प्राप्त हो चुकी है। इसमें हैदराबाद वाली प्रति से कुल १०० या ११६ छंद (बहरें) कम हैं। इसके लिपिक ने भी अनावश्यक स्वछन्दता बरती है, उसने प्रतिलिपि लेखन के सामान्य नियमों का भी पालन नहीं किया है। उर्दू लिपि के वर्णों तथा नुक्तों के लेखन में अनियमितता है। नुक्तों से ही कई लिपि चिन्हों का काम लिया गया है, यथा 'दे, दे' का काम चार नुक्तों से चला लिया गया है। फारसी शब्दों के लेखन में भी अनपेक्षित अशुद्धियाँ हुई है, जिसका विवरण यथास्थान प्रबन्ध में दिया गया है।

इस सामग्री का उपयोग करते समय हैदराबाद प्रति को 'प्रमाण प्रति' स्वीकृत किया गया है। अलीगढ़ प्रति में से पाठ भेद निर्देशित हैं। 'प्रमाण प्रति' के मूल पाठों में किसी प्रकार का संशोधर या परिवर्तन नहीं किया गया है। इसमें रचना की प्राचीनतम भाषा तथा उसके तत्कालीन स्वरूप के स्पष्ट होने में सहायता मिलेगी। पाद टिप्पणियों में पाठ भेदों के निर्देश से उन शब्दों या पदों के अन्य रूप प्राप्त होंगे, जिनसे मूल रूपों तक पहुँचने में सहायता होगी।

पाठालोचन की दो प्रणालियाँ हैं (१) प्राचीनतम प्रति को संहिता (प्रमाण प्रति) के रूप में स्वीकार करते हुए अन्य उत्तर कालीन प्रतियों से अन्य पाठ उद्धृत करना या (२) अनेक प्रतियों से शब्द के विविध पाठ देते हुए मूल पाठ को निश्चित करने का प्रयास करना। नौसरहार के अध्ययन के लिये यहाँ प्रथम प्रणाली अपनाई गयी है।

अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध का विभाजन पाँच अध्यायों एवं परिशिष्टों में निम्न प्रकार से किया गया है।

१. हिन्दवी-अर्थ, नामकरण और समस्याएँ

इस अध्याय में हिन्दवी-अर्थ अभिधान की उत्पत्ति तथा भाषाओं के नामकरण के सन्दर्भ में भारतीय परम्परा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से हिन्दवी या हिन्दी शब्द फरसी भाषा का है, जो सर्वप्रथम मुस्लिम देशों में संज्ञा और विशेषण के रूप में प्रचलित हुआ। ऐतिहासिक कारणों से मुसलमानों के भारत में आने और यहाँ बस जाने पर यहाँ भी उन्हीं के द्वारा इन शब्दों का विशिष्ट अर्थों में बहुतायत से प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है।

ऐतिहासिक काल से फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना तक हिन्दवी-हिन्दी के

अर्थ की व्याप्ति एवं क्रमागत संकोच का प्रामाणिक विवरण इस अध्याय में दिया गया है।

निष्कर्ष स्वरूप इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि।

(१) हिन्दवी-हिन्दी अभिधान का विकास ईरानियों द्वारा ८वीं शती तक हो गया था। व्यापक रूप से सभी प्राचीन एवं न० भा० आ० भा० के लिए 'हिन्दी' शब्द का व्यवहार वहाँ होता था किन्तु भाषा के अर्थ में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग पहली बार भारत में ही किया गया। इस आरम्भिक प्रयोग का अर्थ व्यापक होता था। एक ओर अमीर खुसरो, जो खड़ी बोली के कवि हैं तथा दूसरी ओर जायसी जो अवधी के कवि हैं दोनों ही अपनी भाषा को हिन्दवी कहते हैं। इसी प्रकार व्यापक अर्थ में हिन्दवी के प्रयोग के अनेक प्रमाण प्रबन्ध में दिये गये हैं।

(२) दिल्ली और मेरठ की बोली (आधुनिक खड़ी बोली) ही आगत मुसलमानों की बोलचाल की भाषा बनी थी। खुसरो की देहलवी, दक्षिण के कवियों की देहलवी गूजरी, दक्खिनी, हिन्दी और हिन्दवी से यही विशिष्ट अभिप्रेत है। प्रस्तुत कवि शेख अशरफ से लेकर औरंगजेब कालीन स्वामी प्राणनाथ के 'कुलजत स्वरूप' तथा उनके शिष्य लालदास के 'लालदास बीतक' में प्रयुक्त 'हिन्दवी' शब्द का विशिष्ट अर्थ दिल्ली और मेरठ की बोली ही है। १९वीं शती में गिलक्राइस्ट ने भी हिन्दवी का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

(३) इसी हिन्दवी से दक्खिनी गुजरी, रेख्ता, रेख्ती उर्दू और आज की हिन्दी का कालानुक्रम में विकास हुआ।

(४) कुछ लोगों ने हिन्दवी तथा हिन्दी शब्दों के सूचितार्थ में अन्तर मानना चाहा है। ये 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग हिन्दुओं की भाषा के लिए किया गया सिद्ध करना चाहते हैं, जबकि हिन्दी मुसलमानों की भाषा बनाई गई है। इस अर्थ भेद को निरर्थक सिद्ध करते हुए यह निश्चित किया गया है कि हिन्दवी वास्तव में समस्त भारतीयों की भाषा रही है।

२. भाषा-ऐतिहासिक अनुक्रम-विकास की अवस्थाएँ

इस अध्याय में हिन्दवी-हिन्दी के उद्भव के लिए परवर्ती अपभ्रंश 'अवहट्ट' में सुप्त अंकुरों का संकेत किया गया है। 'हिन्दवी' की प्रारम्भिक सामग्री का उल्लेख करते हुए, इस के विकास को कालखंडों में विभक्त रखा गया है।

भारत में मुस्लिम सत्ता और इस्लाम के प्रसार एवं प्रचार से 'हिन्दवी' के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में विस्तार का सन्दर्भ जुड़ा हुआ है। मुगल दरबार में फारसी के महत्व पा जाने पर भी दक्षिणी रियासतों में 'हिन्दवी' का प्रशासन, साहित्य एवं जन-जीवन के व्यवहार में निरन्तर विकास होता गया। हिन्दवी

के रूप-गुजरी तथा दक्खिनी के साथ उसकी एकता का स्वरूप निर्धारित किया गया है।

इसी अध्याय में हिन्दवी को भारत की अन्य भाषाओं के साथ के सम्पर्क का विश्लेषण किया गया है। हिन्दी क्षेत्र की उन बोलियों का भी हवाला दिया गया है, जिन्होंने हिन्दवी के स्वरूप विकास में न केवल शब्द सहयोग अपितु व्याकरणिक सहयोग भी दिया है। इसी क्रम में हिन्दवी से उद्भूत एवं विकसित इतर बोलियों में रेख्ती, रेख्ता, उर्दू हिन्दुस्थानी का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

३. हिन्दवी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

इसी अध्याय में नौसरहार के शब्द भण्डार के आधार पर हिन्दवी भाषा का ध्वनि एवं रूप की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ध्वनि प्रकरण में ध्वनि विकास की विविध प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दवी में विभिन्न प्रभावों को दर्शाया गया है। रूप विकास में संज्ञा, सर्वनाम के प्रकृति-प्रत्यय लिंग-वचन, कारक के साथ ही विशेषण, क्रिया का अर्थ एवं काल की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन किया गया है। अंत में अव्ययों का परिचय प्रस्तुत है।

इस अध्याय में हिन्दवी संग्रहशील प्रकृति का सहज बोध हो जाता है। सभी शब्द प्रकारों के अन्तर्गत हिन्दवी के शब्द भण्डार का मुख्य स्रोत अपभ्रंश एवं न० भा० आ० भाषाओं का उदय कालीन शब्द समूह है। इसके साथ ही संस्कृत के तत्सम शब्दों एवं अरबी-फारसी के शब्दों को भी हिन्दवी ने अपनाया है। हिन्दी की उपभाषाओं एवं बोलियों के समान ही मराठी, गुजराती एवं पंजाबी का भी लेपुल शब्द समूह इसकी अपनी सम्पत्ति बना के। इसी प्रकार द्रविड भाषाओं में तेलगु-कन्नड के गिने चुने शब्द हिन्दवी में आ गये हैं।

ध्वनि एवं रूप दोनों की दृष्टि से हिन्दवी वर्तमान खड़ी बोली को अग्रजा है। अपने शैशव काल में ही यह रमताराम साधुओं-सन्यासियों, योगियों और फकीरों के सम्पर्क में पड़कर सम्पूर्ण भारत में फैल गयी। विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय प्रभावों को ग्रहण करती हुई अपने 'अन्तर भाषा' (या अन्तर प्रांतीय) स्वरूप में विकसित हो, बोलचाल की भाषा के साथ ही साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

४. हिन्दवी साहित्य का सर्वेक्षण

इस अध्याय में हिन्दवी के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत भारतीय क्षेत्र में रचित साहित्य के प्रतिनिधि रचियताओं एवं उनकी रचनाओं का भावात्मक बोध तथा वैचारिक विश्लेषण करते हुए, यह दर्शाया गया है कि हिन्दवी लोक भाषा के रूप में ही साहित्य सृजन का माध्यम बनी, अतः उसका साहित्य मुख्यतः धार्मिक, आध्यात्मिक एवं लोक संस्कृति से सम्बन्धित है।

हिन्दवी-हिन्दी साहित्य का आरम्भ तथा कथित 'पुरानी हिन्दी' से मानते हुए भी भाषा के स्पष्ट रूप का परिचय पहली बार 'नाथ साहित्य' में मिलता है। 'नाथ साहित्य' की परम्परा पश्चिमी अंचल में जिस रूप में विकसित हुई, महाराष्ट्र में वह और अधिक शक्तिशाली हुई। महाराष्ट्र के चक्रधर (महानुभव) ज्ञानेश्वर

(वारकरी) नामदेव और एकनाथ अखिल भारतीय व्यक्तित्व के संत थे। इन सभी की हिन्दवी रचनाएँ हैं। बाद के संत तुकाराम तथा मुगल कालीन 'शाहिरी' लोक साहित्य में भी हिन्दवी का सहज-मिश्रित रूप अपने स्वाभाविक ढंग से प्रस्फुटित हुआ है। इस प्रकार महाराष्ट्र को 'संत परम्परा' तथा 'लोक साहित्य' में उपलब्ध हिन्दवी-स्वरूप एवं साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत है।

गुजरात के संतों तथा सूफियों का हिन्दवी में रचित साहित्य १३वीं शती से ही मिलने लगता है तथा उसकी परम्परा १९०० तक अविराम चली आती है। उन में नरसी मेहता, शेख बहाउद्दीन बाझन, काजी महमूद दरियायी, माण्डण, शाह अली, अखा, प्राणनाथ तथा हाशिमअली जैसे प्रमुख संतों का परिचय प्रस्तुत है। गुजरात के हिन्दी सेवा संतों की देन तीन दृष्टियों से उल्लेखनीय है—(१) भाषाकीय, (२) साहित्यकीय एवं (३) सांस्कृतिक। अपनी वाणियों और मसनवियों में इन्होंने हिन्दवी का वह रूप अपनाया था, जो व्यवहार में प्रचलित था और जिसे बाद में 'गूजरी' भी कहा गया था। प्रादेशिक पुट इनकी भाषा की एक विशेषता है। विचारों और संस्कृति के क्षेत्र में इनकी दृष्टि व्यापक है तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन काव्य रूपों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण है।

हिन्दी अंचल के अमीर खुसरो और उनके बाद प्राप्त संत-साहित्य की परम्परा का परिचय देते हुए यह मान लिया गया है कि कबीर का प्रभाव भाषा, भाव और विचार सभी क्षेत्रों में इस साहित्य पर अक्षुण्ण है। कबीर की 'सधुक्कडी' भाषा को 'हिन्दवी' से भिन्न नहीं माना जा सकता। इंशाअल्ला तक चली आयी हिन्दवी की परम्परा यहाँ उल्लिखित है।

अंत में दक्षिण में उपलब्ध सूफी संतों के हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यह परिचय 'वजही' से पूर्व के कवियों तक सीमित रखा गया है, क्योंकि 'वजही' ने सर्वप्रथम अपनी भाषा को 'हिन्दवी' के स्थान पर 'दक्खिनी' नाम से अभिहित किया है।

५. नौसरहार का साहित्यिक विश्लेषण

इस अध्याय में प्रस्तुत प्रबन्ध के आधारभूत ग्रंथ 'नौसरहार' का सर्वांगीण परिचय दिया गया है। यह एक 'मर्सिया' (शोकगीति काव्य) है किंतु 'मसनवी' के ढंग से व्यापक भूमिका के साथ रचित होने से एक सर्वथा नयी परम्परा का सूत्रपात करता है। इसी स्थान पर मर्सिया और हिन्दी काव्य में शोकगीति काव्य की परम्परा का उल्लेख किया गया है। 'नौसरहार' की कथावस्तु का तथ्यमूलक विश्लेषण, प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण, कवि का धर्म एवं आदर्श, इत्यादि विषयों की चर्चा 'नौसरहार' की विशेषताओं के रूप में की गयी है। इसी अध्याय में कवि-जीवन परिचय के प्रसंग मे शेख अशरफ, मराठवाडा में औरंगाबाद जिला के 'अम्बड' नामक ग्राम का निवासी था इस मत को सिद्ध किया गया हैं। नौसरहार में छन्द एवं अनुप्रास निर्वाह के साथ ही भाषा का थोड़ा वर्णनात्मक परिचय यहाँ भी दिया गया है। □

संक्षिप्त संकेत

अ प.	अपभ्रंश
अ. फा.	अरबी-फारसी
प्रा. भा. आ.	प्राचीन भारतीय आर्य भाषा
ए. व.	एकवचन
ओ. डे. बें.	ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आफ बंगाली लैंग्वेज.
कं. ग्रा. आ.	कम्परेटिव ग्रामर ऑफ आर्यन लैंग्वेजस.
कं. ग्रा. गौ.	कम्परेटिव ग्रामर आफ गोडियन लैंग्वेजस.
ख. बो.	खड़ी बोली.
भ. भा. आ.	नव्य भारतीय आर्य भाषा.
पं.	पंजाबी.
पु.	पुल्लिंग.
पू. हि.	पूरबी हिन्दी.
प्रा.	प्राकृत.
प्रा. व्या.	प्राकृत व्याकरण.
ब. व.	बहुवचन.
म. भा आ.	मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा.
मरा.	मराठी.
राज.	राजस्थानी.
स्त्री.	स्त्रीलिंग.
हि. भा. इ.	हिन्दी भाषा का इतिहास.

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय-भाग

प्रथम भाग

१ हिन्दवी-अर्थ, नामकरण और समस्याएँ

किसी भी मानव समूह को कालक्रमानुसार संक्रमित सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव उसकी भाषा पर अवश्य-मेव पड़ता है। इसीलिए विद्वानों की यह मान्यता है कि किसी भाषा का विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन एक प्रकार से जातीय-जीवन विकास का एक क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर सकता है। भाषा की विविध रूपाकृतियों का सूक्ष्मआकलन समाज की गत्वर संस्कृति का प्रामाणिक मूल्यांकन हो सकता है, अन्य शब्दों में किसी काल विशेष या समाज विशेष की भाषा के स्वरूप में सम्बन्धित समाज की प्रकृति संरचना की कहानी मुखर होती है। इस प्रकार ऐतिहासिक घातप्रतिघात में तरंगायित जन जीवन की धारा जिन-जिन मोड़ों से गुजरी है, जिन-जिन प्रवाहों और अवान्तर धाराओं को समेटती आगे बढ़ी है, उसकी एक सूत्रता में गुम्फित सभी तत्वों को खोजना जितना कठिन है, उतना ही आवश्यक भी।

हिन्दी का मूलाधार (सब्सट्रम या बेसिक डायलेक्ट) अथवा मूलोद्गम खड़ी बोली है[1] किंतु मात्र खड़ी बोली पर ही हिन्दी का भवन निर्मित नहीं माना जा सकता। अनेक नव्य भा० आ० भाषाओं-पूर्वीपंजाबी, राजस्थानी, व्रज के साथ ही ईरानी-अरबी का सहयोग भी इसके विकास में ऐतिहासिक महत्व रखता है। मध्यकाल में विदेशी भाषाओं का सम्पर्क तो केवल शब्द सहयोग तक ही सीमित रहा किंतु कथित क्षेत्रीय उपभाषाओं एवं बोलियों ने उसके उच्चारण, व्याकरण और वाक्य रचना के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है।

अब तक खड़ी बोली का इतिहास लिखने तथा खड़ी बोली के साथ उसकी उपभाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के अनेक प्रयास हुए हैं किंतु इस की विभिन्न विकासावस्थाओं के अध्ययन की दिशा में संतोषप्रद प्रयास का अब भी अभाव दिखाई देता है। हिन्दी का प्रारम्भ से ही आन्तर भाषा (लिंग्वा फ्रांका)

१. धीरेन्द्र वर्मा—" मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जाने वाली प० हि० के ही एक रूप खड़ी बोली से वर्तमान साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। (हि० भा० का इति०)

२. उदयनारायण तिवारी—हि० भा० का उ० वि० पृ० १ (दो शब्द)

के रूप में विकास हुआ है ।[१] जो उसका आनुवंशिक गुण भी कहा जा सकता है । अपने शैशव काल में ही, ऐतिहासिक कारणों से वह देश के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँच गया । अदम्य जिजीविषा सम्पन्न भाषा होने के कारण आवश्यकता के अनुसार उसने संस्कृत के समान ही फारसी-अरबी की शब्दावली से भी काम चलाया-मुख्यतः उन सभी स्थानीय भाषाओं और बोलियों के शब्द-सहयोग को उसने स्वीकार किया जो उसके सम्पर्क में आईं । इन सारे सम्पर्कों के कारण मध्यकाल में क्षेत्रीय आधार पर हिन्दी की अनेक शैलियों का विकास होता हुआ दिखाई देता है, जिनमें हिन्दुई, हिन्दुई, रेखता, रेखती, दक्खिनी, गूजरी, हिन्दुस्तानी, उर्दू इत्यादि नाम ऐसे हैं जिन का प्रयोग हिन्दी के अर्थ में, उसकी विशिष्ट शैली अथवा बोली के रूप में अथवा उसके मिलते-जुलते रूप में किया गया है । इन सभी नामों का ऐतिहासिक महत्व है । अतः इन सभी शैलियों का अध्ययन-विश्लेषण वर्तमान परिनिष्ठित (स्टैण्डर्ड) हिन्दी को सहज स्वाभाविक एवं व्यापक बनाने में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

हिन्दवी और हिन्दी अर्थ

हिन्दुई या हिन्दवी संज्ञा का प्रयोग हिन्दी के पर्यायवाची अर्थ में किया जाता है और बहुतांश यह सत्य भी है : इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति का मूलाधार एक होते हुए भी दोनों की अर्थाभिव्यंजक सीमायें भिन्न रही हैं । मोटे तौर पर, भाषा के जिस व्याकरणिक ढाँचे को आज हिन्दी या खड़ी बोली कहा जाता है, उसी के आरम्भिक व्यक्तित्व (ई० सन् १००० से १८०० ई० तक) को हिन्दवी कहा जाता रहा है । डाँ० धीरेन्द्र वर्मा, इसे एक प्राचीन साहित्यिक भाषा-ब्रज, अवधी, मैथिली के समान ही मानते हैं, जो अपने शैशवकाल से ही रमता राम साधुओं-संन्यासियों, योगियों और फकीरों के सम्पर्क में पड़ गयी । सम्पूर्ण भारत में फैलने के साथ ही, विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय प्रभावों को ग्रहण करती हुई यह हिन्दवी ही अनेक शैलियों में ढलती और विकसित होती हुई दिखाई देती है ।

भाषा की परम्परा : नामकरण की समस्या

प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से हिन्दवी या हिन्दी शब्द फारसी भाषा का है, जो सर्व प्रथम मुस्लिम देशों में संज्ञा और विशेषण के रूप में प्रचलित हुआ । ऐतिहासिक कारणों से मुसलमानों के भारत में आने और यहाँ बस जाने पर यहाँ भी उन्हीं के द्वारा इन शब्दों का विशिष्ट अर्थों में बहुतायत से प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है । तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत शब्द न भारतीय है, न भारतीय परम्परा में विकसित । भारतीय

३ ग्रियर्सन—लि० सर्वे इं० खंड ४ भाग १ पृष्ठ ४

परम्परा में भाषाओं के नामकरण की पृष्ठभूमि में प्राचीन विद्वानों की एक प्रवृत्ति सर्वत्र लक्षित होती है कि जिस भाषा का वे प्रयोग साहित्य में करते थे, उसे "भाषा" कहते थे और जो जनसाधारण में प्रचलित बोली होती थी उसे हेय दृष्टि से देखते थे, किंतु जब वह बोली कतिपय प्रतिभाओं का सम्बल पा कर ऊपर उठने का उपक्रम करती तो कट्टर वैयाकरणों को उसका अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता था, पर वह भी कुछ हीन दृष्टि के साथ सम्भव होता था । अतः वे उसे 'देश्य' कहने लगते । जब वह देश्य भाषा समृद्धिवती होने लगती तो उसको परिनिष्ठित भाषा से भिन्न नाम देकर 'शिष्ट भाषा' का गौरवमय पद प्रदान कर देते थे । वैयाकरणों की यह प्रवृत्ति संस्कृत से लेकर आजतक भली प्रकार लक्षित हो सकती है । कितने ही समय तक प्राकृत देश्य भाषायें नहीं, तदुपरांत अपभ्रंश को पर्याप्त समय तक 'देश भाषा' कहा जाता रहा । यही तथ्य हिन्दवी या हिन्दी के सम्बन्ध में लागू होता है । यह भी भारतीय परम्परा में सुदीर्घकाल तक 'भाषा' या 'भाखा' शब्द द्वारा अभिहित की जाती रही है ।

अपभ्रन्श-साहित्य

'तरंगाई कहा' के रचयिता पालित्त (पादलिप्त) (५०० ई०) ने अपनी भाषा को 'देसी वयण'[१] कहा है । उद्योतन सूरि (८ वीं शती) ने 'कुवलय माला' में महाराष्ट्री प्राकृत को 'देसीवयण'[२] संज्ञा दी है । कोऊहल (कौतूहल) कवि ने अपनी महाराष्ट्री प्राकृत को 'लीलावई' में 'देसी' तथा 'देशी भासा'[३] कहा है । कवि पुष्पदंत ने दशवीं शताब्दी में अपनी भाषा को 'देसि'[४] कहा तथा कवि पद्मदेव ने अपनी 'पासणाहचरिउ' की भाषा को 'देसी सद्दत्थगाढ़'[५] से युक्त कहा है । स्वयंभू कवि ने अपनी रामायण को 'देसी भाषा' में रचित बताते हुए कहा है कि 'सामान्य भाषा को छोड़ने में अपने आप को असमर्थ पाता हूँ' । बारहवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में काशी के दामोदर पण्डित द्वारा रचित 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' में पायी जाने वाली देश भाषा ने तो ऐसा प्रचलित रूप धारण कर लिया जिसके द्वारा गाहडवाल राजाओं को संस्कृत पढ़ाने का इसे माध्यम बनाया जा सका ।[६] मराठी में संत ज्ञाने-

१. पालित्तएण रइया वित्थरओ तहय देसिवयणेहिं । (पाहुड दोहा की भूमिका)
२. जो जाणइ देसोओ-हासाओ लक्खणाइ धाऊ दय । वयणय गाहा छेअं कुवलयमालं अेप सो पढउ ।
३. पबिरल देसी सुलक्खं कहसु कहं दिव्व माणुसियं-गाहा ४१
४. देसिण विणयामि—महापुराण १-८-१०.५ वायरणु देसिसद्दत्थगाढ-पासणाहचरिउ
६. डा० मोतीचंद (सम्पूर्णानंद अभिनन्दन ग्रंथ)

श्वर ने 'अम्हो प्राकृते देशीकारे बन्ध' तथा 'केलें ज्ञानदेवें' देशीकार लेणें' में देशीकार'[1] शब्द का प्रयोग किया है।

सत्य है कि कवि सामान्य लोक प्रचलित भाषा का ही आधार लेता है, जो परम्परागत अनेक स्रोतों से आये हुए शब्दों को गृहीत करती हुई अपनी निजी सत्ता बनाती हुई चलती है। वैदिक भाषा के बद्ध जल हो जाने पर संस्कृत भाषा धारा के रूप में बही, संस्कृत भाषा के बद्ध जल हो जाने पर प्राकृत धारा के रूप में बही, जब प्राकृत भी बद्ध जल रूप होने लगी तो अपभ्रंश अपनी धारा लेकर बही, इसी परम्परा का निर्वाह करती हुई, 'देशी-भाषा' की धारा जिसे बाद में 'अवहट्ट' की संज्ञा दी गयी, अपभ्रंश के गर्भ से नव्य भाषा के विकास की सूचक। संक्रमणकालीन अवहट्ट से पूर्णमुक्त जब नयी बोलियां साहित्य का माध्यम बन रही थीं, तो पुन: कवियों द्वारा 'भाषा' संज्ञाका व्यवहार होने लगा। यह विकास की धारा लोक मानस की शाश्वत प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है तभी तो आगे चलकर सद्यः प्रसूत नव्य भाषा का प्रयोग करते हुए महात्मा कबीर ने संस्कृत को 'कूपजल' तथा 'भाखा' को बहता नीर' कहा है। यही भाव १४ वीं शताब्दी की रचना 'कीर्तिलता' में कविवर विद्यापति और महाराष्ट्र के संत श्रेष्ठ एकनाथ ने भी कही है—

सक्कय वाणी बुहअन भावइ
पाउअ रस को मम्मन पावइ
देसिल बअना सब जन मिठ्ठा
तं तैसन जम्पओ अवहठ्ठा। (विद्यापति)

जे पाविजे संस्कृत अर्थे
तेचि लाभे प्राकृते
आता संस्कृत किंवा प्राकृता
'भाषा' झाली हरिकथा।

(एकनाथ)

यहाँ प्रयुक्त 'देसिल बअना' तथा 'भाषा' के विशेषणों 'सबजन मिठ्ठा' एवं 'हरिकथा' के व्यंग्यार्थ को विशेष ध्यान मे देखा जाय तो भाषा के विकास के साथ-साथ लोक रुचि का भी बोध होता है। तुलसी ने अपनी 'अवधी' कविता को 'सुरसरि' कहा और 'का भाषा का संस्कृत' प्रेम चाहिए साँच' में भाषा को संस्कृत की तुलना में खड़ा कर दिया। आचार्य केशवदास ने भी बड़ी कुंठित मन:स्थिति में कहा 'भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास'। इस प्रकार भारतीय परम्परा में

१. ज्ञानेश्वरी : अध्याय १८

मुसलमानों के भारत आगमन से पूर्व से लेकर १९वीं शती तक हमारी भाषा को 'भाषा' ही कहा जाता रहा। संस्कृत के अनेक ग्रन्थों की हिन्दी टीकाओं को 'भाषा टीका' के नाम से अभिहित किया जाता रहा। उधर फोर्ट विलियम कालेज में 'भाषा मुन्शी' की नियुक्ति हुई। इससे यह प्रतीत होता है कि यह विशेष शब्द या संज्ञा बन गया था।

यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है। देश में मुसलमानों का प्रवेश-संचार प्राकृत और अपभ्रन्शों के काल में ही चुका था। 'अवहठ्ठ' और 'डिंगल' में सैकड़ों शब्द फारसी-अरबी तथा तुर्की के आ चुके थे। उदाहरणार्थ विद्यापति के पितृव्य ज्यौतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' (१४ वीं सदी के पूर्वार्द्ध) में अरबी और फारसी तथा तुर्की शब्दों को अपनी स्थानीय उच्चारण-विधि के अनुकूल काफी मात्रा में बना कर ग्रहण कर लिया। फिर इसी सदी के उत्तरार्ध में रचित 'कीर्तिलता' में तो विद्यापति ने केवल 'तुर्क' शब्द के लिए तुरक्का, तुरुक्का तुरके, तुरुक्के, तुरुक्को, तुरुक तुरुकिनी, तुरुकाणओ, तुल्लुक आदि कई शब्दों का प्रयोग किया है। 'हिन्दू तुरके मिलन वास' में तो आपसी सौहार्द का भी स्पष्ट संकेत किया गया है। इतना सब होते हुए भी इन कवियों द्वारा हिन्दवी या हिन्दी संज्ञा का न अपनाया जाना एक विशिष्ट मनः स्थिति की ओर संकेत करता है। यह मनः स्थिति इस शैली विशेष के प्रति उनकी उदासीनता को ही सूचित करती है। अवहठ्ठ ने जब परिनिष्ठित रूप धारण कर लिया तो उत्तर भारत की आधुनिक बोलियां अंकुरित हो चुकी थी। अनेक कारणों से ब्रज और अवधी के एक मात्र साहित्य-माध्यम बन जाने पर हिन्दवी-खड़ी की ओर किसी का ध्यान न जाना स्वाभाविक भी था।

हिन्दी–हिन्दवी का निर्वाचन

वाच्यार्थ की दृष्टि से हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति, वस्तु तथा हिन्द या भारत में किसी भी आर्य द्रविड़ या अन्य कुल की भारतीय भाषाओं के लिए हो सकता है किन्तु इस प्राचीन व्यापक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अब प्रचलित नहीं है।

वर्तमान भारतीय साहित्य में यह शब्द भारतीय संघ की राजभाषा[1] तथा राष्ट्रभाषा के नाम का द्योतक है। उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश की प्रधान साहित्यिक भाषा और राज भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा इसी भूमिभाग की बोलियों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों में यह नाम साधारणतया प्रयुक्त होता है।[2]

१. भा० सं० धारा ३४३ : १ संघ की राज भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी।
२. धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ० पृ० ६०

अपने प्राचीन अर्थ से प्रस्तुत अर्थ तक आते-आते इस शब्द ने कई शताब्दियों की लम्बी यात्रा की है । ऋग्वेद में 'सिन्ध' और 'सप्तसिन्धवः'[1] शब्द नदी और सात नदियों के अर्थ में कई बार और विशिष्ट प्रदेश के अर्थ में[2] एक बार मिलता है । सम्भवतः याजकों के साथ इन दोनों शब्दों ने भारत से ईरान की यात्रा की । ईरानियों की प्राचीनतम धर्म पुस्तक 'आवेस्ता' में पाये जानेवाले 'हैन्दु' 'हिन्दु' तथा हफ्त् हिन्दवः या 'हप्त हिन्दवो'[3] इन्हीं दो वैदिक शब्दों के ईरानी उच्चारण मात्र हैं । संस्कृत की 'स' ध्वनि अवेस्ता की भाषा में 'ह' उच्चरित होती है, जैसे सप्त–हप्त, असुर-अहुर, अवेस्ता में महाप्राण ध्वनियाँ भी नहीं होती अतः 'ध' का 'द' हो गया है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत तथा ईरान के व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बंध आर्यों के भारत में आने के पूर्व भी विद्यमान थे, जैसा कि ज्योतिष, पौराणिक कथाओं तथा अन्य क्षेत्रों में आपसी प्रभावों से स्पष्ट है । आर्यों के भारत आगमन के बाद यह सम्पर्क सगोत्रीय होने के कारण कदाचित और बढ़ गया । दारा प्रथम के समय (५२१-४८५ ई० पू०) सिन्धु नदी के आस-पास का प्रदेश ईरानी लोगों के हाथ में था । इन्हीं सम्पर्कों के साथ भारत से ईरान तथा ईरान से भारत में याजक आया जाया करते थे । शाकद्वीप के मग ब्राह्मण (जो भारत में शाकद्वीपी ब्राह्मण कहलाये) फारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आकर यहाँ बसे थे । ईरान के शाह गस्तस्य के काल में महर्षि वेदव्यास के ईरान का उल्लेख मिलता है । ईरान के शाह ने वहाँ के महान दार्शनिक जरस्थुत्र' से व्यास जी की भेंट कराई थी ।[4]

प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दु' शब्द नदी के अर्थ में तो प्रयुक्त हुआ ही, साथ ही सिन्धु नदी के पास के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है । सिन्धु शब्द का प्रयोग प्रदेश विशेष के अर्थ में 'महाभारत' में भी मिलता है । उस समय ईरानवालों के पास भारत की भूमि के लिए केवल वही एक शब्द था, अतः धीरे-धीरे ईरानी भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गये, उसे इसी नाम से अभिहित करते गये । इस प्रकार किसी अन्य शब्द के अभाव में अर्थ विस्तार होता गया और सिन्धु नदी के पास की भूमि का वाचक शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया । प्राचीन

१. यद् ऋक्षादंहसो मुचदयो वार्यात सप्त वार्यात सप्त सिंधुवु—ऋक् ८ : २४ : २७
२. ऋक्—२ : ८ : ९६
३. यस्ना ५७, अनुच्छेद २९ अवेस्ता रीडर फर्स्ट सीरीज ए० वी० विलियम्स जैक्सन
४. पर्सियन इन्फ्लुएन्स इन हिन्दी—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पृ० ३१ तथा द्रष्टव्य—
(अ) हिन्दी का स० इति० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १७,१८
(आ) हिन्दी भाषा—श्यामसुन्दर दास, पृ० ८९

पहलवी में हिन्द, हिन्दुक् और हिन्दुश-शब्द मिलते हैं । पासी पोलिस धारय वसु ४८६ ई० के स्मारक पर 'हिन्दुस' शब्द अभिलिखित है ।[1] सूसा के राजमहल के अभिलेख में आता है···पिरु शह्या इदाक्रत हचाकुश उता हिन्दौत्र उता हचा हरउतिया अयश्यि···अर्थात् राजमहल के लिए हाथीदांत, जिस पर यहाँ काम किया गया, कुश (सम्भवतः अबीसोनिया), हिन्दु (भारत) और हरह्वैति (सं० सरस्वती, कदाचित सीमाप्रांत) से लाया गया । अवेस्ताग्रंथ वेन्दीदाद १. १८ में हस्त-हिन्दु (सप्त सिन्धु) को सोलह पवित्र स्थानों में एक माना गया है । यस्न (५७-२९] में भी हिन्दु शब्द भारत के लिये प्रयुक्त हुआ है । प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्दु, हिन्दुवअ [सं० सिन्धुव्य=सिन्धुवासी] आदि के अनेक ऐसे अन्य प्रयोग मिलते हैं ।

हिन्दु शब्द में धीरे-धीरे यह अर्थ विकास तो हुआ ही, साथ ही इसमें ध्वनि-विकास भी हुआ और 'इ' पर बलाघात होने के कारण अंत्य 'उ' लुप्त हो गया । मध्य-कालीन ईरानी काल में 'हिन्द' शब्द में ईरानी के विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' को जोड़कर हिन्द+ईक=हिन्दीक[2] फिर हिन्दीग् शब्द बना जिसका अर्थ था हिन्द का । कालान्तर में अन्तिम व्यंजन का लोप हो गया और 'हिन्दी' शब्द विश्लेषण के रूप में प्रचलित हो गया [उदा० तमर हिन्दी-भारतीय खजूर] । इस प्रकार हिन्दी शब्द का मूल रूप 'हिन्द' है कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने 'हिन्दी' को 'सिन्धी' का रूपांतर बताया है किन्तु ईरान में हिन्दी शब्द का रूप निर्माण उस समय हो गया था, जिस समय भारत में भा० आ० भा० का प्राकृत-अपभ्रंश काल रहा होगा । भारत के प्राचीन साहित्य में 'सिन्दी' शब्द नहीं मिलता । भारत में 'देवल' (कराची) बन्दरगाह से आने वाले अरब यात्री अवश्य सिन्ध प्रांत की भाषा को सिन्धी कहते हैं, किन्तु उसका समय ८ वीं शती है । अरब यात्री बुखारी (३७५ हि०) लिखता हैं 'देवल में सब व्यापारी ही व्यापारी बसते हैं, उनकी भाषा अरब (अरबी) और सिन्धी है' । ध्यातव्य है कि अरबी भा० आ० भा० की 'स' ध्वनि तद्वत ही उच्चरित होती है । अरब यात्री 'हिन्दी' और 'सिन्ध' को दो अलग प्रदेश मानते हैं, सम्भवतः काश्मीर की तराई से सिन्ध नदी के किनारे तक को 'सिन्ध' और गुजरात से लेकर भीतरी देश को 'हिन्द' कहते हैं । अरब यात्री मसऊद-३०३ हि० लिखता है, सिन्ध में वहाँ की अपनी भाषा है, जो हिन्द भाषाओं से भिन्न है ।

डा० भोलानाथ तिवारी ने 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि 'हिन्दु' शब्द 'ह' के साथ संस्कृत शब्द नहीं है । उल्लेख है कि किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसका प्रयोग नहीं हुआ है । उन्हें इसका प्राचीनतम प्रयोग सातवीं

१. पहलवी अर्ली इंसक्रिप्शन,
२. हिन्दी भाषा--डा० भोलानाथ तिवारी पृ० १२६

सदी के अंतिम चरण के ग्रंथ 'निशीथ चूर्णि में मिला ।'[1] आगे आपने इस शब्द के फारसी होने का भी विरोध किया है । तथापि वे हिन्दू शब्द को सिन्धु का फारसी रूपांतर स्वीकार करते हैं । डा० रामविलास शर्मा ने अपनी 'भाषा और समाज' पुस्तक में इस विषय का एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि 'स' का 'ह' फारसी की देन मानना अनुपयुक्त है । इसके लिए उन्होंने अपने तीन महत्वपूर्ण तर्क विचारार्थ प्रस्तुत किए हैं—

१. फारसी में 'स' से युक्त-आरम्भ और मध्य में अनेक शब्द मिलते हैं और आपने ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची भी दी है, फिर सिन्ध के 'स' का उच्चारण ही उनके लिए दुर्बोध क्यों हुआ ?

२. 'स' के 'ह' में परिवर्तन हो जाने के अनेक उदाहरण वैदिक भाषा से लेकर आजतक की भारतीय भाषाओं में मिलते हैं । अतः इसका उद्गम फारसी से क्यों माना जाता है, यहीं से क्यों नहीं ?

३. आपका तृतीय तर्क निश्चय ही महत्वपूर्ण है और भाषावैज्ञानिकों को इस पर सहानुभूति के साथ विचार करना चाहिए । वह है 'ह' का 'स' में परिवर्तन प्राचीन है अथवा 'स' का 'ह' में परिवर्तन । आपने लिखा है—'असम' शब्द 'अहम्' एक अन्य स्थान पर शर्मा जी लिखते हैं—'ह' ध्वनि का जैसा व्यापक प्रभाव भारत में वैदिक काल से लेकर अबतक बना हुआ है, वैसा योरोप के किसी क्षेत्र में नहीं है । यह महाप्राणता भारतीय भाषाओं की अपनी विशेषता है ।[3]

उपर्युक्त तीनों तर्कों का यदि विवेचन करें तो निष्कर्ष निकलता है कि इन में प्रथम दो तर्क अधिक सबल नहीं हैं, क्योंकि 'सिन्धु' का 'हिन्दु' उच्चारण यह नहीं कहता कि अमुक भाषा में 'स' ध्वनि है ही नहीं । भारत की उन भाषाओं का जिन में 'स' का विकार 'ह' मिलता है, विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि उनमें 'स' ध्वनि भी विद्यमान है और 'स' 'ह' भी हुआ है । हिन्दी को ही लीजिए इसमें जहाँ 'दस' मिलता है, वहाँ 'दसला' और 'दहला' दोनों शब्द मिलते हैं, इसी प्रकार राजस्थानी में यदि 'सड़क' 'हड़क' हो जाती है तो 'किस्सो' 'किहो' नहीं होता और 'सगला' और 'से' शब्द विद्यमान हैं । दूसरे तर्क के सम्बन्ध में यह कहना है कि भारतीय भाषाओं में यदि प्राचीन काल से 'स' का विनिमय मिलता है तो इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं होगा कि वह विनिमय 'सिन्धु' शब्द में भी ही हो । अनेक शब्द ऐसे हैं जिन में हुआ है और अनेक शब्द ऐसे हैं जिनमें नहीं हुआ । तृतीय

१. हिन्दी भाषा—भो० तिवारी १२३
२. भाषा और समाज—डा० रा० शर्मा
३. वही ।

तर्क निश्चय ही विचारणीय है । पर डा० शर्मा इसके प्रति अधिक उत्साही नहीं दृष्टिगोचर होते । इसके दो कारण हो सकते हैं एक, शर्मा जी के मस्तिष्क का यह विचार है कि आर्य भारत में बाहर से आए और दूसरा यह कि यूरोपियन भाषायें कुछ मात्रा में छान्दस की अग्रजा हैं । यदि इन दोनों विचारों से अप्रभावित रह कर चिंतन किया जाये तो सम्भवतः समस्या का समाधान हो सकता है । 'अस्मद्' शब्द का विकसित रूप 'अहम्' शब्द मूल है, निश्चय ही विचारणीय है । साथ ही इस बात पर विचार करना असंगत नहीं होगा कि हिन्दू शब्द ईरान से यहाँ पर आया अथवा ईरान में यहाँ से गया और आजकल के विदेश में गये नवयुवकों की तरह वहीं पर बस गया । पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' का भी इस परिप्रेक्ष्य में पुनः अध्ययन करना अपेक्षित है । इस विषय में आधुनिक राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं का यदि हम अध्ययन करें तो प्रतीत होता है कि 'ह' का उच्चारण शुद्ध न होकर विसर्गवत् होता जा रहा है ।[1] डा० सुनीतिकुमार चातुर्ज्या ने 'राजस्थानी भाषा' पुस्तिका में काफी विस्तार से इस बात की चर्चा की है । पाणिनि के 'विसर्जनीयस्य सः सूत्र से विसर्गों का 'स' में परिवर्तन हो जाता है । ऐसी स्थिति में श्री जगदीश प्रसाद कौशिक ने अनुमान किया है कि—वेदों की रचना से भी बहुत पहले आर्य इस प्रदेश के लिए हिन्दू शब्द का प्रयोग करते रहे होंगे और कालान्तर में उच्चारण की शिथिलता के कारण विसर्गों की मंजिल को पार करता हुआ यह 'ह' 'स' में परिवर्तित हो गया होगा । हमारे लिए यह शब्द प्राचीन होने के कारण विस्तृत हो गया और ईरान में सुरक्षित रहा हो, जिसे वे अलग होते समय अपने साथ ले गये । पुनः आक्रमण के समय ये लोग इस शब्द के साथ अपनी मातृभूमि में प्रविष्ट हुए और यह शब्द भारतीय होते हुए भी विदेशी सिद्ध हुआ ।[2] यह तो तो हुई सैद्धान्तिक बात, व्यावहारिक रूप में हमें यह स्वीकार करने में किंचित भी संकोच नहीं होना चाहिए कि इस युग में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में हम कर रहे हैं, वह मुसलमान आक्रांताओं की देन है[3] और उसे प्रसिद्ध करने में अंग्रेज मिशनरियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है ।

'हिन्दी' शब्द के प्रयोग

ईरान से ही 'हिन्द' और 'हिन्दी' शब्द अरब, मिश्र, सीरिया तथा अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हुए । आरम्भ में विदेशों में हिन्दी शब्द या तो देश या हिन्द

१. भा० आ० भा० का इतिहास पृ० २१८-२१९
२. डा० जगदीशप्रसाद कौशिक—भा० आ० भा० का इति० पृ० २१९
३. धीरेन्द्र वर्मा-हि० भा० इ०

से जाने वाली वस्तु का बोधक था। प्राचीन अरबी साहित्य में पाये जाने वाले 'अद हिन्दी' (अगर) 'किस्त हिन्दी' (कुट) 'राजज हिन्दी' (तेजपत्ता) 'कुरतुम हिन्दी' (कुसुम्ब) शब्द देशबोधक एवं विशेषण रूप हैं। मिश्र की भाषा में 'हिन्दी' का अर्थ है—सभी के आवरण के लिए 'मलमल'। कुरान में 'सुन्दृसु' का अर्थ है 'सुन्दर सूती वस्त्र' और अरबी में हिन्दी का एक अर्थ है—हिन्दुस्तानी फौलाद की तलवार। यहाँ हिन्दी शब्द वस्तु बोधक संज्ञा है। ईरान आने वाले प्राचीन ग्रीकों ने 'हिन्द' को इन्दिके, इंडिका, कहा है। लैटिन में जाकर यह शब्द 'इण्डिया' और 'इण्डियन' बने हैं। यह विकास भारतीय आर्य परिवार के लिए ज्ञात किए गए विकास के नियमों के अधीन सही उतरता है।

भाषा के अर्थ में—हिन्दी

भाषा के लिए प्राचीन तथा मध्यकालीन फारसी-अरबी साहित्य में 'जबाने हिन्दी' शब्द का प्रयोग सम्भवतः हिन्द की समस्त भाषाओं संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के लिए मिलता है। (१) सर्वप्रथम छठी शती में ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ (४२९-४७९ ई०) ने अपने दरबार के प्रमुख ज्ञानी हकीम बजरोया को 'पंचतंत्र' का अनुवाद कर लाने के लिए भारत भेजा था। बजरोया ने इस अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा। इसकी भूमिका नौशेरवाँ के मंत्री बुजर्च मिहर ने लिखी। भूमिका में कहा गया है कि यह अनुवाद 'जबाने हिन्दी' से किया गया है। यहाँ स्पष्ट ही 'जबाने हिन्दी' का प्रयोग 'भारतीय-भाषा' या 'संस्कृत' के लिए है। (२) पंचतंत्र के इस पहलवी अनुवाद के आधार पर अरबी गद्य तथा पद्य में कई नामों से कई अनुवाद हुए। ९ वीं सदी तक हुए प्रायः सभी अनुवादों में मूल-पुस्तक को 'जबाने हिन्दी' कहा गया है। प्रमाणस्वरूप ७०० ई० के आस-पास अब्दुल्ला इब्नुल मुकफ्फा के अनुवाद में, इब्न मकना के अनुवाद में तथा 'जावेदाने खिरद' नाम से ८१३ ई० में इब्न सुहेल द्वारा किये गये अनुवाद में 'जबाने हिन्दी' शब्द आया है। (३) पहलवी में सातवीं सदी में महाभारत के कुछ भागों का रूपान्तर किया गया था, उसमें भी मूल भाषा को 'जबाने हिन्दी' कहा गया है। (४) अल्बरूनी (१०२५ ई०) हिन्दी की भाषाओं को 'अल हिन्दयः' कहकर सम्बोधित करता है। फिरदोसी के 'शाहनामे' में 'कैद हिन्दी' शब्द आया है, जो एक भारतीय राजा के लिए प्रयुक्त है। १०वीं शती के उत्तरार्ध में महमूद गजनवी के बेटे का समकालीन अब्दुल-माली नसरुल्लाबिन अब्दुल हमीद भी 'कलीला व दिमना' के फारसी अनुवाद में 'पंचतंत्र' की भाषा को 'जबाने हिन्दी' की संज्ञा देता है—"सबब इल्लत तरजुमई किताब व नकल आँ अज हिन्दुस्तान ब पारस आँ बूद" (पृ० १) "आँ किताबरा कलीला व दिमनः आनन्द...... मरदे हुनरमन्द वायद तलबीद के जवान पारसी व हिन्दी बेदान। (पृ० १२) (५) १२२७ में मिनहाजुस्सिराज भारत आया था। इसने अपनी पुस्तक 'तबकाते-नासिरो' में लिखा है कि 'जबाने हिन्दी' में 'विहार' का अर्थ 'मदरसा' है। स्पष्ट ही यहाँ जबाने हिन्दी का प्रयोग संस्कृत के लिए न होकर या तो सामान्य भारतीय भाषा के अर्थ में है, या फिर भारत के मध्य भाग की भाषा—कदाचित हिन्दवी—के लिए। (६) १३३३ ई० में इब्नबतूता अपने 'रेहला इब्नबतूता' में तारन नगर के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखता है—'किताबत अला बाज अलजदरात बिलहिन्दी' अर्थात कुछ दीवारों पर हिन्दी में लिखा था। भाषा के अर्थ में स्वतंत्रतः 'हिन्दी' शब्द का विदेशों में यह (तथा पूर्वोक्त अब्दुल हमीद का) कदाचित प्राचीनतम प्रयोग है, यद्यपि यह नाम आज की हिन्दी के लिए न होकर संस्कृत के लिए है। (७) तैमूरलंग के पोते के काल में (१४२४ ई०) शरफुद्दीन यज्दी ने तैमूर और उसके परिवार के सम्बन्ध में 'जफरनामा' नामक ग्रंथ लिखा। इसमें एक स्थान पर आता है कि 'राव' हिन्दी शब्द है। विदेशों में 'हिन्दी भाषा' के लिए 'हिन्दी' शब्द का सम्भवतः यह प्रथम प्रयोग है।

हिन्दवी-हिन्दी-भारत में

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि किसी भी प्राचीन भा. आ. भा. में 'हिन्दी' शब्द नहीं मिलता है। (जैन महाराष्ट्री में लिखित कालकाचार्य की कथा में केवल 'हिन्दूग्' शब्द मिलता है, यथा :—'सूरिणा भणियम् रामाणो जेण हिन्दूग देसम् वच्चामो'।[1] अतः भारत में भी भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का प्रारम्भ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परम्परा में, जैसा कि पहले निर्दिष्ट है, उस समय प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का ही प्रयोग होता था। इसी 'भाषा' का समानान्तर (सम्भवतः १३वीं शताब्दि में) नाम 'हिन्दवी' कहा गया। इस संबंध में हातिम का कथन सूचक है। हातिम ने (१८वीं सदी उत्तरार्ध) ने 'दीवान जादे' के दीबाचे नें लिखा है—'जबान हर दयार ता बहिन्दवी, कि आँरा भाका गोयन्द……'इस से स्पष्ट है कि मुस्लिम परम्परा में हिन्दवी और भाषा प्रायः एक थी।

भारत में रहने वाले मुसलमान फारसी लेखक हिन्द की देशी भाषा के लिए 'हिन्दवी' तथा कभी-कभी 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

हिन्दवी या हिन्दी नाम का भारत में प्रथम प्रयोग कब और किसने किया, यह अभी तक अनुसंधान का विषय है। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार १३वीं शती में भारत के फारसी कवियों में 'औफी' (१२२८ ई०) सर्व प्रथम 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग हिन्द की (सम्भवतः मध्यदेश की) देशी भाषा के लिए संज्ञा रूप में करते हैं।

---

१. जैकोबी—जैन महाराष्ट्री, भाग ३४ पृ० २६२

स्व० मसऊद की काव्यकृतियों का उल्लेख करते हुए औफी लिखते हैं :-"यके बताजी व यके व पारसी व यके बहिन्दवी"[1] "सैयद दीवान दर इबारत अरबी व फारसी व हिन्दवी"[2] औफी के इस हिन्दवी प्रयोग के आधार पर ही डा० भोलानाथ तिवारी ने निष्कर्ष निकाला है कि "भाषा के अर्थ में 'हिन्दवी' या 'हिन्दुवी' नाम 'हिन्दी' से पुराना है"[3] ।

१३वीं, १४वीं शती में देशी भाषा को 'हिन्दवी' या 'हिन्दुई' तथा 'हिन्दी' नाम देने में अबुल हसन या अमीर खुसरू (१२५३ से १३२५ ई०) का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । खुसरू अपने युग के फारसी भाषा के सबसे बड़े भारतीय कवि और कलाकार थे । फारसी और अरबी के पूर्ण पंडित तथा देसी भाषा अर्थात 'हिन्दवी-हिन्दी' के ज्ञाता थे । अपने देशी भाषा के ज्ञान के लिए वे स्वयं कहते हैं—'तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब ।' अर्थात मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दवी में जवाब देता हूँ खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के लड़कों के शिक्षक थे । सम्भवतः उन्हीं को हिन्दी या हिन्दवी सिखाने के लिए या मध्य एशिया में चंगेजखाँ और तातारी लुटेरों के आक्रमणों से डरकर जो बहुत से ईरानी विद्वान और व्यापारी भारत में प्रवेश कर आए थे, उनको यहाँ के शब्द और बोलचाल के वाक्य जानने में सहायता और सुविधा उपलब्ध कराने के लिए अमीर खुसरू ने एक शब्द कोश तैयार किया था । 'खालिक बारी' में प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के हिन्दी पर्यायवाची शब्द कविता के रूप में लिखे गये हैं । "खालिक बारी" में 'हिन्दवी' शब्द ३० बार और 'हिन्दी' शब्द ५ बार देसी भाषा के लिए प्रयुक्त हुआ है । डा० भोलानाथ तिवारी के मतानुसार 'भाषा के अर्थ में खुसरो में हिन्दी शब्द का प्रयोग संदिग्ध है । उन्होंने हिन्दी शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों या भारतीय के लिए ही किया है ।'[4] आपने कहा है-'भाषा के अर्थ में खुसरो ने कहीं भी हिन्दी शब्द का प्रयोग नहीं किया ।'[5] डा० भालचंद्रराव तैलंग ने अपने लेख में कहा है-'हिन्दुई शब्द का प्रयोग खुसरो ने कई बार किया है । स्थान के अर्थ में तथा भाषा के अर्थ में 'अस्प मीरान हिन्दवी थोड़ा चलाव' खुसरो ने स्वयं हिन्दवी का परिचय या व्याख्या देते हुए कहा है :-'हिन्द हमीन कायीदह दारद बसुखन, हिन्दुई बूद अस्त दरअय्याम-कुहन । ४९ अर्थात इसी प्रकार भारत में भाषा के विधि-नियम बने हुए थे । हिन्दुई भाषा का प्रचलन प्राचीन काल में था । और आज भी पाया जाता है । इस हिन्दुई को उन्होंने

१. अलालु बाब-महम्मद औफी, जिल्द दोयम पृ० २४६
२. दिबाचा-गुर्रंउल कमाल खुसरू
३. हि० भा० पृ० १२८
४. भा० वि० कोश-भोलानाथ तिवारी

व्यापक अर्थ में लिया है-ईं हमह हिन्दुईस्त कि जिअय्याम-कुहन ।
आम्मह बकार अस्त ब-हर गुनह सुखन ॥

अर्थात यह सब हिन्दुई है, जो कि प्राचीन काल से हर बानी के लिए, जन साधारण प्रयुक्त करते आ रहे हैं । इसके समर्थन में डा० वहीद मिर्जा ने कहा है :-"हिन्दुई जबान तो जरूर मुल्क के मुख्तलिफ हिस्सों में, मुख्तलिफ है ।'[3] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[4] भी इस व्यापक अर्थ में सहमति व्यक्त करते दीखते हैं :-'उत्तर भारत का प्रत्येक हिन्दू या मुसलमान (चाहे वह देसी मुसलमान हो या विदेशागत) भारत की भाषा-हिन्दी या हिन्दवी या हिन्दुई में कुछ लिखना शुरू करने पर अपनी निवास भूमि अथवा अपनी शिक्षा या रुचि के अनुसार डिंगल या राजस्थानी, ब्रज भाषा या कोसली का प्रयोग करता था ।

डा० भोलानाथ तिवारी ने खुसरो द्वारा हिन्दी या हिन्दवी शब्द के प्रयोग की चर्चा के संदर्भ में एक मूलभूत प्रश्न उठाया है कि वस्तुतः 'खालिकबारी' खुसरो की रचना नहीं है, वह खुसरो के बहुत बाद के किसी 'खुसरोशाह' की रचना है, इस के लिए आपने कई तर्क दिये हैं—(क) अमीर खुसरो जैसे विद्वान की रचना यदि 'खालिकबारी' होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि वह प्रस्तुत रूप में बहुत ही अव्यवस्थित है । कभी फारसी के समानार्थी हिन्दी शब्दादि दिए गए हैं तो कभी वाक्यों के समानार्थी वाक्य । भाषा सीखने की दृष्टि से इन वाक्यों या शब्दों में कोई भी एकरूपता नहीं है । जो शब्द लिए गए हैं, उनमें सब ऐसे नहीं हैं, जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय, साथ ही प्रारम्भिक ज्ञान के लिए बहुत से अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द छूट गए हैं । जो वाक्य दिए गए हैं वे भी तुक या छन्द बैठाने की दृष्टि से लिए गए ज्ञात होते हैं । भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से उनका प्रायः बिल्कुल भी मूल्य नहीं है । कारक, काल रचना आदि की दृष्टि से भी वे महत्व नहीं रखते । (ख) छन्दों का बिना किसी योजना के परिवर्तन और कहीं-कहीं उनमें अप्रवाह का दोष भी खालिकबारी को महाकवि खुसरो की रचना मानने में व्याघात उपस्थित करते हैं । (ग) बीच में आता है—'तुर्की दानी ना' तुर्की का विद्वान खुसरो यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की नहीं आती, यह बात कल्पनातीत है । यों सभी शब्दों के लिए तुर्की शब्द दिए भी नहीं गए हैं । अतः ऐसा कथन बड़ा निरर्थक-सा लगता है यह बात भी 'खालिकबारी' को अमीर खुसरो से सम्बद्ध करने में अड़चन डालती है । (घ) खा. बा. के अंत में आता है 'सदा भिखारी खुसरोशाह' यहाँ भी आपत्ति उठाई जा सकती है कि शाह क्यों कहा ? खुसरो के

३. मोहम्मद वहीद मिर्जा—अमीर खुसरो पृ० १४५
४. सुनीतिकुमार चटर्जी—भारत की भाषाएं, पृ० ७५

समय तक नामों के साथ इसे जोड़ने की परम्परा नहीं मिलती ।' (ङ) शब्दों की गलतियाँ भी हैं । हिन्दी 'काना' के लिए फारसी शब्द 'कोर' दिया गया है, जब कि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है । 'तिदर्व' 'कुबक' और 'हंस' को एक माना है, जबकि तीनों अलग-अलग हैं । तीतर के लिए एक स्थान पर 'दुराज' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है । खा. बा. से इस तरह की अशुद्धियों के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं । ऐसी भद्दी गलतियाँ खुसरो नहीं कर सकते, और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि खा. बा. का लेखक लगता है, गयासुद्दीन तुगलक अपने लड़के को हिन्दी पढ़ाने के लिए पुस्तक लिखने का आदेश ही दे सकते हैं । उपर्युक्त बातों को देखते हुये, यह कहना उचित नहीं लगता कि खा. बा. खुसरो की रचना है ।' इस विषय में एहतेश्याम हुसेन का मत थोड़ा संतुलित है—"ठीक यह मालूम होता है कि जो 'खा-बा' हमको आज मिलती है, उसमें बहुत कुछ बाद में दूसरों ने जोड़ दिया है, और जो कुछ खुसरो ने लिखा था, वह उसी में खो गया है । ……हम पूरे विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते कि खा. बा. का कोई अंश भी अमीर खुसरो की रचना नहीं है ।"[१]

अमीर खुसरो द्वारा 'हिन्दी' शब्द के भाषा बोधक अर्थ में प्रयोग के समर्थन में खुसरो के ही एक वाक्य—"जुज्वे चन्द नज्मे हिन्दी नीज नज्जर देस्तां करदा शुदा अस्त" (अर्थात मैंने फारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी चन्द नज्में कहीं) वाक्य को भी प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया जाता है. डा० भो० तिवारी को यह आपत्ति है कि यह वाक्य उनके (अ० खु०) किसी भी प्रमाणित संस्करण में नहीं आया है । 'देवलदेवी खिज्रखाँ' मसनवी से कुछ लोगों ने उद्धरण दिये हैं किन्तु वहाँ मूलतः हिन्दुवी' का प्रयोग है, न कि हिन्दी का । इस प्रकार डा० तिवारी ने खुसरो द्वारा देशी भाषा के अर्थ में हिन्दी शब्द के प्रयोग का जोरदार विरोध करने के उपरान्त कहा है—"यों भाषा के अर्थ में 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग खुसरो में कई स्थलों में मिलता है । इस प्रसंग में खुसरो का एक फारसी शेर उल्लेखनीय है :—

चुमन तूतिए हिन्दम, अर रास्त पुर्सी
जे मन हिन्दुई पुर्स, ता नग्ज गोयम ।।

(मैं हिन्दुस्तान की तूती (एक चिड़िया) हूँ, अगर तुम वास्तव में मुझ से कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो, जिसमें कि मैं तुमको अनुपम बातें बता सकूँ) ।

अमीर खुसरो की मसनवियों में भी यह शब्द एकाधिक स्थानों पर आया है । इस प्रकार खुसरो के द्वारा 'हिन्दी' नाम के प्रयोग की बात बहुत प्रामाणिक नहीं ज्ञात होती । एहतेश्याम हुसेन ने लिखा है—"मुहम्मद तुगलक और फीरोज तुगलक के

१. उ० सा० का इति० २५

राज्यकाल में जो इतिहास की पुस्तकें लिखी गयीं, उनमें भी उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा के लिए 'हिन्दुई' लिखा गया है ' दूसरी ओर खुसरो के काल में हिन्दी प्रायः भारतीय मुसलमानों के अर्थ में प्रयुक्त होता था इस सम्बन्ध में डॉ० उदयनारायण तिवारी ने लिखा है—"हिन्दी का एक अर्थ है हिन्दुस्तान का निवासी, किन्तु अमीर खुसरो के समय में इससे भारतीय मुसलमानों से तात्पर्य था । खुसरो ने हिन्दू तथा हिन्दी में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है "बादशाह ने हिन्दुओं को तो हाथी से कुचलवा डाला, किन्तु मुसलमान जो हिन्दी थे सुरक्षित रहे ।"

हिन्दवी : हिन्दी में अर्थ भेद

यह प्रायः कहा गया है कि 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' शब्द एक ही अर्थ रखते थे और एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे । श्री भोलानाथ तिवारी ने इस विचार के प्रति असहमति प्रकट करते हुए कहा है कि……एक ही भाषा के लिए बिना किसी विशेष कारण के दो नामों का साथ-साथ उत्पन्न होना और बिल्कुल ही एक अर्थ में चलना कुछ जँचता नहीं । मुझे ऐसा लगता है आरम्भ में ये दोनों शब्द भिन्नार्थी थे । ऊपर कहा गया है, खुसरो ने हिन्दी शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है, और 'हिन्दवी' शब्द का 'मध्य देशीय भाषा' के लिए । यह हिन्दुवी शब्द वस्तुतः हिन्दुवी या हिन्दुई है । हिन्दु+ई=अर्थात् हिन्दुओं की भाषा । हिन्दुवी शब्द के प्रयोग के कुछ दिन बाद 'हिन्दी (अर्थात् भारतीय मुसलमानों) की भाषा के लिए कदाचित 'हिन्दी' शब्द चल पड़ा । हिन्दुवी या हिन्दवी तो वह भाषा थी, जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित थी और मध्यप्रदेश में सहज रूप से प्रयुक्त हो रही थी । हिन्दी अर्थात् 'भारत के मुसलमानों ने भी इसे अपनाया, किन्तु स्वभावतः धार्मिक तथा सांस्कृतिक (खान-पान, रहन-सहन) कारणों से उन की भाषा में अरबी, फारसी, तुरकी के शब्द अधिक थे । इसी भाषा के लिए आरम्भ में कदाचित 'हिन्दी' शब्द चला । इस प्रकार हिन्दवी शब्द पुराना है, और हिन्दी अपेक्षाकृत बाद का । साथ ही मूलतः दोनों में कुछ अन्तर भी है । शुद्ध हिन्दी में लिखने वाले पुराने कवियों तथा लेखकों ने सम्भवतः इसी कारण अपनी भाषा को प्रायः हिन्दवी ही कहा है ।'

डा० भोलनाथ तिवारी के हिन्दवी सम्बन्धी कथित मत के विपरीत चंद्रबली पाण्डेय ने यह सिद्ध किया है कि यह हिन्दी की भाँति ही शिक्षित हिन्दू-मुसलमान की भाषा थी । श्री चंद्रबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक "उर्दू का रहस्य" में सैयद इंशा को 'रानी केतकी की कहानी' की भाषा "हिन्दवी छुट है और इसमें किसी बोली का पुट नहीं है" का पूर्ण समीक्षण करते हुए इस की भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं:—

१. उ० सा० का इति० २५

१—इसमें हिन्दवी पन की कड़ी पाबन्दी की गई है।

२—इस में भाखापन का बहिष्कार किया गया है।

३—इसकी भाषा ऐसी है, जिसमें भले लोग अच्छे से अच्छे आपस में बोलते-चालते है।

४—इस में किसी भी अन्य भाषा की छांह नहीं है।[१]

अन्य भाषा से इंशा का तात्पर्य 'बाहर की बोली' है, जिसका अर्थ है, हिन्दी के बाहर की बोली अर्थात् अरबी, फारसी, तुरकी आदि (इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अपनी इस प्रतिज्ञा में इंशा पूरे सफल हुए हैं और आपने अन्य भाषा के शब्दों का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया है। इसी प्रकार भाखापन से इंशा का तात्पर्य उग्र गंगारू बोलियों से है, जो उस समय सीमित क्षेत्र में प्रचलित थीं।

अब एक बात का विचार करना है कि वे 'भले लोग' कौन थे जो इस भाषा का व्यवहार करते थे तथा जिन की भाषा प्रामाणिक थी। श्री पाण्डे जी ने 'दरियाए-लताफत' से उदाहरण दे कर यह सिद्ध किया हैं कि इंशा के अनुसार दिल्ली के चुने हुए-आदमियों की भाषा ही प्रामाणिक है और वे चुने हुए व्यक्ति भी प्रायः मुसलमान ही हैं। बोलने वाले वस्तुतः वे शिष्ट मुसलमान है, जिन्हें इंशा भाषा के क्षेत्र में प्रमाण मानते हैं। इस मीमांसा के पश्चात हिन्दुई, हिन्दवी को केवल हिंदुओं की भाषा मानना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है।[२] इस सम्बन्ध में डॉ० भो. तिवारी ने कहा है:—इंशा की हिन्दुवी भी...... पढ़े लिखे मुसलमानों की भाषा नहीं हैं...... वह प्रायः ठेठ हिन्दी या भाखा है।

श्री शिवराज वर्मा ने डॉ० भो. तिवारी द्वारा प्रदत्त 'हिन्दवी' शब्द की व्युत्पत्ति में संशोधन करते हुए कहा है -डॉ० तिवारी हिन्दुवी शब्द की व्युत्पत्ति 'हिन्दुई' अथवा 'हिन्दुवी' से मानते हैं, परन्तु यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि हिन्दवी शब्द का प्रत्यक्ष सम्बन्ध 'हिन्दू' शब्द से न हो कर 'हिन्द' से दीखता है, इसलिए हिन्दुवी शब्द से "हिन्द की भाषा" यही अर्थ अभीष्ट तथा संगत प्रतीत होता है। यही बात 'हिन्दु' शब्द से दीखता है, यही बात 'हिन्दुई' तथा 'हिन्दवी' शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सा-द-तासी ने लिखा है, "उत्तर और पश्चिम प्रांत में, जिस भाषा का विकास हुआ, जो केवल भाषा या भाखा (सामान्य भाषा) के नाम से पुकारी जाती है, वह हिन्दुई (हिन्दुओं की भाषा) हिन्दवी (भारतीय भाषा) के विशेष नाम से प्रचलित है।"[३]

१. उर्दू का रहस्य-पृष्ठ ४०—४८

२. हि. भा.-उ, ति॰ पृ. १८१

३. हिन्दुई साहित्य का इतिहास पृ ४४

निष्कर्षः—जो हो हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि "मध्य देश में विकसित जिस भाषा में अरबी, फारसी के शब्दों का अभाव था, उसे हिन्दवी अथवा हिन्दुई की संज्ञा दी गई। प्रारम्भ में उसका प्रयोग मुख्य रूप से हिन्दुओं ने किया कि वह उनकी पारम्परिक मातृभाषा थी परन्तु कालक्रम ने उसका प्रयोग मुसलमानों ने भी किया था। इस प्रक्रिया में उस में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ० सुनीतिकुमार चातुर्ज्या के अनुसार "हिन्दवी पश्चिमी हिन्दी की बोलियों से विकसित है तथा मुसलमानों को पंजाबी भाषा से प्रभावित एक अदृष्ट रूप से निर्मित हुई भाषा है। इसका व्यवहार दिल्ली के बाजारों में स्वभावतः होता था।"[१] इस कथन में पश्चिमी बोलियों तथा मुसलमानों की पंजाबी भाषा वाक्य खण्डों के अर्थ को स्पष्ट कर लेना अपेक्षित है।

हिन्दवी-देहलवीः—यद्यपि हिन्दवी या 'हिन्दी' का प्रयोग मध्यप्रदेश की जन भाषा के लिए चल रहा था, और वह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी जा पहुँची थी, किन्तु इसका स्वीकृत भाषाओं में अकबर के काल तक नाम नहीं मिलता। अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ 'नुहसिफर' में प्रसिद्ध ११ भाषाओं का उल्लेख किया है। सिंधी, बंगाली, गौडी, गुजराती, तिलंगी, मावरी (कांगड़ी) ध्रुव सुन्दरी, (देहलवी) किन्तु इनमें 'हिन्दवी' या हिन्दी नहीं है। अकबर के समकालीन अबुलफजल (१६वीं शती) को आइने अकबरी ३ में दी गयी १२ भाषाओं (देहलवी, बंगाली, मुलतानी मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगी, मराठी, कर्नाटकी, सिंधी, अफगानी, बलुचिस्तानी, कश्मीरी) में भी इनका नाम नहीं आता पर यह विचार्य है कि खुसरो और अबुल-फजल दोनों ही ने 'देहलवी' का उल्लेख किया है और मध्यप्रदेश की कोई और भाषा नहीं ली है। इसका आशय यह हुआ कि खुसरो से लेकर अबुलफजल तक (१४वीं से १६वीं शती तक, इस भाषा का स्वीकृत नाम शायद 'देहलवी' ही था। अन्य नाम हिन्दवी, हिन्दी कदाचित केवल साहित्य तक ही सीमित थे।

१५-१६वीं शती में देशी भाषा के समर्थन में जायसी का कथन है 'तुर्की अरबी, हिन्दवी, भाषा जेती आहि। जा में मारग प्रेम का, सबै सराहे ताही॥"
"ज्ञात रहे कि जायसी ने अवधी में लिखा और हिन्दवी (देहली और उसके इतराफ की जबान) के कवि हैं। इससे एक अनुमान यह लगाया जा सकता है कि इस समय १३वीं से १६वीं शती) दिल्ली के आस-पास से लेकर अवध तक के प्रांत की देशी भाषा को 'हिन्दवी' नाम सामान्य रूप से दिया जाने लगा था। चाहे वह साहित्यिक क्षेत्र तक ही सीमित क्यों न हो। यहाँ एक अन्य तथ्य पर भी ध्यान देना इष्ट

१. भा. आ. भा. और हिन्दी पृ० २०४

२. आइने अक. में हिन्दुई शब्द का प्रयोग किया है।' एहतेशाम हु. उ. सा. इ. पु २४

है कि मुसलमानी परम्पराओं से सम्बन्धित कवि फारसी और अरबी ऐसी प्राचीन भाषाओं की तुलना में देशी भाषा के लिए हिन्दी या हिन्दवी शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से करते हैं। भारतीय परम्परा से सम्बन्धित कवि संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं की तुलना में देशी भाषा के लिए अब भी केवल भाषा य भाखा का ही प्रयोग करते हैं। उल्लेखनीय है कि 'मासरूल उमरा' अकबर के दरबारी कवि रहीम खानखाना को 'हिन्दी' कवि कहा गया है।[१] रहीम प्रधानतः ब्रजभाषा के कवि हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समान्यतया भाषा, हिन्दी और हिन्दवी समानार्थक से थे। इसी सदी के दक्खिनी हिन्दी के कवि भी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। दक्षिण के कवियों ने हिन्दवी के साथ २ हिन्दी, दकनी, गुजरी नामों का भी प्रयोग किया है। 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियों में सर्व प्रथम ख्वाजा बन्दानवाज ने (१३१८ ई०) हिन्दवी में पहली गद्य पुस्तक 'मेराजुल आशकीन' की रचना की।[२] डॉ० तेलंग ने अपने लेख में प्रो० मुबारिजुद्दीन रफत के हवाले से कहा है "स्वयं हजरत बन्देनेवाज इसे 'हिन्दवी' कहते थे।[३] मीराँजी शम्सुल उश्शाक १४९६) ने इस के लिए हिन्दी तथा 'भाका' दोनों नामों का प्रयोग किया है:—

ये हिन्दी बोलूँ सब। उस शर्तों के सबब
ये भाँका भल सो बोले। पर उसका भावत खाले
(पद—उपदेश) ये गुरुमुख पद पाया। तो ऐसे बोल चलाया।

शेख अशरफ (१५०२ ई०) ने 'नौसरहार' में अपनी भाषा को हिन्दुई कहा है। वे पंक्तियाँ हैं

बाजा कीता हिन्दुई में। किस्सा मकतल शाह हुसेन।
नज्म लिखो सब मौजूँ आन। मैं हिन्दुई कर आसान।
इक-इक बोल ये मौजूँ आन। तकरीर हिन्दुई सबबखान। (१५०२ ई)

दिल्ली से आकर बीजापुर में बसे अब्दुल ने अपने काव्य' इब्राहिमनामा, (१६०३ ई०) के आरम्भ में लिखा है —मुझसे हिन्दवी और देहलवी भाषा सुनिये।

जवाँ हिन्दवी मुझ सूँ होर देहलवी
न जानूँ अरब होर अजम मस्नवी।

यहाँ अब्दुल ने एक ही 'पंक्ति' में दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। "इस का अर्थ यह है कि अब्दुल 'हिन्दवी' और 'देहलवी' शब्दों को पर्यायवाची नहीं मानता था। दिल्ली के संभ्रांत परिवारों की भाषा 'हिन्दवी' से पृथक हो रही थी।

१. रसायन–शिबली
२. यू. हु. मि. पि. इ. क. १०२
३. डॉ० तेलंग-हिन्दुई पृ. ४

उसमें अरबी-फारसी के शब्द सम्मिलित होते जा रहे थे। यह शब्दावली दिल्ली की भाषा को 'हिन्दवी' से देहलवी' बना रही थी।"[१] श्री देवीसिंह चौहान ने अब्दुल के उक्त उद्धरण में 'होर' को "हूँ" पढ़ा है। आपने लिखा है—'अब्दुल दिल्ली निवासी था। उसकी भाषा उत्तर भारत की 'हिन्दवी' अर्थात् खड़ी बोली थी। उसने बादशाह से पूछा कि काव्य किस भाषा में लिखा जाए।

पूछया जगत गुरू शिअर कहू किस जबान ॥९८॥
जवाँ हिन्दुई मुझ सो हूँ दिहलवी
न जानूँ अरब होर अजम मसनवी ॥९९॥

'दकन में उर्दू' के लेखक ने भी यही अर्थ माना है 'बादशाह ने फरमाया और हुकुम दिया कि कोई ऐसी किताब लिखी जाए, जिसका जवाब न हो, उसने अर्ज किया उसे सिर्फ 'हिन्दवी' जबान आती है।"[२]

हमारे विचार से दिहलवी भाषा का नाम न हो कर उसका स्वयं का विशेषण है, जो उसके दिल्ली-निवासी होने या दिल्ली से बीजापुर पहुँचने की सूचना देता है। अब्दुल से कुछ पहले बुरहानुद्दीन जानम (मृत्यु १५८२ ई०) ने अपनी भाषा के लिए 'हिन्दी' के साथ-साथ 'गुजरी' नाम का भी प्रयोग किया है :—

ऐबन राखे हिन्दी बोल
माने तो चक देखे बोल
हिन्दी बोली क्रिया बरवान
जो गुरु प्रसाद था मुंजज्ञान (इब्राहिमनामा)

'कलमतक हकायक' गद्य ग्रंथ में आपने कहा है—

"इजा शरीक कोई नहीं, ऐसा हाल समझता खुदा थे, खुदा कूँ जिस पर कदम खुदा का होय, सबब यू के गुजरी 'नाम ई किताब' कलमतुल हकायक' खुलासा बयान तजल्ली आयाँ रोशन शवद।

कविता में भी एक स्थान पर उन्होंने अपनी भाषा को गुजरी भाका कहा है :—

जो होवे ज्ञान बिचारी। न देखें भाका गुजरी।"

दकनी कवियों में कदाचित बुलबुल (१६२७ ई० के आस-पास) ही अंतिम कवि है जिसने अपनी भाषा के लिए हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है। बीजापुर के प्रसिद्ध कवि मिर्जा मुहम्मद 'मुकीम' ने एक कथा काव्य 'चन्दर बदन व महियार' लिखा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि चंद्रबदन के कवि के समकालीन 'अतिशी

१. श्रीराम शर्मा-द० हि० सा० १६८
२. दकन में उर्दू.

ने फारसी में इसका अनुदान किया था, जिसे बीजापुर के कवि बुलबुल ने हिन्दवी में किया । बुलबुलबु ने कहा है :–हरीरे हिन्दवी पर कर तू तस्वीर । लिबारे फारशी हैं

पाय जंजीर । तु हो मुज बाग में टुक नग्मा परवाज ।[१]

सितारे हिन्दवी दो दम नवा साज ।

हिन्दवी को 'दकनी' नाम देने का श्रेय जहाँ तक प्रमाण उपलब्ध है दकन के सर्व श्रेष्ठ कवि 'वजही' को है 'सम्भवतः वजही ने सबसे पहले इस भाषा के लिए 'दकनी' शब्द का प्रयोग किया ।"[२]

दकन में जो दकनी मिली बात का

अदा नइ किया कोई उम घात का ।"[३]

इनके बाद दकनी शब्द चल पड़ा यद्यपि हिन्दी भी जारी रहा ।

वजही ने हिन्दी नाम का प्रयोग सब रस' में किया है…' हिन्दोस्तान में हिन्दी जबान सों इस लताफत, इस छन्दा सों नज्म और नस्र मिलाकर-गुलाकार यो नै बोला ।" बाद में इब्न निशाती (१६५६ ई०) ने 'फूलवन' में एवं रुस्तुमी ने (१६४९ ई०) ने 'खाबिर नामह' में भी दकनी नाम का प्रयोग किया है । इस प्रकार ईसाकी १५ वीं से १७ वी शताब्दि तक दक्षिण में जो साहित्य निर्मित हुआ उस की भाषा हिन्दवी अथवा हिन्दी कहलाती थी, जो उत्तर भारत में खुसरो द्वारा भी उसी नाम से प्रयुक्त हुई थीं ।"[४]

हिन्दुओं द्वारा प्रयोग :-१६ वीं १७-वीं शती में उ० भा० में भक्ति आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था । सम्भवतः प्रथम बार हमें किसी हिन्दू द्वारा हिन्दवी का प्रयोग मिलता है । मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के वैयक्तिक सहायक श्री परकास दास द्वारा अम्बेर के दीवान श्री कल्यानदास को (१६६६ अक्तूबर) राजस्थानी में एक पत्र भेजा गया है…" सो ऐसी भांति कागज एक हिन्दवी परवानों श्री महाराज (जयसिंह) जी को श्री महाराज कुवाँ रँ जे के ताई आये बणवायो है ।"[५]

दूसरा उल्लेखनीय उदाहरण है हिन्दू-मुस्लिम तथा हिन्दू धर्म और इस्लाम की एकता के बहुत बड़े समर्थक प्राणनाथ ने अपनी कुछ सम्नन्धें (हिन्दवी में लिखी कुरान की व्याख्या) औरंगजेब के पास भिजवाई थीं । उन सम्बंधों के प्रति औरंगजेब की और अन्य मुसलमानों की क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका वर्णन करते हुए प्राणनाथ

---

१. डा० तेलंग पृ० ८

२. डा० श्रीराम शर्मा पृ० ३३

३. वजती-कुत्व मुश्तरी २९

४. डा० आशा गुप्ता-खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना पृ० ११५

५. जयपुर रिकार्डस्

के एक शिष्य लिखते हैं—" कोई वहे हिन्दवी मिने । लिखे ए कलाम ।। मैं तो बोहोत प्रकाया । इनो पीठ दई तरफ हक कोई कलम हिन्दवीय का । ल्यावतें है दिल सका ।" प्राणनाथ और उनके शिष्य लालदास ने मिलकर एक पत्र औरंगजेब को अपनी भाषा में ही लिखा उसे ले जाने के लिए लाल दरवाजे के पास रहने वाले आशाजीत ठाकुर से कहा गया । किंतु ठाकुर ने उत्तर दिया "सो पाली हिन्दवी की । क्यों कर सुने कान । सरियल हे जोरावर है पोहोरा मुसलमान ।

बनारसीदास जैन (१७ वीं शती) द्वारा प्रयुक्त 'हिन्दवी' शब्द भी इसी 'हिन्दवी' की ओर संकेत करता है :—मूलदास जिनदास के भये पुत्र परधान पढ़यो हिन्दवी, फारसी भाग्यवान बलवान ।

अनुमानतः १७ वीं शती तक हिन्दी और हिन्दवी शब्द समानार्थक थे और सामान्यतः मध्यदेश की भाषा के लिए प्रयुक्त होते थे । इस शती में दक्खिन के बीजापुर और गोलकुंडा राज्य में इसका मुख्यतः प्रचार रहा । वहाँ हिन्दवी-हिन्दी की जिस शैली का प्रचार था, उसका मूलाधार दिल्ली और उसके आसपास की भाषा थी । इस प्रकार ये एक विशिष्ट शैली के लिए प्रयोग होने लगे । इसके बाद ही हम देखते हैं कि इन शब्दों का धीरे २ विशिष्ट शैली के लिए प्रयोग होने लगता है । १७ वीं शती में हिन्दुओं ने भी इन नामों को अपनाया । इस सदी में हिन्दवी-हिन्दी दो लिपियों में लिखी जाती रही होगी, सम्भव है हिन्दू अधिकतर नागरी लिपि और मुसलमान फारसी लिपि में लिखते रहे होंगे । दक्खिन भारत में समस्त साहित्य फारसी लिपि में लिखा गया । अतएव हिन्दवी और हिन्दी दोनों का समान रूप से वहाँ प्रचार रहा किन्तु उत्तर भारत में सम्भवतः लिपि भेद के कारण, भाषा अत्यधिक रूप से एक ही होने के कारण भी, हिन्दुओं में 'हिन्दुवी' नाम और मुसलमानों में 'हिन्दी' नाम का प्रचार अधिक हुआ । प्रभावस्वरूप-प्रथम ब्रजभाषाव्याकरण के लेखक मिर्जा खाँ (१६६६ ई०) अपने ग्रंथ 'तहकतुल हिन्द' में लगभग ३००० हिन्दी शब्द की फारसी में व्याख्या करते हैं उस कोश की संज्ञा 'लुगातइ हिन्दी' देते हैं । इसी प्रकार शाह बरकतउल्लाह ने 'रिसाला अवारी के हिन्दी में हिन्दीप्रांत मे प्रचलित हिन्दी कहावतों की व्याख्या फारसी में की है । इस में मुसलमानों में प्रचलित हिन्दी कहावतें हैं । प्रायः सभी कहावतें मध्यप्रदेश में प्रचलित कहावतें हैं । इसी समय के आसपास शेख अब्दुल अंसारी (१०७३ हि०) की फिकए हिन्दी,' शेख महबूब आलम की कसाएल हिन्दी नामक पुस्तकों में हिन्दी शब्द उपर्युक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है ।

---

१. लालदास वीतक, प्रकर्ण ३७ चौ ४५·३५

२. लालदास वतीक पृ० ३८ चौ० ३८

हिन्दवी-हिन्दी अन्तरः—१८ वीं शती में भारतीय आर्यभाषा के विकास के लिए अति महत्व पूर्ण है। अभीतक तो हिन्दी, हिन्दुस्तानी शब्द प्रायः समानार्थक थे किंतु इस शती में इन शब्दों में नये अर्थों का विकास होता है, साथ ही भाषा दयोतक कुछ नये शब्द भी प्रचलन में आते हैं।

भाषा या भाका शब्द सामान्य रूप से मध्य देश की बोलियों के लिए, विशिष्ट रूप से ब्रज भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। दक्खिनी साहित्य में प्रयुक्त 'हिन्दवी' को जब उत्तरी भारत के मुसलमान कवियों ने फारसी के सांचे में ढालकर अपनाया तो एक नया नाम दिया रेख्ता। इस प्रकार जो केवल अभी एक विशेष काव्य प्रकार के लिए प्रयुक्त हो रहा था, वह अब हिन्दवी-हिन्दी की उस शैली के लिए प्रयुक्त होने लगा, जो काव्य में फारसी का जामा पहन कर आई थी। शाही दरबार में धीरे-धीरे इस का प्रचलन होने लगा और उस शाही शैली को १८ वीं शती के उत्तरार्ध में -जवान उर्दू ए मुअल्लम' की संज्ञा दी गई। हिन्दवी शब्द का प्रयोग इसी भाषा की उस शैली के लिए होने लगा, जो प्रधानतः हिन्दुओं में प्रचलित थी और जिसमें विदेशीपन कम रहता था (फारसी शब्द आते अवश्य थे किन्तु तद्‌रूप में) और भाखापन मिला रहता था। हिन्दी शब्द कभी-कभी (हिन्दवी के समान) देसी भाषा के अर्थ में आता है—" अगर सभी कूडाकरकट अस्त बहिन्दी हिन्दी जवान लटपट अस्त।" (मीर जफर जटली, १७३० ई० के आस पास)" लिखदेव हिन्दी बोल कर बाँचु मैं दिनरात "लिखी किताब इस वास्ते हिन्दी बोली बुझ" हिन्दी की बोली के अंदर बूझा राह यकीन "(मसायल हिन्दी-मुहम्मदशाह मालीन) हिन्दी शब्द कभी-कभी फारसी की तुलना में उस देशी शैली के लिए प्रयुक्त होता है जिसे 'जबान-रेख्ता' या आगे चलकर फारसी का अधिक रंग चढ़ जाने पर 'जबान-उर्दू-ए-मुअल्ला' कह सकते हैं' अब तक तरजुमः फारसी बइबारत हिन्दी नसर नहीं हुआ......अगर तरजुमः इस किताब का बरंगीनी इबारत उसे इस्तारात हिन्दी करीबुल फहम आयमः मोमिनैने.....कीजिए।[1] हातिम नासिख, मीर, सौदा, उर्दू कवि इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करते हैं। "कभी-कभी जवान रेख्तः के मुकाबले में हिन्दी शब्द प्रयुक्त होता है, इसमें जबान रेख्तः नहीं बल्कि हिन्दी मुतारिक कि अवाम को बेतकल्लुफ दरयाफत हो।"[2]

इसी शती के अन्तिम चरण में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को देशी भाषा सिखाने के प्रयत्न हुए। इस सम्बंध में गिलक्राइस्ट का नाम बहुत महत्व पूर्ण है गिलक्राइष्ट हिन्दी से 'हिन्दवी' भाषा का व्यापक अर्थ लेते हैं, हिन्दी और हिन्दुस्तानी को समानार्थक समझते है, किंतु हिन्दी से हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई का

१. करबल कथा—दह मजलिस-फजली औरंगावादी १७३२ ई०

२. शाह अब्दुल कादिर देहलवी। तरजुमा कुरान पाक १७९२ ई०

भ्रम हो सकता है, अतएव 'हिन्दुस्तानी' नाम के प्रचलन का ही समर्थन करते हैं। वे जिस भाषा को हिन्दुस्तानी नाम देते हैं, उसके विकास का सिद्धांत निम्नलिखित देते हैं हिन्दवी+अरबी+फारसी=हिन्दुस्तानी। इस प्रकार गिलक्राइस्ट का हिन्दुस्तानी नाम जबान रेख्ता, 'उर्दू ए मुअल्ला' का समानार्थक है। गिलाक्राइस्ट के मत का ही समर्थन डब्ल्यू. बी. बेली अपने मसविदे में करते हैं "हिन्दुस्तानी जबान कि जिसका जिक्र मेरे दावे में है, उसको हिन्दी, उर्दू और रेख्तः भी कहते हैं।[1] गिलक्राइस्ट के पूर्व हेलहेड 'हिंदवी' को शुद्ध हिन्दुस्तानी (Pure Hindustani) और हिन्दुस्तानी को मिश्रित हिन्दुस्तानी (Mixed Hindustani) की संज्ञा देते हैं। गिलक्राइस्ट हिंदुस्तानी की तीन शैलिया मानते हैं, १. उच्च वा दरबारी या फारसी शैली २. मध्यम या वास्तविक हिन्दुस्तानी ३. ग्रामणी या हिन्दवी शैली। इनके अनुसार 'हिन्दवी' नाम उस शैली के लिए प्रयुक्त होगा, जो 'फारेस्ट कृत सरकारी शासन प्रबंध से सरल अनुवाद में 'नागरी लिपि में लिखे हुए लेख से तथा निम्न श्रेणी के नौकरों की बोली में हिन्दुस्तान के किसानों की बोलियों में मिलती है।

१८०० ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम् कालेज की स्थापना होती है जहाँ प्राच्य भाषाओं की शिक्षा का विशेष प्रबंध होता है। गिलक्राइस्ट 'हिंदुस्तानी' (गिलक्राइस्ट के ही अर्थ में) विभाग के अध्यक्ष नियुक्त होते हैं। १९ वीं शती के प्रथम दशाब्द में कालेज से सम्बंधित वातावरण में हिंदी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, उर्दू आदि का प्रयोग गिलक्राइस्ट के अनुसार ही होता है। किंतु गिलक्राइस्ट के अतिरिक्त अन्य लोग हिन्दी और उर्दू को बिलकुल समानार्थक शब्द नहीं मानते, बल्कि उर्दू को हिंदी (सामान्य अर्थ) की एक विशिष्ट शैली मानते हैं। अतएव उर्दू या रेख्ते की जबान के अर्थ को ठीक करने के लिए 'हिंदी' शब्द के साथ कोई न कोई विशेषणात्मक वाक्यांश भी जोड़ देते है। १८०१ ई० में कलील अली खाँ" दास्तान अमीर हमजह' की भूमिका में लिखते हैं— "जबान हिन्दी के इस किस्से को जवान उर्दू

१. मसविद डब्ल्यु बी. बेली. विशाल भारत १९४० भाग २५ पृ. २८. २४

२. गिलक्राइस्ट ने सन् १७७८ ई० में हिन्दी, हिन्दवी का सम्बंध हिन्दुओं से जोड़कर मुसलमानों को उससे अलग किया। (गिलक्राइस्ट डिक्शनरी-प्राक्कथन) पुनश्च उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा :—Hindvee, I have treated as the exclusive property of the Hindoos alone. (John Gilchrist :—The oriental linguistic, An Lssay and familier gntroduction of popular language of Hindustan, calculta (1798) also appeared in the Indian literetur No, 1, 1953 peoples puplishing House Bombny—Page 29

ए मुअल्ला के से लिखा ।"[1] इसी प्रकार सैयद हैदरबक्श 'तोता कहानी' (१८०४ ई०) की भूमिका में लिखते हैं "मुहम्मदकादिरी के तूतीनामे का जबान हिन्दी में मुवाफिक मुहावरह उर्दू के तजुमः किया।" निहालचन्द्र लाहौरी (१८०३ ई०) 'किस्सा' गुलबकावली की भूमिका में इसी आशय की ओर संकेत करते हैं—"फारसी से हिन्दी-रेख्ते के मुहावरे में तालीफ कर···।" कालेज के वातावरण से बाहर हिन्दवी शब्द भी बिलकुल ग्रामीण शैली के लिए प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि शिष्ट लोगों की उस शैली के लिए भी न हो, और भाषा का प्रभाव भी न हो और भाषा-पन भी न हो "कोई कहानी ऐसी कहें, जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिलें, बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो··· एक पुराने···नाथ यह ···लाये हिन्दवीपन भी निकले और भाषापन भी न निकले और भाषापन भी न ठुस जाये, भले लोग अच्छे से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं यही नहीं होने का"[2] फारसी अरबी ऐसी बाहरी भाषाओं की परम्परा में अधिक सम्बन्धित होने के कारण यद्यपि इंशा इस प्रकार की शुद्ध हिन्दी या हिन्दवी लिखने में विशेष सफल नहीं हुए, किन्तु उनका उद्देश्य शुद्ध हिन्दी या हिन्दवी के आदर्श की ओर था। आगे चलकर लल्लूलाल ने-प्रेमसागर १८०२ ई० तथा 'रामचरित' में इस हिन्दवी शैली का प्रयोग किया, जिसे खड़ो बोली की संज्ञा मिली ये दोनों लेखक भी पूर्ण रूप से आदर्श में सफल नहीं हुए, क्योंकि संस्कृत परंपरा, हिन्दू परम्परा से विशेष प्रभावित होने के कारण इन दोनों की शैली में भाषापन (ब्रज भाषापन का ग्राम्य प्रभाव) दिखाई पड़ता है।

फारसी में लिखित अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'दरयाय लताफत' (१८०८ ई०) में इंशा अल्ला खाँ हिन्दी शब्द का प्रयोग लगभग ४० बार करते हैं। इन प्रयोगों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इंशा फारसी, अरबी आदि बाहरी भाषाओं के संदर्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग अधिकांशतः सामान्य अर्थ में मध्य प्रदेश की भाषा के लिए करते हैं। यथा "जुमला हिन्दी में बात और अरबी में कलाम है"[3] और चन्द्र नयकास जिन्हें हिन्दी में माँह कहते हैं।"[4] परन्तु इसी सन्दर्भ में, इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में उस भाषा के लिए करते हैं जो दिल्ली तथा उसके आसपास की भाषा से विकसित हुई है और जिसकी दरबारी शैली को आदर्श उर्दू मानते हैं। यथा-"पर हिन्दी जबान के हरफ अठासी, हुए।[5] हिन्दी में मसदरकी

1. दास्तान अमीर हमजह
2. दास्तान रानी केतकी (१८०३ ई०)
3. दरियाव लताफत पृ १२१ उर्दू अनुवाद
4. वही पृ० १२२
5. वही

अलामत "ना"।[1] सर गुजिस्तः फारसी और रसमानी में हिन्दी बुआ।"[2] इस प्रकार विदेशी भाषाओं (फारसी-अरबी) के सन्दर्भ में हिन्दी और उर्दू शब्द समानार्थक से हैं, किन्तु उर्दू के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द सामान्यतः मध्यदेशी (या गिलक्राइस्ट के शब्दों में हिन्दुस्तानी ग्राम्य शैली) का द्योतक प्रतीत होता है। 'भागा' और 'भीगा' तो उर्दू है, लेकिन भाजा और भोजा उर्दू नहीं अगरच वह हिन्दी में सही है।"[3] हिन्दी का यह अर्थ हिन्दवी हिन्दुई (गिलक्राइस्ट के अर्थ में) के बहुत निकट है। सम्भवतः यही कारण है कि गिलक्राइस्ट ने बहु प्रचलित हिन्दी शब्द को छोड़कर हिन्दी की बहु प्रचलित प्रतिनिधि भाषा को हिन्दुस्तानी नाम दिया, जो उनके लिए उर्दू का समानार्थक था। वास्तव में उस समय हिन्दी शब्द सामान्य रूप से उर्दू या हिन्दुस्तानी और हिन्दी या हिन्दुई, सब के लिए प्रयुक्त होता था। १२११ ई० में लल्लूलाल द्वारा लिखित 'लतायफे हिन्दी' जिसमें कि फारसी और नागरी दोनों लिपियों में हिन्दुस्तानी तथा हिन्दवी भाषा की कहानियाँ संग्रहीत है, नाम इसी आशय की ओर संकेत करता है।

फोर्ट विलियम कालेज में गिलक्राइस्ट के समय तक हिन्दुस्तानी (उर्दू और फारसी लिपि को विशेष परिचय मिला, क्यों कि गिलक्राइस्ट के अनुसार वही बहु प्रचलित सुसंस्कृत भाषा थी, किन्तु कम्पनी कर्मचारियों का सम्बन्ध जैसे-जैसे हिन्दुस्तानियों से बढ़ता गया, यह भान होता गया कि हिन्दुस्तानी (उर्दू) नही बल्कि हिन्दी (हिन्दवी) ही बहुप्रचलित भाषा थी। १८१२ ई० में कैप्टेन टेलर ने कॉलेज का वार्षिक विवरण प्रस्तुत करते हैं समय 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ में सम्भवतः प्रथम बार किया, "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिकर कर रहा हूँ जो फारसी लिपि में लिखी जाती है······मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा। जिसकी अपनी लिपि है······जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर पश्चिम प्रान्त की भाषा थी।"[4] इसके पश्चात ११ अक्टूबर १८२४ ई० में विलियम प्राइस ने अपने को सर्व प्रथम हिन्दी प्रोफेसर लिखा और ब्रज भाषा, खड़ी बोली, हिन्दवी, हिन्दुई, ठेठ हिन्दी आदि नामों के बदले हिन्दी नाम को चुना। उनका कथन है—अत्यधिक प्रचलित शब्द संस्कृत के हैं और हिन्दुस्तानी के अधिकांश शब्द अरबी और फारसी के।" प्राइस हिन्दी और हिन्दुस्तानी का उदाहरण इस प्रकार देते हैं—हिन्दुस्तानी "एक बार

1. दरियाव लताफत पृ० १२७
2. वही २५३
3. वही पृ० २२०
4. इम्पीरियल रिकर्डस होम मिः जिल्द पृ० २७६—७७

किसी शहर में यु शुहरत हुई कि उसके नजदीक के पहाड़ को जनने का दर्द उठा। हिन्दी' एक समय किसी नगर में चर्चा फैली कि उसके पड़ोस के पहाड़ को प्रसूत की पीर हुई।"[१] १८२५ ई० के वार्षिक अधिवेशन में भाषण करते लार्ड एमहर्स्ट ने कहा—हिन्दी शब्द के समान्य अर्थ के अन्तर्गत ये बोलियां आती हैं जो थोड़े से स्थानीय भेदों और परिवर्तनों के साथ बनारस और बिहार तथा समर्पित प्रान्तों के अधिकांश हिन्दू जन-समूह द्वारा व्यहृत होती है "अब आपको छोटे से छोटे व्यक्ति के साथ न्याय करना पड़ता है" "फारसी और उर्दू के लिए उतनी ही विदेशी है, जितनी अंग्रेजी।"[२] आज इसी आधुनिक अर्थ में हिन्दी भारतीय सघ की राज भाषा है।

उपर्युक्त के विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी नाम के रूप का विकास भारतीय सीमा के बाहर ही ईरानियों द्वारा ८वीं शती तक हो गया था। तब से लेकर आज तक इस शब्द से ३ अर्थ विकसित हुए (१) व्यापक अर्थ (२) सामान्य अर्थ (३) विशिष्ट अर्थ। जब तक मुसलमान भारत में नहीं बसे थे तब तक हिन्दी का प्रयोग व्यापक अर्थ में ही करते रहे। प्राचीन भारतीय भाषाओं तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं से प्रत्यक्ष रूप से परिचित होने पर १३वीं शती के पश्चात मध्यदेश (पूर्वी पंजाब, मध्यप्रदेश सम्भवतः यही अर्थ लेते हुए ग्रियर्सन ने हिन्दी को ८ मुख्य बोलियाँ (Dialect) पश्चिमी हिन्दी खड़ी बोली, बांगरू ब्रज कनौजी, बुन्देली, पूर्वी हिन्दी-अवधी, बघेली छत्तीसगढ़ी मानी है। श्याम सुन्दरदास तथा धीरेन्द्र वर्मा राजस्थानी (मेवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, हाड़ौती) तथा पहाड़ी (कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली और बिहारी, मैथली, मगही, भोजपुरी) तीन उप भाषायें और मानते है। साहित्यिक सन्दर्भ में आज भी हिन्दी का यही सामान्य अर्थ प्रमाणित है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत मध्यदेश से सम्बन्धित समस्त बोलियों का साहित्य आता है। मसऊद, ओफे और खुसरो से लेकर आजतक साहित्यिक सन्दर्भ में हिन्दी का प्रयोग इसी सामान्य अर्थ में हुआ किन्तु मुसलमानों ने मध्यप्रदेश को समस्त बोलियों को अपने प्रयोग के लिए नहीं अपनाया था, बल्कि दिल्ली और मेरठ की बोली (आधुनिक खड़ी बोली-बांगरू) ही उनकी बोलचाल की भाषा बनी थी। खुसरू की देहलवी, गूजरी दक्खिनी, हिन्दी हिन्दवी से यही विशिष्ट अर्थ अभिप्रेत है। हिंदी का यह रूप ही मुसलमानों तथा सन्तों द्वारा प्रयुक्त हो कर अन्तः प्रान्तीय बना। औरंगजेब कालीन स्वामी प्राणनाथ के 'कुलजत स्वरूप' में प्रयुक्त शब्द "बोली हिन्दुस्तानी" तथा २०० वर्ष पुराने खड़ी बोली के पत्रों में प्रयुक्त हिन्दुस्तानी भाषा और लालदास बीतक में प्रयुक्त हिन्दवी शब्द का विशिष्ट अर्थ दिल्ली और मेरठ की बोली ही है। १९वीं शती में गिलक्राइस्ट द्वारा प्रयुक्त हिन्दुस्तानी शब्द का भी विशिष्ट अर्थ यही है। इससे ही दो विशिष्ट साहित्यिक शैलियाँ विकसित हुई, उर्दू और हिन्दी (आधुनिक अर्थ में)।

१. इम्पीरियल रिकर्ड्स होम मि: जिल्द ४ पृ० ५०३—५०६
२. एशियाटिक जर्नल १८२६ ई०।

२ | हिन्दवी—उद्भव और विकास की धारा

"अमीर खुसरो ने जिस भाषा को 'हिन्दुई' कहा है, सच यह है कि हम उसी से हिन्दी भाषा का इतिहास भी आरम्भ कर सकते हैं।"[१] "तुलना की दृष्टि से खड़ी की अपेक्षा अवधी और व्रज का साहित्य इससे काफी बाद का है।"[२] यह एक ऐसा तथ्य है, जिसपर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया है, प्रायः उपेक्षा की है। इसी का परिणाम है कि न खड़ीबोली के क्रम-बद्ध इतिहास की सामग्री (साहित्य) के शोध में विशेष मनोयोग से काम किया गया और न ही ज्ञात एवं उपलब्ध सामग्री का समुचित उपयोग करने के प्रति तत्परता दिखलाई गयी। "खड़ीबोली में साहित्य के निर्माण की परम्परा उत्तर भारत में खुसरो के बाद कई सदियों तक लुप्त रही।"[३] इस विचार से बलात् सहमत हो जाने पर भी हिन्दी क्षेत्र के बाहर लगभग समस्त भारत में और मुख्यतः गुजरात, महाराष्ट्र और सुदूर दक्षिण में पहले हिन्दवी-हिन्दी और बाद में दक्खिनी गुजरी नाम से १४ वीं शताब्दि के आरम्भ से ही अविरत रचित हिन्दी का विपुल साहित्य उपलब्ध है। सम्पूर्ण सामग्री का उचित उपयोग करने पर ही हमारे साहित्य का इतिहास वास्तविक और पूर्ण बन सकेगा।

विभिन्न अपभ्रंशों के गर्भ से १० वीं से १३ वीं शती तक सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हो रहा था। भाषा विदों का मत है कि भा० आ० भा० का वर्तमान स्वरूप लगभग १५ वीं १६ वीं शताब्दी में प्रकाश में आया। इस से पूर्व ये जन भाषाओं के रूप में पनप रही थीं।"[४] आचार्य हेमचन्द्र (११वीं शती) के पश्चात् तेहरवीं शती के आरम्भ से पन्द्रहवीं शती के पूर्व तक का काल 'संक्राति काल' था, जिसमें भा० आ० भा० धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थीं।[५]

१. एहतेशाम हुसैन-उ० सा० का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २८
२. बा० सक्सेना-द० हि०
३. वही
४. ज० कौशिक - भा० आ० भा इ० पृ० २१९
५. हि० भा० का उद्गम और वि० उ० तिवारी पृ० १४४

मध्य देश आन्तर भाषा (लिंग्वाफांका) की परम्परा

संस्कृत काल से लेकर आज तक मध्य देश[१] की भाषा ही अखिल जन-सम्पर्क की भाषा के गौरवमय पद पर विभूषित होती रही है। 'संस्कृत' न केवल भारत अपितु संलग्न विभिन्न देशों और द्वीपद्वीपांतरों तक व्याप्त थी और विद्या तथा व्यापार हेतु पूरे क्षेत्र में अबाध संचार का एकमात्र साधन थी। किन्तु जब वैयाकरणों ने भाषा की शुद्धता में बाधा आने की आशंका से व्याकरण के कठोर नियमों का निर्माण कर दिया साथ ही साहित्यकारों ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भावों की अभिव्यक्ति के हेतु सक्षम माध्यम के रूप में इसकी शब्दावली का परिमार्जन और परिष्कार किया, शास्त्र और विज्ञान विदों ने इसके कोष को पारिभाषिक शब्दावली से भर दिया। इन सारे प्रयासों से जहाँ एक ओर भाषा अधिक सुष्ठु हुई वहाँ दूसरी ओर वह एक मात्र विद्वानों की सम्पत्ति बनकर रह गयी, तथा जन साधारण के लिए दुर्बोध होती चली गयी। फलस्वरूप परवर्ती जन भाषाएं अंकुरित हो आईं।

जैनों और बौद्धों ने प्राच्य भाषाओं को अखिल भारतीय भाषा बनाने का प्रयास किया। अशोक के शिलालेखों की भाषाएँ प्राच्य प्रभाव की सूचना देती है किन्तु यह प्रयास विशेष फलदायी सिद्ध न हो सका होगा, अतः बौद्धों ने तथागत के प्रवचनों को पुनः मध्य प्रदेशीय भाषा 'पाली' में अनूदित किया। संस्कृत के समान पालि भी भारत ही नहीं अपितु लगभग समस्त एशिया को धार्मिक भाषा स्वीकार कर ली गयी। अबतक मध्यदेश की पृष्ठभूमि इतनी सशक्त हो चुकी थी कि सांस्कृतिक क्षेत्र में उसे अनदेखा करना मुकर कार्य न रह गया था। द्वितीय, कोई ऐसा चाहता भी न था, क्योंकि अखिल भारतीय हिन्दू समाज को सांस्कृतिक धरोहर उस पुण्यभूमि में समायी हुई थी, और है। यही कारण है कि पालि के पश्चात इसी की पुत्री 'शौरसेनी' प्राकृत पुनः समस्त भारत की साहित्यिक भाषा बनी। जैन समुदाय भी अभी तक अर्धमागधी का दामन थामे बैठी थी, इसी ओर झुक गया और इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत अखिल भारतीय भाषा बन गई। शौरसेनी के पश्चात महाराष्ट्री, जो इसी का एक पश्चकालीन रूप है, जन सम्पर्क की भाषा बनी। भाषाविद इस बात पर एक मत हैं कि महाराष्ट्री दक्षिण की कोई प्राकृत नहीं बल्कि शौरसेनी का ही विकसित रूप और मध्य देशीय भाषा है तथा दक्षिण में यह उसी प्रकार पोषित हुई, जिस प्रकार बाद में 'हिन्दवी' या दक्खिनी हिन्दी। इसके बाद पश्चिमी अपभ्रंश या परिनिष्ठित अपभ्रंश जो शौरसेनी प्राकृत का विकसित रूप है, 'आंतर भाषा' के पद पर प्रतिष्ठित हुई। जैन बौद्ध और हिन्दू सभी ने इसे धर्म, साहित्य संस्कृति की अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया। इसी पश्चिमी अपभ्रंश का विकसित रूप है पश्चिमी हिन्दी, जिसकी एक बोली नागरी हिन्दी या खड़ीबोली को वर्तमान भारत

१. हिमवत् विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग् विनशनादपि
प्रत्यगेव प्रयागच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥— मनुस्मृति

के संविधान में राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया गया है, जो परम्परा की दृष्टि से उपयुक्त ही है।

हिन्दवी : प्राचीनता

पश्चिमी हिन्दी की यह शाखा पर्याप्त समय तक अपने ही घर में एक प्रवासिनी का सा जीवन व्यतीत करती रही। कदाचित इसी कारण डा० ग्रियर्सन ने 'लालचन्द्रिका' (१८९६ ई०) की भूमिका में लिखा कि 'इस प्रकार की भाषा की इससे पहले भारत में कहीं पता न था इसलिए जब लल्लूलाल ने 'प्रेम सागर' लिखा, तब वे एक बिलकुल ही नयी भाषा गढ़ रहे थे'' इसी प्रकार के अपने भ्रम की पुनरावृत्ति डा० ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे भाग १ सन १९२७ ई० में भी की कि 'यह हिन्दी जिसे कभी-कभी लोग उच्च हिन्दी कहते हैं, उन हिन्दुओं की गद्य-साहित्य की भाषा है, जो उर्दू का प्रयोग नहीं करते। इसका आरम्भ हाल में हुआ है और इसका व्यवहार गत शताब्दी के आरम्भ से अँग्रेजी प्रभाव के काल में होने लगा है। लल्लूलाल ने डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से सुप्रसिद्ध 'प्रेमसागर' लिखा कर ये सब परिवर्तन किये थे।''[१]

वस्तुतः खड़ीबोली उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई ब्रजभाषा आदि अन्य भाषाएँ। अपभ्रंश काल (१० वीं शताब्दी से १४ वीं शताब्दी तक) को जैन आचार्यों, बौद्ध सिद्धों, नाथ पंथियों, चारण कवियों आदि की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन में खड़ीबोली का अस्तित्व बीज रूप में उसी प्रकार पाया जाता है, जिस प्रकार ब्रज, अवधी, पंजाबी आदि अन्य भाषाओं का।' नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक अपने लेख में पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा 'बुद्ध-चरित' की भूमिका में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस तथ्य का विस्तार से विवेचन किया है। उदाहरण-स्वरूप कुछ पद इस प्रकार दिये हैं—

(क) उच्चणिओं संवेशउओ तारय पम्ह कहिज्ज
जग दालिद्दिति उव्बिड वलिबंधणह मुहिज्ज ॥१

(ख) जेह असावरि देहा दिन्हउ।
सुस्थिर डाहरज्जा लिन्हउ ॥२

(ग) नवजल भरिया नग्गड गयणि धडक्कइ मेहु ॥३

(च) महिवडह सचराचरह जिसिर दोहा पाय ॥४

इन पदो में अवधी, ब्रज भाषा, खड़ीबोली, पंजाबी आदि के भूतकालिक क्रियापद रूपो के बीज समान रूप से पाए जाते हैं।

१. हि० भा० श्यामसुन्दरदास पृ० ४६ स० १९४६ ई०
२. वही

अपभ्र०	ब्रज	अवधी	खड़ी बो०	पंजाबी
संदेसड़ओ	संदेसडो	—	—	—
दिन्हउ	दीन्हो	—	—	—
भरिया	—	भरा	भरा	भर्या
दिन्हा	—	दिया	दिया	—

पश्चिमी अपभ्रंश-हिन्दी

उपर्युक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि डा० ग्रियर्सन का मत सारहीन था। अस्तु अब हम पश्चिमी हिन्दी की बोलियों का 'पश्चिमी अपभ्रंश' से व्याकरणिक रूप-विकास कैसे हुआ इसे देखें।

वैदिक संस्कृत या छान्दस, विकास के अनेक सोपानों को पार करती हुई पश्चिमी अपभ्रंश के नाम से अभिहित हुई। अन्य साहित्यिक भाषाओं की तरह वैयाकरणों ने इसे भी नियमबद्ध किया। चंडमार्कंडेय, पुरुषोत्तम इ० ने इसके व्याकरण लिखे, हेमचन्द्र ने सबसे महत्वपूर्ण व्याकरण लिखा। जब हेमचन्द्र अपभ्रंश का व्याकरण गुजरात में बैठकर लिख रहे थे, उस समय वह भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी और सम्भवतः जन सामान्य के लिए दुर्बोध होती जा रही थी। परिणामतः साहित्यकारों ने उसमें देशी तत्वों का मिश्रण प्रारम्भ कर दिया था। विद्वानों का मत है कि हेमचंद्र ने जो उदाहरण 'हेम शब्दानुशासन' में उद्धृत किये हैं उनमें से अनेक पद पश्च कालीन अपभ्रंश के अथवा नवीन भाषा में परिवर्तित होने जा रही-सी अपभ्रंश का द्योतन कराते हैं। पश्चिमी हिन्दी के प्रारम्भिक उपकरण हमें इस भाषा में सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। इस परवर्ती अपभ्रंश के लिए भाषा वैज्ञानिकों ने 'अवहट्ट' नाम का अभिधान किया है। यह भाषा वस्तुतः अपभ्रंश के अंतिम छोर और नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की प्रारम्भिक सीमा की सूचिका सिद्ध हुई अथवा यों कहिए कि इसने दोनों भाषाओं के बीच कड़ी का काम किया है। उक्त भाषा का ज्ञान हमें निम्नलिखित ग्रंथों के आधार पर होता है।

क्रम	रचना	लेखक व स्थान	रचना काल
१	सन्देश रासक	श्री अब्दुल रहमान, मुल्तान	बरहवीं सदी
२	प्राकृत पैंगलम्	,, पिंगल, वाराणसी	चौदहवीं सदी
३	उक्ति-व्यक्ति प्रकरण	,, पण्डित दामोदर, काशी	बारहवीं सदी
४	कीर्तिलता	,, विद्यापति, मिथिला	चौदहवीं सदी
५	वर्ण रत्नाकर	,, ज्योतिरीश्वर, मिथिला	चौदहवीं सदी
६	चर्यापद	,, विभिन्न सिद्ध नाथ, पूर्वी-प्रदेश,	चौदहवीं सदी
७	पुरातन प्रबंध-संग्रह	सं० मुनिजिन विजय	बारहवीं सदी

इन ग्रंथों का यदि भाषा की दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो ज्ञात होता है कि इनमें जहाँ कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ पर इन पर प्रांतीय बोलियों का प्रभाव भी कम मात्रा में नहीं है। अतः इन सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर ही विद्वानों ने इन ग्रंथों की भाषा का नामकरण 'अवहट्ट' किया है।

परवर्ती अपभ्रंश या 'अवहट्ट' में पश्चिमी हिन्दी की अनेक ध्वन्यात्मक विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं, जो उसकी बदलती हुई अवस्था की द्योतक हैं। यहाँ व्याकरणिक अंतःसूत्र को स्पष्ट करने के लिए 'अवहट्ट' की उक्त रचनाओं में से ही उदाहरण लेकर ब्रज तथा खड़ी बोली के प्रामाणिक उदाहरणों के साथ उनकी तुलना द्वारा हिन्दी के स्वाभाविक विकास को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है :—

इनके अतिरिक्त निम्न प्रवृत्ति साम्य भी अनुलक्षणीय है :—

(१) समीप में आए दो स्वरों में संधि हो जाती है :—

संस्कृत	पूर्ववर्ती अपभ्रंश	परवर्ती अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी
रक्षति	रक्खइ	रक्खइ/राखै (की० ल० प्रा० पैं० ३/१६१)	राखै (ब्रज)
भूत्वा	भइ	भइ/भै (की०ल०)	—
करोतु	करउ	करउ/करौ (की०ल० १/७७)	करौ/करो (ब्रज० ख० बो०)
करोति	करइ	करइ/करै (प्रा० पैं०)	करै (ब्रज)
अन्धोर	अन्धकार	अन्धकार/अन्धार (प्रा०पैं० १/११०)	अन्धर/अन्धउ ब्रज०ख०बो०

(२) द्वित्व की समाप्ति और क्षतिपूरक दीर्घीकरण—

सं०	पू० अप०	पर० अप०	प० हिन्दी
निश्वासः	निस्सास	निस्सास/निसास (स०रा०८३ ग०)	निसास ब्रज०
कार्य	कज्ज	कज्ज/काज	काय (ब्र० ख० बो०)
कर्म	कम्म	कम्म/काम (की०ल० २/१८)	काम (ब्रज० ख० बो०)
द्रक्षति (पश्चति)	दिस्सई	दिस्सई/दीसह (प्रा०पैं० २/१९६)	दीसइ ब्रा०था०

तस्य	तस्स	तस्सु/तासु (प्रा०पैं० १/८२)	तासु (खो०बो०)
दीवते	दिज्जइ	दिज्जइ/दीजइ (नेमि २६	दीजिए
		दीजें	दीजें (ब्रज०)

(३) अननुनासिकता की जो प्रवृत्ति अपभ्रंश काल में बढ़ गई थी, उसका निर्वाह प० हि० में पाया जाता है। सरलीकारण की स्थिति में भी इसे अपना लिया जाता है—चन्द्र > चाँद, स्कन्ध > कन्ध > काँध > काँधा, स्तम्भ > खम्भ > खाँभ आदि।

उपर्युक्त ध्वनि विचार की दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दी (पश्चिमी) अपभ्रंश की ही विशेषताओं का अनुकरण करती है। भाषा का सम्बंध ज्ञात करने के लिए ध्वनियाँ ही नहीं, भाषा का रूप गठन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रूप विचार की दृष्टि से यदि हम प० हि० पर विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसके बीज अपभ्रंश में निहित हैं। रूप विचार दो वर्गों में विभाजित कर लिया जाता है—१. नाम २. क्रिया। नाम के अंतर्गत विभक्ति–प्रत्यय का विचार आता है और क्रिया के अन्तर्गत तिङन्त प्रत्यय-विचार।

रूपतत्व—(१) अपभ्रंश में शब्दों का निर्विभक्तिक प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। बिना किसी विभक्ति-प्रत्यय और परसर्ग की सहायता से शब्द का प्रयोग ही अपना अर्थ व्यक्त करने की सामर्थ्य रखता हो, उस प्रयोग को निर्विभक्तिक प्रयोग कहा जाता है। पूर्ववर्ती अपभ्रंश में करण और सम्प्रदान में कम, किन्तु अन्य कारकों में निर्विभक्तिक पद सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। परवर्ती अपभ्रंश में प्रायः सभी कारकों में विर्विभक्तिक प्रयोग हैं। पश्चिमी हिन्दी में विशेषकर खड़ी बोली हिन्दी में निर्विभक्तिक पदों का प्रयोग किया जाता है। उदा :—

(१) (क) कर्ता कारक एक वचन–

(१) नेहउ मग्गण एहु (हेम-अपभ्रंश व्या, पृ० ९७)
(२) कंप वियोहणि हिया (प्रा० पैं० २)
(३) ठाकुर ठक्क भए गेल (की० ल० २/१०)
(४) ऊधो मन नहि दस-बीस (सू०सा० भ्रमरगीत सार, २१०)
(५) राम जाता है। (खड़ी बोली)

(ख) कर्ता कारक बहु वचन :—

(१) सुपुरिस कंगुहे अणुहरिहिं (हेम०अप० व्य० पृ० ५२)
(२) बहुत पुन भए (उक्ति व्यक्ति प्रकरण)
(३) दुज्जन बोलइ मन्द (की० ल० १/५)
(४) थाके ये विफल नैना (घ० क० १०९)

५. लड़के पढ़ रहे हैं। (ख. बो.)

२. **कर्मकारक एक वचन**

१. लेविं महब्बअ सिबु लहहिं (हेम. अ. व्य. पृ. १५६)
२. केवट नाव घटाव (उत्तम व्यत्तिम)
३. मंजरो तेज्जइ चूआ। (प्रा. पै.)
४. महुअर बुज्झइ कुसुम रस (को. ल. १/१०)
५. जो जिय राखो प्यार न पावतो (य. क. १०८)
६. राम पुस्तक पढ़ता है (ख. बो.)

कार्यकारक बहुवचन

१. जो गुण गोवइ अध्यणा (हेम. अप. व्या. पृ. १६८)
२. वहमण ई पर निवंतेसु (उ. व्यक्ति प्र.)
३. सवकम वाणी बहुअन भावइ (की. ल. १/२०)
४. कबहूँ तो मेरिये पुकार कान खोलि है।
५. राम पुस्तकें पढ़ता है (ख. बो)

३. **करण कारक एक वचन**

१. पोण पओहर मार लोलइ मोतिअहार।(प्रा. पैं.)
२. महुअर सद्द मानस मोहिआ (की. ल. २/८२)
३. रघुबीर कृपा तें एकहि बान विवारौं (सू. सा. ९/१४२)

करण कारक बहुवचन

१. मम्म पराअण हिआय विषय कम्म नहु दीन अप्पइ (की. ल. १/२८)
२. अब सोच न लोचन आत अरे। (प. कवित्त १३)

४. **सम्प्रदान कारक एक वचन**

१. दिग्विजय छूट (की. ल. ४/२०)
२. देहि बिमोचन राई (सू. सा. ९/१४०)

५. **अपादान कारक**

१. देवनि बोदि छुड़ाई (सू. सा. ९/१४०)

६. **सम्बन्ध कारक एक वचन**

१. असुरकुल मद्दणा (प्राकृत)
२. सुरराय नाअर रमनि (की. ल.)
३. बिथा बिरोह भारी (सूर)
४. विरह व्यथा सहन नहीं होती (खा बो)

७, **अधिकरण कारक एक वचन**

१. केअइ धूलि सब्ब विस पसरइ (प्राकृत)

२. गावि केत चरि (उ. व्यक्ति.)

३. वच्य वैर निजचित घरिअ। (की. ल. २/२५)

४. मथुरा बाजति आज बधाई। (सूर)

५. बैठि शिला की शीतल छाँह (कायामती चितासर्ग)

इस प्रकार हम देखते हैं कि पश्चिमी हिन्दी ने इस परंपरा का निर्वाह ही नहीं विकास भी किया। निर्विभक्तिक प्रयोगों के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में परसर्गों का स्वच्छन्दता से किया जाने वाला प्रयोग द्रष्टव्य है। पूर्ववर्ती अपभ्रंश में यह संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ी हुई दिखाई देती है। द्वितीय लक्षणीय बात है विभक्ति प्रत्ययों के बिना ही केवल प्रातिपदिक पर सर्गों का प्रयोग डॉ० नामवरसिंह के शब्दों में 'परसर्ग के पूर्व निर्विभक्तिक पद प्रयोग के उदाहरण खोजे हेरे ही मिल सकते हैं।" इससे स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषा में परसर्गों के प्रयोग से पूर्व विभक्ति प्रत्यय लगाने की प्रथा का प्रचलन था। परवर्ती अपभ्रंश में इसमें शिथिलता आई और 'न. भा. आ' में आकर यह प्रायः समाप्त ही हो गयी। खड़ी बोली हिन्दी ने तो विभक्ति प्रत्ययों का पूर्णतः परित्याग ही कर दिया। ब्रजभाषा और कनौजी में ये कुछ मात्रा में अवशिष्ट हैं। बाँगरू में भी विभक्ति प्रत्ययों के दर्शन नहीं होते। शब्द के अर्थ का ज्ञान परसर्गों की सहायता से प्राप्त हो जाता है।

अपभ्रंश के परसर्ग और उनका हिन्दी में प्रयोग

संस्कृत संयोगात्मक भाषा है। धीरे-धीरे विभक्ति रूप घिसने लगे और सम्बन्ध तत्व की शक्ति का-ह्रास प्रारम्भ हुआ। यद्यपि इसका ज्ञान संस्कृत के उत्तर काल से ही विद्वानों को होने लगा था, इसीलिए उन्हें 'रमाय' के स्थान पर रामस्य कृते, तथा 'तस्मै' के स्थान पर 'तस्यार्थ' जैसे प्रयोग भरने पड़े होंगे, तो भी इसका स्पष्ट अनुभव अपभ्रंश काल में आ कर होता है, जब सभी कारकों के लिए हेमचंद्र को पर सर्गों का विधान करना पड़ा। तत्पश्चात् 'अवहट्ट' में तो इसकी झड़ी ही लग गयी और नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में इनका प्रयोग अनिवार्य हो गया। खड़ी बोली के तो सम्बन्ध सूत्र ही ये परसर्ग हैं। ब्रज और अवधी में तो फिर भी कतिपय विभक्ति प्रत्यक्ष अवशिष्ट है, किन्तु खड़ी बोली में सर्वनाम उत्तम एवं मध्यम पुरुष की षष्ठी को छोड़कर, इनके कहीं पर भी दर्शन नहीं होते। अतः न. भा. आ. के अध्ययन के साथ परसर्गों का अध्ययन पर आवश्यक हो जाता है।

ब्रज भाषा और खड़ी बोली में जिन परसर्गों की प्राप्ति होती है उनमें से कर्ता कारक के ने / नें परसर्ग का प्रयोग अपभ्रंश या अवहट्ट में देखने को नहीं मिला है, किन्तु यह न. भा. आ का अत्यन्त महत्वपूर्ण परसर्ग हैं, जो प्रायः सभी आधुनिक भाषाओं में किसी न किसी रूप में उपलब्ध हो जाते हैं।

कर्म में प्रयुक्त 'को' कूँ पर सर्गों का प्रयोग भी अपभ्रंश में नहीं हुआ, पर

सम्प्रदान के लिए प्रयुक्त 'कोहि' के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। यद्यपि विद्वान इसका सम्बन्ध 'कक्ष के' साथ जोड़ते हैं।

'करण' के लिए पश्चिमी हिन्दी में मुख्यतः दो परसर्ग मिलते हैं —

१. 'से' (जो बहुत ही महत्वपूर्ण है)। २. तैं, ते, त्यों आदि। इनमें से प्रथम 'अपभ्रंश' में प्रयुक्त 'सहुँ' का रूपान्तर हो सकता है और द्वितीय हेमचन्द्र द्वारा सम्प्रदान के लिए निर्धारित 'तण' का। इनके अतिरिक्त 'के द्वारा' का प्रयोग भी हिन्दी में मिलता है, जो इसका अपना विकसित किया हुआ परसर्ग है।

सम्प्रदान में 'को' 'कौ' 'कू' कर्म परसर्गों का प्रयोग होता है तथा साथ ही 'के लिए' तथा 'काज, लागि' आदि के प्रयोग भी मिलते हैं, जो अपभ्रंश 'लग्गि' और 'कज्ज' के रूपान्तर हैं।

अपादान में 'से' का प्रयोग करण का ही है। 'हुत' परसर्ग का प्रयोग भी अवधी में मिलता है, जो अपभ्रंश 'होन्तइ' का ही विकसित रूप है।

सम्बन्ध काकक में खड़ी बोली में 'का, के, की तथा ब्रजभाषा में इन के साथ साथ 'केर कर, क' आदि के प्रयोग भी, मिलते हैं। इन सबका उद्‌गम अपभ्रंश केरअ, फा, आदि से ही हुआ है।

अधिकरण कारक में खड़ी बोली में 'में' तथा ब्रज-अवधी में उसके साथ-साथ अपभ्रंश परसर्ग 'मज्झे मज्झु' मज्झ, माँझ आदि के प्रयोग भी मिलते हैं। अब हम केवल अपभ्रंश में प्रयुक्त कारक परसर्गों और उनके रूपान्तरों को ब्रज तथा खड़ी बोली में खोजने का प्रयत्न करेंगे।

को, कौं, कूँ–ये परसर्ग जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है 'केहि' के रूपान्तर लगते हैं।

१. हउं झिज्झऊँ तउ केहिं (हेम. अय. व्या. पृ. १३७)

२. तब हरि कौं डर ध्याए (हो) (स्मर सा. १/७) कर्मकारक

३. सिव बिरंचि मारन कौं धाय (सू. सा. १/२ सम्प्रदान कारक)

४. रावनि अरि को अनुज बिभीषन (सू. सा. १/२" 'केर का रूपान्तर है)

५. मैंने राम को पुस्तक दी। (खड़ी बोली)

६. राम ने रावण को मारा। (")

से, सौं, तें, तैं, तो :

'से' विभक्ति परसर्ग का प्रयोग अपभ्रंश में "सहुँ" और अवहट्ट' में 'सत्र' मिलता है, जो खड़ी बोली में 'से' और ब्रजभाषा में 'सौ' हो गया।

१. जड़ पवसन्ते सहुँ न गयअ। हेम . अप. व्या. पाठान्त (पृ० १११)

२. माननि जीवन मान सजो वीर पुरुष आवतार। (को. ल. १/२४)

३. भुजलता फँसाकर नरउर से (कायापली-लज्जा) कारण कारक

४. आधो उदर अन्न सों भरे (सू० सां० ३/१३) करण कारक

५. पर्वत सौं इंति देह गिराइ (सू० सां० ७/२) अपादान कारक

६. वृक्ष से पता गिरता है—(अपादान कारक)

ते, तेः

१. ब्रह्मबाण तैं गर्भ उबार्यो (सां० सां० १/१४६) करण कारक

२. लच्छा गृह तैं काढ़िकैं पाण्डव गृहल्यावैं (सु० सा० १ (४) अ पा० का०

३. साहित्यिक खड़ी बोली में इसके प्रयोग नहीं होते ।

४. वड्ड तणहो तणेण (हेम० अपभ्रंश व्या०)

का० के० की० कौ०

ये परसर्ग अपभ्रंश 'केरअ, का, कर, आदि के रूपांतर हैं तथा अपभ्रंश में इन का प्रयोग बहुलता से मिलता है :

(१) जसु केरअ हुँकार उएँ (हेम० अप० व्या० पृ० १३२)

(२) लोचन केरा वल्लहा (कीं० ल०)

(३) पद्मरे आकारे।

(४) घर-घर केरे फरके खोलें (सू० सा० पद २८९६)

(५) दाँत दूध के। (सू० सा० १०/७६)

(६) भादों की रात (सू० सा० १०/१२)

(७) केसरि को तिलक (सू० सा० १)

(८) राम का बेटा, राम की बेटी, राम के बेटे।

मज्झे मांझ, माँह, मैं, में

(१) जामहि विसमी कज्ज गइ जीवहि मज्झे एक (हेम अप० व्या० पृ० २०२)

(२) युवराजन्हि माँझ पवित्र ।

(३) गाइनि माँझ भए है ठाढे (सू० सा० १०/२४६)

(४) पैठो उदार मँझारि (सू० सा० १०/२४६)

(५) छिलक माँहि उर नखानि विदा-यो (सू० सा० १/१४)

(६) कष्ठ मैं मानियाँ बिना पिरोये घामौं। (सू० सा० पद ३९७८)

(७) नगर में आज सभा होगी।

उपरि उप्पर ऊपर पर :

(१) सायरु उप्परि तण धरइ। (हेम-अप० व्या० पृ० ११)

(२) आपनि पोढि अधर सेज्या पर। (सू० सां० १०/१०२१)

(३) कापो पुस्तक पर रखी है।

इस प्रकार कारक रूप एवं तत्सम्बंधी प्रत्यय या परसर्ग भी अपभ्रंश से स्पष्ट सम्बन्ध रखते हैं। यही स्थिति सर्वनाम तथा विशेषण शब्दों के विकास के सम्बन्ध

में भी हैं। पश्चिमी हिन्दी में ब्रज तथा खड़ी बोली ही मुख्य होने तथा खड़ी बोली के मध्यकालीन रूपों-हिन्दुई-में ब्रज का विपुल योगदान होने से यहाँ इन दोनों भाषाओं के उदाहरण दिये गये हैं।

क्रिया—नाम अथवा सुबन्तों के बाद पद रचना की दृष्टि से भाषा का महत्वपूर्ण तत्व क्रिया है। क्रिया का मूलरूप धातु कहलाता है। क्रिया व्यक्ति की स्थिति और समय को स्पष्ट करती है। संस्कृत में क्रियाओं के रूप दो प्रकार के प्रत्ययों के सहयोग से निर्मित होते हैं—(१) तिङन्त प्रत्यय और (२) कृदन्त प्रत्यय। छान्दस और पूर्ववर्ती संस्कृत में तिङन्त प्रत्ययों का अत्यन्त महत्व था। क्रिया के सूक्ष्म से सूक्ष्म काल एवं स्थिति का बोध इस व्यवस्था से किया जाता था। एतदर्थ दस लकारों की स्थापना की गई साथ ही कुछ काम कृदन्तों से भी निकाला जाता था। संस्कृत के अंतिम दिनों में तिङन्तों का महत्व कम होने लगा और कृदन्तों का महत्व बढ़ने लगा था लकारों की संख्या भी घटी, अपभ्रंश में काल सूचक लकारों की संख्या बहुत कम हो गयी थी अतः कुछ काल कृदन्तज बने और कुछ सहायक क्रियाओं के सहयोग से निर्मित हुए। हिन्दी में अपभ्रंश की यह प्रवृत्ति और विकसित हुई।

हिन्दी के सारे क्रिया शब्द तद्भव हैं और वे प्राकृतों की मंजिल पार करके आए हैं। यदि कुछ क्रिया शब्दों के तत्सम रूपों में दर्शक होते भी हैं तो वे क्रियार्थक संज्ञा के रूप होते हैं और उनके साथ सहायक क्रिया का प्रयोग किया जाता है। यथा-योग करो, दर्शन दो, हरण करता है, इत्यादि।

अपभ्रंश में तिङन्त उद्भूत काल और उनका हिन्दी में विकास

(१) सामान्य वर्तमान काल

	संस्कृत		अपभ्रंश		हिन्दी (व्रज-अवधी)	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्मः	करउँ	करहुँ	करउँ/करुं	करहुँ/करैं
मध्यम पुरुष	कुरुथ	करहि	करहि	करहु	करहि/करै	करहु/करौ
अन्य पुरुष	करोति	कुर्वन्ति	करइ	करहिं	करइ/करै/कर	करहिं/करैं

उदाहरण—उत्तम पुरुष बहुवचन :

१. खग्गा विसाहिऊ जहिं लहहुँ। (प्रा० व्या० पृ० २१८)

२. मध्यम पुरुष एक वचन

१. पप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रु अहि हयास (प्रा० व्या० पृ० २१)

२. जाणहि (प्रा० पैगंलम १/१३२)

३. तनिक दधि कारन जसौदा इतो कहा रित्याहि (सू० सा० ३५०)

४. कत जनम वादि ही हारें (सू० सा० १/६)

३. अन्य पुरुष बहु वचन

१. नं मल्ल-जुज्झु ससि राहू करहिं (प्रा० व्या० पृ० २१७)

२. चौहट्ट वट्ट पलट्टि हेरहिं। (की० ल० २/८८)

३. कौसिल्या आदिक महतारी आरति करहिं। (सू० सा० ९।२९)

४. निसि बोलैं काग। (सू० सा० १।१८६)

खड़ी बोली में सामान्य वर्तमान काल के रूप में शतृ प्रत्यान्त वर्तमानिक कृदन्त के रूपों से विकसित हुए हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली में यह मुख्य अंतर है कि ब्रज भाषा में तिङ प्रत्ययांत और कृदन्त प्रत्ययांत दोनों रूप मिलते हैं जब कि खड़ी बोली में केवल 'कृत' प्रत्ययान्त रूप ही उपलब्ध होते हैं।

४. शतृ प्रत्ययान्त सामान्य वर्तमान काल—

ये अपभ्रंश में धातु के अंत में 'अत' अता, अते, लगाकर बनाए जाते हैं और कभी सहायक क्रिया की सहायता से सामान्य वर्तमान काल का काम लिया जाता है। यही प्रवृत्ति अवधि, व्रज, खड़ी बोली में प्राप्त होती है—

१. जं अच्छइ त माणिअइ होसइ करतु म आच्छे। (प्रा० व्या० २१९)

२. कहु होअ अइसनो आस, कइसे लागत आँचर बतास। (की० ल० २।१५०)

३. पूछे तें तुम बदन दुरावत (सू० सा० १०।२७९)

४. कैसे बिखरली हैं मणिराजि (कामायनी आशा स०)

५. तिङन्त प्रत्यय से व्युत्पन्न भविष्यत् काल—

अपभ्रंश में तिङन्त प्रत्ययों से दो प्रकार के रूप बनते हैं। एक तो 'स्य' के विकसित 'स' युक्त रूप और द्वितीय 'स' के स्थान पर 'ह' युक्त रूप इन में से 'स' वाले रूप राजस्थानी में और 'है' वाले रूप व्रज अवधी में प्रचलित हैं। परन्तु खड़ी बोली में क्रिया के साथ गा, गी, गे, आदि लगाने से भविष्यत काल के रूप बनते हैं।

	संस्कृत	अपभ्रंश		हिन्दी
उत्तम पु०	करिष्यामि/करिष्यामः	करिसउँ/करिसहुँ	ए० व०	करस्यूँ/करिसहुँ
		करिहउँ/करिहौं		करिहउँ/करिहउुँ
			बहु० व०	करसी/करिसहुँ
				करिहहुँ/करिहैं
मध्यम पु०	करिष्यसि/करिष्याय	करिसहि/करिसहु	एक व०	करसी/करिसहि।
		करिहाहि/करिहहुँ		करिहहि/करि है

			बहु व०	करस्यो/करिसहु।
				करिहहु/करि हौं
अन्य पु०	करिष्यति/करिष्यति	करिसहि/करिसहि	ए० व०	करसो/करिहहिं/करि हैं
		करिहइ/करिहहि	बहु व०	करसो/करिहहिं/करि हैं

१. जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि (प्रा० व्या० २१९)

२. होणा होसइ एक्क पइवीर पुरिष अच्छाह। (की० ल० २/५९)

३. बरस चतुरदास भवन न बसि हैं (सूर सां० ९/४३) उत्तम पुरुष बहु व०

४. ते हूँ जो हरिहित अवतार (सू० सा० १२/३ अन्य पु० एक व०)

खड़ीबोली—हिन्दी में भूत कालिक कृदन्त प्रत्यय के साथ 'गा, गे, गी' सहायक क्रिया लगा कर सामान्य भविष्यत् काल के रूप निष्पन्न किए जाते हैं। 'गा, गे, गी' की व्युत्पत्ति अभी तक सन्देश का विषय बनी हुई है। फिर भी विद्वान इसका विकास 'हो' और 'जा' दो भिन्न क्रियाओं से बताते हैं। इसका सन्तोषजनक हल अभी प्राप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार के प्रयोग न तो अपभ्रंश में ही और न अवहट्ट में प्राप्त होते हैं। यह केवल पश्चिमी हिन्दी की ही विशेषता है।

१. जो कुछ हो मैं न सम्हाल सकूंगा, इस मधु भार जो जीवन के (व्यापाली)

२. मैं निज प्राण तजौं गौं। (सू० सा० ९/१४६)

सामान्य भूत

हिन्दी में सामान्य भूत की निष्पत्ति संस्कृत के 'क्त' प्रत्यय से युक्त धातु के तद्भवरूप से होती है। गतः गअ गया इ०

१. अब्भण्णु लाइवि जे गया। (हेम० ४/३७६)

२. पुरुष हुअउँ बलिराम जासुकर कन्न पसरिअ। (की० ल० १/४०)

३. आयो घोष बडो व्यापारी। (भ्रमरगीत सार)

४. राम गया। (खड़ी बोली)

उक्त प्रक्रिया की तरह अवधी में विशेष रूप से और ब्रज भाषा में साधारण तौर से 'तव्यत् प्रत्ययान्त शब्द भी देखे जाते हैं, जो भविष्यत् काल के सूचक होते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों को अपभ्रंश में देखा गया है।

१. मह्नु करिएउँ कि (हेमचन्द्र ४/४२८)

२. जइ साहसहु न सिद्धि हो झंप करिव्वहुँ काह। (की० ल० ३/६०)

३. राचन्द्र के पुत्र बिना में भूजब क्यों यह खेता (सू० सा० ९/३९)

इसके अतिरिक्त पूर्वकालिक क्रियाओं एवं क्रियार्थक संज्ञाओं के क्षेत्र में भी पश्चिमी हिन्दी में अपभ्रंश पूर्वकालिक क्रिया के लिए 'इ इउ, इवि, एप्पिणु, एवि और एविणु प्रत्ययों का विधान मिलता है, जिनमें से खड़ी बोली में 'अ' वाला रूप का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है, 'अ' वाले रूप भी मिलते हैं:—

(१) राम भोजन करके तथा पुस्तक लेकर पाठशाला गया।

(२) बीचहिं बोलि उठे हलधर (सूरसा. १/७)

क्रियार्थक संज्ञाओं में आ, अ, अन्त और ब' अन्त शब्दों के प्रयोग ख. बो ब्रजभाषा में मिलते हैं।

(१) आज चलना उचित नहीं है।

(२) उसने प्रातः गमन किया।

(३) दोष देन कौं नीको। (सू. सा. पद ४२५५)

इस तरह स्थूल रूप से पश्चिमी हिन्दी और अपभ्रंश की मुख्य-मुख्य विधाओं की तुलना के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पश्चिमी हिन्दी का उद्भव पश्चिमी अपभ्रंश से हुआ है, जो मध्य देश की साहित्यिक एवं अखिल भारतीय भाषा थी।

प्रारम्भिक सामग्री

इस प्रकार परवर्ती अपभ्रंश के गर्भ से आठवीं-नवीं शती में उत्तर भारत पश्चिम भारत की आधुनिक बोलियाँ जन्म ले रही थीं। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के साथ ही सिद्धों नाथों की वाणी, स्वयंभू अन्य कवियों की कृतियों से उन बोलियों का पता चलता है। दक्षिण में राष्ट्रकूट काल के अपभ्रंश कवियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। देवगिरि के यादव काल के कवियों की कृतियाँ नहीं मिलती, किन्तु यादवों के पतन के कुछ समय पश्चात ही मराठी के कुछ संतों साहित्यकारों ने मराठी के अतिरिक्त तत्कालीन हिन्दी-हिन्दवी में भी लिखा है, गोरखनाथ की बानी तथा प्राचीन मराठी सन्तो की भाषा का तुलनात्मक अभ्यास बारहवीं-तेरहवीं शती की अखिल भारतीय भाषा की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकता है।

उत्तर भारत में इस भाषा के जो नमूने मिलते हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर की रचनाओं में उसका निज स्वरूप विद्यमान है। कबीर से कुछ ही पहले हिन्दी-वीरगाथा काल समाप्त हुआ था, पर उस काल की भाषा के प्रामाणिक नमूने हमारे अध्ययन के लिए सुरक्षित नहीं रहे। जो कुछ मिश्रित उदाहरण हमें प्राप्त हैं उन के प्रामाणिक अंश वे हैं जो बहुतांश अपभ्रंश की गंध लिए है। इसीलिये आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि पृथ्वी राज का दरबारी कवि चन्द बलदिय (चन्दबरदाई) हिन्दी भाषा का आदि कवि माना जाता है। असल में वह अपभ्रंश का अन्तिम कवि अधिक है और हिन्दी का आदि कवि कम। क्योंकि उसका काव्य अब जिसरूप में पाया जाता है वह रूप मौलिक नहीं हैं।"[1] संत कवियों की निर्गुनिया बानियों में, भाषा का जो रूप देखा जाता है, वह इन लोगों की सधुक्कड़ी

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ, २३

तथा फक्कड़ी' भाषा, नाथ-पंथी सिद्धों और योगियों की उस पंचमेल-खिचड़ी की परम्परा में खड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं का सम्मिश्रण हुआ है। उन की रचाओं का उद्देश्य साहित्यिक न होने से उनमें बोलियों का विशुद्ध रूप कम मिलता है, इस के विपरीत अंतप्रान्तीय स्तर पर समझी जानेवाली भाषा का प्रयोग किया गया है। कबीर, नानक, दादू की भाषा में ऐसी व्यापक भाषा के नमूने देखे जा सकते हैं जिसकी रीढ खड़ी बोली है पर वह विभिन्न बोलियों के महत्वपूर्ण सहयोग से मांसल हो रही है। इसी भाषा में मुसलमान सूफी कवियों ने, विशेषता गुजरात और दक्षिण में आध्यात्मिक और लौकिक साहित्य रचा। इन्हीं सूफियों ने इस भाषा को 'हिन्दवी' नाम दिया।

विकास की धारा

हिन्दी के काल क्रमानुसार इतिहास को तीन कालों (१) आदि काल (१००० से १५०० ई०) (२) मध्य काल (१५०० से १८०० ई०) (३) आधुनिक काल (१८०० ई० के बाद) में विभाजित किया जाता है। उन तीनों में दो कालों का ही हमारी दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण समझा जाता हैं।

आदिकाल (१००० से १५०० ई०)—यह हिन्दी का शैशवकाल है। इस काल की हिन्दी में अपभ्रंश के काफी रूप मिलते हैं। साथ ही हिन्दी को विभिन्न उपभाषाओं एवं बोलियों के रूप इस काल में बहुत स्पष्ट तथा सुविकसित नहीं है। इसी कारण प्रायः साहित्य में भाषाओं का मिश्रण जैसा मिलता है। अपभ्रंश से हिन्दी ने लगभग सभी ध्वनियाँ लीं किन्तु उसमें कुछ नयीं ध्वनियों का भी विकास हुआ। अपभ्रंश में संयुक्त स्वर नहीं थे। हिन्दी में 'ऐ' और 'औ' दो संयुक्त स्वर इस काल में प्रयुक्त होने लगे। व्यंजनों में एक तो दन्त्योष्ठ्य 'व' विकसित हो गया तथा दो उत्क्षिप्त ध्वनियाँ 'ड़, ढ़' मिलने लगी। कुछ ध्वनियों के महाप्राण रूप भी विकसित हो गये। रह, ल्ह, ण्ह, न्ह आदि। शब्द समूह की दृष्टि से आदि कालीन हिन्दी अपभ्रंश से बहुत दूर नहीं थी उसमें तद्भव शब्द सर्वाधिक थे। तत्सम शब्द उससे कम तथा देशज उससे भी कम। अपभ्रंश तथा आदि कालीन हिन्दी के शब्द भंडार में विदेशी की दृष्टि से अवश्य अंतर मिलता है। अपभ्रंश में अरबी-फारसी-तुर्की शब्दों की संख्या सौ से अधिक न होगी, किन्तु हिन्दी के इस काल में मुसलमानों के बस जाने एवं उनके शासन के कारण इन तीनों ही भाषाओं से पर्याप्त शब्द आ गये। विदेशी शब्द प्रायः पहले उच्चवर्ग में आते है फिर मध्यम वर्ग में और तब निम्नवर्ग में। इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, हिन्दवी तथा मिश्रित रूपों का प्रयोग मिलता है। इस काल में हिन्दवी-खड़ीबोली के प्रमुख साहित्यकार गोरखनाथ, नामदेव, अमीरखुसरो, ख्वाजा बन्दानवाज, शाहमीरांजी, शेख अशरफ इत्यादि है। हिन्दी का प्रथम कवि कौन है। इस सम्बन्ध में विवाद है। जहाँ तक

मुसलमानों का सवाल है— हिन्दवी के प्रथम कवि ख्वाजा मसऊद साद सलमान (इ. का १०६६ ई.) हैं। इनके हिन्दवी संग्रह की चर्चा अमीर खुसरी ने की है। इस की भाषा प्राचीन पंजाबी मिश्रित हिन्दवी थी।

(ख) मध्यकालीन (१५०० से १८००)

इस काल तक आते हिन्दी का स्पष्ट स्वरूप निखर आया। उसकी प्रमुख बोलियाँ भी विकसित हो गयीं। अपभ्रंश के रूप समाप्त प्रायः हो गये और प्रायः हिन्दी के अपने रूप विकसित होने लगे। ध्वनियों की दृष्टि से इस काल को प्रमुख विशेषता यह है कि पढ़े-लिखे लोगों की हिन्दी में क, ख, ग, ज, फ, ये पाँच व्यंजन ध्वनियाँ सम्मिलित हो गयीं। आरबी-फारसी शब्द तो आदि काल में भी आये थे किन्तु इसी काल में आकर वे पूर्णतः हमारे हुए। दरबारी भाषा फारसी थी, उच्च वर्ग के लोग फारसी पढ़ने लगे और अपनी भाषा में प्रयुक्त शब्दों का प्रायः शुद्ध फारसी जैसा उच्चारण करने लगे। इस शुद्ध उच्चारण के कारण ही उपर्युक्त पाँच व्यंजन ध्वनियाँ हिन्दी में आयी। शब्दों की दृष्टि से कई उल्लेखनीय बातें घटित हुई। उस काल में धर्म के प्रति लोग अधिक आस्थवान हो गये, इसी कारण प्रमुख हिन्दी साहित्य, कम से कम इस युग के पूर्वार्ध तक धर्म पर लिखा गया। धर्म के कारण संस्कृति के धार्मिक ग्रंथों का प्रचार हुआ। परिणाम यह हुआ कि आदि काल की तुलना में बहुत अधिक तत्सम शब्द भाषा, प्रमुखतः साहित्यिक भाषा में गृहीत हुए। आदि काल की तुलना में तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग कुछ कम हुआ। उनका स्थान प्रायः तत्सम शब्दों ने ले लिया। अरबी, फारसी, बर्की शब्द इस काल में और अधिक आ गये। हिन्दी में इस समय जो लगभग ३५०० फारसी २५०० अरबी तथा सौ से कुछ कम तुर्की शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं। सभी उस काल तक अपनी भाषा में आ चुके थे और धीरे-धीरे उच्च से मध्यम और मध्यम से निम्न वर्ग में प्रवेश कर रहे थे। इस काल के उत्तरार्द्ध में यूरोप से भी हमारा सम्पर्क हो गया, अतः १०० से कुछ कम पुर्तगाली, कुछ फ्रांसीसी एवं डच तथा कई सौ अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी में प्रविष्ट हो गये। धर्म की प्रधानता के कारण ब्रज, अवधी के साथ ही दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ीबोली में भी साहित्य रचा गया। खड़ीबोली से सम्बन्धित इस काल के प्रमुख साहित्यकार- बु-हानुद्दीन, नुसरती, कुली कुतुबशाह, वजहीवली, मोर, इंशा लल्लूलाल, सदल मिश्र, अनीस, कबीर, नासिख, नासिक, स्वामी, प्राणनाथ आदि हैं।

आधुनिक काल (१८०० के बाद)—वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी का पूर्ण विकास इस काल में हुआ।

मुसलमान और भारत

आधुनिक आर्य भाषाओं के जन्म मुहूर्त में ही भारतीय राजनीति में वह परिवर्तन आया, जिससे महत्वाकांक्षी मुस्लिम सत्ता और इस्लाम को देश के भीतरी क्षेत्रों में फैलने और जमने का अवसर मिला। नवागत पंजाब में पहले से ही अपने पैर जमाये हुए थे, अब उन्होंने दिल्ली को अपनी सत्ता का केन्द्र बना लिया। इससे भी पूर्व लगभग आठवीं शती में मुसलमान पश्चिमी समुद्र तट से दक्षिण में पहुँच चुके थे। दसवी शती में वे पूर्वी किनारे पर उतरे। धीरे-धीरे पूरे दक्षिणी भारत में बस गये। उन्हें यहां सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्व प्राप्त होता गया। इस सम्बन्ध में इब्नबतूता के यात्रा विवरण पठनीय है। पर राजनीतिक दृष्टि से मुसलमानों के साथ दक्षिण भारत का सम्पर्क उत्तर की अपेक्षा ढाई शताब्दि बाद हुआ। इस सम्पर्क और उसकी थोड़ी पृष्ठ भूमि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी बिना हिन्दी के विकास से सम्बन्ध रखने वाले कुछ तथ्य अज्ञात रह जाते हैं।

सर्व प्रथम इस तथ्य की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए कि मुसलमान शब्द किसी जाति का नाम नहीं है। इस्लाम को मानने वाले सभी इस संज्ञा के अधिकारी हैं। भारत में ईरान, ईराक, अरब, अफगानिस्थान आदि देशों से आने वाले असंख्य व्यक्तियों और बहुत से भारतीयों के लिए भी मुसलमान शब्द प्रयुक्त होता है। ग्यारहवीं शती से ईराक, ईरान आदि देशों से जो मुसलमान भारत में आकर बसते रहे उन में धर्म को छोड़ कर अन्य बातों में बहुत कम समानता थी। वे सबके सब न तो एक भाषा बोलते थे और न उनका रहन-सहन ही एक जैसा था। धर्म के कारण इन लोगों की प्रतिद्वन्द्विता भी कम नहीं थी। एशिया का मध्य युगीन इतिहास इन जातियों की आकांक्षाओं के संघर्ष का इतिहास है।

सर्वप्रथम अरबों का सम्पर्क भारत से हुआ ७१२ ई० में। मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में मुस्लिम सैनिकों की विजय हुई। यह आक्रमण आर्थिक लाभ के लिए ही किया गया था। वैसे सिंध बहुत समय तक अरबों के प्रभाव में रहा किन्तु शासन-भाषा, जन भाषा से भिन्न-अरबी होने के कारण उनका कोई स्थाई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके बाद जिन लोगों (मुसलमानों) ने भारत पर विजय पाई! अरब देश अथवा वहाँ के निवासियों से उनका दूर का सम्बन्ध भी नहीं था। अरबों की विजय वाहिनी एक ओर अफ्रीका के सहारा में और दूसरी तरफ स्पेन में पहुँच कर अतलांतिक सागर के किनारे ठहर गई। यह सेना ईरान से आगे नहीं बढ़ सकी।[1]

---

१. स्टे ले-मि. इं, १३

प्रारम्भिक मुस्लिम शासक

भारत वर्ष में मस्लिम शासन काल को दो भागों में बाँटा जाता है । पहला भाग महमूद गजनवी के आक्रमण (१३ वीं शती के आरम्भ) से शुरू होकर पानीपत में इब्राहिम लोदी की पराजय (१५२६ ई०) के साथ समाप्त होता है । दूसरा भाग में पानीपत में बराबर की विजय (१५२६ ई०) से प्रारम्भ होकर औरंगजेब की मृत्यु (१७०७ ई०) के साथ समाप्त होता है । यह काल-विभाजन राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से ही नहीं, संस्कृति, भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी विजय के पश्चात भारतवर्ष में नहीं बसे, अतः इन दोनों को छोड़ दिया जाय तो पहले कालखण्ड में पाँच राजवंशों ने राज्य किया । इनमें से तीन राजवंश तुर्क थे । पहला गुलाम वंश कहलाया । मुहम्मद गोरी का क्षत्रप कुत्बुद्दीन ऐबक इस वंश का संस्थापक था । गुलाम वंश के बाद खिल्जी लोग दिल्ली की गद्दी पर बैठे । इस वंश के पूर्वज अफगानिस्तान के 'खिल्ज' नामक गाँव में रहते थे । इस वंश का सम्बन्ध भी तुर्कों से जोड़ा जाता है, किन्तु भारत में सत्तारूढ़ होने के पश्चात खिल्जियों ने अफगानी रहन-सहन अपना लिया था । तीसरा तुगलक वंश था । तुगलक लोग मूलतः तुर्क थे ।

१३९८ ई० में तैमूरलंग के आक्रमण के कारण तुगलक वंश की सत्ता समाप्त हुई और शासन की बागडोर सय्यदों के हाथ में आई । सत्तारूढ होने से बहुत पहले सैय्यद वंश के लोग भारत में स्थायी रूप से बस चुके थे । उन्होंने यहाँ के अनेक रीति-रिवाज स्वीकार कर लिए थे । यद्यपि सैय्यद वंश अपने पूर्व पुरुष को अरब-वासी मानता था किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि ये पठान थे । सय्यदवंश भारतीय इतिहास में लोदी वंश के नाम से विख्यात हुआ ।

उपर्युक्त राजवंशों के शासकों में अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक को लम्बे समय तक शासन करने का अवसर मिला था । इन दोनों बादशाहों का दक्षिणी भारत के साथ सीधा सम्बन्ध रहा ।

मुस्लिम शासन के पूर्वार्ध भाग के शासकों ने राजनीतिक दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये । सांस्कृतिक दृष्टि से इन नरेशों ने भारत पर गहरा प्रभाव नहीं डाला ।

जहाँ तक भाषा और साहित्य का प्रश्न है, उस समय उत्तर भारत में अप-भ्रंश साहित्य का युग समाप्त हो चुका था और हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ अपना विकास कर रही थीं । इस काल के शासकों में शुरू के शासक ही अपनी मातृभाषा

१. स्टे ले—मि. इ. ६९, ६० ९२

तुर्की से परिचित रहे होंगे । इन लोगों ने अपनी मातृभाषा तुर्की अथवा धर्म भाषा अरबी को यहाँ की सामान्य जनता के लिए आवश्यक नहीं माना । इस काल में बहुत से पठित मुसलमानों ने विकास की ओर अग्रसर होने वाली बोलियों विशेषतः अवधी की उन्नति में उलेखनीय योग दिया । उस समय देश में तीन तरह के मुसलमानों की संख्या अधिक थीं १. तुर्क-मुसलमान २. अफगान मुसलमान, ३. हिन्दुस्तानी मुसलमान तुर्क लोग शुरू—शुरू में तुर्की बोलते थे, अफगानी पश्तो और भारतीय मुसलमान कोई न कोई क्षेत्रीय बोली । तुर्क और अफगानों ने भी कुछ समय बाद क्षेत्रीय बोलियाँ स्वीकार कर ली थीं ।

फारसी भाषा और भारत

ईरानियों ने लगभग ७ वीं शती में आक्रामक अरबों का धर्म इस्लाम स्वीकार कर लिया । अतः आरम्भिक दिनों में प्रशासनिक भाषा होने से अरबी ने फारसी को काफी प्रभावित किया । शब्द भंडार और साहित्य के क्षेत्र में फारसी ने बहुत कुछ अपना लिया किन्तु इतने पर भी फारसी भाषा और साहित्य ने अपनी मौलिकता को बनाए रखने का प्रयत्न जारी रखा । वस्तुतः उक्त अरबी प्रभाव से फारसी अधिक पुष्ट एवं सम्पन्न हो गये । "फारसी' भाषा की व्यंजना शक्ति आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी और उसमें कालजयी साहित्य की सृष्टि हुई । साहित्य ही नहीं, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में मूल 'कुरान' के अतिरिक्त वह सब कुछ उपलब्ध हो गया जो धार्मिक दृष्टि से एक ओर सामान्य व्यक्ति के लिए और दूसरी तरफ बड़े से बड़े चिन्तक के लिए आवश्यक होता है ।[1] "अरबी ने भी फारसी से बहुत कुछ अपनाया । न केवल भाषा अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी ईरान ने अरबी को प्रभावित किया । यही स्थिति तुर्कों की भी रही । १६ वीं शती में तुर्कों और ईरानियो में दीर्घकालीन युद्ध हुआ । इस काल में ईरान में श्रेष्ठतम साहित्य सृजन हुआ । हाफिज इसी काल में हुए । तुर्कों ने थोड़े ही समय में फारसी साहित्य का बहुत कुछ अपना लिया शब्दावली और परिभाषाओं को अपनाते समय फारसी शब्दों का तुर्कीकरण किया गया । मंगोलों ने भी फारसी से पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किये ।

इस प्रकार ईरानी लोग बहुत पहले से मुस्लिम जगत के साथ जुड़ गये किंतु उनकी अपनी महान परम्परा थी । इसलिए शीघ्र ही ईरानी लोगों ने शेष मुस्लिम जगत से पृथक होकर अपना एक उपजगत बनाने का कार्य सोलहवीं शती के प्रथम चरण में आरम्भ कर दिया था ईरान की इस प्रवृत्ति का प्रभाव दूसरे देशों पर भी पड़ा । आगे चलकर इसी प्रवृत्ति ने भारत में भी ईरानीकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न की । इन्हीं तुर्कों और मंगोलो की सन्तान मुगल आगे चलकर भारत में सत्ता-

१. श्री राम शर्मा—द. हि. का. सा. १० ए भा. व.इ इ. सो ११४

चोध बने ।

गुलाम वंश के शासन काल में फारसी साहित्य भारत के कुछ लोगों के लिए स्पृहणी बन चुका था, किन्तु तब फारसी भाषा ने दैनिक जीवन में प्रवेश पाने का प्रयास नहीं किया । १२६५ से १३३४ ई० तक कुछ भारतीय लेखकों ने फारसी में लिखा भी, किन्तु साहित्य की दृष्टि से अमीर खुसरो के अतिरिक्त कोई बड़ा फारसी लेखक भारत में नहीं हुआ । अमीर खुसरो की यह साहित्य साधना भी व्यक्तिगत थी। अतः सामूहिक रूप से देखा जाय तो अमीर खुसरो के समय में ही नहीं, पीछे भी दीर्घ काल तक क्षेत्रीय बोलियां ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रहीं । खुसरो स्थानीय लोक रंग में रंगे हुए थे अतः उन्होंने फारसी के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से हिन्दवी-हिन्दी में भी लिखा । उनकी 'खालिक बारी' में समन्वयात्मक प्रयास किया गया है । इसी क्रम में कबीर, जायसी, मंझन, कुतबन ने स्थानीय बोलियों को अपनाया ।

वैसे भारत में बसे मुसलमानों का सृजन कार्य भारतीय भाषाओं में अपभ्रंश काल से ही चल रहा था, प्रमाणस्वरूप अद्दहमाण-अब्दुलरहमान के 'सन्देश शासक' को देखा जा सकता है, बाद में इस क्षेत्र में सूफियों ने अधिक तत्परता दिखाई ।

मुस्लिम काल के उत्तरार्ध में भी कुछ लोगों-खानखाना अब्दुल रहीम, रसखान आदि ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया, किन्तु उनकी रचनाएं अपवाद ही मानी जाएँगी । उत्तरार्ध में ऐसे लोगों की संख्या कम होती गई, जिन्होंने कुतबन और जायसी की तरह भारतीय जीवन और यहाँ की साहित्य परम्पराओं को स्वीकार किया ।

दक्षिण उत्तर का सम्पर्क

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो दक्षिण भारत की स्थिति उत्तरी भारत से बहुत भिन्न पड़ती है । चिरकाल से ऐसे युग आये हैं, जब दक्षिण थोड़े-थोड़े समय के लिए उत्तर के अधीन हो गया है, परन्तु जरा सा अवसर मिलते ही उसने फिर अपने जीवन को उत्तरी भारत की पराधीनता से मुक्त कर लिया ।

यह कहना ठीक नहीं होगा कि दक्षिण भारत सदैव उत्तरी भारत से अलग रहा, क्योंकि वैदिक काल से ही उत्तर से दक्षिण की ओर जन प्रवाह के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं । ५०२ ई० पू० तक उत्तर के निवासी बड़ी संख्या में दक्षिण पथ में बसते रहे और वहां से कुछ परिवार दक्षिण की ओर अग्रसर हुए । यह ग्यारह सौ वर्षों का काल भा० आ० की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था । म० आ० आ० के समस्त परिवर्तन उसी युग में हुए और नव्य भा० आ० में जो क्रांतिकारी परिवर्तन प्रकट हुए उनका बीजारोपण भी इसी युग में हुआ था । कुरु, पांचाल, मद्र और मगध के प्रवासी नागरिक अपनी क्षेत्रीय प्राकृतों के साथ में दक्षिणापथ में आये थे। इन विभिन्न प्राकृत भाषियों के सम्मिलन से एक परिष्कृत सामान्य प्राकृत का प्रचलन

हुआ, जो महाराष्ट्री के नाम से प्रसिद्ध हुई और दीर्घकाल के उत्तर भारतीयों के लिए भी वह आदर्श भाषा का काम देती रही ।

६०० ई० पश्च से १२ वीं शती तक व्यापक रूप में उत्तरवासियों का आगमन दक्षिण में नहीं हुआ, फिर भी उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण से उत्तर का आवागमन रद्द नहीं हुआ था । जब तेहरवीं शती में मुसलमानों ने दक्षिण पर आक्रमण प्रारम्भ किया तब से १० वीं शती तक उत्तर के सहस्रों परिवार यहाँ आकर बसते रहे। इस काल के प्रवासी दक्षिण-पथ तक सीमित नहीं रहे, उन्होंने चोल, केरल, और पांड्य के निवासियों को पराजित किया और आंध्र तथा कर्नाटक में दूर दूर तक कई नये ग्राम और नगर बसाये । इन अभियानों से पहले जो उत्तरवासी दक्षिणापथ में बसे थे उन्हें भी नवागन्तुकों के सम्मुख परास्त होना पड़ा । नवागन्तुकों के नेता भिन्न धर्म तथा संस्कृति के पोषक थे और दूसरे धर्म तथा दूसरों की संस्कृति के सम्बन्ध में उन का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था, अतः दक्षिण में एक नये युग का श्री गणेश हुआ ।

मुसलमानों के आने से पहले भी दक्षिणी भारत के निवासी उत्तरी भारत की बोलियों से अपरिचित नहीं थे···जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है प्राचीन काल से उत्तर-दक्षिण में अनेक भाषाओं की विद्यमानता में भी एक सामान्य भाषा का व्यवहार होता था । अनेक शतियों तक संस्कृत धार्मिक भाषा ही नहीं संस्कृति और राज काज की भाषा बनी रहीं······८वीं शती तक दक्षिण के शासक ताम्रपत्र अथवा शासन पत्र संस्कृत में ही लिखते थे । बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार के कारण तथा उत्तर भारत में प्राकृत को साँस्कृतिक तथा साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर लेने पर दक्षिण में भी प्राकृत अपनाई गयी । अपभ्रन्श काल में दक्षिण के मनीषी पीछे नहीं रहे । राष्ट्रकूट आस्थान राज कवि पुष्पदत्त आदि ने अनेक महत्वपूर्ण रचनायें अपभ्रन्श को प्रदान की । यह सम्पर्क नव्य भा० आ० भा० के युग में भी सहायक सिद्ध हुआ । मुसलमानों के आगमन के पश्चात १४ वीं शती में अधिक सफल प्रयत्न किए गये ।"[1]

मुस्लिम शासकों के दक्षिण विजय के अभियान

सर्वप्रथम अलाउद्दीन खिलजी मालवा जाते हुए १२९६ ई० में दक्षिण में देवगिरि पहुँचा । देवगिरि नरेश यादववंशी रामदेवजय ने अलाउद्दीन से थोड़े संघर्ष के उपरान्त सुलह करली । दक्षिण भारत पर यह पहला आक्रमण था । उस समय अलाउद्दीन दक्षिण पर राज्य नहीं करना चाहता था । किन्तु जैसे ही वह गद्दी पर बैठा उसका ध्यान इस ओर गया । १३०३-४ ई० में उसने दक्षिण भारत के वरंगल नामक नगर

---

१. हि० उ० वि०—श्रीराम शर्मा पृ० १६

पर आक्रमण करने के लिए मालिक फक्रुद्दीन जूना (आगे चलकर मुहम्मद बिन तुगलक) के सेनापतित्व में अपने सैनिक भेजे । वरंगल के काकतीय नरेशों ने दिल्ली के सैनिकों को हरा कर भगा दिया । वरंगल की इस विजय से उत्साहित होकर देवगिरि के युवराज संगमदेव ने दिल्ली को कर देना बन्द कर दिया और अधिकार अपने हाथ में ले लिये । युवराज के पिता ने पुत्र के विरुद्ध अलाउद्दीन से सहायता माँगी । उसने मलिक काफूर को सैनिकों के साथ भेजा । संगमदेव परास्त हुआ किन्तु देवगिरि पर शासन करने का अधिकार उसे ही मिल गया । इसके बाद दक्षिण विजय के लिए देवगिरि ने मुसलमानों की सहायता की । १३०९ ई० में मलिक वरंगल पर चढ़ाई करने के लिए आया तो सैन्य संगठन तथा रसद पहुँचाने का केन्द्र देवगिरि में रहा । १३११ ई० में मलिक काफूर ने द्वार समुन्द्र के होयसला नरेश और मलाबार के पाण्ड्य नरेश पर आक्रमण किया तब भी देवगिरि आधार का काम करती रही । अलाउद्दीन खिलजी ने १२९६ में अभियान प्रारम्भ किया, वह १५ वर्ष पश्चात पूरा हुआ । विन्ध्याचल से दक्षिणी समुद्र तट तक का प्रदेश अलाउद्दीन के अधीन हो गया ।

१३२२ ई० में देवगिरि दिल्ली शासन में सम्मिलित कर ली गई । अलाउद्दीन की सेनाओं के साथ, कर्मचारी पेशेवाले और उत्तर भारत के बहुत से लोग अपने साथ वह मिली जुली भाषा भी दक्षिण ले गये जो अभी भली-भाँति बन भी नहीं पायी थी । कई सैनिक कर्मचारी उनके परिवार व्यापारी सूफी, फकीर दक्षिण में बस गये । ये सभी आपस में तथा स्थानीय जनता के साथ मिलीजुली नयी भाषा के माध्यम से सम्पर्क कर सकते थे, जिसे वे अपने साथ लाये थे, और जो नाथों-सिद्धों के पदों में उभर रही थी । इस भाषा में पंजाबी, हरियाणी और खड़ी बोली का का मेल था, यह ब्रज के प्रभाव से भी बची नहीं थी और सब से बड़ी बात यह थी कि इसमें फारसी अरबी के अनेक शब्द भी सम्मिलित हो गये थे ।

मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण का अधिकांश भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया ।

अलाउद्दीन खिलजी से लेकर मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण विजय के सभी अभियानों में देवगिरि (दौलताबाद) को स्थल बनाया था । मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली के स्थान पर दौलताबाद में ही अपनी राजधानी बनाने का निर्णय कर लिया । दक्षिण में साम्राज्य इतना विस्तृत हो चुका था कि दिल्ली में रह कर वहाँ का काम देखा नहीं जा सकता था । उधर मंगोलों के आक्रमण के कारण भारत सुरक्षित नहीं रह गया था । इन्हीं कारणों से मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली को दौलताबाद में स्थान्तरित करना चाहा ।

मुहम्मद तुगलक के इस निर्णय ने दक्षिण भारत की राजनीति के अतिरिक्त

यहाँ हिन्दवी-हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

मुहम्मद तुगलक ने पूरे दिल्लीशहर को दौलताबाद जाने का आदेश दिया । मार्ग की कठिनाइयाँ झेलकर जब दिल्ली के लोग देवगिरि पहुँचे तो मुहम्मद तुगलक ने गलती अनुभव की । अतः उसने लोगों को फिर दिल्ली लौटने की आज्ञा दी । थोड़े ही लोग दिल्ली लौट सके । इस घटना का भाषा की दृष्टि से विशेष महत्व है । 'दिल्ली से आने पर कई परिवार देवगिरि में रह गये । जब तुगलक वंश का शासन शिथिल हो गया तो इन्हीं परिवारों ने मिलकर अलाउद्दीन बहमनशाह के नेतृत्व में बहमनी राजवंश की स्थापना की । जो परिवार दिल्ली से देवगिरि आये और देवगिरि से गुलबर्गा गए उन में अधिक संख्या उन परिवारों की थी जो मूलतः दिल्ली के निवासी थे । कुछ परिवारों का सम्बन्ध अन्य हिन्दी भाषा प्रदेशों से था । उस समय खड़ीबोली का जो रूप प्रचलित था वह इन परिवारों के साथ देवगिरि पहुँचा । कुछ मुस्लिम परिवारों को छोड़कर व्यापारी और श्रमिक, घरों और बाजारों में खड़ी बोली का उपयोग करते थे ।

दौलताबाद में जो भी कुछ हुआ हो मुस्लिम शासन काल के पूर्वार्द्ध में मुहम्मद तुगलक पहला शासक था, जिसने कश्मीर, कच्छ, काठियावाड और उड़ीसा को छोड़कर पूरे भारत को संगठित किया ।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् दक्षिण भारत में दो महत्वपूर्ण घटनायें घटित हुई वरंगल के पतन के पश्चात् हरिहर और बुक्का नामक दो सामंत काम्पिली चले गये । ये वरंगल के काकतीय शासक प्रतारुद्र (द्वितीय) के सामंत थे । मुहम्मद तुगलक की सेना ने जब काम्पिली के राजा को हराया तो ये दोनों पकड़ कर दिल्ली भेजे गये । वहाँ इन दोनों ने इस्लाम स्वीकार किया । मुहम्मद तुगलक ने दोनों को काम्पिली भेजा । यहाँ हरिहर और बुक्का ने इस्लाम छोड़कर हिन्दू धर्म ग्रहण किया । इन दोनों ने विजय नगर साम्राज्य की स्थापना की । दूसरी महत्वपूर्ण घटना मुहम्मद तुगलक के सरदारों के सहयोग से हसन गंगू द्वारा १३४७ में बहमनी साम्राज्य की स्थापना करना था । इन घटनाओं का हिन्दी के विकास पर विशेष प्रभाव पड़ा ।

धार्मिक अभियान

अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफूर की दक्षिण विजय के पहले ही कई एक सूफी महात्मा दक्षिण के विभिन्न भागों में पहुँच चुके थे तथा अपने आचार-विचारों के बल पर स्थानीय जनता में लोकप्रिय हो गये थे । उनकी साधना और उपदेश चल रहे थे । इन में से कुछ सूफी ये हैं—१. हाजीरूमी (पृ० ५५५ हिजरी) २. सैयद बादशाह मोमिन आरीफुला (पृ० ४९७ हिजरी) ३. बाबा मजहर तबले आलम (६६२ हिजरी) ४. शाहजलालोद्दीन गंजे रवाँ (६४४ हिजरी) ५. सैयद अहमद कबीर जहाँ कलंदर (६५९ हि०) ६. शाहअली पहलवान (६७२ हि०) ७.

शाह हुसामुद्दीन (पृ० ६८० हि०) ८. सूफी सरमस्त (पृ० ६८० हि०) बाबा शरफुद्दीन (मृ० ६८७) १०. बाबा शहाबुद्दीन (पृ० ६९१) ११. बाबा फकरुद्दीन (पृ० ६९ हि०) १२. एजाजोद्दीन हुसेनी (पृ० ६९९ हि०) इनके अतिरिक्त और बीसियों सूफियों के नाम हस्तगत हुए हैं, जिन्होंने दक्खिन के विभिन्न भागों में निवास किया और यहाँ स्वर्गवासी हुए ।

मुहम्मद तुगलक के दिल्ली राजधानी स्थांतरित करने पर हजरत शाह-वु-हानोद्दीन को दमन की खिलाफत मिली । ये लोग रह गये । दिल्ली से दौलताबाद आने वाले काफिले में सैंकडों पालकियाँ सूफी संतों, भक्तों और धर्म प्रचारकों की थी । इसी दल में सैं० राजू कव्वाल भी थे जो खाजा बन्देनेवाज गेसूदराज के पिता थे (३० जून १३३२ ई०) को खुल्दाबाद (औरंगाबाद) में मृत्यु । ये सूफी फकीर दकन विभिन्न नगरों और ग्रामों में अपने-अपने संस्थान बना कर बसते गये ।

इन सूफी सन्तों को स्थानीय जन जीवन में अच्छा स्थान मिल गया । बात यह थी कि उनके पास दिलों को खींचने का वो सामान था, जो न उमराव सलातीन के पास है और न उल्मा व हुकमा के पास ।[1] स्थानीय लोगों के श्रद्धापात्र बनने के लिए, जिन गुणों की आवश्यकता थी वे इन सूफियों में थे । लेकिन 'दिलों को हाथ में लाने के लिए सब से पहले हम जबानी लाजिम है । हम जवानी के बाद खियाली पैदा होती' ।[2] उपदेश के लिए जहाँ उन्होंने और ढंग अपनाए, उनमें सब से पहला यह था कि इस किते की जबान सीखी ताकि अपना पैगाम अवाम तक पहुँचा सकें । चुनाचें जितने औलिया सरजमीने हिन्द में आये या यहाँ पैदा हुए वे बावजूद अलिमव फाजिल होने के आवाम से उन्हीं की बोली में बातचीत करते और तालीम व तलकीन फर्माते थे । यह बड़ा गुर था और सूफिया उसे खूब समझते थे । हमारे इस वचन की स्थिरता मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित 'अखरावट' के कौल से भी होती है, जिसे उन्होंने किताब के अंतिम पृष्ठों में किया है । इसके अतिरिक्त "उस जमाने में उन बुजुर्गों के घरों में भी हिन्दी बोलचाल का रिवाज था और चूंकि ये उनके फायदे में था, इसलिए वे अपनी तालीम और तलकी में इसी से काम लेते थे ।

बहमनी साम्राज्य

१४ वीं शताब्दी के मध्य में जब तुगलक निर्वल होने लगे थे दक्षिण में फिर जान आयी और वह उत्तर (केन्द्रीय राज्य) से अलग हो गया । मुहम्मद तुगलक

१. तजकिर ए औलिया ए दकन

२. उ० इ० नशो नुमा में सू० काम डा० अब्दुलहक, पृ० ७

३. वही पृ० ८

के जीते जी ही दक्षिण में मुसलमान सामन्त विद्रोह करने लगे थे । इस्माइल तुगलक ने स्वयं दौलताबाद आकर विद्रोहियों को हराया । मुहम्मद तुगलक विद्रोह समाप्त करके गुजरात गया और इधर दौलताबाद के लोगों ने हसन गंगू उर्फ जाफरखान को अपना नेता घोषित किया । हसन गंगू ने सुल्तान मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाह के नाम से शासन शुरू किया । दौलताबाद से वह गुलबार्गा गया । वहीं उसने अपनी राजधानी स्थापित की । १३४७ ई० में स्थापित बहमनी सम्राज्य उसके अठारहवें शासक कली मुल्लाह (१५१४-१६२७ ई०) के समय सामाप्त हुआ जब कि चार सामन्तों ने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की ।

बहमनी राज्य उत्तर भारत के राज्यों की तुलना में बहुत कुछ भारतीय रंग रखता था । अगर प्रसिद्ध इतिहास 'तारीखे फरिश्ता' की बात ठीक मानी जाय तो यह मानना पड़ेगा कि कई बहमनी बादशाहों ने प्रशासन एवं राज कार्यालयों में हिन्दी भाषा को माध्यम बनाया था । इसका अर्थ यह हुआ कि १४ वीं शताब्दी का अन्त होते-होते वहाँ हिन्दी भाषा (हिन्दवी भाषा) प्रचलित हो गयी थी । इस तेजो से हिन्दी के फैलने के जहाँ और कारण थे, वहाँ एक बड़ा कारण यह भी था कि, कई सूफी फकीरों ने अपने विचार जन सामान्य में इसी भाषा के माध्यम से प्रकट किए, जिससे उनके मानने वाले, जो अरबी-फारसी से अनभिज्ञ थे, उनके विचारों को समझ सकें । साहित्य के रूप में उस समय की जो सामग्री मिली है वह इन्हीं सूफियों की रचनाएँ है ।

दक्षिण के चार मुस्लिम राज्य

बहमनी साम्राज्य का पतन उसके प्रमुख सामन्तों के विद्रोह के कारण हुआ । सर्व प्रथम अमीर कासिम बरीद ने १४८७ ई० में बरीद शाही वंश का शासन स्थापित किया । सन् १४८० ई० बहमीन की सेवा से निवृत्त होकर बहमनी निजाम शाह ने अहमद नगर में और यूसुफ आदिलशाह ने बीजापुर में नये राज्यों की नींव डाली । इन तीन राज्यों के पश्चात सुल्तान कुलीकुतुबशाह ने १५१२ ई० में गोलकुण्डा राजधानी बनाकर चौथे राज्य की नींव डाली । इन चारों राज्यों ने बहमनी वंश द्वारा स्थापित नीति का आचरण करने का प्रयत्न किया । बहमनी शासन के समय दक्खिन और दिल्ली में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रह गया था । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि गुजरात, मालवा तथा आन्ध्रदेश में स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित हो चुके थे । ये राज्य दिल्ली के बादशाहों को उलझाए रखते थे ।

उतर भारत पर फारसी का प्रभाव

गुलाम, खिल्जी, तुगलक और लोदी वंश के शासकों का भाषा के बारे में विशेष आग्रह नहीं था । इसीलिए उस समय के मुसलमानों ने उत्तर भारत में बोली

जाने वाली भाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार कर लिया था, किन्तु अकबर के समय सहसा फारसी भाषा और साहित्य का अनुराग बढ़ा। अकबर ने दुहेरी कार्यक्रम बनाया। कुछ व्यक्तियों को मौलिक रूप से फारसी में लिखने के लिए प्रेरित किया गया। फलतः कई व्यक्तियों ने फारसी में रचना की। फैजी फारसी के महत्वपूर्ण भारतीय कवि खुसरो के बाद फैजी का ही नाम लिया जाता है। अबुलफजल निजामुद्दीन, अहमद, गुलशन बेगम, जौहर, अब्बास शेरवानी इत्यादि फारसी लेखकों ने महत्वपूर्ण फारसी रचनाएँ, मुगल दरबार के संरक्षण में लिखी। अकबर फारसी में इस्लाम का एक हजार वर्ष का इतिहास लिखना चाहता था।

दूसरी ओर संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थों का रूपान्तर फारसी में कराया गया, जिससे लोगों को फारसी के माध्यम से संस्कृत की उत्कृष्ट रचनाएँ पढ़ने को मिलीं। अकबर ने अनुवाद कार्य के लिए कई विद्वानों को नियुक्त किया था। अबुल फजल, कासिमबेग, शेख मनब्बर आदि संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में करते थे। महाभारत, वाल्मीकि रामायण, अथर्ववेद, लीलावती, रजतरंगिणी, हरिवंश पुराण तथा पंचतन्त्र, नलदमयन्ती कहानी इत्यादि के अनुवाद या सार फारसी में प्रस्तुत किये। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं से भी फारसी में अनुवाद किये जाते थे। अरबी, तुर्की के महत्वपूर्ण ग्रन्थ फारसी में आये।

अरबी के काल में फारसी प्रेम इतना बढ़ा कि फारसी के कुछ कवि ईरान की अपेक्षा भारत में अधिक लोकप्रिय थे। उर्फी, फैजी इसके उदाहरण है। 'मुन्तखबुतवारीख' के तीसरे खण्ड में अकबर के राज्याश्रित लेखक और कवियों की चर्चा है। अकबर के यहाँ ६९ शोधकर्त्ता, १५ दार्शनिक और चिकित्सक तथा १६७ कवि थे। इनमें से अधिकांश का जन्म ईरान में हुआ था।

इस तरह अकबर के प्रयत्नों से भारत भी फारसी साहित्य का प्रमुख केन्द्र बन गया। इन प्रयत्नों से भारतीय भाषाएँ भी प्रभावित हुई। अकबर के काल में ही ईरानी कला और संस्कृति ने भी भारतीय जीवन को प्रभावित किया। अकबर ने फारसी का महत्व साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा। दैनिक जीवन में भी उसका प्रयोग अनिवार्य हो गया। मुगल साम्राज्य की राजभाषा फारसी बन गयी।

भारतीय जीवन के ईरानीकरण का कार्य जहाँगीर ने जारी रखा। पूरे राज्य के न्यायालयों में फारसी का प्रयोग होने लगा। नूरजहाँ ईरानी पिता की पुत्री थी तथा स्वयं ईरानी साहित्य तथा संस्कृति में रुचि रखती थी अतः जहाँगीर को उससे भी प्रोत्साहन मिलता था। शाहजहाँ के शासन काल में ईरान के कई फारसी कवि भारत आये। अबूततालिम कलीम मृ० १६५९ ई०), साइबतरीजी (मृ० १६७७-७८ ई०) इत्यादि प्रमाण हैं।

अकबर से लेकर शाहजहाँ तक फारसी के लिए जो प्रयास हुए, उनका परिणाम सांस्कृतिक जीवन पर गहरा पड़ा। उच्च वर्ग के लोग भारतीय भाषाओं से विमुख हो गये। मुगल काल में भारतीय फारसी कवियों का दृष्टिकोण अमीर खुसरो जैसा नहीं रहा। खुसरो फारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी रचना करते थे तथा हिन्दी का सहज प्रभाव उनकी फारसी रचनाओं में आ जाता था। कहा जाता है वे 'ब्रज भाका' से बहुत सहाता लेते थे। खानखाना अब्दुलरहीम तक भी यह प्रवृत्ति चलती रही। इसके बाद यह पूरी तरह लुप्त हो गयी। अब हिन्दी शब्दों या हिन्दी मुहावरों के फारसी अनुवादों का विरोध होने लगा था।

हिन्दी का फारसीकरण और उर्दू

राजकीय कार्यों के अतिरिक्त दैनिक व्यवहार में भी उच्चवर्ग में फारसी शब्दों का प्रयोग होने लगा। संस्कृत, तत्सम ही नहीं देशज शब्दों से भी संभ्रांत लोग कतराने लगे थे। फारसी और अरबी के तत्सम शब्दों का प्रयोग होने लगा। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी के एक नये रूप का निर्माण किया। यही रूप 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कहलाया।

दक्षिण भारत में मुल्की नीति

दक्षिण के बहमनी तथा बाद में बीजापुर, गोलकुण्डा के मुस्लिम नरेशों ने ईरान से सदा ही अपने सीधे सम्बन्ध रखे। बादशाह महमूद बहमन (१३६८–१३९६ ई०) के समय अनेक फारसी कवि गुलबर्गा आये थे। इस समय फारसी महाकवि हाफिज को निमन्त्रित किया गया था, यद्यपि वे नहीं आ सके। मुहम्मदशाह बहमनी के समय ईरान और तुर्किस्तान से आने वाले कवियों और लेखकों की पंक्ति बँध गयी थी। उत्तर भारत में यह लोदियों का काल था। प्रवासी ईरानी विद्वानों को उस समय दिल्ली की तुलना में गुलबर्गा अधिक स्थिर अनुभव हुआ। कुतुबशाही का संस्थापक कुली कुतुबशाह भी इन्हीं दिनों तुर्की से भारत आया था। उस पर भी ईरानी प्रभाव विपुल था।

दक्षिणी रियासतों को प्रशासकों ने फारसी के अतिरिक्त अरबी के विद्वानों तथा लेखकों को भी आश्रय दिया।[१] अरबी के प्रति दक्षिण के मुस्लिम राज्यों की रुचि धार्मिक कारण से थी। फिर भी फारसी का प्रसार और प्रभाव अरबी से कहीं ज्यादा था।

इतना होने पर दक्षिण में मुस्लिम शासकों पर स्थानीय संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। वे स्थानीय लोगों के साथ मेल-जोल बढ़ाने की नीति पर चलते रहे।

बहमनियों के काल से ही मुसलमानों के दो वर्ग बन गये थे। जो मुसलमान उत्तर भारत से दक्षिण में आकर बसे थे, वे अपने को दक्खिनी मुसलमान कहते थे

१. एम. ए. मु.-अ पो गो-१०

और जो मुसलमान समय-समय पर सीधे ईरान, ईराक, और अरब से यहाँ आते थे, वे अफ़ाकी कहलाये । इन नवागत अफ़ाकी लोगों में अहम् भाव होता था, वे अपने रक्त, भाषा, धर्म, साहित्य और संस्कृति का गर्व रखते थे ।

बहमनी काल में शासकों ने अफ़ाकी मुसलमानों को बढ़ावा दिया किन्तु प्रायः वहाँ मुल्की लोगों का वर्चस्व रहा है । फीरोजशाह बहमनी ने अरबों और ईरानियों के अतिरिक्त दक्खिनी मुसलमानों, उत्तर भारत से आये हिन्दुओं और स्थानीय हिन्दुओं से मेलजोल बढ़ाया था । कर्नाटकी ब्राह्मणों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया । नरसिंह नामक ब्राह्मण बहमनी वंश का राजगुरू बनाया गया । विजयनगर की राजकुमारी का विवाह फीरोज के साथ हुआ । इब्राहिम आदिलशाह ने विदेशियों के बजाय, दकनियों को अपनी सेवा में रखना शुरू किया और उसके हुकुम से मुल्की हिसाबात जो अबतक फारसी में लिखे जाते थे, वे स्थानीय ब्राह्मणों के निरीक्षण में 'हिन्दवी' में लिखे जाने लगे । इससे देशी जबान को बड़ा बल मिला क्योंकि अब वह सरकारी और दरबारी जबान हो गयी और उसने बड़ी उन्नति करना आरम्भ कर दिया ।[1]

उपर्युक्त परिस्थिति ने हिन्दवी को साहित्यिक भाषा के रूप में उठने का अच्छा अवसर दिया । बहुत से आफाकी या उनके अनुयायी अरबी-फारसी की तुलना में हिन्दवी को तुच्छ समझते थे और अपने इसी भाव का यदाकदा प्रदर्शन करते रहते थे । परन्तु सूफी और अन्य स्वभाषाभिमानी साहित्यकार बड़ी दृढ़ता के साथ हिन्दवी-हिन्दी का पक्ष लेते रहते थे । (प्रमाण स्वरूप)—मीराजी, जानम तथा अब्दल के कथन—सारी परिस्थितियों को स्पष्ट कर देते हैं—

ये गुरुमुख पदं पाया । तो ऐसे बोल चलाया ।
है अरबी बोल केरे और फारसी भौतेरे
ये हिन्दी बोलूँ सब । उस अर्तो के सबब
ये भाका भल सौबोले । पन उस का भावत खोले
ये गुरुमुख पदं पाया । तो ऐसे बोल चलाया १
जे कोई अच्छे बोल न जाने । ना फारसी पछाने
ये उस कूँ बचन हीत । सुन्नत बूझें रीत २
ये मग्ज मीठे लागे । तो क्यूँ मन उस ये भागे । (शाहमीराँजी-खुशनामा)

'शहादतुल हकीक' में मीराँजी ने कहा हैः—

बहोत से ऐसे लोग हैं, इनके लिए हिन्दी में ये बातें लिखी गयी हैं । जाहिर

१. रामबाबू सक्सेना-तारीखे अदबे उर्दू पृ. ८१-८२ साथ ही दें. तारीखे फरिश्ता अनुवाद—वर्ग खण्ड २ पृ. ८

पर न जाना चाहिए । आंतरिक-भाव को देखना चाहिए । जबान कोई भी हो मानों पर खयाल करना चाहिए । जैसे मिट्टी छान कर सोना निकालते हैं, उसी तरह बात के सार को ग्रहण करो । शब्दों पर ध्यान न दो । उस समय हिन्दी को 'घर भाका' याने घर की वस्तु कह कर अवहेलना की जाती थी, इससे जाहिर है कि उस समय विद्वानों की नजर में इसका क्या मूल्य था, लेकिन मीराँजी भाषा का पक्ष लेते रहा, कितनी उपयुक्त उपमा दी है कि घूरे पर बारिश हुई और वहाँ अतः किसी को चमका हुआ हीरा मिल गया । अतः यह जबान घूरे पर का हीरा है । कोई समझदार ऐसे हीरे को गंदा समझकर फेंक नहीं देता ।

बुरहानुद्दीन जानम ने भी हिन्दी के विषय में मिराँजी के समान ही लिखा है कि भाषा को मत देखो अर्थ पर ध्यान दो मोती दलदल में ही कहीं भी पड़े हों तो बुद्धिमान उन्हें उठा लेगा । "हिन्दी तो जबानच है हमारी ।
कहने न लगी हम न कूँ मारी ।।"

इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि दिल्ली से आने वाले बहुत से लोग अरबी-फारसी से अपरिचित थे । वे देशी भाषा में अच्छी गति रखते थे । इब्राहिम नाम के आरम्भ में ही अब्दुल ने यह प्रसंग दिया है । राजा ने बुलाया तथा कहा कि कोई ऐसी रचना लिखो जो असाधारण हो । तब कवि ने पूछा—

पुच्छाया जगत गुरू शिअर कह किस जबान ।।१।।
जबाँ हिन्दुई मुझ सो हूँ दिहलवी
न जानूँ अरब हौर अजम मसनवी ।।१।।

बादशाह ने अब्दल को उत्तर दिया । तूँ किसी भी भाषा में अपना काव्य प्रस्तुत कर सकता है । काव्य की कला सब देशों में एक है ।

शिअर फन सब मुल्क में एक धात
इश्क एक परगट छपन रूप बात ।।
यही बात जायसी ने भी कही थी —
अरबी, तुरकी, फारसी । भाषा जेती आहि
जामे मारग प्रेम का । सबै सराहै ताहि ।

वस्तुतः हिन्दवी इन प्रेममार्गी सूफियों द्वारा ही दक्षिण में इस ढंग से सँवारी गयी कि वह उच्च विचार तथा सूक्ष्म भाव को सहज रूप में व्यक्त करने में सक्षम हो सकी । जहाँ उत्तर में इन प्रेममार्गियों ने अवधी को अपनाया वहाँ दक्षिण में हिन्दवी को ।

हिन्दवी का विकास

खिल्जी और तुगलक खानदानों के समय जो मुसलमान और हिन्दू सैनिक कर्मचारी दक्खिन में आये वे अपनी बोलियों में परस्पर व्यवहार करते होंगे, जो

उन दिनों उत्तर भारत में मुख्यरूप से प्रयुक्त हो रही थी। उन बोलियों का एक परिनिष्ठित रूप उत्तर भारत में बन चुका था। कबीर और नानक तथा सन्तों की कविता में उस रूप की झांकी मिलती हैं। दक्खिन में आने वाले मुसलमान विभिन्न बोलियों के क्षेत्र से आये थे। इसी लिए दक्षिण में जो परिनिष्ठित साहित्यिक बोली अपनाई गयी उसमें यद्यपि दिल्ली के आसपास की बोली का मुख्य स्थान है तथापि उसने अनेक प्रभाव ग्रहण कर लिए थे। हिन्दी से सम्बन्धित अन्य बोलियों के प्रभाव से मुक्त यह परिनिष्ठत हिन्दवी-हिन्दी कभी नहीं रही। भाषा अपने इसी मिश्रित रूप में व्यवहार का मुख्य साधन बन गयी थी। दक्षिण में इसे विशेष प्रोत्साहन मिला।

जिस प्रकार हिन्दवी दक्खिन में पहुँची, उसी प्रकार वह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में, जहाँ-जहाँ दिल्ली के सुल्तान के सैनिक, सूफी धर्म प्रचारक तथा इतर कर्मचारी गये, गयी। उन्हें स्थानीय समाज के साथ सम्पर्क बढ़ाना पडता था अतः स्थानीय भाषा संस्कृति का प्रभाव इन प्रवासियों पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इस सम्पर्क से धीरे-धीरे उनकी भाषा में विकास के कुछ लक्षण प्रकट होने लगते थे। इन स्थानीय प्रभावों के कारण ही हिन्दवी के कुछ क्षेत्रीय नाम भी आगे चलकर प्रचलित हुए —जिनमें दक्खिनी और गूजरी नाम विशेष उल्लेखनीय है। वस्तुतः ये हिन्दवी की परवर्ती शैलियाँ थीं।

हिन्दवी के दो रूप

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दवी का परिनिष्ठित रूप उत्तर भारत में ही तैयार हो चुका था। कबीर की रचनाओं में जहाँ तहाँ उसी रूप को देखा जा सकता है। तेरहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक दक्खिनी में इसी 'हिन्दवी' का प्रयोग होता रहा। इन छः सौ वर्षों की कालावधि में भाषा के रूप में थोड़ा विकास होना स्वाभाविक ही था अतः ग्राहमबेली तथा डॉ० श्री राम शर्मा[१] के अनुसार दक्षिण हिंदवी के दो साहित्यिक रूप थे। उसका एक रूप महाराष्ट्र सन्त कवि नामदेव, तुकाराम तथा अनेक मुस्लिम सन्तों, मीराँजी शाहबुरहानुद्दीन आदि की कृतियों में देखा जा सकता है। बेली के अनुसार १३४० से १५९० का काल इसे वे धार्मिक काल कहते हैं[२] यह रूप कबीर तथा नानक की वाणी से बहुत मेल खाता है।" हिन्दवी (दक्खिनी) का दूसरा रूप है, जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का सर्वथा अभाव नहीं है किन्तु फारसी तथा फारसी द्वारा अंगीकृत अरबी के शब्दों का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बेली के अनुसार १५९० से १७२० इसे वे साहित्यिक काल मानते हैं। यह दूसरी प्रवृत्ति गोलकुण्डा के वजही के बाद सायास कार्यान्वित

१ द. सा. पृ. ३०
२. ग्राहम बेली हि. उ. लि. पृ. १४

होती दिखाई देती हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 'हिन्दवी' का स्थानीय नाम दक्खिनी सर्व प्रथम वजही ने ही प्रयुक्त किया है।

अकबर के समय उत्तर में भारतीय साहित्य-संस्कृति के ईरानी प्रभावित रूप के विकास का प्रयत्न बड़े वेग से हुआ था। राज भाषा फारसी होने तथा राज्य की नीति का समर्थन होने के कारण वही जीवन के सभी क्षेत्रों में फारसी का व्यवहार बढ़ता गया। किन्तु दक्खिन में इस प्रभाव को फारसी 'भाषा' के रूप में अपनाने के स्थान पर, उसके शब्द सहयोग से हिन्दी के ही फारसीकरण का प्रयत्न हुआ। इस प्रवृत्ति को बाद में बीजापुर और गोलकुंडा के शासकों ने स्वीकार किया अतः हिन्दी में फारसी शब्दावली का प्रयोग दक्षिण भारत में भी होने लगा। इसी कारण उर्दू साहित्य का आरम्भ दक्षिण से माना जाता है।[१]

दक्षिण में विकसित 'हिन्दवी' के या 'दकनी' के साहित्यिक विकास को भली भाँति समझने के लिए हम उसको कई युगों में विभाजित कर करते हैं। पहला युग जो पूर्णतः धार्मिक साहित्य से भरा हुआ है, भाषा विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है और उसका समय बहमनी राज्य के अन्त तक (१५२७ ई०)। बीजापुर और गोलकुंडा में विकसित होने वाले साहित्य को उसकी उन्नति का दूसरा युग कह सकते हैं। (१६८६—८७ तक) तीसरा युग वह कहा जा सकता है जिसमें मुगल राज्य के प्रभुत्व में तथाकथित उर्दू साहित्य का एक बड़ा भंडार एकत्र हो गया था।[२]

दक्खिनी के फारसीकरण को हम गवासी तथा अन्य कवियों की रचनाओं में देख सकते हैं। फारसीकरण की प्रवृत्ति पूर्णरूप से नुस्रती (१६२६–१६८६ के मध्य जीवित) की कविता में व्यक्त हुई है। उसने फारसी की शब्दावली ही नहीं फारसी ढंग के समासों का भी प्रयोग किया। मक्ति की रचनाओं में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में लक्षित होती है इसीलिए जब वली दिल्ली गये तो वहाँ के साहित्य प्रेमियों को उनकी भाषा तथा शैली दोनों में नयापन लगा। इस तरह की शैली दिल्ली के लिए सर्वथा नयी थी। तब तक वहाँ की हिन्दी का फारसीकरण इतना नहीं हुआ था।[३]

हिन्दवी विकास के कारण

मूलतः उत्तर भारत की बोली होते हुए भी हिन्दवी को वहाँ ऐतिहासिक कारणों से उस समय ब्रज, अवधी तथा फारसी की प्रतिद्वन्द्विता में विशेष अवसर

१. दकन में उर्दू—हाशम्।
२. उर्दू सा. इ.—ग्राहम बेली
३. द. हि. सा. पृ.—३०

नहीं मिल सका, तथापि दक्षिण में उसे पूरा अवसर मिला । यहाँ वह न केवल बोल-चाल अपितु साहित्यिक अभिव्यक्ति को समर्थ माध्यम के रूप में उत्कर्षित हुई । इसके उत्कर्ष के पीछे जो कारण सक्रिय थे उन्हें संकलित रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है :— १ दिल्ली से दूरी २, राजकार्यालयों का हिन्दवी भाषा में काम करना ३, हिन्दू-मुसलमानों का मेल-जोल ४, शांतिपूर्ण परिस्थिति ५, सूफी फकीरों की उपस्थिति । डा० ग्राहम बेली ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट दो कारण माने हैं—१ बहमनी राजाओं का दिल्ली से विद्रोह, साथ ही शासन तथा सामान्य नागरिकों द्वारा स्वयं को केन्द्रीय प्रभाव से यथासम्भव मुक्त कर लेने का प्रयत्न । उन्होंने अपना विकास इस इच्छा के साथ किया कि वे अपना मौलिक जीवन तथा विचारधारा विकसित कर सकें । दूसरी ओर वे बाहरी लोगों को नापसन्द करने लगे थे । इस स्थिति ने हिन्दवी (डा० केली इसे उर्दू कहते हैं) की दिल्ली की भाषा-फारसी के विरोध में विकास का पूरा अवसर दिया ।

दूसरा कारण यह था कि इस्लाम के सन्देशों का प्रचार करने की तीव्र इच्छा की पूर्ति के लिए जन-भाषा का उपयोग करना आवश्यक था । अतः अरबी फारसी के असंख्य धार्मिक पारिभाषिक शब्द 'हिन्दवी' में सम्मिलित हो गये । धार्मिक व्यक्तियों में जिन्होंने दक्षिण के जीवन में सदा ही महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया है कविताएँ तथा मसनवियाँ लिखना आरम्भ कर दिया ।[1]

डा. एहतेशाम हुसेन ने लिखा है :—"इसके जहाँ और कारण थे, वहाँ एक बड़ा कारण यह भी था कि कई सूफी फकीरों ने अपने विचार इसी भाषा में प्रकट किये, जिससे कि उनके मानने वाले, जो अरबी-फारसी से अनभिज्ञ थे, उन के विचारों को समझ सकें ।" साहित्य के रूप में उस समय जो कुछ मिला है कि इन्हीं सूफियों की रचनाएँ हैं ।

दक्खिनी का औचित्य

हमने पीछे स्पष्ट किया है कि अपने मूल स्थान से निकल कर हिन्दवी-खड़ी-बोली जहाँ-जहाँ गयी वहाँ, उस पर (प्रायः नागण्य) स्थानीय प्रभावों के कारण उसके स्वरूप में विकास के लक्षण भी प्रकट हुए । इसी कारण इसे क्षेत्रीय संज्ञाओं से भी सम्बोधित किया गया है । ये संज्ञाएँ केवल आंचलिक प्रभाव को सूचित करती हैं । वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी में लिखे जा रहे आँचलिक साहित्य को देखते हुए यदि हिन्दी की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ प्रचलित हों तो यह सम्भवतः एक विवाद का विषय बन जाएगा । आज भी बोलचाल की हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी के बीच अन्तर निर्दिष्ट करना हो तो शायद उसके लिए भी भिन्न संज्ञाओं का प्रयोग होगा । हमारे

१. ग्राहम बेली—हि० उ० लि०-१५

इसी-विचार का समर्थन डा. मसूद हुसेन के इस कथन से होता है "दक्खिनी भाषा की शब्दावली विशेषताएँ तथा पदव्याख्या दिल्ली के आस-पास की बोलियों, विशेष रूप से हरियानी और खड़ीबोली से पूरी तरह मेल खाती है;" आगे आप कहते हैं "और दक्खिनी न तो ब्रज भाषा से निकली है और न पंजाबी से अपितु उसका उद्गम अमीर खुसरो की 'हजरत देहली' के आस पास की बोलियाँ हैं अतः दक्खिनी भाषा का न कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है और न दक्खिनी साहित्य की कोई पृथक विशिष्ट परम्परा है ।"[1] डा. मसूद हुसेन अन्य अनेक विद्वानों के समान यह मानते हैं कि उर्दू का विकास इसी भाषा से हुआ है, जिसका साहित्यिक रूप १४०० से १६५० ई. के बीच स्थिर हुआ । (उनके अनुसार यह एक विकासशील भाषा थी ।)

उर्दू क्षेत्र में कुछ विद्वान उर्दू को दकनी से विकसित नहीं मानते. इन लोगों ने दकनी के स्थान पर 'हिन्दवी' नाम ही पसन्द किया है । अलाउद्दीन खिलजी ने जब दक्खिन और गुजरात पर विजय पा ली तो हिन्दवी भाषा इन क्षेत्रों में प्रयुक्त की गई । ख्वाजा सय्यद मुहम्मद मसूदराज ने 'मेराजुल आशकीन' नामक पुस्तक लिखी जो हिन्दवी की पहली गद्य रचना मान ली जाती है ।"[1] वास्तविकता यह है कि दक्खिनी शब्द का प्रयोग बहुत कम हुआ है, पर हिन्दवी-हिन्दी का निरन्तर प्रयोग होता रहा । "दक्खिनी ही नहीं उस भाषा के लिए भी हिन्दी शब्द का प्रयोग १९ वीं शती के अन्त तक होता रहा, जो इस समय 'उर्दू' नाम से सम्बोधित होती है । प्रमाणभूत व्यक्तियों में सम्भवतः अन्तिम बार गालिब और सर सैय्यद ने इसे 'हिन्दी' नाम से पुकारा है ।[3]

गुजरात में हिन्दवी का प्रवेश

गुजरात का सम्बन्ध दिल्ली से सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के काल से शुरू होता है, जबकि उसने १२९७ ई० में अपनी फौज भेज कर इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया । अपनी ओर से सूबेदार नियुक्त कर दिया । ये सूबेदार दिल्ली सल्तनत से बराबर नियुक्त होते रहे, यहाँ तक कि जब दिल्ली पर तैमूर का लश्कर पहुँचा और सल्तनत में दुर्बलता पैदा हुई तो सूबेदार जफरखाँ के बेटे तातारखाँ ने खुद अपनी हुकूमत गुजरात में कायम कर ली और मुम्मदशाह का उप नाम धारण करके तख्त पर बैठा (१४०३ ई०) गुजरात के शासक की हुकूमत अकबर के शासन काल तक रही । इसके बाद (१६०१ ई० में) मुगलों द्वारा गुजरात का सूबा दिल्ली राज्य में सम्मिलित हो गया ।

१. म. हु.—शे० ज० १७७
२. यू. हु.—मिल मि इ. क १०२
३. द हि. सा. श्रीराम शर्मा पृ० ३४ म. हु.—शे० ज० १६८

'दिल्ली का प्रभाव गुजरात पर अमीर खुसरो के समय से ही था और वहाँ की भाषा का प्रभाव जो उस इलाके की जबान पर पड़ा वह न सिर्फ इस बड़े सूबे के शहरों तक सीमित रहा बल्कि बीजापुर राज्य तथा दूर और नजदीक के स्थानों पर पहुँच गया। इसका प्रमाण इन सूफी कवियों की रचनाओं में मिलता है, जो अब तक सुरक्षित हैं।[1] अहमदाबाद में सूफियों का बहुमत का बड़ा केन्द्र कार्य करता था।[2] बन्दावाज गेसू दराज की आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। वहाँ जो साहित्य हिन्दवी में उपलब्ध हुआ है, वह मुख्यतः इन्हीं सूफियों का रचित है। स्थानीय सन्तों और भक्तों की भाषा प्रायः ब्रज के प्रभाव में रही है।

गूजरी और दक्खिनी

गुजरात और बीजपुर के लेखकों के विषय में एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि दिल्ली से जो भाषा दक्षिण की ओर आयी उसकी दो शाखायें हो गयीं। "दकन में गयी तो दकनी लहजे और अलफाज के दाखिल होने से दकनी कहलाई और गुजरात में पहुँची तो वहाँ की मुकामी खुसूसियत की बजह से गुजरी या गुजराती कही जाने लगी।"[3] "हम पीछे देख चुके हैं कि शाह मीराजी तथा बुहानुद्दीन जानम, जो बीजापुर के कवि हैं, दोनों ने हिन्दी में लिखने की अपनी विवशता बताई और अपनी भाषा को हिन्दी कहा है। मीरांजी तथा बुहानुद्दीन जानम दोनों ही एक स्थान पर अपनी भाषा को हिन्दी कहते हैं तो दूसरी जगह उसी को गूजरी या गुजराती भी कहते हैं। उदा-शा-बु-हान-'कलमेतुल हकायक' में :—

"सबब यु जवान गुजरी नाम, ई किताब कलमेतुलहकायक।" इसी प्रकार "उज्जतुल वखा" में—'जे हो वें ज्ञान विचारो न देखे भाका गुजरी"। शाहअली मुहम्मदजू की 'जवाहिरूल असरार' के दीवाचे में लिखते हैं 'वालिसाने दुररूबार व जौहर ए निसात व अल्फाजे गुनही बतरीके नज्म बनवाने मुबारक खुदफरमदन।'

शेख खूब मुहम्मद 'खूब' भी अपनी किताब की जवान के बारे में कहते हैं :-

"जीव" मेरी बोली भूँ बाल अरब अजम मिल एक संगात
अपनी भाषा गुजराती बजवान गुजरात।
ज्यूँ दिल अरब अजन की बात
सुन बोले बोली गुजरात

यह विचारणीय है कि शाह बु-हान का एक जगह अपनी भाषा को हिन्दी कहना और दूसरी जगह गूजरी कहना विरोधाभास लगता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। हिन्दी आम है, याने वह भाषा जो हर जगह प्रयोग में आती थी।' जिसे

१. डा० मौ० अब्दुल हक—उ० इ० न० र० क० काम
२. वही पृ० ७१
३. श्रीराम शर्मा—द० हि० इ० वि० पृ० १९

मुख्यतः 'हिन्दवी' कहते थे। हिन्दवी, हिन्दी के नाम से प्रचलित थी। गूजरी और गुजराती खास नाम हैं, यानी वह जवान जो गुजरात और उसके निकट बोली जाती थी और जिसमें कुछ मुकामी लब्ज भी दाखिल हो गये थे। जवान एक है, दकन में दकनी कहने लगे और गुजरात में गुजरी। अन्तर सिर्फ इतना है कि उनमें कहीं मुकामी रंग की झलक नजर आ जाती है।

गुजरी—मीराजी और बु-हानशाह अपनी भाषा को गुजरी भी कहते हैं लेकिन इन पर गुजराती का इतना असर नहीं, जितना काजी महमूद दरियायी, शेख अली-मुहम्मद या मिया खूब मुहम्मद की भाषा में पाया जाता है। वे लोग फिर भी गुजरात से दूर थे और ये दोनों कवि खास गुजरात-अहमदाबाद के रहने वाले थे। इसी लिए उनमें बहुत से ठेठ गुजराती शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो बीजापुरी कवियों की रचनाओं में नहीं पाये जाते उदा०—कुछ शब्द देखिये :—

गूजरी शब्द	हिन्दी शब्द
हूँ	मैं (सर्वनाम एक वचन प्र. पु.)
डोसी (डोसी)	अर्थ, बुढ़िया
ऊँड़ा	गहरा
छोली	छोरी
जमना	दाँया
पपोटे	बुडबुडे

केवल इस किंचित मात्र अन्तर के आधार पर इसे गुजरी या गुजराती की संज्ञा दी गयी थी।

हिन्दवी का अन्य भाषाओं से सम्पर्क

हिन्दवी और मराठी :—यही बात दक्खिनी के सम्बन्ध में है, उसमें भी क्षेत्रीय मराठी, तेलगू, कन्नड भाषाओं के शब्द का समावेश हुआ है। मराठी के अव्यय 'च' का विशेष प्रयोग मिलता है।

मुसलमानों का आगमन सर्वप्रथम देवगिरि में हुआ। उन दिनों देवगिरि महाराष्ट्र (यादवों की) की प्रशासनिक राजधानी थी। विद्या की राजधानी भी देवगिरि के निकट पैठण (प्रतिष्ठान) में थी, जहाँ सूफी सन्तों का दौलताबाद के समान ही बड़ा केन्द्र स्थापित हो गया था। मराठी आर्य कुल की भाषा है। खड़ी बोली और मराठी में कई विषयों में साम्य है। महाराष्ट्री अपभ्रंश एक समय परिनिष्ठित आन्तरप्रान्तीय माध्यम रह चुकी है, जिसे शौरसेनी का ही रूप माना गया है। मलिक काफूर और मुहम्मद तुगलक के समय जो उत्तर भारतीय परिवार देवगिरि पहुँचे थे, वे मुख्य धारा से दूर पड़ गये थे। साठ सत्तर वर्षों में उन्होंने अपनी भाषाओं की मुख्यधारा से हटकर जो सामान्य बोली अपनायी उसका रूप इसी काल

में निर्धारित हुआ। मराठी ने इन दिनों दक्खिनी पर जो प्रभाव डाला वह अमिट रहा।

इस प्रकार कुछ क्षेत्रीय शब्दों का समाविष्ट हो जाने का अर्थ यह नहीं है कि हिन्दवी पर उन क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव है। डा० भोलानाथ तिवारी के शब्दों में "भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दक्खिनी को मैं समझता हूँ कि मुख्यतः प्राचीन खड़ी बोली का रूप मानना चाहिए, जिसमें पंजाबी, हरियानी, ब्रज तथा कुछ अवधी के रूप भी हैं। दक्षिण में जाने के बाद, इस पर कुछ मराठी का भी प्रभाव पड़ा। इसी तरह गुजरात का भी। वह तथ्य हैं कि उत्तरी भारत की पंजाबी, हरियानी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं के रूपों को मिलाने का यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि इन सब का प्रभाव है। वस्तुस्थिति यह है कि उस काल की भाषा कुछ इस प्रकार की मिश्रित थी ही। कबीर ने भी इसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है।'[1] अर्थात हिन्दवी उस समय की अंतरभाषा थी, जिसमें कई नयी पुरानी बोलियों-भाषाओं के शब्द बड़ी उदारता से स्वीकार किये जाते थे।

तेलगू और कन्नड का नगण्य प्रभाव

देवगिरि के बाद बहमनी साम्राज्य की स्थापना होने पर गुलबर्गा में राजधानी बनी। यहाँ भी दक्खिनी का विकास होता रहा। यहाँ भी उसने मराठी का प्रभाव सुरक्षित रखा, दूसरी ओर द्रविडकुल की भाषा कन्नड से उसने उल्लेखनीय प्रभाव स्वीकार नहीं किया। जब बीजापुर में शासन स्थापित हुआ तो वहाँ बड़े-बड़े पदों पर मराठी अधिकारी नियुक्त किये गये। उच्च श्रेणी की जनता में मुसलमानों पश्चात् मराठी भाषियों की गणना की जाती थी। शिवाजी महाराज के पिता शाह जी बीजापुर की सेवा में थे। बीजापुर की राजभाषा बहुत समय तक मराठी रही। इस सम्पर्क ने दक्खिनी में मराठी प्रभाव को स्थायी रखने में योग दिया।"[2] आर्यकुल की भाषा होने से मराठी के शब्द खड़ी बोली में सरलता से घुलमिल जाते हैं किन्तु न तो गुलबर्गा और बीजापुर में और न ही गोलकुण्डा में कन्नड तथा तेलगू के शब्द साहित्यिक दक्खिनी में स्थान पा सके। दस-पाँच शब्द ही साहित्यिक 'हिन्दवी' (दक्खिनी) में इन दोनों भाषाओं से लिए गये थे। बोलचाल की भाषा में निश्चित ही क्षेत्रीय शब्दों की संख्या अधिक रही होगी। इसके अतिरिक्त उच्चारण में प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

मेवाती, हरियाणी, ब्रज, पंजाबी

खड़ी बोली पश्चिम रुहेलखण्ड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला

१. भो० तिवारी—भाषा कोश पृ० २६४
२. डा० श्रीराम शर्मा—द० हि० ड० वि० पृ० ९८-९९

जिले की उपभाषा है। इस क्षेत्र के आस-पास मेवाती (राजस्थानी), हरियाणी, पंजाबी और ब्रज बोलो जाती है। इन भाषाओं का प्रभाव हिन्दवी पर गहरा पड़ा, यह बात हम पहले कह चुके हैं। इस पर पूरबी बोलियों का उतना ही प्रभाव रहा है जितना कबीर दास की भाषा में हमें दिखाई देता है, यद्यपि वर्तमान खड़ी हिन्दवी पूर्वी प्रभाव से मुक्त है, परन्तु 'हिन्दवी' के काल में यह सम्भव ही नहीं था। राजस्थानी का प्रभाव गुजराती के समान ही हिन्दवी पर गहरा पड़ा है। यही बात पंजाबी के विषय में भी सत्य है। खड़ी की आकारान्त प्रवृत्ति पंजाबी से समानता रखती है।

पूरबी प्रभाव :—हिन्दवी पर पूरबी बोलियों का प्रभाव पड़ने के लिए प्रायः वे ही कारण हैं, जो मराठी और गुजराती के सन्दर्भ में बताए गये है। तुगलक साम्राज्य के विशृंखलित हो जाने पर बिहार और बंगाल में कई छोटे-छोटे मुस्लिम राज्य स्थापित हो गये थे। अवध में सूफी गतिविधियों का बड़ा केन्द्र था। जौनपुर मे भी साहित्य सृजन हो रहा था। इन क्षेत्रों का रचित हिन्दवी साहित्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है, तब भी उपलब्ध दक्षिणी साहित्य में पूरबी का विशेष रूप से अवधी का साधारण प्रभाव दिखाई देता है। डा० श्रीराम शर्मा ने पूरबी प्रभाव के तीन कारण बताये हैं। (१) पूर्व के मुस्लिम रियासतों के प्रतिष्ठित जनों का गुजरात और बीजापुर की ओर जाना (२) मुस्लिम सेनाएँ स्थान पर नहीं रहती थी। पूरब में रहने के कारण वहाँ की भाषा का प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया होता। (३) मुख्य कारण यह है कि हिन्दी की निर्गुणधारा के लगभग सभी सन्त पूरब के थे और वहाँ की बोली बोलते थे उनकी कविता में पूरबी बोलियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

हिन्दवी का उपलब्ध आरम्भिक साहित्य सूफी सन्तों द्वारा रचित है। वे प्रेम राज्य के दूत थे उन्हें बहुसंख्य जनता से सम्पर्क स्थापित करना था। यह तभी साध्य और सम्भव था जबकि वे भारतीय सन्त परम्परा की भाषा को अपनाते। इस प्रकार डा० श्रीराम शर्मा द्वारा अनुमित अन्तिम कारण सारगर्भित लगता है। साथ ही १६ वीं शती के पूर्वार्ध में अवधी उत्तर भारत की साहित्यिक और वैचारिक भाषा थी, इसीलिए सूफी सन्तों ने उसे काव्य भाषा के रूप में स्वीकार किया। अवध और पूर्वी भारत से होते हुए दक्षिण-पश्चिम की ओर जाने वाले सन्तों और सैनिकों की भाषा में पूरबी प्रभाव का आ जाना भी स्वाभाविक था।

डिंगल और पिंगल

परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट के तीन क्षेत्रीय रूप उपलब्ध होते हैं। पश्चिमी

१ धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ०

मध्य देशीय, पूर्वी । इनमें से पश्चिमी रूप का विकास बाद में पश्चिमी राजस्थानी या 'डिंगल' के रूप में हुआ । और मध्य देशीय रूप से प्राचीन पिंगल का विकास माना जाता है । हिन्दी का आरम्भिक साहित्य डिंगल से मिलता है, जो पश्चिमी राजस्थानी की एक साहित्यिक शैली थी । डिंगल साहित्य में पिंगल या प्राचीन ब्रज के नमूने भी मिलते है । राजस्थान के चारणोत्तर साहित्यकार 'पिंगल' में नाम से साहित्यिक काव्य रचना करते थे । डिंगल की ध्वनि पर ही तत्कालीन उत्तर प्रदेशीय काव्य भाषा आरम्भिक 'ब्रज' भाषा का पिंगल नामकरण राजपूताने में, उसी युग में हुआ ।

पश्चिमी अपभ्रंश का दूसरा नाम शौरसेनी अपभ्रंश माना जाता है, जिसका विकास शौरसेनी प्राकृत से हुआ । इसी शौरसेनी अपभ्रंश से 'पश्चिमी हिन्दी' (पंजाबी, बांगरू, खड़ी बोली ब्रजभाषा, बुन्देली) विकसित हुई । डिंगल के बाद ब्रज भाषा उत्तरी भारत की प्रतिनिधि सांस्कृतिक भाषा बनी ।

भौगोलिक दृष्टि से खड़ी बोली का मूल स्थान पश्चिमी हिन्दी भाषा वर्ग के उत्तरी-पश्चिमी कोने में पड़ता है । यह पश्चिम रहेलखण्ड, गंगा के उत्तरी दो-आब, तथा अम्बाला जिले को उपभाषा है ।[१] इसके पश्चिम में पंजाबी, बांगरू एवं जादू बोली जाती है । इसके उत्तर में पहाड़ी भाषाओं का क्षेत्र है । देहरादून के पहाड़ी भाग में पहाड़ी वर्ग की जौनसारी बोली, बोली जाती है । ऊपरी दोआबे के यमुना नदी के दूसरी पार पंजाब प्रान्त का प्रारम्भ हो जाता है और यमुना नदी के कुछ पश्चिमी किनारे पर दक्षिण से उत्तर की ओर दिल्ली, करनाल तथा अम्बाला के जिले हैं । दिल्ली (शहर को छोड़कर) जिले तथा करनाल की बोली बांगरू तथा जादू है, जो पंजाबी एवं राजस्थानी से अत्यधिक प्रभावित है । अंबाला के पूर्वी भाग तथा कलासिया एवं पटियाला की बोली वस्तुतः हिन्दुस्तानी ही है ।[२]

उक्त भाषा वृत्त के बीच सीमावर्ती भू-भागों में खड़ी बोली पर उपाख्यानों की पंजाबी राजस्थानी तथा पूरबी हिन्दी का प्रभाव पड़ता है । ब्रज का प्रभाव विशेष पड़ता है । सीमा वर्ती लोगों को बोलचाल में ये रूप प्रायः दिखाई दे जाते हैं । 'हिन्दवी' में इनकी उपस्थिति लक्षित होती है ।

पंजाबी :—एक कल्पना यह रही है कि हिन्दी की उत्पत्ति पंजाब में ही हुई । मुसलमानों की बस्तियाँ पहले वहीं बनी किन्तु इस कल्पना की निस्सारता सिद्ध हो चुकी है, तब भी पंजाब से मुहम्मद गोरी से अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं के साथ दिल्ली की ओर आने वाले पंजाबियों के प्रभाव से खड़ी बोली अपनी सहोदरा 'ब्रज' की तुलना में पंजाबी के समान आकारान्त भाषा बन गई ।

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ०

२. डा० गेंदालाल शर्मा—ब्र० ख० व्या० तु० अ० पृ० ५८

हिन्दवी की इतर शैलियाँ

यह स्पष्ट हो जाने के पश्चात कि परवर्ती अपभ्रंश—से विकसित दिल्ली मेरठ की बोली, जिसे आजकल 'खड़ीबोली' भी कहा जाता है—का प्रारम्भिक रूप 'हिन्दवी' कहा जाता रहा है, तथा इसी का प्रयोग अमीरखुसरो के बाद उत्तरी भारत में फुटकर रूप में तथा दक्खिन एवं गुजरात में सतत् मुख्यतः हिन्दू-मुसलमानों द्वारा बोलचाल और साहित्य सृजन के लिए होता रहा है । पिछले १००० वर्षों के इतिहास में हिन्दवी-हिन्दी से विकसित दक्खिनी तथा गुजरी का उल्लेख हम कर चुके हैं । इनके अतिरिक्त रेख्ती-रेख्ता, हिन्दुस्तानी परिष्टित नागरी हिन्दी को भी 'हिन्दवी की परवर्ती विकसित शैलियाँ माना गया है ।

इन सबका आधार तथा गठन एक-सा है । यह खड़ीबोली के ही कालक्रम से एवं प्रान्तीयता के आधार पर निर्मित प्रकार हैं । सबका व्याकरण का ढाँचा क्रिया, पद विन्यास व वाच्य खड़ीबोली की ही भाँति हैं । इन सब रूपों से खड़ीबोली की प्राचीनता सिद्ध होती है, साथ ही साथ उसकी व्यापकता की पूर्ण पुष्टि भी हो जाती है ।

रेख्ता रेख्ती—रेख्ता या रेखता, उर्दू में एक प्रकार की गजल, संगति के एक पारिभाषिक शब्द तथा एक प्रकार की भाषा के अर्थ में मिलता है । रेख्ता मूलतः फारसी के 'रेख्तन्' से बना है, जिसका अर्थ-गिराकर बनाया हुआ ढेर होती है । भारत में रेख्ता का प्रयोग पहले छन्द और संगीत के क्षेत्र में आया । इन दोनों ही क्षेत्रों में, इसमें मिलने या मिश्रण का भाव है । फारसी और भारतीय पद्धति को मिला कर बनाया हुआ 'रेख्ता' है । ऐसे छन्दों को रेख्ता कहा गया जिनमें कुछ अंश फारसी तथा कुछ हिन्दी का है । जैसे खुसरो के बोल—"जहाल मिस्की मकुन तगा-फुल दुराय नयना बनाया बत्तियाँ" । आगे इसी मिश्रण की प्रवृत्तिगत विशेषता के कारण १७०० से कुछ पूर्व से १८०० से कुछ बाद तक की 'उर्दू' की पद्य भाषा 'रेख्ता' कहलाई । डा० उदयनारायण तिवारी ने रेख्ते को हिन्दी की शैली माना है "रेख्ता हिन्दी की वह शैली है, जिसमें फारसी शब्दों का सम्मिश्रण है ।"[१] आचार्य रा० शुक्ल ने भी यही अभिप्राय व्यक्त किया है "खुसरो के समय से जिस भाषा का हिन्दी-हिन्दवी नाम से श्री गणेश हुआ था और जो दक्षिण भारत में रेख्ता नाम से सन् १७०० ई० तक फूलती-फलती रही वह इस काल के उपरान्त अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित न हो सकी ।"[२]

परदे की प्रथा होने से पुरुष और स्त्रियों की बोली अलग-अलग हिस्सों में

---

१. डॉ० उदयनारायण तिवारी—हि० उ० वि०, पृ० १९७

२. रा० शुक्ल—हिन्दुस्तानी का उद्गम, पृ० ७

बँट गयी थी। इसी कारण स्त्रियों की बोली कुछ ऐसी हो गई थी, जिसमें उनके मुहावरे अलग थे और उनकी बोलचाल का ढंग भी पुरुषों से अलग हो गया था। उसको बेगमाती जबान कहते थे। लखनऊ में जब शायरी का जोर हुआ और लोगों को नयी-नयी चीजें सूझने लगीं तो 'रंगीन' ने बेगमाती जबान में शेर कहने शुरू किये। उर्दू को रेख्ता कहते थे। इसलिऐ बेगमाती जबान की शायरी को इसका स्त्रीलिंग बना कर रेख्ती कहने लगे। इसमें वक्ता सदैव स्त्री ही होता है और उसी ओर से वर्णन किया जाता है। रंगीन की यह नयी शायरी देखकर इंशा ने भी रेख्तियाँ लिखीं। इनके अतिरिक्त मिरजा अलीवेग, नाजनी, मीर यारअली, जान साहब रेख्ती के प्रसिद्ध कवि हैं। कुछ उदाहरण—

'है दिवाली से सिया आज का दिन आज की रात
घर से निकलो न जरा आज का दिन आज की रात।
तीसरे दिन नहीं जाते हैं किसी के घर से,
और रह जाओ बुआ आज का दिन आज की रात।
सुबह को देखा है मुँह शाम बरन का मैंने
खैर से काटे खुदा आज का दिन आज की रात।
डोली मंगा के उनके घर आप हूँ मैं जाती
औरों के हाथ बाजी मंजूँ पयाम कब तक। इं०

उर्दू—उर्दू शब्द मूलतः तुर्की भाषा का है (अंग्रेजी 'होर्ड' तथा रूसी 'ओर्द' इसी से व्युत्पन्न हैं)। इसका वास्तविक अर्थ है 'उमरा एवं सलातीन की फिरोदगाह' या 'शाही शिविर'। भारत में यह शब्द सम्भवतः बाबर के साथ आया और शाही शिविर या शाही किले के अर्थ में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ।

आज इस शब्द का हिन्दी के उस दूसरे रूप के लिए प्रयोग होता है, जो भारत के शिक्षित मुसलमानों की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा है। उर्दू खड़ी बोली का ही वह आधुनिक या साहित्यिक रूप है, जो फारसी लिपि में लिखा जाता है और जिसमें फारसी-अरबी शब्दों का बाहुल्य रहता है। इस प्रकार हिन्दी और उर्दू दोनों का एक ही मूल होने पर भी साहित्यिक वातावरण, शब्दसमूह तथा लिपि में भेद होने के कारण दोनों में बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मूलतः दोनों एक ही हैं, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से दोनों दो भाषायें प्रतीत होती हैं।

अपने आरम्भिक अर्थ से किस प्रकार यह शब्द एक विशिष्ट भाषा का द्योतक हुआ, इसका शताब्दियों का इतिहास है। भारत में आकर मुसलमानों ने दिल्ली-मेरठ की बोली को अपनी बोलचाल के लिए चुना, जिसे अमीरखुसरो ने हिन्दवी या देहलवी कहा है। मुसलमानी सेना के सैनिकों, शासकों तथा निर्गुण सन्तों के द्वारा

अन्तः प्रान्तीय रूप मिला।

रेख्ता नामक छन्द में इस भाषा के साथ-साथ कुछ फारसी और अरबी के शब्द भी मिलाये जाने लगे। बाद में 'रेख्ता' शब्द ही भाषा के अर्थ में रूढ़ हो गया। शाहजहाँ ने अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदली। लालकिले के शाही महल में जो बाजार अमीर उमरा अथवा बादशाह और बेगमों के लिए लगता था, उसे 'उर्दू ए मुअल्ला' की संज्ञा दी गयी। वली औरंगाबादी के कलाम को देख कर दिल्ली के शिष्ट शिक्षित मुसलमान कवियों ने इसे अपनाया और सामान्य दक्खिनी की तुलना में इसे अत्यन्त शिष्ट और सुसंस्कृत पाया। बाद में मात्र 'उर्दू' शब्द ही शिष्ट समाज की भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। इंशाअल्ला खाँ (दरिया-ए-लताफत १८०८ ई०) में स्वयं लिखते हैं "बादशाहों और उमरा और उनके दरबारियों और हाजिरबाशों से उर्दू की सनद लेनी चाहिए।"[१] शाहजहानाबाद के समस्त निवासियों की जबान को उर्दू कहने के लिए इशा तैयार नहीं है। उनके अनुसार 'उर्दू जो फसाहत और बलागत की कान मशहूर है, वह हिन्दोस्तान के बादशाह की और चन्द अमीरों और उनके मुसाहिबों और बेगम व खानम की और कस्बों की जबान है। जो लफ्ज उनमें इस्तेमाल हुआ उर्दू हो गया। यह बात नहीं कि जो कोई भी शाहजहानाबाद में रहता है, वह जो कुछ बोले, सनद है।"[२]

उर्दू के निर्माण की कहानी स्वयं इंशा इस प्रकार कहते हैं—"यहाँ (शाहजहानाबाद) के खुशबयानों ने मुत्तलक होकर मुतादद जबानों से अच्छे-अच्छे लफ्ज निकाले और बाजे इबारतों और अलफाज में तसर्रुफ करके जबानों से अलग एक नयी जबान पैदा की, जिसका नाम उर्दू रखा"।[३] मीर अम्मन देहलवी के अनुसार उर्दू बाजारी और लश्करी भाषा है।

एहतेशाम हुसेन ने उर्दू की उत्पत्ति के विषय में प्रचलित सारे मतमतान्तरों का निराकरण करते हुए कहा है—"उर्दू न तो विदेशी भाषा है न वह सिन्ध में पैदा हुई और न दक्षिण भारत में, न पंजाबी से निकली, न ब्रज भाषा से वरन्……… दिल्ली के चारो ओर बोली जाने वाली कई बोलियों में फारसी-अरबी शब्दों के मिलने और पश्चिमी हिन्दी की उस बोली में जिसे खड़ीबोली कहा जाता है, रूप ग्रहण करने से एक नई भाषा का विकास हुआ। आरम्भ में उस पर पंजाबी का प्रभाव अधिक रहा परन्तु धीरे-धीरे खड़ीबोली ही उर्दू के रूप में निखरती गई।"

प्रो. शेरवानी के अनुसार खान साहब (सिराजुद्दीनअली खाँ) गालिबन

१. इंशा—दरिया-ए-लताफत (उर्दू अनुवाद) पृ० ६५
२. वही, पृ० १०८
३. वही, पृ० ४

पहले शख्श हैं, जो उर्दू का लफ्ज बमानी जबान इस्तेमाल लाये हैं।[१] कुछ लोगों के अनुसार मुसहफी ने उर्दू नाम का प्रयोग भाषा के अर्थ में सर्वप्रथम किया। मीरत की 'मीन' ने १७५२ ई० मे निश्चित रूप से जबान 'उर्दू-ए-मुअल्ला' नाम का प्रयोग किया। वाकर आगाह नामक दक्षिण के शायर ने १७७२ ई० में और अलीइब्राहीम खाँ ने १७८३ ई० में तथा अताहुसेन खाँ तहसीन ने 'नौतर्जमुरस्सा' (१७७०-१७९३ ई०) में जबान उर्दू-ए-मुअल्ला का उल्लेख किया मीर अम्मन तथा इंशा ने इसी भाषा को उर्दू कहा। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट इसे ही हिन्दुस्तान की दरबारी शैली मानते हैं। कॉलेज में हिन्दुस्तानी के नाम से इसका समय से हिन्दी का महत्त्व बढ़ने लगा," किन्तु किसी विशेष काल से अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानो उर्दू की विशेष महत्व दिया।

हिन्दुस्तानी–हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग हिन्दुस्तान या भारत को किसी भी वस्तु व्यक्ति और किसी भी भाषा के लिए विशेषण के रूप में हो सकता है। भाषा के अर्थ में सरल हिन्दी या सरल उर्दू का बोलचालवाला रूप हिन्दुस्तानी कहलाता है। जिसमे न संस्कृत शब्दों को और न फारसी शब्दों की भरमार रहती है। भाषा का यह व्यावहारिक रूप प्रायः समस्त भारत में समझ लिया जाता है, किन्तु इस व्यावहारिक रूप के लिए हिन्दुस्तानी के स्थान में हिन्दी शब्द का ही प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

ग्रियर्सन के अनुसार हिन्दुस्तानी शब्द यूरोपीय लोगों द्वारा निर्मित है। धीरेन्द्र वर्मा भी यह मानते हैं कि "हिन्दुस्तानी नाम यूरोपीय लोगों का दिया हुआ है।"[२] किन्तु यूरोपीय लोगों से बहुत पहले यह नाम खुरासानियों द्वारा निर्मित हुआ था। जिस प्रकार अरब-ईरान के मुसलमानों ने इस देश की भाषा के लिए 'जबान हिन्दी' का प्रयोग किया, उसी प्रकार खुरासानियों ने "जबान हिन्दुस्तान" या 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग किया। अभी तक की प्राप्त खोजों के अनुसार भाषा के लिए इस शब्द का प्रयोग सबसे प्रथम बाबर के समय में उसी भाषा के लिए उसी (सामान्य और क्लिष्ट) अर्थ में हुआ जिस भाषा के लिए जिस अर्थ में 'हिन्दवी' शब्द का हुआ था। बाबर ने अपने आत्मचरित्र 'तुजुक बाबरी' में लिखा है— "मैंने उसे (दौलतखाँलोदी को) अपने सामने बिठाया और उसे दृढ़ विश्वास दिलाने के लिए एक व्यक्ति के द्वारा जो हिन्दुस्तानी भाषा जानता था, एक-एक वाक्य का भाव स्पष्ट कराया।"[३] शाहजहाँ-काल (१६२७-१६५७ ई०) में भी 'तारीख

१. ओरियण्टल कॉलेज मेग्जीन १९३१ ई०, पृ० १४
२. हि. भा. क्र०—भूमिका-पृ० ६३
३. मेम्बायर्स ऑव बाबर–ल्युक्स, किंग एडीशन भाग २, पृ० १७०

फरिस्ता' और 'बादशाहनामा' में यह शब्द मिलता है। हिन्दी साहित्य में सम्भवतः स्वामी प्राणनाथ (सबत १६३८-१७५१) ने भाषा हिन्दुस्तानी या 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग हिन्दवी के समानार्थक रूप में किया है।

"बिना हिसाबे बोलीआं ॥ मोने सकल जाँहान ॥ सबको सुगम जान के ॥ कहूँगा हिन्दुस्तान ॥ बड़ी भाषा ऐ ही भली ॥ जो सबमें जाहेर ॥ करने पाक संवत कों। अंतर मोहे बाहेर ॥"[१] कुलजम स्वरूप के आदि सम्पादक केसोदास ने १६९४ ई० में किताबों के शीर्षकों में भी इस नाम का प्रयोग किया है। यथा—'श्री किताब प्रकास हिन्दुस्तानी लियो है। मध्ययुग में मुसलमानों ने हिन्दवी-हिन्दी की अपेक्षा हिन्दस्तानी का प्रयोग बहुत कम किया है, यूरोपियन यात्रियों, पादरियों आदि ने इस शब्द का प्रयोग अत्यधिक रूप में कहीं हिन्दुओं की भाषा के लिए कहीं मुसलमानों की भाषा के लिए किया है।

गिलक्रिस्ट भारत की प्रधान भाषा के लिए सामान्य रूप से 'हिन्दोस्तानी' शब्द का ही प्रयोग करते हैं, जिसके अन्तर्गत इसकी दरबारी शैली (उर्दू) मध्यम शैली (वास्तविक हिन्दुस्तानी) तथा ग्रामीण शैली (हिन्दवी) की गणना करते हैं, किन्तु विशिष्ट अर्थ में 'हिन्दुस्तानी' से उनका तात्पर्य उर्दू से ही था और हिन्दुस्तानी विभाग में हिन्दुस्तानी नाम से उर्दू ही पढ़ाई जाती थी। अतएव १८०१ ई० के पश्चात् अंग्रेजी द्वारा हिन्दुस्तानी से उर्दू का अर्थ ही लिया जाता रहा किन्तु धीरे-धीरे जब हिन्दी और उर्दू (आधुनिक अर्थ में) शब्द अधिक प्रचलित हो गये तो पुनः हिन्दुस्तानी शब्द का प्रचार इन दोनों के मिले-जुले सरल रूप के लिए होने लगा (किन्तु इस रूप का झुकाव भी उर्दू की ओर अधिक रहता है, यही कारण है कि 'हिन्दुस्तानी', उर्दू का बोलचाल का रूप प्रतीत होता है) इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने पहले तो राष्ट्रभाषा के लिए 'हिन्दी' नाम ही चुना था किन्तु साम्प्रदायिकता के बढ़ने पर 'हिन्दुस्तानी' नाम को चुना गया। दोनों लिपियों का प्रसार हुआ, किन्तु हिन्दुस्तानी के बहाने उर्दू का प्रचार होने लगा, अतएव बहुसंख्यक लोगों ने इस हिन्दुस्तानी का विरोध किया और अन्त में भारतीय संघ की 'राजभाषा' के लिए हिन्दी शब्द ही मान्य हुआ।

आज भी बाजारू हिन्दुस्तानी केवल कुछ किस्से, गजल, सिनेमा के गीत तथा हिन्दुस्तानी के समर्थक राष्ट्रीय नेताओं के कुछ भाषणों में मिल सकती है।

१. कुलजम स्वरूप कुरान समनन्द चौ० १५-१६

३ | हिन्दवी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

ध्वनि–विकास

१. हिन्दवी का शब्द भण्डार मुख्यता तद्भव रूप में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से प्राप्त हुआ है। इन शब्दों में जो ध्वन्यात्मक विकास हुआ, वह दो स्तरों में सम्पन्न हुआ है। १ म. भा. आ.—प्राकृत अपभ्रंश—काल में, २ न. भा. आ. भाषा के उद्भव काल में। इन तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी 'हिन्दवी' में विपुल प्रमाण में हुआ है किन्तु उनमें ध्वन्यात्मक विकास का प्रायः अभाव है क्योंकि हिन्दवी के मुसलमान कवियों ने अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग शुद्ध रूप में हो किया है।

इस प्रकरण में प्रा० भा० आ० भा० से प्राप्त हिन्दवी के शब्द भण्डार का ध्वन्यात्मक विकास की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

२. स्वर :-हिन्दवी के शब्द भण्डार में जो स्वर प्रयुक्त हुए हैं, उनका मुख्य स्रोत प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० भा० का परिवर्तित स्वर समुदाय है।

३ अ—शब्द के आदि में 'अ' स्वतन्त्ररूप से रहता है किन्तु मध्य तथा अन्त में व्यंजन के साथ संयुक्त होता है। म० भा० आ० काल तथा न० भा० आ० काल में आ, इ, ई, उ, स्वरों के स्थान पर 'अ' का विकास हुआ।

१. प्रा० भा० आ० से प्राप्त अकार—

(आदि) छोड़ी मुल्लक कर अधीर।

(मध्य) कित कित भातों फूल कमल।

(अंत) बहुतन केरा तूं आधार।

२. प्रा० भा० आ०—आ > अ०

प्राकृत में स्वराघात के कारण दीर्घ स्वर ह्रस्व होता है। इसी प्रवृत्तिवश हिन्दवी में "आ" 'अ' होता है। उदाहरण—

(आदि) अब मुझ नाही कोई अधार। (अधार<आधार)

अकास पताल खाली कांठ। (अकास<अकाश)

(अन्त व्यंजन युक्त) आई तुझ शहादत बेल। (बेल<सः बेला)

कहीं नाक अंख्या, कहीं होंट बाल (नाक<नासिका)

ऐंव बिपती डूंगर माल। (माल<माला)

३. इ > अ

(मध्य) रात उजाला चन्दर जोत। (जोत<ज्योति)

(अन्त) मुझ नूं नाहीं ऐसी रीत। (रीत<रीति)

बाजां ज्यों थी रीत-रसम। (,,)

सहे ऊट्या आधीरात। (रात<रात्रि)

४. प्रा० भा० आ० 'ई' > 'अ'

(अंत) चौखत ज्यूंके माज्या थाल। (थाल<स्थाली)

(अन्त्य प्रत्यय) अब्दुला की जो थी नार। २३ (नार<नारी)

५. प्रा० भा० अ० 'उ' > 'अ' शब्द के अन्त में प्रायः 'उ' 'अ' में परिवर्तित होता है।

[अन्त] अपनी अपनी रुत उदास। [रुत<ऋतु]

ना चख रखते तेरा मूं। [चख<चक्षु]

६. प्रा० भा० आ० ऋ > अ०

के सब खाक मेरी सो बंगार होए। [सिरत नामा ८]

[बंगार<शृंगार]

४. आ—प्रा० भा० आ० में 'आ' ह्रस्व 'अ' का द्विमात्रिक उच्चारण मात्र था किन्तु म० भा० आ में इसे मूल एवं स्वतन्त्र स्वर के रूप में स्वीकार कर लिया गया। हिन्दवी में प्रा० भा० आ के आकार के उदाहरण—

[आदि] दोनों जीव में पकड़ आस।

या के खुलवा कुछ आधार।

[मध्य] गरज रह्या अब जम आकास। [आकाश]

ऐसा ऊध्या चहूँ घर नाद।

२. म० भा० आ० में स्वरों के दीर्घकरण की प्रवृत्ति दीखती है। प्राकृतों में कुछ शब्दों के आदि तथा आदि व्यंजन से युक्त 'आकार' में परिवर्तित हुआ। १ हिन्दवी में सामान्यतया क्षतिपूर्ति-स्वरूप आदि अकार को 'आ' बनाने की प्रवृत्ति है—

(आदि) माटी पानी आग होर बाव। [आग<अग्नि<अग्नि]

आसूं लाये रातों दीस। [आसू<अस्सु<अश्रु]

अंखों केरा काजल पोछ। [काजल<कज्जलम्]

नबी की तुम नाहीं लाज। [लाज<लज्जा]

३. प्रा० भा० आ—'अ'+क [आ]—>आ—

दीस अंधारे काली निस। [अंधारे<अन्धकार<अंधारा]

४. प्रा. मा. आ.—'ऋ'> 'आ'-शौरसेनी तथा अन्य प्राकृतों में 'ऋ' 'आ' में परिवर्तित हुई। महाराष्ट्री में यह परिवर्तन नहीं होता। हिन्दवी में इसके उदाहरण—

म टी पानी आग होर बाव । २ (माटी<मृत्तिका)

५. फा-अह> आ-फारसी के जिन शब्दों के अन्त में 'अह' ध्वनि होती है उन सब का उच्चारण अकारान्त किया जाता है। हिन्दवी की फारसी लिपि में लिखित पाण्डु लिपियों में लिपिकारों ने स्वच्छन्द रूप से 'अह' तथा 'आ' अंत्ययरूप में शब्दों को लिखा है। उदा.

माल खजाना केता ले । (खजानाह<खजाना)

५. त—प्रा. मा. आ. से प्राप्त :—

(मध्य) जो उन चिन्त्या सों होय । (चित्या<सं. चिन्त्)

कोवर जाएँ अब किस दिसा । (दिसा<सं. दिशा)

२. प्रा. मा. आ. 'अ'>इ-

(आदि) कोई न रहया इत जग आय । (इत<अत्र)

(मध्य) ये सुन खूलते कान किवार । (किवार<कपाट)

३. प्रा. मा. आ. 'ई'> 'इ'—

म. मा. आ. में अनेक शब्दों में 'ई' का ह्रस्वी करण 'इ' में हुआ। हिन्दवी में इसके उदाहरण कम मिलते हैं-

उदा. जोरे तुज सूं पिरत सनेव । (पिरत>प्रीति)

४. प्रा. मा. आ. 'ए'> इ

जावँ दिसंतर पहरूँ भेस । (दिसन्तर<देशान्तर)

६. 'ई' प्रा. मा. आ. में 'इ' का द्विमात्रिक रूप 'ई' था हिन्दवी में मूल व स्वतंत्र स्वर मान लिया गया है। शब्दों के आरम्भ में इसका प्रयोग नहीं होता।

(प्रथम व्यंजन युक्त) ये किन कीता तुझ जीव घात ।

नीर न पाया कहीं घूँट ।

(अन्त) पैदा कीतें नारी-नारी ।

२. प्रा. मा. आ. 'इ'> 'ई' म. मा. आ. बहुधा 'इ' ईकार में परिवर्तित होती है। हिन्दवी में प्रायः क्षतिपूर्ति के रूप में यह परिवर्तन हुआ है।

(आदि व्यंजन युक्त) अब तूं दुनिया धँगचीत उचाव । (चीत<चित्त)

गफलत केरी नींद न सो। (नींद<निद्रा)

३. प्रा. मा. आ. 'ऋ'> ई

(मध्य) जंगल लीता सींग मरोड़ । (सींग<शृंग)

लोडच बीछू उतरेगा । (बीछू<वृश्चिक)

४. इ+व (अ)>ई-

(मध्य) धास लागी रातों दीस । (दीस<दिवस)

पूरे मासों दीसों गिन । („)

७. उ—प्रा. मा. आ. से प्राप्त 'उ' के उदाहरण—

(आदि व्यंजन युक्त) पानी बिन यूं मुख पसार ।

ऐसे दस्त म्याने किसे सुख अजब ।

२. प्रा. मा. आ. ऋ>उ—प्राकृत आदि तथा प्रथम व्यंजन संयुक्त ऋकार उकार में परिवर्तित होता है। हिन्दवी में भी इस के उदाहरण मिलते हैं—

(प्रथम व्यंजन युक्त) मुये नावें न लेबे कोय। (मुया <मृतक)

३. प्रा. मा. आ. 'ओ'> 'उ'

(प्रथम व्यंजन युक्त) रुदन लागी सहख सहख । ४१ (रुदन<रोदन)

४. म. मा. आ.—म>वं>उं. प्राकृत में आदि तथा मध्य के 'म' का प्रायः वँ का होता है. न. मा. आ. के आरम्भ सानुनासिक 'व' 'उ) में परिवर्तित होता है। हिन्दवी में इस परिवर्तन के उदाहरण—

नांउ चर्या इस नौसरहार। (नांउ <नाम)

८. 'ऊ'—प्रा. मा. आ. में उपकार का द्वि मात्रिक रूप ऊ था। इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

(मध्य) चहूँ घर ऐसी धूल उड़ी। (धूल<सं. धुलि)

अपस साडी धूल मिलाव।

२. प्रा० मा० आ० "उ"> "ऊ" म० मा० आ० में यह परिवर्तन हुआ। इसके उदाहरण मिलते हैं—

(आदि व्यंजन युक्त) सूकी माती ज्यूं भिकरा। (सूकी <शुष्क)

नबी ऊपर भेज दुरुद। (ऊपर <उपरि)

कुछ स्थानों पर यह परिवर्तन पाद पूर्ति के लिए भी हुआ है—

किन किन दूखों घड़ राखे। (दूखों <दुख)

९. ऋ- प्रा० मा० अ० में 'ऋ' का जो उच्चारण था वह म० मा० अ० समाप्त हो गया गया, साथ ही अनेक स्वरों ने तथा स्वर मिश्रित रकार ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया। वररुचि तथा हेमचन्द्र ने इन परिवर्तनों का उल्लेख किया है।

'ऋ' का उच्चारण हिन्दी क्षेत्र में 'रि' तथा मराठी भाषी क्षेत्रों में 'रु' होता है। हिन्दवी में यह ध्वनि दोनों रूपों में मिलती है। नौसरहार में ऋ>रु के उदाहरण मिलते हैं।

हिन्दवी में 'ऋ' के परिवर्तित रूपों का विवरण निम्न प्रकार है—

ऋ> अ—के सब खाक मेरी सो बंगार हो । (पिरतनामा १८)
(बंगार <भृंगार)
'ऋ'> आ—सूफी माटी ज्यूं मिकरा । (माटी <मृतिका)
करकली ये माटी जान ।
ऋ> ई— बीछू छइया सर्वे अंग । (बीछू <वृश्चिक)
तुझको लागे भतीजे । (भतीजे <भ्रातृ+ज)
सबसुख दीठा तेरे चाव । (दीठा <दृष)
ऋ>उ— घनकों मूली प्यारे मुई । (मुई <मृतक)
ऋ> अर— अंबरत घोले सरती पाय । (अंबरत<अमृत)
ऋ> इय— रोवें लागा हिया थाल । (हिया<हि अअ<हृदय)
ऋ>रु— अपनी-अपनी रुत उदास । (रुत <ऋतु)
ऋ> रू— रूखों सेंती पान बिखेरे । (रूख <वृक्ष)

१० "ए" प्रा. भा. आ. से प्राप्त 'ए'—प्रा. भा. आ. में ए. ऐ. ओ. औ- संध्यक्षर है परन्तु हिन्दी—हिन्दवी में ये मूल स्वर में परिणत हो गए हैं ।

(आदि) यह क्या मांडया एकाएक ।
(आदि व्यंजन युक्त) खेलन निकले बाहर द्वार ।
काहेलियाँ मेरा केते से ।

२. प्रा. भा. आ. 'अ' <'ए' यह परिवर्तन कुछ शब्दों में हुआ । हिन्दवी में इस के उदाहरण हैं—

जिन्हों सेज फुलों सदा मूलकर । ५० (सेज<शय्या)

११. 'ऐ' प्रा. भा. आ. का 'ऐ' नव्य आ. भा. में तत्सम शब्दों में यह अपने मूल रूप में वर्तमान है किन्तु इस की ध्वनि में अन्तर आ गया है ।

१. प्रा. भा. आ. इ> ऐ
किस लग बैसे किसके पास । (बैसे <विश)
भाई भैना गोई होर । (भैना <भगिनी)

१२ ओ-प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'ओ' के उदाहरण—

(प्रथम व्यंजन युक्त) तावूत दोला दूरदराज । (दोला<सं० दोला)
तुझ सेती कहीं भोग । (भोग<भोग)
मेरे पोंगडे लागे तुझ । (पोंगडे <पोंगड)

२. म. भा. आ. में अनेक स्वरों ने 'ओ' का रूप धारण किया । हिन्दवी में ओकार निम्नलिखित परिवर्तनों से उपलब्ध होता है—

३. अ> ओ—
इहाँ आज लोहू क्या नयाँ बहे । (लोहू <लहू)

४. उ>ओ— थाले सर सूं मोकले बाल । (मोकले<मुक्त+ल)
दीस सँवारे सूरज ओत । (ओत<उद्योत)
५. ऊ> ओ— एक एक बोल ये मानक मोल । (मोल<मूल्य)
६. अ+व>ओ—
उनकी अखें राई लोन (लोन<लवण)
७. अ+हु (उ)>ओ—
भोत लश्कर दूर दराज । (भोत<बहुत)

१३ "औ"—संस्कृत का यह संयुक्त स्वर म. भा. आ. में अनेक अन्य स्वरों का रूप धारण करता है । हिन्दवी में औकार के उदाहरण निम्नलिखित है—

१. अ×व> औ—
(आदि) शाह दिलावर रन औधूत । (औधूत<अवधूत)
औचीत आये कालज घाव । (औचित<अवचित)

१४. व्यंजन—अल्पप्राण एवं महाप्राण—स्पष्ट व्यंजन :—

प्रा. भा आ. की तुलना में हिन्दवी के व्यंजनों में जो परिवर्तन हुए हैं, उन पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शब्द का प्रथम व्यंजन प्रायः अपरिवर्ति रहता है। म. भा. आ. काल में भी शब्दारंभ के न्, म् श्. और प् को छोड़कर अन्य व्यंजनों का रूपान्तर नही हुआ । (विद्योत) म. भा. आ. शब्दांत के सानुनासिक व्यंजन को छोड़कर शेष व्यंजन लुप्त हो गये । शब्द के मध्य का व्यंजन भी प्रभावित हुआ । कुछ प्राकृतों में स्वरों का उपयोग अधिक होने लगा । वर्ण व्यत्यय, असवर्णा पति, अक्षरापति, महाप्राण से अल्पप्राण बनाने की प्रक्रिया, अघोषवर्ण के सघोष बनाने की प्रवृत्ति आदि के कारण व्यंजनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । इन में से नव्य भारतीय आर्य भाषाओं ने कुछ परिवर्तनों को स्वीकार किया है और कुछ को छोड़ दिया है । हिन्दवी में प्रयुक्त अल्पप्राण तथा महाप्राण स्पष्ट व्यंजनों के विकास का क्रम निम्न प्रकार है

१. महाप्राण ध्वनियों के दो वर्ग बनाए गए हैं । १. सघोषमहाप्राण—झ. भ. घ. ढ. ध. तथा २. अघोष महाप्राण—ख. फ. छ. ठ. थ. महाप्राण ध्वनियों के स्वतन्त्र चिन्ह आर्यभाषा—लिपि में आरम्भ से हो रहे हैं । हिन्दवी की अधिकांश रचनायें फारसी लिपि में लिखी मिलती हैं, फारसी लिपि में महाप्राण चिन्हो के अभाव के कारण इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए अल्पप्राण अक्षर के साथ 'ह' जोड़ा जाता है ।

म. भा. आ. में प्रायः महाप्राण व्यंजन-सघोष या अघोष 'ह' में रूपांतरित हुए हैं । यथा मुह <मुख, मेह <मेघ ।

१६. 'क'—प्रा० मा. आ. से मूल रूप में प्राप्त ।

(आदि) तू घर आ जा ओ प्यारे कंत।
(मध्य) सकल नबीयों केरा मोर।
गरज रहया अब जम आकाश।
(अंत) मानक मोती हीरे लाल। (मानक<माणिक्य<माणिक)

२. प्रा. भा. आ. ख>क–हिन्दवी में महाप्राण व्यंजन को अल्पप्राण उच्चरित करने को प्रवृत्ति के कारण कहीं कहीं ख> 'क' होता है–

(अंत) सुक बंधाए लाडलडाव। (सुक <सुख)
प्यासों भूकों मरे वाय वाय। (भूक<भूख<सं. बुभुक्षा)
वों तूं जाता मुज दुख घर। (दुक<दुख)

३. प्रा. भा. आ.—<क हिन्दी में 'क्ष' (क्—य) का उच्चारण कई तरह से किया जाता है। हिन्दवी में यह संयुक्त व्यंजन प्रायः 'क' में रूपान्तरित होता है

(अंत) आंक मजीरा नाक सुरूप। (आंक<अक्षि)

१७. "ख" १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल "ख"

(आदि) लेवें खरगों सीस उतार। (खरग<खड्ग)
दी खंद करता एकस घाव। (खंद <खंड)
(अन्त) देखें उसका मुख न झाय।
काला तीका मुख पर घर।

२. म. भा. आ. में संस्कृत के निम्नलिखित संयुक्त, 'ख' में परिवर्तित हुए स्क, स्ख क्ष, क्ष्ण और ष. १ इन में से कुछ के उदाहरण हिन्दवी में भी मिलते हैं।

३. प्रा. भा. आ. 'क'>'ख'–'ह' के पूर्व व्यंजन में मिश्रित होने के कारण यह परिवर्तन होता है

बाजां खया के खूब होय। (खया<कह्या)

अन्तस्थ के पश्चात शब्दान्त का 'क'

पलखां ज्यूं के कान कमल। (पलख<पलक)

४. प्रा. भा. आ. 'क्ष'>'ख'

(अन्त) बीज में थे रुख उपाव। (रुख< वृक्ष)
हर हर रुखों लावे फल।
रहया महबूत अंखिया तान। (अंखी<अक्षि)
न चख रखते तेरा मूं। (चख <चक्षु)

५. प्रा. भा. आ. 'स्क'>'ख'

खांदे घर कर खुश उलास। (खांदा<स्कंध)

१८ 'ग' (१) प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'ग'

(आदि) जाय रह्या अब गगन अकास।

(मध्य) मेरे पोगडें लागे तुझ
गगन इस दुख उठ कर न्हास। (अली)
(अंत) जग का प्यारा रन धीरक।

२. प्रा. भा. आ.—'क' > 'ग'

(मध्य) गगन सगला अब्र मरे। (सगला<सकल)
पहने सगले कापड थोय। („)

१९. 'घ' १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'घ'

(आदि) हसन के जीव पर मांडया घात।
(मध्य) जांघा बाजू हात पाय। (जांघा<जंघा)

२. परवर्ती "ह" के संयोग तथा अनुस्वार के पश्चात—

(आदि) गोत उजाला घर दीपक। (घर<गृह)
(मध्य) हुसेन संघाती उसका अक्द। (संघाती<संग)
उन संघाते मुझ भी गिन।
पीछे वैरी अंघे घाट। (अंघे<आगे<अग्रे)
घोंघची सबतन लहू भर। (घोंघती<गुंजा)

२०. 'च'–१. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'च'

(आदि) ज्यूं नित मैले फाटे चीर।
(मध्य) यूंपर करते सब विचार।
(अंत) रच-रच लिखें सीधे खोल।

२. प्रा. भा. आ. त>च प्राकृत में 'त' के अनेक रूपान्तर हुए, उनमें से एक 'च', च्च भी है। हिन्दवी नें वहीं से यह रूप प्राप्त हुआ है।

(अकार के पश्चात हलन्त 'त') तुम्हन अखूं सच्चा भाव खोलकर।
सच्चे होवा नौसरहार। (सच्चा<सच्च<सत्य)

३. 'छ'>'च' तुरत नहीं कुच कखूत। (कुच<हि. कुछ)

२१. "छ" १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त

(आदि) अपें छुप्या खेले छन्द। (छन्द<छन्दत्)
(अन्त) अंघे मेरे तूं अछ यार। (अछना=रहना)

२. प्रा. भा. आ. 'च'>'छ'

(आदि) बाजां दब-दब चल्ले छर। (छर<चढ)

२२. 'ज'–प्रा. भा. आ. से प्राप्त—

(आदि) जग का प्यारा रनधीरक।
(मध्य) अंकों केरा काजल पोंछ। (काजल<सं. कज्जल)

२. प्रा. भा. आ. द्य ज

हर हर जिसी बाजंतर । (बाजंतर<वाद्य यंत्र)
बादल बिजली मेंह अचूक । (बिजली<विद्युत)
बाप न भाई भाई आज । (आज<अद्य)

२. य>ज-(आदि) होऊँ जोगी पहलूँ भी स । (जोगी<योगी)
(अंत) सूरज दूखों पकडे ताब । (सूरज<सूर्य)

२३. 'झ'—१. प्रा. भा. आ. काल में 'झ' का उपयोग थोड़े ही शब्दों में हुआ है।
हिन्दवी में 'झ' उदाहरण :—
झार चीरे ना फाटे ड़ाल । (झार, झाड़<सं. झटि=जाड)

२. प्रा. भा. आ. "स">'झ'
अंझू लागे रोतों दीस । (मरा. अझू. गुज. आंझु हि. आंसू< प्रा. अंसु. < पा. अस्सु)

३. प्रा. भा. आ. "क्ष" > झ
न चक पाझर या की झरा । (पाक्षर<पज्जर<प्रक्षर)

४. प्रा. भा. आ. 'य' > ज > झ
तेरे झतन भी एक-दो । (झतन<यत्न)

२४. मूर्धन्य व्यंजन :—म. भा. आ. की अर्ध मागधी तथा जैन मागधी में भी दंत्य वर्णों के मूर्धनीकरण की प्रवृत्ति थी। हिन्दी की अन्य बोलियों में जहाँ ट वर्ग आता है वहाँ हिन्दवी में कुछ शब्दों में दन्त्य (त वर्ग) ध्वनियाँ आती हैं। इसका कारण बहुतांश यह है कि फारसी लिपि में मुर्धन्य व्यंजनों का अभाव है।

२५. 'ट'-१. प्रा. भा. आ. से प्राप्त—
(अंत) लोट न दे मुझे दोह मंझार । (लोट<सं. लोटति>प्रा. लोट्टइ < हि. लोटना
मत तुज लागे धक्का चोट । (चोट<सं. चुट)
मुझ सिर आवे दुख की मोट । (मोट<सं. मुट, मोट)

२. प्रा. भा. आ. 'त' > 'ट'
सीस हुसेन अली का काट । (काट<सं. कृत, प्रा. कट्ट)
काला टीका मूँ कूँ घर । (टीका<तिलक)

३. प्रा. भा. आ. 'थ' > 'ट'
पकर रहया जीव मों गाँट । (गाँट, गाँठ < सं. ग्रंथि)

२६. 'ठ'-प्रा. भा. आ. काल में "ठ" का प्रयोग थोडे से शब्दों में हुआ है। म. वा. आ. काल में कुछ संयुक्त व्यंजनों ने 'ठ' का रूप धारण किया—ट, ठ, स्त तथा स्थ>ठ। हिन्दवी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

२. 'ट' > 'ठ'
ऐसा पापी मर्दक ताँठ । (ताठ. मरा. ताट < सं. धृष्ट)

३. आ. भा. आ. 'स्थ' > ठ । प्रा. भा. आ. से प्राकृतों में आकर 'स्थ' का परिवर्तन 'ठ' हुआ। हिन्दवी में इसके उदाहरण हैं :—
(आदि) तिस का दरसन हर हर ठाँव । (ठांव<स्थान)
दोजख म्याने उसका ठार । (ठार<स्थल)

२७. 'ड'-प्रा. भा. आ. काल में इस ध्वनि का प्रायः शब्द मध्य एवं अंत में उपयोग होता है। बहुत थोड़े शब्दों में यह ध्वनि शब्दारम्भ में आती है। फारसी लिपि में प्रायः 'ड़' को 'र' लिखा जाता है किंतु जानकार व्यक्ति उसे 'ड' ही पढ़ते हैं।
(मध्य) जब के लेऊँ बाँट खडग ।
(अंत) बरसन लागा खांडे घाव । (खांडे<खड्ग)

२. प्रा. भा. आ 'ट' > 'ड'
म. भा. आ. में अघोष 'ट' सघोष अल्पप्राण-'ड' में परिवर्तित हुआ।
पहरे कापड सब्ज हरे । (कापड<कर्पट)
घांस कड़वी के ख्यालों हो । (कड़वी<काष्ठ वृष)
खुले सीने केरे कवाड । (कवाड<कपाट)

३. प्रा. भा. आ. 'त'>'ड'
'त' प्राकृत में प्रायः 'ड' होता है। हिन्दवी में इसके उदाहरण मिलते हैं :—
डोंगर बिकसे सूके घाट । (डोंगर<तुंग+अर)

४. प्रा. भा. आ. 'द्ध' > 'ड'
ल्होडे बडे सब सदा । (बडा<वृद्ध)

२८. "ढ"—प्रा. भा. आ में अनुकरणवाचक शब्दों को छोड़ कर सामान्यतया कोई शब्द 'ढ़' से प्रारम्भ नहीं होता। शब्द के मध्य तथा अंत में भी इस ध्वनि का अधिक प्रयोग नहीं हुआ है। म. भा. आ. में ड+ह, ह+ड तथा ल+ह, "ढ" में परिनतित हुए। देशज शब्दों में 'ढ' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—
(आदि) अंझू ढाले केते लख । (ढालेक<सं. ढल)
यूँ हीं मूल्या तेरे ढंग ।
बहुत बुरे ये तेरे ढंग । (अगढ़)
सर्वे सांधे ढीले हुवे ।

२. प्रा. भा. आ. 'द्ध' > 'ढ'
तूँ अत बूढा मैं हूँ जान । (बूढ़ा — वृद्ध)

२९. 'त'—प्रा. भा. आ. से प्राप्त.

(आदि) मैदां सर ज्यूँ तारे चांद । (तारे<सं. तारका)

(मध्य) पानी गया सोस पताल । (पताल<पातालम्)

(अन्त) अब तू दुनिया थे चीत उचाव । (चीत<चित्)

२. 'त'=त —प्रा. भा. आ. के कुछ शब्दों में 'त' के 'ट' में परिवर्तन के उदाहरण हिन्दी में मिलते हैं पर हिन्दवी में कई शब्द ऐसे हैं जिनमें 'त' सुरक्षित रहता है ।

यथा— तूट पर्या ज्यूँ ऊपर थे । (तूट < सं. त्रुट हिन्दी टूट)

अपवाद स्वरूप कुछ शब्दों में अन्तिम 'ट' भी 'त' में परिवर्तित होता है । यथा—

पात पतोली शार लतीफ । (पात<सं. पाट<पट्ट)
(पतोली<हि. पटोली)

२. प्रा. भा. आ. थ> 'त'—

(अन्त) अपने प्यारे वेरे हात (हात < हाथ)

रतन पदारत मानक बड़ा (पदारत < पदार्थ)

३०. 'थे' — प्रा. भा. आ. में शब्दारम्भ में 'थ' का उपयोग बहुत कम-कुछ अनुकरणवाची शब्दों में ही होता है। शब्द के मध्य तथा अन्त में अधिक उपयोग नहीं होता । हिन्दवी के तद्भव एवं शब्दों में इस ध्वनि की उपस्थिति के उदाहरण :

२. त > 'थ' —ना पोथ संगाती घर में जोय । (पोथ > प्रीति)

३. थ=थ आज कल खड़ीबोली में शब्दारम्भ के 'थ' को 'ठ' बनाया गया है किन्तु हिन्दी की कुछ बोलियों के समान हिन्दवी में भी प्रायः 'थ' ज्यों का त्यों बना रहता है। इस प्रवृत्ति को मराठी के प्रभावस्वरूप भी माना जा सकता है। यथा

[आदि] थंडा ख्याला सीतल सीर्व [थंडा-हि. ठंडा < प्रा.

४. प्रा. भा. आ. 'स्त'>'थ' म. भा. आ. काल में यह परिवर्तन हुआ। हिन्दवी में इसके उदाहरण वर्तमान हैं—

ए हैं मुतलक थोड़े सवार । (थोड़े<स्तोकम्)

५. प्रा. भा. आ. 'स्थ' <थ, प्राकृतों में यह परिवर्तन कई शब्दों में दिखाई देता है । शब्दारम्भ में 'स्थ'>थ के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

जबलग रहे ऊभे थीर । (थीर<स्थिर)

भी नित दीसे उसी थांव । (थावँ<स्थान)

सरते पोरते सभी थाँवें ।

चोखत ज्यूँ के माज्या थाल । (थाल<स्थाली)

३१. 'द'— १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त—

(आदि) तो मैं किया यह दरसन । (दरसन<दर्शन)

उसका दरसन हर-हर ठाँवें ।

(मध्य) रतन पदारथ मानक जड़ । (पदार्थ>पद+अर्थ)

(अन्त) भेद न पावे कोई चतर ।

२. द=द

प्रा. भा. आ. से प्राप्त 'द' का शब्दारम्भ में उच्चारण हिन्दी, सिंधी आदि भाषाओं के बोलने वाले 'ड' करते हैं। गुजरात तथा मराठी में आदि 'द' ज्यों का त्यों बना रहता है। हिन्दवी में भी मुख्यतः यह दूसरी प्रवृत्ति पाई जाती है। उदाहरण—

आए बैरी ऊपर दाट । (हि. डाट, मरा. दाट<सं. द्राड्)

लेता अपनी दाढी खेस । (दाढी--हि. डाढी, मरा. दाढी<
सं. दंष्ट्रा, दाढ़िका)

३. ड' >द—प्रा. भा. आ का 'ड' हिन्दवी में कहीं-कही 'द' बोला और लिखा जाता है । फारसी लिपि में प्रायः 'द' ही लिखा जाता है ।

दो खंद करता एकस धाव । (खंद<खंड)

४. प्रा. भा. आ. 'ध' > 'द'

(मध्य) जग में होवे यूँ अंदकार । (अन्दकार<अंकार)

(अन्त) न फल अपना ले कांद संघात । (कांद<स्कंध)

(") बहिश्ती केरे कांदे पर । (कांदे<स्कंध)

३२. 'ध'— १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त—

(आदि) धरती कांपे सातबरस । (धरती=धरित्री)

(मध्य) दीसे अंधारे काली निस । (अंधार<अंधकार)

गल लग कर चुक दे अधार । (अधार<आधार)

अंधला लोदे अंख्या घर । (अंधला, मराठी अंधला
<स. अंध+ल)

२. म. भा. आ. में मूल 'ध' के अतिरिक्त 'द्ध' 'ग्ध' ब्ध तथा ध्र>'ध' में रूपान्तरित हुए । हिन्दवी में द' भी ध में बदलता है । उदा.

द>ध— जधां होय ये माटी लाल । (जधा<यदा)

३३. "प" – (१) प्रा. भा. आ. से प्राप्त 'प' के उदाहरण—

(आदि) ऊभी देखूं तेरी पंथ ।

(मध्य) तुझ पापिन सूं कैसा भोग ।

(अन्त) ना धर तू कुछ मन मूं पाप ।

म. भा. आ. में किसी अन्य व्यञ्जन ने 'प' का रूप धारण नहीं किया। तद्‌भव तथा देशज शब्दों में इस ध्वनि के स्वरूप के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

(आदि) होर इन पोंगडों कारन मुझ। (पोगडी < पौंगड़)
यूँ यूँ गुजरी चार पहा। (पहार < प्रहर)
तन गल लाया हात पसार। (पसार < प्रसार)
पन्हा आया सोना भर। (पन्हा < प्रभ्रव, मरा. पान्हा)
(मध्य) बीज में ये रुख उपाव। (उपाव < उत्पाद्य)
(अन्त) हातों पावों ऊधा कांप। (कांप < कम्प)

३४. 'फ' — १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'फ'
(आदि) फूलों बारी कुमलाई। (फूल < फुल्ल)
(अन्त) जिसके भागों पाया फल।
२. प्रा. भा. आ. 'प' बाद में आने वाले महाप्राण व्यञ्जन के प्रभाव से 'फ' बनता है—
फत्तर परके सोना फाँट। (फतर < प्रस्तर)
ज्यूँ ये पैठा फली फोर (फलो < चलो < पंक्ति)
३. प्रा. भा. आ. 'स्फ' > 'फ'
फूटन लागा सीस कपाल। (फुटना < स्फुट)

३५. 'ब' — १. प्रा. भा. आ. ब=ब
(आदि) के उसको अहे पुश्ती बल।
(मध्य) अम्बर गजज्या लरजी भुई।
२. प्रा. भा. आ. 'व' > 'ब'
यह परिवर्तन पूर्वी हिन्दी से आये शब्दों में दिखाई देता है।
(आदि) चहूँघर खांडे बरसा होय। (बरसा < वर्षा)
बरसन भरावे तीन हंगाम। (बरसन < वर्ष)
अबकम रहे वेद-तबीब। (बेद < वेद्य)
उन कीता घात बसास। (बसास < विश्वास)
देखत तेरी बाट खडयाँ। (बाट, मरा, वाट)
कूफे केरी बाट पकर।
डोंगर दुखों बनवालाग। (बनवा < वनवन्हि)
सच्चें तो वह बजर का। (बजर < वज्र)
फूलों बाडी कुमलाई। (बाडी < वाटिका)
(मध्य) जोबन बाले आना आंव। (जोबन < यौवन)
(अन्त) केती दौलत दाम व दब। (दब < द्रव्य)

३६. 'म'— १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त—
(आदि) याके कहूँ तो उन सों भोग।
भेद न जाने कोई चतर।
२. म. भा. आ. में अनेक संयुक्त व्यंजन 'म' में परिवर्तित हुए। हिन्दवी में तद्‌भव शब्दों में इस ध्वनि के उदाहरण मिलते हैं।
३. प्रायः 'ब' के पश्चात आने वाला 'ह' पूर्ववर्ण में मिलकर 'म' बनाता है। उदाहरण—
भाई मैना गोती होर। (मैना < बहिन < भगिनी)
रूप दिखाया भोंत भात। (भोंत < बहुत)
भोंत लश्कर दूर दराज। " "
असछूके भीतर मुझ भाया। (भाया < बहाया)
४. व > म म. भा. आ. से प्राप्त—
होऊँ भोगी पहरूँ भेस। (भेस < वेश)

३७. नासिक्य— प्रा. भा. आ. में पाँच नासिक्य स्पृष्ट व्यंजन हैं। इनमें से संस्कृत शब्दों में भी केवल 'न' तथा 'म' का ही स्वतन्त्र रूप से प्रयोग होता है। संस्कृत में स्पृष्ट व्यंजन से पूर्वका अनुस्वार उस व्यंजन के वर्ग का पंचमाक्षर बनता है। अतः न् म् के अतिरिक्त ङ, ण, की उपलब्धि अनुस्वार को परिणित से होती है। ऐसी स्थिति में नासिक्य व्यंजन स्वरहीन-हलन्त व्यंजन के समान परवर्ण के साथ संयुक्त रहता है।

म. भा. आ. की शौरसेनी तथा महाराष्ट्री में 'ङ' तथा 'ञ' का प्रयोग नहीं होता। फारसी लिपि में स्वतन्त्र चिह्न का अभाव होने से 'ण' का व्यवहार भी हिन्दवी में नहीं मिलता। तथापि लिप्यंतरकार ने 'ण' की ध्वनि मान ली है। हिन्दवी में 'न्' तथा 'म्' का प्रयोग स्वतन्त्र तथा सस्वर रूप में होता है।

हिन्दवी की नासिक्य ध्वनियों का विकास निम्न प्रकार हुआ है—

२. 'ङ' — प्रा. भा. आ. तथा म. भा. आ. से प्राप्त अनुस्वार 'ङ' में परिवर्तित होता है—
जे न अंगू आए तुज हुसेन। (अंगू = अङगू)
तब उस जंगल केरा रंग। (जंगल = जङ = गल)
करबल का सब झाडया अंगन (अंगन = आङगन)
दूखों लंका पकड़ी आग। (लंका = लङका)

३८. 'न' — १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त सस्वर — 'न'
(आदि) दोन्हों नयनों नीर बहाय।
तैसा उठया घरमें नाद।

(मध्य) जोरे तुझ सूं पिरत सनेव । (सनेव<स्नेह)

(अन्त) जाय रह्या अब गगन अकास ।

२. प्रा. भा. आ. ण>"न"

अपभ्रन्श में म. भा. आ. का आरम्भिक 'ण' 'न' में परिवर्तित हुआ । पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी में आ. भा. आ. के 'ण' के स्थान पर सर्वत्र "न" उच्चरित होता है । ब्रज के समान हिन्दवी में भी 'ण' का अभाव है । फारसी लिपि में 'ण' के लिए स्वतन्त्र चिह्न न होने से लिखित साहित्य में 'ण' ध्वनि सुरक्षित नहीं रही ।

उदाहरण—(मध्य) जैसा पून्यो केरा चान्द । (पून्यो<पुन्नो<पूर्णिमा)

मानक मोती हीरे लाल । (मानक<मानिक, माणिक्य)

(अन्त) उस सूं कर तूं जिसके गुन । (गुन<गुण)

आवें लागी उनको कान । (कान<कर्ण)

हीन इन पोंगड़ों कारन मुझ । (कारन<कारण)

उन की अंख्या राई लोन । (लोन<लवण)

जग का प्यारा रन धीरक । (र<रण)

३९. 'न्ह'—यह वर्त्स्य महाप्राण घोष अनुनासिक ध्वनि है । यह अधिकतर शब्दान्त में ही मिलती है । यथा—

अब रह बिल्ला सत्यान्हास । (नाश>न्हास)

कासिम सब तन लहू न्हाव । (न्हाव<स्नान)

लोहू न्हाए सब मुंह फोड ।

४०. "म" — १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त स्वरयुक्त "ख"

(आदि) तुजबिन हौं क्यों धरूं मन ।

(मध्य) संमुख होए दोनों दल ।

(अन्त) मेदक स्थाना परम सुजान ।

२. संस्कृत से आये शब्दों में पवर्ग पूर्व अनुस्वार 'म्' में परिवर्तित होता है ।

केता अपना मन गम्भीर । (गम्भीर<गम्भीर)

बोले अब तो लम्बी बात । (अग) (लम्बी<लम्ब)

सम्मुख होए दोनों दल । (समंख<सम्मख)

४१. 'म्ह'— यह महाप्राण घोष द्वयोष्ठ्य नासिका व्यंजन 'म' का महाप्राण रूप है । यह शब्दारम्भ में पाया जाता है ।

म्हारे पिव की नाही काम ।

४२. अनुनासिक और अनुस्वार—

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दवी में अनुस्वार नासिक्य वर्ण में परिवर्तित होता है । वस्तुतः हिन्दवी में अनुस्वार के स्थान पर स्वर की प्रवृति है । आ. भा. आ. तथा म. भा. आ. में जहाँ अनुनासिक ध्वनि उच्चरित होती है, हिन्दवी में उन स्थानों पर केवल अनुस्वारपूर्व स्वर अनुननासिक बनता है । इस अनुनासिकोकरण को हिन्दी में चन्द्रबिन्दु लगाकर व्यक्त किया जा सकता है । कुछ तत्सम शब्दों को छोड़कर यह प्रवृति सर्वत्र पाई जाती है । जब अनुस्वार स्वर को अनुनासिकता में बदलता है तो क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है. कुछ शब्दों में स्वर दीर्घ नहीं भी होता । दोनों प्रकार के रूपों में अनेक शब्द मिलते हैं ।

उदाहरण—

१. अनुस्वार>अनुनासिक, क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर का दीर्घीकरण—

(कवर्ग से पूर्व) घर से निकल आँगन आव । (आँगन<अंगण)

जांघा वाजू हात पाँवें । (जांघा<जंघा)

(तवर्ग से पूर्व) दाँत बतीसी तैंसो जान । (दाँत<दन्त)

खांदे घरकर खुश उलास । (खांदे<स्कन्ध)

जैसा पून्यो केरा चाँद । (चाँद<चन्द्र)

(पवर्ग से पूर्ण) सब्ज वाहाँ केले खाँब । (खाँब<स्तम्भ)

ऐसे उदाहरण भी जिनमें दीर्घीकरण नहीं होता—

अबर गर्ज्या हफ्त तबक । (अम्बर<अम्बर)

हँस पकर्या सरवर मान । (हँस<हंस)

२. अनुनासिकीकरण—तत्सम शब्द के अन्त में यदि 'म' आता है तो कहीं-कहीं मकार का अनुस्वार और 'व' बनता है । शब्द मध्य में 'म' होने पर 'म' का व होता है और निरनुनासिक रहता है । इन दोनों स्थितियों में अर्थात् 'म' के व रहने या 'वं' होने पर कभी-कभी संज्ञा के प्रथम व्यंजनं स्वर सानुनासिक होता है । कुछ शब्दों में अपवादस्वरूप अनुनासिकीकरण नहीं भी होता ।

(पदान्त में) नावें निशानी कुछ न कुनी । (नावें<नामन्)

जिस थें तुज सुहागन नावें ।

कौन ठाँव यहै सो आखूं खबर । (ठाँव<धामन्)

३. ऊष्म वर्ण से पूर्व स्वर को अनुनासिक किया जाता है—

घाँस करवो के ख्यालों हो । (घाँस<घास)

४. कुछ शब्दों में अनुस्वार का आगम मिलता है—

खोल कहीं मैं कंथा सब । (कंथा<कथा)

मुंझ मदीने दफनकर । (मुंझ<मुझ)

५. स्थान परिवर्तन—कुछ शब्दों में मूल अनुस्वार पूर्व व्यंजन के साथ जुड़ता है–

हीर इन पोंगडो कारन मुझ । (पोंगडों < पोगंड)

अन्तस्थ व्यंजन--

४२. "य" - हिन्दवी में मूल 'य' का प्रयोग बहुत कम हुआ है । श्रुति के रूप में 'य' का उपयोग होता है । तद्‌भव शब्दों में 'य' आरम्भ में नहीं आता । पूर्वी प्रभाव से जो शब्द हिन्दवी में प्रयुक्त हुए हैं, उनमें 'य' के स्थान पर 'ज' उच्चरित होता है । 'य' का विकासक्रम निम्न प्रकार है---

१. 'य' प्रा. भा. आ. से प्राप्त :--

(आदि) हजरत हक को करना यश ।

(मध्य) नयन सलोने ज्यूँ बादाम ।

२. प्रा. भा. आ.—'ज' > 'य' < ऐ.

यों पर गुजरी रोते रैन । (रैन, रयण < रजनी)

रोबें लागा हिया थाल । (हिया < हिअआ < हृदय)

४४. 'र'—नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में बहुधा पूर्वी क्षेत्र की बोलियों में 'ल' के स्थान पर 'र' बोला जाता है । सिंधी में भी यह प्रवृत्ति है ।

संस्कृत के अनेक शब्दों में 'र' के स्थान पर 'ल' तथा 'ल' के स्थान पर 'र' होता है । म. भा. आ. में महाराष्ट्री के अतिरिक्त सभी प्राकृतों में 'रे' 'ल' में परिवर्तित हुआ । हिन्दवी के कई शब्दों में आ. भा. आ. के 'ल' तथा 'र' सुरक्षित हैं किन्तु, कहीं-कहीं 'ल' 'र' में परिवर्तित होता हैं । 'र' का विकास क्रम निम्न प्रकार है—

१. प्रा. भा. आ से प्राप्त मूल 'र'—

(आदि) तब उस जंगल केरा रग ।

जिन्हों कोता अत जग राज ।

माटी हुई सब रकत घोल । (रकत = रक्त)

(मध्य) धरती सूरज रुखों सर । (धरती = धरित्री)

हंसी पकर्या सरवर मान । (सरवर = सरोवर)

(अन्त) नीर दहावते जो रो रोह ।

ज्यूं नित मैले फाटे चोर ।

खेलन निकले बाहर द्वार ।

कहीं खंडत कर कहीं सर सरीर ।

२. प्रा. भा. आ.–ऋ > र

अपनी-अपनी रुत उदास । (रुत < ऋतु)

बीज में थे रुख उपाव । (रुख < वृक्ष)

आलव सरज्या अति रहस । (सरज्या < सृज)

३. 'ड़' > र—पूर्वी हिन्दी और ब्रज भाषा में प्रायः 'ड़' 'र' में परिवर्तित होता है । हिन्दवी कुछ शब्दों में 'ड़' 'र' में उच्चारित होता है किन्तु फारसी लिपि में लिखने वालों के प्रमाद बश भी 'ड़' को प्राय: 'र' लिखा है ।

(मध्य) लेबे खरगों सीस उतार । (खरगों < खड़ग < खड्‌ग)

(अंत) ये सुन खुलते कान किवार । (किवार–किवाड़ < कपाट)

४. 'ल' > 'र'—म. भा. आ. में मागधी को छोड़ शेष प्राकृतों में 'ल' का 'र' हुआ । ब्रज भाषा में भी यह प्रवृत्ति है । हिन्दवी में आये ब्रज भाषा के शब्दों में यह परिवर्तन मिलता है ।

दोजख म्याने उसका ठार । (ठार < स्थल)

४५. 'ल'—प्रा. भा. आ. से प्राप्त 'ल'

(आदि) नबीं की तुम नाहीं लाज । (लाज < लज्जा)

तोरद बैठ्या लकरी जान । (लकरी < लक्कुट)

(मध्य) सूरज तारे चर्ख डुलाय । (डुलाय < दोलय)

(अन्त) तो सल बैठे सोने का । (सल < शल्य)

आनूं बैरी खांडे तल । (तल < तलम्)

२. ठ > र कहीं भावों मार कुहार (कुहार; भरा. कराड < कुठार)

३. ड़ > र म. भा. आ. में कुछ शब्दों में 'ड़' का परिवर्तन 'र' हुआ । हिन्दवी में इसके उदाहरण मिलते हैं—

नन्द समन्दर कोह तला । (तला < तडाग < हि. तालाब)

लिऊँ खरगों सीस उतार । (खरगों < खड्‌ग)

४६. 'ल्ह'—हिन्दी की बोलियों में यह ध्वनि मिलती है । उदा.

ल्होडे बड़े सब सदा । (राज. ल्होडे < सं. लघु)

४७. 'व'—हिन्दवी में जो शब्द पूर्वी हिन्दी के पहुँचे हैं उनके आरम्भिक 'व' का परिवर्तन 'ब' में होता है । शब्द के मध्य एवं अन्त में कहीं-कहीं 'ब' मिलता है यद्यपि हिन्दवी की प्रधान प्रवृत्ति 'व' तथा 'ब' के अन्तर को बनाए रखने की है । मराठी में इन दोनों ध्वनियों की प्रायः सुरक्षा की गयी है—

१. प्रा. भा. आ. से प्राप्त 'व'

(आदि) जोड़े वर बर होय निसार ।

उन्हों थप केता घात विसास । (सिास < विश्वास)

(मध्य) जन्नत केरे खोले द्वार ।

खोले सातों सर्ग दुवार । (दुवार < द्वार)

(अंत) हुई देव-परी बेहोश ।

२. प्रा. भा. आ. 'द'>'भ'

कला मूं ले नीले पांव । (पांव<पाद)

३. प्रा. भा. आ. "प">"ब"

ये सुन खुलते कान किवार । (किवार<कपाट)

उस घर दीवा क्या कजना । (दीवा<दीप)

४. प्रा. भा. आ. के पदान्त का 'मन' 'वँ' में परिवर्तित होता है । कभी-कभी 'व' का अनुनासिक रूप नहीं होता । शब्द के मध्य में प्रायः 'उ' निरनुनासिक रहता है किन्तु क्षतिपूर्ति स्वरूप पूर्व स्वर सानुनासिक बन जाता है—

एकी चन्दर बारा नाँवँ । (नाँवँ<नामन्)

५. प्रा. भा. आ, 'य'> 'व' (शब्दान्त के "मन्>'व' के अनुकरण में)

अय मुख ढ़लकी सरकी छावँ । (छावँ>छाया)

रिक्कत सिराजी खेमे छावँ । (,,)

४८. "श"—१. म. भा. आ. में 'श' का परिवर्तन 'स' में हुआ । परिनिष्ठित हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्दों में 'श' सुरक्षित रहता है किन्तु तद्भव तथा देशज शब्दों में प्रायः 'स' उच्चरित होता है । हिन्दी में सर्वत्र 'श' का 'श' मिलता है—

२. श>स—ठंडा सियाला सीतल सीवँ । (सीतल<शीतल)

(सीवँ<शीत)

(सियाला<शीतकाल)

उन कीता घात विसास । (विसास<विश्वास)

३. अरबी–फारसी शब्दों को लिखने में 'श' का प्रयोग शुद्ध रूप से हुआ है ।

पैदा कीता शाह गढ़ा ।

खुशी सेंती अति उलास ।

भोला स्याना शायरता ।

तशरीफ निशानी खास ।

४९. 'ष'—प्रा. भा. आ. का मूर्धन्य 'ष' म. भा. आ. में 'स' अथवा "ह" में परिवर्तित हो गया । हिन्दवी में इस ध्वनि का पूरी तरह अभाव है । इसका एक कारण यह भी है कि फारसी लिपि में 'ष' के लिए पृथकचिन्ह नहीं हैं, अतः लेखन में यह ध्वनि सुरक्षित न रह सकी ।

प्रा. भा. आ. का 'ष' हिन्दवी में जिन व्यंजनों में परिवर्तित होता है उनका विवरण निम्न प्रकार है—

१. 'ष'>'क'—'ष' का 'ख' कई बोलियों में होता है, उसी का अल्प प्राण रूप 'क' है—

तुझकन भाकुँ सच्चा भाव खोलकर (भाकूँ<भाष)

२. 'ष'>'स'

चहूघर खंडे बरसा होय । (बरसा<वर्षा)

होऊँ जोगी पहरूँ भेस । (भेस<वेष)

५०. 'स'—१. प्रा. भा. आ. से प्राप्त "स" सस्कृत में सन्धि नियमों के अनुसार दन्त्य 'स' विसर्ग तथा 'श' में और 'श' 'ष' में परिवर्तित होता है । इसके विरुद्ध म. भा. आ. तथा न. भा. आ. में मुर्धन्य तथा तालव्य 'श' 'स' में परिवर्तित होता रहा जो मूर्धन्य वर्णों क दन्तीकरण की प्रवृत्ति का परिचायक है । हिन्दवी में 'स' का तद्भव शब्दों में सामान्य रूप से प्रयोग हुआ है ।

(आदि) प्रवेश खराएव सकले मिल ।

संमुख होय दोनों दल ।

(मध्य) भावर होय सुद बिस्र । (विसर<विस्मर)

(अन्त) हंस पकर्या सरवर मान ।

२. प्रा. भा. आ. "श">"स" यह परिवर्तन म. भा. आ. में सम्पन्न हुआ तथा तद्भव शब्दों के हिन्दवी को भी प्राप्त हुआ ।

(आदि) जिन्हों सेज फूलों सदा भोग कर । (सेज<शय्या)

तो सल बैठे सीने का । (सल<शल्य)

(मध्य) आसूँ तुम दरसन वितघर । (दरसन<दर्शन)

(अंत) सीस मुबारक भुई परघर । (सीस<शीश)

एकन राखे आस तुडाव । (आस<आशा)

३. प्रा. भा. आ. "ष">"स"

मानस कीता चार मिलाव । (मानस<मनुष्य)

होऊँ भोगी पहरूँ भेस । (भेस<वेष)

५१. 'ह' १. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल ध्वनि 'ह' के कारण नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में उच्चारण सम्बन्धी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । राजस्थानी के बहुत से शब्दों मे "इ" पूर्वस्थ व्यंजन में विलीन होकर उस अल्पप्राण व्यंजन को महाप्राण बना देता है । हिन्दवी में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है ।

१. प्रा. भा. आ. से प्राप्त मूल 'ह' के उदाहरण—

(आदि) हंस पकर्या सरवर मान ।

मानक मोती हीरे लाल ।

(मध्य) तुझ कित रहना इस रहस । (रहस<रहस्य)

क्या उन केती बात सहल । (सहल<सहज)

(अन्त) कूटन लागी बाहाँ भर । (बहाँ<बाहु)

२. महाप्राण व्यंजन—"ह्"—म. भा. आ. में संस्कृत के महाप्राण व्यंजनों में अनेक परिवर्तन हुए। प्रायः महाप्राण व्यंजन का लोप होने पर 'ह्' शेष रहता है। हेमचन्द्र ने स्वर के पश्चात ख, घ, थ, ध, तथा भ के 'ह्' में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है।[१] हिन्दवी में यह प्रवृत्ति प्रायः शब्द के मध्य तथा अन्त में देखी जाती है, ऐसे शब्द म. भा. आ. से प्राप्त माने जाने चाहिए। उदाहरण—

ख>ह	लोहू न्हाए सब मुँह फोड़।	(मुँह<मुख)
घ>ह	बादल बिजली मेंह अचूक।	(मेंह<मेघ)
भ>ह	ल्याए में पैगाम चार गम्हीर।	(गम्हीर<गंभीर)
	जिस थे तुज सुहागन भावें।	(सुहाग<सौभाग्य)
स्न>ह	कासिम सबतन लोहू न्हाव।	(न्हाव<स्नान)

५२. विसर्ग—संस्कृत की कंठनालीय विसर्ग ध्वनि म. भा. आ. में लुप्त हो गई। हिन्दवी में भी यही प्रवृत्ति है। विसर्ग लोप का अन्य वर्णों पर कोई प्रभाव नहीं होता—

१. तूँ वो जाता मुज दूक घर।

२. निसंक खांडे बरसे हात।

५३. उत्क्षिप्त व्यंजन—'ड़' तथा "ढ़" संस्कृत में इन ध्वनियों का अस्तित्व नहीं था। आर्येतर भाषाओं के प्रभाव से ही हिन्दी तथा अन्य भाषाओं को ये ध्वनियाँ उपलब्ध हुई हैं।

विद्वानों का मत है कि द्रविड़ भाषाओं की 'ळ', ध्वनि मराठी तथा कुछ आर्य भाषाओं ने स्वीकार की है। उसी के प्रवर्तित रूप में नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में "ड़" तथा "ढ़" ध्वनियाँ प्राप्त हुई। भारतीय भाषाओं में "ळ", ल" "र" तथा 'ड़' का परस्पर परिवर्तन इतना अधिक होता है कि ये चारों वर्ण एक ही ध्वनि के रूपान्तर ज्ञात होते हैं।[२] "ड" के महाप्राण उच्चारण के रूप में "ढ" प्राप्त होता है।

मराठी में "ळ" का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस भाषा में 'ड' के स्थान पर "ड़" और "ळ" उच्चारित होते हैं।[३] राजस्थानी में भी 'ळ' का उपयोग होता है।

हिन्दवी में "ळ" ध्वनि तो नहीं हैं तथापि यह निष्कर्ष माना जा सकता है कि हिन्दी से सम्बंधित जिन बोलियों में 'ड़' 'ढ़' विद्यमान हैं, वे सब "ळ" के प्रभाव को सूचित करती हैं।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा. व्या. १. १८७
२. काल्डवेल—कं. ग्रा. द. पृ० ५६
३. जूल ब्लॉक—ला. फा. लें म. (१४४ पृ० १८२-८३)

५४. "ड़"—१. हिन्दवी में ट, ठ, ड, तथा र, वर्ण मुख्यतः "ड़" में परिवर्तित होते हैं। तद्भव तथा देशज शब्दों में इस ध्वनि के उदाहरण—

(मध्य)	लेवे खड़गों सीस उतार।	
(अंत)	रतन पदारत मानक जड।	
	ऊँचा नीचा अड़के बोल।	
	तुज बिन मुझ जग उजाड।	(सं. उत्+जु. मा. उजड्ड)
२. ट>ड—ये सुन खुलते कान किवाड़।		(किवाड़<कपाट)
	जूड़ा खोल्या चूडा मान।	(जूड़ा<जूट)
३. ड>ड़—अतपर मांड्या यह सहरूप।		(मंड्या<मंडन)
४. ठ>ढ़—घांस कड़वी के ख्यालों पड़।		(कड़वी>काष्ठवृक्ष)
५. र>ड़—दांत बतीस झाडे मान।		(झाडना<क्षरण)

५५. "ढ़"—प्राकृतों में ठ>ढ होता था। हिन्दवी में ढ>ढ़ बनता है—
शायद लिखे पढ़े कोय।

५६. संयुक्त व्यंजन : उच्चारण की सुविधा के लिए प्रा. भा. आ. के संयुक्त व्यंजनों अथवा व्यंजन युग्मों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए—१. निर्बल व्यंजन अपने साथी सबल व्यंजन में विलीन हो गया ९. वर्णविपर्यय-प्रथम निर्बल वर्ण का द्वितीय स्थान ग्रहण करना और द्वितीय वर्ण का प्रथमाक्षर में परिवर्तन। ३. निर्बल व्यंजन का लोप। ४. स्वरभक्ति द्वारा संयोगी व्यंजनों का पृथकीकरण इ.।

हिन्दवी में संयुक्त व्यंजनों का प्रायः अभाव है। कविता में "वजन के आग्रह-वश कभी-कभी व्यंजनों का द्विगुणित उच्चारण होता है, यथा-मद्दद, रत्त, सच्चें, किन्तु वह ध्वनि विकास की दृष्टि से नगण्य विषय है।

प्रा. भा. आ. की संयुक्त व्यंजन ध्वनियों क्ष, ज्ञ, का म. भा. आ. तथा न. भा. आ. में जो परिवर्तन हुआ उसका उल्लेख सम्बंधित व्यंजन के प्रसंग में हो चुका है।

५७. व्यंजन युग्म>एक व्यंजन—

१. प्रा. भा. आ. द्ध>ड
ल्होडे बूडे औरत मर्द। (बूड़ा<वृद्ध)

२. प्रा. भा. आ.—द्य>ग—
बाप न भाई भाई आज। (आज>अद्य)

३. प्रा. भा. आ.—ध्य>झ—संस्कृत 'ध्य' प्राकृतों में 'झ' बनता है—
लोट न हे मुझ दोह मझार (मझार>मध्य+धार)

४. प्रा. भा. आ.—श्च>छ—बीछू छडया सार्वे अंग। (बीछू<वृश्चिक)

५. प्रा. भा. आ.—एक>ख—वैदिक संस्कृत में 'स्कंभ' शब्द 'स्तम्भ' के अर्थ

में आता है। इसी से हिन्दवी "खंबा" या खांब शब्द का विकास मानना उचित है।

सब्ज बाहाँ केले खांव । (खांव<स्कंभ)

६. प्रा. भा. आ. स्त>थ—जांघा बाजू हाथ पाँव । (हाथ>हस्त)

७. प्रा. भा. आ.—'स्न >न्ह

कासिम सब तन लोहू न्हाव । (न्हाव<स्नान)

५८. स्वरभक्ति :—

उच्चारण सौकर्य के लिए संस्कृत के संयुक्त व्यंजन समूह में म. भा. आ. में कई परिवर्तन हुए। स्वरभक्ति का प्रयोग भी उसी हेतु से हूआ। संयुक्त व्यंजन-समूह में से किसी एक का लोप न होने पर समूह के प्रथम स्वरहीन व्यंजन को पृथक करने के लिए उसे स्वरयुक्त कर दिया जाता है। डा० चटर्जी का विचार है कि मध्यकाल में स्वरभक्ति का प्रयोग बाहुल्य आर्येतर भाषाओं के प्रभाव का द्योतक है।[1] सभी प्राकृतों में स्वरभक्ति का प्रयोग हुआ है।

हिन्दवी की तद्भव शब्दों के साथ यह प्रवृत्ति म. भा. आ. से प्राप्त हुई। मुख्यत: 'अ' का स्वरभक्ति के रूप में उपयोग हुआ है। कुछ शब्दों में ही 'इ' तथा 'उ' का स्वरभक्ति के रूप में प्रयोग हुआ है।

१. उपसर्ग और स्वरभक्ति :—

उन उपसर्गों को स्वरभक्ति के साथ बोलते है, जिनके अन्त में अलन्त या स्वरान्त 'र' का प्रयोग होता है। यथा

होए तुज बिन यो निरधार ।

२. स्वरभक्ति—हिन्दवी में त्र, ब, 'र' के साथ स्वरभक्ति के उदारहण अधिक मिलते हैं।

५९. 'अ' से सम्बंधित स्वरभक्ति के उदारण—

'क'—माटी हुई सब रकत घोल । (रकत<रक्त)

'ज'—सच्चे तो वो बजर का । (बजर<वज्र)

'ड्'—जल के लेऊँ बाँट खडग । (खडग<खड्ग)

'त्'—रतन पदारथ हीरे जड़ । (रतन<रत्न)

'द्'—रात उजाला चंदर जोत । (चंदर<चन्द्र)

नंद समंदर व्होह तला । (समंदर<समुद्र)

प—जोरे तुझ सूं पिरत सनेव । (पिरत<प्रीति)

र—घड़घर खांडे बरसा होय । (बरसा<वर्षा)

बरस अठारह केरा सुन । (बरस<वर्ष)

---

1. चटर्जी—ओ. डे. ऐ. (८० वी.) पृ० १७७

कोई सदमारग कोई गुम रह । (मारग<मार्ग)

खोले सातों सरग दुवार । (सरग<स्वर्ग)

तुरकों हिन्दू लाया दंद । (तुरक<तुर्क)

स्—जोरे तुझ सूं पिरत सनेव । (सनेव<स्नेह)

६०. 'उ'—"उ"—से सम्बंधित स्वरभक्ति के उदाहरण—

द्—खोले सातों सरग दुवार (दुवार<द्वार)

अ. फा. शब्दों में स्वरभक्ति—

६१. अ. फा. से प्राप्त शब्दों को प्राय: शुद्ध प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं अज्ञान या वजन के लिए अ. फा. के शब्दों में भी स्वरभक्ति का उपयोग हुआ है। यथा-शुकर, सखत ई.

क्— शुकर खुदा का कोता याद ।

६२. **श्रुति**—म. भा. आ. काल में शब्द के मध्य में अनेक व्यंजनों का लोप होता है तथा उन व्यंजनों से सम्बंधित केवल स्वर शेष रह गये हैं। इन स्वरों में भी संस्कृत के नियमानुसार संधि नहीं हुई, अत: उनका उच्चारण करना कठिन होता गया, साथ ही अर्थ की कठिनाई भी अनुभव हुई। ऐसी स्थिति में प्राय: श्रुति का आश्रय लिया जाता है।

दोन स्वरों के निकट आने पर य, व, तथा ह् का उपयोग श्रुति के रूप में होने लगा। शब्दारम्भ में स्वर होने पर भी उच्चारण सौकर्य हेतु श्रुति का उपयोग किया जाता हैं।

हिन्दवी में 'य' श्रुति के विपुल उदाहरण मिलते हैं—

"य"—'ह' के पश्चात्—

रोवँ लागा हिया घाल । (हिया<हिअअ<हृदय)

"व"—(अन्त) हर हर हमले हर हर घाव । (घाव<घाअ<घात)

"ह"—(आदि) कहीं नाक अंख्या कहीं होंट गाल । (होंट<ओष्ट)

२. सामान्यतया कुछ व्यंजनों के पश्चात उच्चारण की सुविधा के लिए 'य' श्रुति का उपयोग होता है। पूर्वी हिन्दी में स्वरभक्ति के रूप में प्रयुक्त 'ई' के पश्चात 'य' का लोप होता है किन्तु हिन्दवी में ऐसे स्थान पर भी 'य' उच्चारित होता है—

दुक्खो हुवा हर्या जर्द । (हर्या>हरिओ<हरित:)

रात अंध्यारी भूले बाट। (अन्घ्यारी<अंघआरी<अन्घार)

३. ख ग ल श और स के पश्चात भी 'य' श्रुतिका उपयोग हिन्दवी में होता हैं। यहाँ 'ल' का उदाहरण प्रस्तुत है।

राजिक सकल्यो का मुतलक । (सकल्यों<सकलों)

६३. **वर्ण लोप**—म. भा. आ. काल में हुए संस्कृत शब्दों के ध्वनि सम्बंधी परिवर्तनों

में 'वर्णलोप' महत्वपूर्ण है । शब्दारम्भ के वर्ण में कम लेकिन मध्य तथा अन्त में अधिक परिवर्तन हुए । हिन्दवी को शब्द भण्डार का मुख्य भाग म. भा. आ. से ही प्राप्त हुआ है । अतः वर्णलोप के विपुल उदाहरण इसमें मिलते हैं ।

६४. 'अ' लोप—म. भा. आ. काल में संस्कृत कुछ शब्दों में प्रारम्भिक अकार विकल्प से लुप्त हुआ । उदाहरण—

(आदि) उन दोन्हों भीतर लाया सोय । (भीतर<अभ्यन्तर)
गौर गरेवा भीतर मुंझ ।
मेरी दुराही भीतर रह ।

६५. व्यञ्जन लोप—म. भा. आ. काल में अनेक व्यञ्जनों का लोप हुआ । हिन्दवी में अन्तस्थ और ऊष्म व्यञ्जनों के लोप की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है ।

६६. 'त' लोप— डोंगर दूखों बनवालाग । (बनवा<वनवात)

६७. 'य' लोप— स्वर पर जोर होने से अन्त्य 'य' के लोप की प्रवृत्ति है—

देव परी बुत दैंत गला । (दैंत<दैत्य)
(बला<बलाय)

६८. 'र' लोप—प्राकृतों में यह वर्ण प्रायः लुप्त हो जाता है । हिन्दवी के तत्सम या अर्ध तत्सम शब्दों में 'र' लोप होता है ।

(अन्त) जिसके चाव अठारा सहस । (सहस<सहस्र)
गोत उजाला घर दीपक । (गोत<गोत्र)
बैठी रोती गोत्यों संग । (")

६९. 'व' लोप—म. भा. आ. में बहुत से शब्दों में 'व' का लोप हुआ । हिन्दवी में इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं ।

(आदि) बीज में थे रुख उपाव । (रुख<वृक्ष)
(मध्य) खोले सातों सर्ग दुवार । (सर्ग<स्वर्ग)
उनकेता बात बसास । (बसास<विश्वास)
तुरकों हिन्दु लाया दन्द । (दन्द<द्वन्द्व)
तूं अत बूढ़ा मैं हूं जान । (जान<जवान<युवा)
बार्जां केहता ले उसास । (उसास<उच्छवास)
दीस सँवारे सूरज ओत । (दीस<दिवस)
धोये उजले पक्क अताव । (उजले<उज्ज्वल)

७०. "स" लोप— म. भा. आ. में शब्दारम्भ का स्वरहीन 'स' लुप्त हो गया । हिन्दवी में इसके उदाहरण—

(आदि) भी नित दीखे उसी थाँवें । (थाँवें<स्थल)
चोखत ज्यूं के मांज्या थाल । (थाल<स्थाली)

फूटन लागा नफस तरका मार । (फूटना<स्फुट)

७१. 'ह' लोप— कुछ उदाहरण 'ह' लोप के मिलते हैं—

डुबते तारे लावे बार । (बार<बाहर)
काला मूं ले नीले पाँव । (मूं<हि. मुह)

७२. क्षतिपूर्ति— उच्चारण सुविधा या अन्य कारणों से किसी व्यंजन का लोप होने, अथवा एक ध्वनि के दूसरी ध्वनि में परिवर्तित होने पर शब्द में गुण-वृद्धि-द्वित्व अथवा दीर्घीकरण के द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती है । म. भा. आ. काल में क्षतिपूर्ति का अधिक आश्रय लिया गया ।

७३. दीर्घीकरण— तत्सम शब्दों में किसी व्यंजन के लोप अथवा अन्य परिवर्तन होने पर क्षतिपूर्ति के रूप में उससे पूर्व का स्वर दीर्घ कर दिया जाता है । हिन्दवी में जब संयुक्त-व्यंजन समूह का कोई व्यञ्जन लुप्त होता है तो कुछ शब्दों में पूर्वस्वर दीर्घ होता है तथा कुछ शब्दों के दोनों रूप पाये जाते हैं—यथा

यक लख चौबीस हजार । (लख<लक्ष)
लाखों कोरों बांधे माल । (लाखों<लक्ष)

क्षतिपूर्ति स्वरूप स्वर दीर्घ होने के उदाहरण—

१. 'म' लोप के कारण—

तेरे घन कूं लाऊँ आग । (आग<प्रा. अग्गी<सं. अग्नि)
अब दुख दाधी किधर नावें । (दाधी<दग्ध)
जूरा खोत्याचूरा मान । (मान<मग्न)

२. 'ज' लोप के कारण—

नबी की तुम नाहीं लाज । (लाज<लज्जा)

३. 'य' लोप के कारण—

यारों को भी देते धीर । (धीर<धैर्य)

४. 'र' लोप के कारण— इस प्रकार का दीर्घीकरण म. भा. आ. में भी मिलता है—

लहें उथ्या आधी रात । (आधी<अर्ध)
रुखों सेंती पान बिखेर । (पान<पर्ण)
किसका राज होर किसका पात । (पात<पत्र)
हसन कह्या सुन रे मीत । (मीत<मित्र)
सो कह मेरा प्यारा पूत । (पूत<पुत्र)

५. 'स्' लोप के कारण—

(आदि) दोजख म्याने उसका ठार । (ठार<स्थल)
जब लग रहे ऊभे थीर । (थीर<स्थिर)

(मध्य) दाम खजाना हाती-फील । (हाती<हस्ती)

६. 'ष' लोप के कारण—

(मध्य) सूकी माती ज्यं मकरा । (सूष्क<शुष्क)

कल्हन खंद एकस मूथ । (मूथ<मुष्टि)

७. 'ह' लोप के कारण—

(अन्त) काला मूं ले नीले पाँव । (मूं<मुँह<मुख)

७४. दीर्घीकरण—समान व्यञ्जन द्वय में से एक व्यञ्जन के अवशिष्ट रहने के कारण—

१. ज्ज>ज— नबी की तुम नाहीं लाज । (लाज<लज्जा)

चोखत ज्यूँ के मांज्या थाल । (मांज्या<सं. मार्जति< पा. मज्जति<प्रा. मज्जइ)

२. ट्ट>ट— के अब लाने लगन पाट । (पाट<पट्ट)

३. त्त>त— सुनो दोस्त यारां तुम चीत धर । (चीत<चित्त)

४. ल्ल>ल— फूलों>वारी कुमलाई । (फूल<फुल्ल)

७५. दीर्घीकरण— व्यञ्जन परिवर्तन के कारण—

१. क्ष>क-प्यासों भूकों मरे वाय वाय । (भूक<बुभुक्षा)

भूकों प्यासों सबर करो ।

जलजल कोयल हुई राक । (राक<रक्षा)

७६. दीर्घीकरण— विसर्ग लोप के कारण—

वो तूँ जाता मुज दूक धर ।

७७. दीर्घीकरण— महाप्राण व्यंजन के अल्पप्राणत्व के कारण—

तुरत नाहीं कूच कमूत । (कूच<कुछ)

७८. दीर्घीकरण— अनुनासिक के अनुस्वार बनने के कारण—

अ>आ—चक्कर लव सब हीरे दाँत । (दाँत<दन्त)

पकर रह्या जीव में गाँट । (गाँट<ग्रन्थि)

हातों पावों ऊया काँप । (काँप<कम्प)

उ>ऊ— बूँद न पाया किन्हीं ठाँक । (बूँद<बुँद)

७९. अल्पप्राण से महाप्राण—

सब्ज बाहीं केले खांब । (खांब<स्कंभ)

खांदे धर कर खुश उलास । (खांदा<स्कन्ध)

८०. महाप्राणत्व—कुछ शब्दों में अन्तिम अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण—उच्चरित होता है । लकार के पश्चात प्रायः इस प्रकार का परिवर्तन होता है—

पलखा चोंडे जान कमल । (अग) (पलख<पलक)

८१. व्यंजन द्वित्व—संयुक्त व्यञ्जन समूह में से जब स्वरहीन व्यञ्जन लुप्त होता है, तो कुछ शब्दों में स्वरसहित व्यञ्जन का द्वित्व होता है । यह प्रवृत्ति म. भा. आ. में अधिक प्रबल है । हिन्दवी में इसका उदाहरण—

तत ये माती होइ रत्त । (रत्त<रक्त=लाल)

८२. अनुस्वारत्व— १. व्यंजन लोप के कारण क्षतिपूर्ति के लिए शब्दान्त का 'अकार' सानुनासिक उच्चरित होता है । हिन्दवी में यह प्रवृत्ति वर्तमान है । साथ ही प्राकृतों के समान संयुक्त व्यञ्जन समूह में से एक व्यंजन के लोप होने पर उसका अकार सानुनासिक हो जाता है । यह सानुनासिक अकार विशेष रूप से प्रयुक्त होता है । उदाहरण—

काला मूं ले नीले पाँव । (पाँव<पाद)

तिस का दरसन हर-हर ठाँव । (ठाँवँ<स्थान)

ये शब्द दोनों रूपों में मिलते हैं—पाँव-पाँवँ, ठाँव-ठाँवँ ।

म. भा. आ. में शब्दांत का 'म' वँ परिवर्तित हुआ । इस परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्व स्वर सानुनासिक हो जाता है । हिन्दवी में इसका उदाहरण है—

नीसरहार इस धर्या नाँवँ ।

२. शब्द के मध्य में किसी वर्ण के लोप होने पर तो शब्दारम्भ का ह्रस्व अकार क्षतिपूर्तिस्वरूप दीर्घ तथा कभी-कभी सानुनासिक भी कर दिया जाता है—

'ट' लोप— ऐसा पापी मरदक ताँठ । (ताँठ<अप. तट्ठअ<सं. घृष्ट)

'र' लोप— राखे नबी अन्धे आन । (अन्धे<अर्घे)

'ह' लोप- उद तराँ से नाफस जोय । (तराँ<तरह)

३. शब्द के मध्य में कोई स्वर दूसरे स्वर में परिवर्तित होने पर कुछ शब्दों में परिवर्तित स्वर का उच्चारण सानुनासिक होता है । जब कोई व्यञ्जन किसी अन्य व्यंजन में परिवर्तित होता है तो उसका अपना स्वर अथवा पूर्वस्वर अनुनासिक होता है ।

उ>अ— नन्द समन्दर कोह तला । (समन्दर>समुन्दर<समुद्र)

द>व— काला मूं ले नीले पाँव । (पाँव<पाद)

८३. वर्णविपर्यय— प्रा. भा. आ. की वैदिक संस्कृत से न. भा. आ. के आरम्भ काल तक वर्ण विपर्यय की प्रवृत्ति का अस्तित्व दिखाई देता है । उच्चारण की सुविधा के लिए व्यञ्जनों का स्थान परिवर्तन प्रायः होता रहता है ।

हिन्दवी में प्राप्त वर्ण विपर्यय के उदाहरण निम्न प्रकार है—

कासिम सबतन लोहू न्हाव । (न्हाव<नहान<स्नान)

जीवडा देगा हयां पड़ । (हयां<यहाँ)

हिन्दवी में महाप्राणत्व का प्रायः स्थान परिवर्तन होता है—

खांदे घर कर खुश उलास। (खांदे <स्कंध)
फतर तर के सोना फांट। (फतर<पत्थर<सं. प्रस्तर)

संज्ञा

८४ 'हिन्दवी' देश की अन्तर प्रान्तीय भाषा रही है। स्वभावतः इसका शब्द भण्डार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हुआ है। 'नौसरहार' की 'हिन्दवी' में प्रयुक्त शब्दावली को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. संस्कृत से प्राप्त-तत्सम शब्द.
२. म. भा. आ. से प्राप्त शब्द.
३. हिन्दीक्षेत्र की उपभाषाओं से प्राप्त शब्द.
४. अरबी-फारसी से प्राप्त शब्द.
५. हिन्दीतर आर्य भाषाओं-पंजाबी गुजराती, मराठी से प्राप्त शब्द.
६. आर्येतर भारतीय भाषाओं से प्राप्त शब्द.

प्रकृति-

८५. अधिकांश में हिन्दवी का शब्द भंडार म. भा. आ. से प्राप्त है। इसी श्रेणी की संज्ञा-शब्दावली के प्रकृति-प्रत्यय का अध्ययन इस अध्याय में मुख्यरूप से किया जायगा। न. भ. आ के आरम्भ से ही मूल संस्कृत शब्दों के प्रयोग की एक बलवती प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। 'हिन्दवी' में इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण यह रहा है कि भारतीय संत-भक्तों के समान ही मुसलमान सूफी संत भी भारतीय चिंतन तथा दर्शनशास्त्र को शुद्धरूप से समझना चाहते थे। इस्लामोत्तर अरब-ईरानी विचारधारा के साथ भारतीय चिंतन का समन्वय करना चाहते थे। इसी समन्वय चेष्टा ने उन्हें भारतीय दर्शन-शास्त्र में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली को स्वीकार कर लेने की प्रेरणा दी होगी। इस के साथ ही भाषावैज्ञानिकों का एक यह भी मत है कि म. भा. आ. काल में ध्वनि परिवर्तन की अतिशय प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया का स्वरूप न. भा. आ. के आरम्भ में तत्सम शब्दों की ओर झुकाव दिखाई देता है। ब्रज भाषा तथा पूर्वी हिन्दी के पुराने साहित्य में भी इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण मिलता है।

"नौसरहार' की हिन्दवी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

अंबर—अंबर कूदे तारे घर
मास—तीन्हों काले वारहा मास।
नीर—दोन्हों नैनों नीर बहाय।
नाद—नाद सुनाया बिन कंट-तांत।
खड्ग—मारे जायेंगे खड्गों सात।

गगन—गगन सगला अब्रभरे।
ध्यान—राज कँवर का लागा ध्यान।
पति—अपने पती सद्दा रह।
भाव—जैसा भाव जिसको रंग
कपाल—फूटन लाग्या शीस-कपाल।
दीपक—गोत उजाला घर दीपक।
संमुख—संमुख होए दोनों दल।
कर—कहीं खंडत कर कहीं सर-सरीर।
अवधूत—शाह दिलावर रन अवधूत।
कंत—तु घर आ ओ, प्यारे कंत।
सारंग—उमक रावत सारंग चड।
धरती—धरती कांपे सात बरख।
आसन—खाली आसन घोरा देख।
हंस—हंस पकर्या सरवर मान।
श्रीफल—सोसन श्रीफल मातमवार।

म. भ. अ. से प्राप्त शब्द :—

८६. हिन्दवी में म. भा. आ. काल से प्राप्त शब्द समूह के विषय में एक बात ध्यान देने योग्य है कि यहां एक ही अर्थ के लिए एक से अधिक शब्दों का व्यवहार होता है। "नौसरहार" में 'नयन' के अर्थ में संस्कृत 'अक्षि' से विकसित आंक, अंक, आंख, अंख्या इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'चक्र' शब्द का भी प्रयोग मिलता है, जिसका विकास संस्कृत—'चक्षु' शब्द से हुआ है। 'नयन' या 'नैन' का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। इन शब्दों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

अंक-अंकोकेरा काजल पोंछ।
आंक-आंक मजीरा नाक सुरूप।
आंख—नाक सुहावे आंख्यातल।
चक—लाल केती चक लहू मराव।
चख—ना चख रखते तेरा मूं।
नयन—नयन सलोने जूं बादाम।

इसी प्रकार आग, अंगार तथा जाल समानार्थी तद्भव शब्दों का प्रयोग 'नौसरहार' में हुआ है :—

आग—सर तो ऊधी आग। (आग<अग्नि)
अंगार—जानों लाई अंग अंगार। (अंगार<अंगार)
जाल—हाथों पावों ऊभ्या जाल। (जाल <ज्वाल)

'पति' वाची शब्दों में 'पति' और 'कंत' के तत्सम रूप के साथ 'भतार' तद्‌भव रूप का प्रयोग भी हुआ है । इसी अर्थ में 'मानुस' शब्द का प्रयोग विशेष है । यह शब्द मराठी के प्रभाव का संकेत करता है ।

पति—अपने पती सदा रह ।

कंत—तू घर आ. ओ. प्यारे कंत ।

भतार—अबसुन मेरे शाह भतार ,

मनुस—मनुस की छोरी यूं परवा ।

"नौसरहार" में पत्थर के लिए 'पाथर' और 'पखान' दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है । जो क्रमशः 'प्रस्तर' एवं, 'पखान' बोलियों में अब भी चलते हैं ।

पत्थर—पत्थर तरके सीना फाट ।

पाथर—पाथर में थे; नीर बहाव ।

पखान—सच्चई फूटे कोह—पखान ।

इसी प्रकार 'बाट' 'पंथ' तथा 'मारग' शब्दों का प्रयोग हुआ है । आजकल तत्समरूप 'मार्ग' का मुख्यतः प्रचलन है किन्तु बोलियों में 'बाट' और 'पंथ' भी प्रयुक्त होते हैं, जो क्रमशः 'वाट' तथा 'पथ' संस्कृत शब्दों से विकसित हैं ।

बाट—देखूं बाट झरोखे चड ।

पंथ—ऊभी देखूं तेरी पंथ ।

पंथा—दोहूँ नयनों तेरे पंथा ।

मारग—कूफे केरा मारग सट ।

८७. हिन्दी क्षेत्र की उपभाषाओं से प्राप्त शब्द—

विशिष्ट 'देशज' शब्दों की अधिकता 'नौसरहार' में नहीं है तथापि हिन्दी की उपभाषाओं के प्रयुक्त शब्दों का विचार करना उपयोगी होगा ।

बाज (बिना)—यूं ये पानी बाज मुएं (अवधी—अव्यय-बाज-वर्ज)

बार (विलम्ब)—हरगिज तूं बारन लाव (अव—वार<सं वार) पृ० २५
ओ प्यारे वार न लाव ।

हिन्दवी में ब्रजभाषा के 'देशज' तथा 'तद्‌भव' शब्दों की विपुलता दीखती है । इसी प्रकार राजस्थानी तथा अन्य भी कई बोलियों के शब्द प्रयोग होते हैं । यथा—

डूंगर (पहाड) = राज-डूंगर (मराठी-डोंगर)
रूक, रूख (वृक्ष) = राज-रूख<वृक्ष
कंवर—(कुमार) राजकंवर.
बयन—(वचन)-पूर्वी हिन्दी
किवाड़—राज-किवाड<कपाट

बजर (ब्रज)—ब्रज-बजर
हिया (हृदय) ब्रज हिया
जीब (जिह्वा) ब्रज, राज—जीभ ।
बाट (मार्ग) ब्रज
घनक (घोष) ब्रज ।
ल्होडा (छोटा) राज ।
चूडा (चूडियां) राज ।
ब्याह (विवाह) राज । ब्रज.
कांजी (पेय) राज ।
ब्याना—(प्रसूति)-ब्रज
बारी—बाडी (वाटिका)—राज. ब्रज.
पत्याना—(विश्वास करना)—ब्रज.
नरडा (कंठ) बुन्देली
नेडे (निकट)—राज.
सँवारे (प्रातः)—राज. ब्रज.

८८. अरबी-फारसी से प्राप्त शब्द

बाहर से आये हुए मुसलमानों ने 'हिन्दवी' को बड़ी तत्परता से अपनाया । इन विभिन्न इस्लामी देशों से-अपनी-अपनी भाषा लेकर आने वालों में कोई एक सामान्य भाषा प्रचलित नहीं थी, अतः उन्हें यहाँ आकर अपने सभी व्यवहारों में स्थानीय भाषा 'हिन्दवी' को अपनाने में अधिक सुकरता एवं औचित्य प्रतीत हुआ । इन में कुछ लोग 'तुर्की' बोलते थे, कुछ 'अरबी', कुछ 'फारसी' और कुछ एशिया की अन्य भाषायें तथापि अरबी एवं फारसी की मुख्यता थी । ये दोनों धार्मिक एवं सांस्कृतिक भाषायें बन चुकी थी । इनमें भी मुगलों के आधीन 'फारसी' के अधिक महत्व प्राप्त कर लेने से उसी का अधिक प्रभाव 'हिन्दवी' पर पड़ता था । अरबी तथा तुर्की के जो शब्द हिन्दवी में पहुंचे वे प्रायः फारसी उच्चारण के अनुरूप ढल कर ही । इन्हीं शब्दों का विचार यहाँ किया जा रहा है ।

'हिन्दवी' साहित्य में आरम्भ से ही अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है, विशेषतः धर्म और तत्वज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों या प्रसंगों में । नौसरहार में प्रयुक्त अ. फा. के कुछ शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं—

अल्लाह—अल्लाह वाहेद हक सुभान
आस्मान—जिन यू सरज्या भुई अस्मान.
दोजख—दोजख जन्नत अर्श फलक
कलम—लौह कलम हम हूर—मलक

हैवान— हैवान,इंसा, मादां, नरां.
आतिश—आतिश, सोजां, बाद बरां
बुत— देव-परी बुत दैत-बला
कोह— नन्द समन्दर कोह तला
आलम— आफाक-आलम जीव-जहां
आब— माटी-कंकर आबे रवां
रिज्क— रिज्क मुअय्यन मौत—हयात

प्रायः अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग सावधानीपूर्वक शुद्ध रूप में किया है। यद्यपि छन्द में 'वज़न' के आग्रह वश 'जहान' को 'जहाँ' इन्सान' को इन्सां जैसे लघु रूपों में लिखा गया है । इसी प्रकार लिपिकार के प्रमादवश 'इम्ले' (वर्तनी) में भी अशुद्ध प्रयोग मिलते हैं । इन दोषों का विचार यथा स्थान किया जायगा ।

८९. हिन्दीतर आर्य भाषाओं से प्राप्त शब्द—

हिन्दीतर आर्य भाषाओं में-मराठी, गुजराती तथा पंजाबी से हिन्दवी में बहुत से शब्द आये हैं । इस प्रकार के बहुत से शब्द अपने मूलरूप में 'हिन्दवी' में देखे जा सकते हैं, जब कि कुछ शब्दों में थोड़ा ध्वन्यात्मक अन्तर दिखाई देता हैं । कुछ शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

गुजराती—

अंजु, अंझु— रोव लागी अंझू ढाल । (अंझु<अश्रु)
रावत— आवत रावत मारी हाक । (रावत=घुडसवार)
(मरा.—राउत, राज.-रावल<सं. राजपुत्र)
निपज— उसते निपजे पापी पूत । (निपज <प्रा. णिपज्ज)
चाड (परवा)— मुजकूं नाहीं तेरी चाड । (गु. चाड., मरा. पं चाट)

मराठी—

अमाल— जानों न था कुछ अमाल । (अमाल<आमाळ)
चाड (चाट)—मुजकूं नाहीं तेरी चाड । (चाड=(चाड=चस्का, चटक)
दोराही— मेरी दोराही भीतर रह । (दोराही<दुहाई<सं. दुर+हार+ई)
पझर, पाझर— न चक पाझर या कि झरा । (पाझर<प्रक्षर)
डोंगर — जिन यह सरज्या डोंगर कोह । (डोंगर<सं. तुग+अर)
पोंगडा, पुंगडा- पोंगडे लोगों केरे खुश होय । (पोंगडे<सं. पौगंड)
अन्दन — देवें जहाज अन्दन तुझ । (अंदन<अन्दण<स. अम्प-

दान, अनुदान)
लगन — के अब लागे लगन पाट । (लगन<लग्न=विवाह)
बनवा — डोंगर दूखों बनवा लाग । (बनवा<वणवा<सं. वन वन्हि)
ढोह — लोट न मुन्ज को डोह मंझार (ढोह<सन्दोह=गढा)
रान — छोड वसन्त उठ लेना रान । (रान<सं. अरण्य)
फली — ज्यूं ये पैठा फली फोर । (फली=पंक्ति)
(मुहावरा—फली फोडणे-शत्रुदल का भेदन करना)
कुराड — झार-न ज्यूं कें मार कुराड । (कुराड<कुर्हाड<कुठार)
करबी — घांस-करबी के ख्यालों हो । (करवी<कडवी)
पन्हा — पन्हा आया सीना भर । (पन्हा<पान्हा<सं. प्रस्नु. प्रा. पन्हओ)
बाजतंर — हर-हर जिसी बाजतंर । (बाजतंर<सं. वादित्र)
कापड — पहने कापड सब्ज हरे । (कापड=कपड़े)
राव — जहाँ पड्या सय्यद राव । (राव=राजा)
रायरोग — कुछ न कुछ उठ्या रायरोग । (रायरोग=रोग)

पंजाबी—

पंजाबी का योगदान हिन्दवी के विकास में महत्वपूर्ण है । पंजाबी शब्दों को यह विशेषता है कि वे अपने म. भा. आ. भा. काल के स्वरूप को प्रायः सुरक्षित रखे हुए हैं । हिन्दवी ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही कई पंजाबी शब्द अपना लिए हैं । यहाँ कुछ विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत हैं—

काँद— नफस अपना ले कांद संघात । (कांद<पं. कन्ध< सं. स्कन्ध =दीवार)
लोर, लोड— जे तूं स्यानी तो उस लोर । (लोडना=चाहना
सट — कूफे केरा मारग सट । (सट=छोडना)

९०. आर्येतर भारतीय भाषाओं से प्राप्त शब्द

द्रविण भाषायें—

हिन्दवी का व्यवहार क्षेत्र दक्षिण में द्रविण भाषी प्रदेशों को सीमाओं को भेदता है । विशेष रूप से आन्ध्र तथा कर्नाटक तो हिन्दवी-दखिनी हिन्दी के गढ़ बन गये थे । ऐसी स्थिति में द्रविड भाषाओं के शब्दों का हिन्दवी में समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही था किन्तु ऐसे शब्दों की संख्या निश्चित ही अत्यल्प है । यथा—

अड— आए वैरी अडे होय । (अड<कन्नड-अड्डा=बाधा)

तुकडे—तनके तुकडे बारहबाट । (तुकडे<क. तुकडि, मरा. तुकडा, हि. तुकडा)
दोरा— मूई पर्या दोरा आव । (दोरा=तेलगु-सरदार)
दाट— आये वैरी उपर दाट । (दाट<क. दट्ट=समूह)
लंका— दूखों लंका पकडी आग । (लंका-द्रविड=द्वीप)

उपसर्ग तथा प्रत्यय

९१. संस्कृत भाषा की विशिष्ट प्रकृति के अनुसार उसमें उपसर्ग तथा प्रत्ययों का असाधारण महत्व है । वहाँ उपसर्ग और अव्यय शब्द के अर्थ में विशिष्टता निर्माण करते हैं । इसी प्रकार धातु तथा प्रत्यय के योग से शब्द बनते हैं ।

संस्कृत में उपसर्ग को 'अव्यय' का एक भेद माना गया है । वहाँ उपसर्ग वह अव्यय है, जो धातु या धातु से बने विशेषण, संज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं । 'अष्टाध्यायी' में आता है 'उपसर्गाः क्रियायोगे, किन्तु आजकल इसका सम्बन्ध केवल क्रिया से न रह कर' 'शब्द के पूर्व जो वर्ण या वर्णसमूह अर्थ में प्रायः कुछ परिवर्तन या अन्तर लाने के लिए जोड़ा जाता है, उसे उपसर्ग कहते हैं ।' अर्थात् 'उपसर्ग' तथा 'निपात' में अब कोई अन्तर नहीं किया जाता ।

संस्कृत में सुबन्त या तिङ्न्त शब्द (प्रकृति+प्रत्यय) 'पद' कहलाता है । म. भा. आ. में 'सुप' तथा 'तिङ' प्रत्ययों का लगभग लोप हो गया तथा इन प्रत्ययों के अभाव में भी शब्द अर्थ प्रकट करने लगा । इस प्रकार म. भा. आ. तथा न. भा. आ. में प्रकृति-प्रत्यय की भिन्नता कुछ ही शब्दों में स्पष्ट रह गयी है ।

उपसर्ग—

उपसर्ग का कोई अपना अर्थ होता है या नहीं इस सम्बन्ध में संस्कृत वैयाकरणों में मतभेद है । कुछ विद्वानों का यह मत है कि अधिकांश उपसर्ग मूलतः स्वतन्त्र शब्द थे । उनका वर्तमान रूप मूल शब्द का संक्षिप्त या घिसा हुआ रूप है । दूसरी ओर शाकटायन, भर्तृहरि, कैयट तथा नागेश आदि के अनुसार उपसर्गों का स्वतन्त्र कोई अर्थ नहीं होता । न. भा. आ. भा. में बहुत से उपसर्ग निरर्थक हो गये हैं तथा शब्द समग्र पद के रूप में एक निश्चित अर्थ में रूढ़ हो गया है ।

हिन्दवी के कई शब्द संस्कृत के मूल उपसर्गों से युक्त हैं । अरबी तथा फारसी के कुछ उपसर्ग भी अ. फा. शब्दों के साथ हिन्दवी में प्रयुक्त हुए हैं ।

हिन्दवी में प्रयुक्त उपसर्गों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

९२. 'अ'=सं. 'अ'
बादल बिजली मेह अचूक ।
जैनग बाहे तुरत अधीर ।

९३. 'अत'<सं. 'अति'-
दोनों को करता तूं अत प्यार
९४. 'आ'<सं. 'आ'
तेरा पफर्या मैं आधार । (आ+धृ=धारणें)
९५. 'ड'<उत्, उड्—
थन्डी-थन्डो बाह् उसास । (उत्+श्वास)
९६. उत<सं. उत्–किस पुकारूँ हार उधार । (उत्+हार)
९७. औ<सं. अव-जानों ओ थी औतारी । (औतारी<अवतारी)
९८. दु<सं. दुर्-मेरी दुराड़ी भीतर रह । (दुर्+आर)
९९. नि=सं. नि.—
कैसे-कैसे शाह निपैंद । (नि+पैंद)
१००. निर=(क)<सं. निर्-मुझ बिन होते निरधारे । (निर+आधार)
उठकर फिर्या होय निरास । (निर+आस)
(ख) रो-रो हुआ अत नसास । (नि+श्वास)
वह क्या निचीत बैठा तूँ । (निः+चिंत)
१०१. ब्रि<सं. वि— जिसका सगला दुख बिसर । (बिसर<विस्मरण)
एकम रह्या सुद्द बिसार ।
१०२. स<सं स.— नयन सलोने ज्यूँ बादाम । (स+लोन)
१०३. सं<सम्— सम्मुख होए दोनों दल । (सम्+मुख)
१०४. सद्<सं. सत्- कोई सदमारग कोई गुमरह ।
१०५. सु<सं. सु.— अत सुरुप हम रोशन होय । (सु+रूप)
१०६. सौं<सं. सम्- सौंमुख होए अन्धे आय । (सम्+मुख)

अरबी-फारसी उपसर्ग

१०७. दर=(अधीन, नीचे, अन्दर) कासिक कों लोर तूँ दरहाल ।
याजीद था दर शहरे दमिश्क ।
१०८. ना--(=न) उम्र हमारी गई नाचीज ।
उन तरा से नाकस जोय । (ना+कस)
१०९. ब (=स, सह, साथ)--बराह खुदाबन्द ल्हरा व बड़ा ।
११०. बद (=कु, बुरा) इत पर यजीद बद हरकत ।
बदबख्त याजीद बदहरकत ।
१११. बर (उचित, सम्मुख) लेकर उठया यूँ बरफोर ।
बाजाँ हुसेन उठ बरफोर ।

११२. बा (सह, मुक्त) दुश्मन पाले बासद नाज ।
बातशरीफ होर निशानी खाम ।

११३. बि. बे (रहित, बिना)—होए देवपरी बेहोश ।
करसी उसको यूँ बेजां ।

११४. हम (सम, समान, सह)—अबूबकर-उमर हम उस्मान ।

११५. हर (प्रति)—करदा बाशंद हरयक खाब ।

प्रत्यय-कृदन्त तथा तद्धित

११६. हिन्दवी के प्रत्ययों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता हैं-(१) भारतीय भाषा के प्रत्यय, जिसके अन्तर्गत संस्कृत के प्रत्यय, उनसे विकसित प्रत्यय तथा हिन्दी के इतर प्रत्यय समाविष्ट हैं/ (२) अरबी-फारसी प्रत्यय ।

'हिन्दवी में मूल संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी होता है । ऐसे शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्ययों का योग होता है किन्तु यहाँ मुख्यतः 'तद्‌भव' तथा 'देशज' शब्दों के साथ प्रयुक्त तदभव तथा इतर प्रत्ययों का ही मुख्यरूप से उल्लेख किया जाना उपयोगी तथा अपेक्षित है । अरबी-फारसी के मूल प्रत्ययों का परिचय भी आवश्यक है, क्योंकि 'हिन्दवी में अ. फा. शब्दों की संख्या विपुल है ।

संस्कृत व्याकरण में जो शब्द क्रिया+प्रत्यय के योग से बनते हैं, उन्हें 'कृदन्त' तथा जो शब्द संज्ञा+प्रत्यय के योग से बनते हैं उन्हें 'तद्धित' कहते हैं । इसी आधार पर प्रत्ययों के दो वर्ग (१) कृत्प्रत्यय (२) तद्धित प्रत्यय बन जाते हैं किन्तु कई प्रत्यय ऐसे भी हैं जो कृदन्त तथा तद्धित दोनों प्रकार के शब्द निर्माण करते हैं । इसी कारण यहाँ कृदन्त तथा तद्धित प्रत्ययों को पृथक-पृथक न लिख कर, दोनों का एकत्र ही अकारादिक्रम से विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

११७. प्रत्यय-'अ'

कामताप्रसाद गुरु धातु के अंतिम अकार के लोप को स्वीकार करते हुए संज्ञार्थक 'अ' को मानते हैं ।[1] डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा भी धातुज संज्ञाओं को 'अ' प्रत्यय युक्त बताते हैं ।[2] डॉ॰ सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस 'अ' प्रत्यय का विकास संस्कृत के पुल्लिंगी शब्दों के प्रथमा ए. व. में प्रयुक्त अंतिम 'अः' से माना है ।[3]

धातु से बने 'अ' प्रत्ययान्त संज्ञा शब्दों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

चूक—जो उन लिख्या चूक नहीं । (चूक<चूकना)

बोल—अब तूं अपना बोल संकाल । (बोल<बोलना)
किस न परता कानों बोल ।

तूट— ऐसी हुई पानी तूट । (तूट<टूट टूटना)

११८. प्रत्यय-''आ''

'आ' प्रत्यय युक्त पुल्लिंगवाची शब्दों के उदाहरण निम्न प्रकार है :—

सगला—जिवकां सगला दुख बिसर । (सगला<सकल+आ)
जोडा— होर हुसेन जोडा ताया । (जोडा<जोडना-जोड+आ)
पूता — न कर पूता तूं बुद सुन । (पूता<सं. पुत्र<पूत+आ)
कंठा — पहरूँ कंठा जाऊँ परदेस । (कंठा<कंठ+आ)

११९. प्रत्यय-'अक'

'अक' का प्रयोग कई अर्थों का निर्माण करता है । भाववाचक, कर्तृवाचक, संबंधवाचक तथा लघुतावाचक संज्ञा शब्द इस प्रत्यय से बनते हैं । यथा—

भेदक—भेदक स्याना पदम सुभान (कर्तृवा॰ सं॰-भेद+अक=भेदक)
मासक—बाद अज इद्दत मासक तिन । (सबंधवा॰ सं॰-मास+अक=मासक)
धनक—जग के कानों धनक परी । (भाववा॰ सं॰-धन+अक=धनक)

१२०. प्रत्यय-'अन'

लोझन—लोझन कारन होए सवार । (लोझन<युध+अन)

१२१. प्रत्यय-'अर'

छोडे केते डोंगर—घाट । (डुंग (सं॰ तुंग)+अर, अथवा सं॰ दांग+अर)

१२२. प्रत्यय-'आन'

इस प्रत्यय के योग से भाववाचक, करणवाचक संज्ञा प्रातिपदिक व्युत्पन्न होते हैं ।

कित पर मांडया ये मंडान । (मंडन>मांडना+आन=मंडान)

१२३. प्रत्यय-'आनी'

एक कहानी लिखूं तुझ । (कहना+आनी+कहानी)

१२४. प्रत्यय-'आरा'

लेवें पेट कटारा घाल । (कटि+आरा, अथवा प्र. कट्ट+आरा=कटारा)

१२५. प्रत्यय-'आव'

इस के योग से भाव वाचक संज्ञा प्रातिपादिक व्युत्पन्न होते हैं—
कीता रोजे सात विदाव । (विदा+आव)
क्रिया के साथ 'आव' प्रत्यय का प्रयोग—
बीज में थे रुख उपाव । (उपजनाअ+आव)

१२६. प्रत्यय-'इन'

पापिन बंदी जन बैठी । (पाप+इन=पापिन)

१२७. प्रत्यय-'ई'

इस प्रत्यय का सम्बंध सं. 'इन' प्रत्यय से जोड़ा जाता है । इसके प्रयोग से भाव वा॰ संज्ञा तथा विशेषण शब्द बनते हैं ।
मेरे मनमें नाहीं दोई । (दोई<दो+ई इन्)

यूँ मैं हिन्दवी कर आसान । (हिन्दवी<हिन्दु+ई)
होऊँ जोगी पहरूँ भेस । (जोगी=जोग+ई)
भाई, मैना गोई होर । (गोई=गत्र+ई (इन्))

१२८. प्रत्यय–'ओली'
पात–पतोली शार लतीफ । (अवधी-पुतली, पात<पत्र+ओली)

१२९. प्रत्यय–'ड़ा'
इस प्रत्यय से राजस्थानी में लघुता या तुच्छता दर्शक संज्ञा-विशेषण बनते हैं । हार्नली इस की व्युत्पत्ति 'दृश' से बताते हैं । चटर्जी इसका सम्बन्ध 'वृत' से जोड़ते हैं ।
मानक दौड़ जीवड़ा ले । (जीवड़ा=जीव+डा)

१३०. प्रत्यय–'ना'
यह प्रत्यय सम्बन्ध द्योतक अर्थ में शब्द का अंश बना हुआ दीखता है–
जिस घर पून्यो का चन्दना । (चंद्र>चंद+ना)

१३१. प्रत्यय–'पन'
हार्नली ने इसे सं. त्व, त्वन्>प्रा. प्पं, प्पण, से व्युत्पन्न बताते हैं–
ल्लोड़पने का तेरा मोत । (ल्लोड<लघु. ल्होड+पन)

१३२. प्रत्यय–'ला'
यह प्रत्यय विशेषण या सम्बंधसूचक रूप बनाने के लिए प्रयुक्त होता है । चटर्जी ने इसका सम्बंध संस्कृत के 'ल' से जोड़ा है ।
अंधला लोरे अंख्याघर । (अंधला=अंभ+ला)

१३३. तुलनात्मक प्रत्यय.
हिन्दवी में संज्ञा प्रातिपदों के साथ अपादानकारक के प्रत्यय से, तैं, थैं इत्यादि के प्रयोग द्वारा तुलनात्मक भाव व्यक्त किया जाता है । नौसरहार में-तें, थें- का प्रयोग अधिक हुआ है । यथा–शंगरफ थे भी रतरे सक्त । (थें=से, अपादान कारक)
रेशम थें भी सक्त अरवार ।

अरबी-फारसी प्रत्यय

१३४. अरबी-फारसी प्रत्ययों का प्रयोग सामान्यतया उन्हीं भाषाओं के शब्दों के साथ हुआ है । इन प्रत्ययों से युक्त शब्द इस प्रकार रूढ़ हो गये हैं कि वे शब्द के अभिन्न अंग कहे जा सकते हैं । उदाहरण–

१३५. अत्–भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है । उदा० गफलत केरी नींद न सोय (गाफिल+अत=)

१३६. अफ्रोज–कर्तृवाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त प्रत्यय–

यों माँ रोवे दुखअफ्रोज । (दुख+अफ्रोज=)

१३७. आ–विशेषणवाची प्रत्यय–
दाना आकिल मर्दे पीर । (दानिश्तन+आ=)

१३८. आना, आनी–संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए–
खुश नूरानी दयानतदार । (नूर+आनी=)

१३९. आल–सम्बंधसूचक प्रत्यय–
वह पड रहे जम दुम्बाल । (दुम+आल=)

१४०. इस्तान–हों कत मूला राजिस्तान । (राज+इस्तान)

१४१. ख्वार–तू तो मेरा हलालख्वार ।
जफन बच्चे शीरख्वार । (शीर+ख्वार)

१४२. खोर–सब हरामखोर कारुंदे ।

१४३. गार–(कर्तृवाचक)–आलमपूरा परहेजगार ।

१४४. गीं–गीन–रहे गमगीन होय केख । (गम+आगीन>जीन)
होए नबी अंदोहगीं । (अंदोह+गीं)

१४५. गीर–(विशेषज्ञ वाचक) उम्मतकेरा वह दस्तगीर (दस्त+गीर)

१४६. जाद–अली फातमा के जहजाद ।
होवन लागी तो जहजाद ।

१४७. दार–शौहरदार परायी जोय । (शौहर+दार)
खुश नूरानी दयानतदार ।
शाह हसन था रोजादार ।

१४८. नाक–होवा गाढ़ा यों गमनाक ।

१४९. पोश–करदा सरपोश आसमानी ।

१५०. बन्द–अली केरे भी दिलबन्द ।

१५१. बर–देव-परी जिस फरमांबर ।

१५२. माल–भीजे कपड़े सब रुमाल । (रु+माल=रुमाल)

१५३. वर–(युक्त के अर्थ में) सरवर बैठया ताजवरी । (ताज+वर+ई)

१५४. वान–हसन जैसा पुशतेवान

१५५. वार–हाँ ऐ नबी बुजुर्गवार ।

१५६. सार–अंग खतीफा काकुमसार ।

अनुकरणात्मक शब्द

१५७. अधिकांश अनुकरणात्मक संज्ञाओं का निर्माण ध्वनि के अनुकरण से हुआ है । प्रकृति-प्रत्यय युक्त संज्ञाओं के अतिरिक्त इन अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग भी भाषा में महत्वपूर्ण होता है । इन शब्दों को शब्दयुग्म कहा जा सकता है । उदाहरण–

बिजली ज्यूं के कड-कड तूट ।
ऐ मैं दूखों चुन-चुन बोल ।

शब्द द्वित्व—

१५८. हिन्दवी में अनेक प्रकार के शब्द द्वित्व की प्रवृत्ति मिलती है । मुख्य प्रकार निम्नलिखित है—

१. शब्द बिना परिवर्तन के दुहराया जाता है । शब्द के दोनों अंशों को मिलाकर अर्थ लिया जाता है, जो प्रायः 'प्रति' या 'हरेक' का भाव सूचित करता है :—

कैसे कैसे मर मर गये ।
रच-रच लीखे सीधे खोल ।
थंडी-थंडी बाह उसास ।
फिर फिर रोये नारा मार ।
दरेगां दरेगां पडया यूं खलव । (फारसी शब्द युग्म—दरेगां-दरेगां)

२. शब्द के दूसरे अंश में कुछ परिवर्तन होता है । अर्थ दोनों शब्दांशों का एक ही होता है :— कधीं थरहर बरसे म्हेवें ।
कहीं हाड-हीडा कहीं सीस-गाल ।

३. कुछ शब्दों में प्रथमांश को एकारान्त बनाया जाता है । इस प्रकार के शब्द-युग्मों का उपयोग प्रायः क्रिया विशेषण के समान होता है । इन शब्दों के साथ कोई विभक्ति नहीं लगती तब भी अधिकरण कारक का भाव व्यक्त होता है तथा अर्थ में 'प्रत्येक' का बोध होता है ।

हाटेहाट — तन हिंडाया हाटेहाट । (अग)
रातेरात — तुझ पर भी उन रातेरात ।
खाकेखाक— जाता है नित खाके खाक ।
सांधेसंद—हारूं हारूं सांधेसंद ।

४. कुछ शब्दों में द्वितीय अंश का प्रथमाक्षर बदलता है किन्तु शेष अक्षर यथावत बने रहते हैं । भाषावैज्ञानिक इस प्रकार के शब्दों को विशेष महत्वपूर्ण मानते हैं ।

बींगातींगा ना मोजूं ।

५. कुछ शब्दों में मुख्य अंश द्वितीय अंश के रूप में उच्चरित होता है और प्रथम अंश में मुख्य शब्द के द्वितीयाक्षर को परिवर्तित करके रखा जाता है ।

कुछ न उठया रायरोग ।

६. एकार्थक दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है, प्रयोजन अर्थ पर बल देने का होता है । दीस-संवारे चंदर जोत । (दीस < दिवस, सँवारे < सकाल = प्रातः)

चूक-खता का ऐब न कर ।
खडे घाव बाजे मार-चोट ।

७. दो विरुद्धार्थक शब्दों का अन्त्यानुप्रास के आधार पर युग्म बनाया जाता है ।

ऊँचा ऊँचा अड के बोल ।
देखें सब कम-बेरी ढिंढोल । (कम-वेश)

८. दो भिन्नार्थक शब्दों का युग्म बनता है, जिसमें द्वितीय अंश प्रायः निरर्थक होता है :—

बोल्या-चाल्या कीता निल ।
जहां मिले पानी-चार ।

९. दो भिन्न भाषाओं के समानार्थी शब्दों के युग्म 'नौसरहार' में विशेषरूप से दर्शनीय हैं—

ताबूत-डोला ताबूत डोला दूर दराज ।
ठोंगर-कोह जिन यह सरज्या डोंगर कोह ।

इसी प्रकार निम्नलिखित शब्द दर्शनीय हैं—

दाद-दरख्त, रीत–रसम, जंगल-रान जखमां-घाव,
बेद-तबीब-अबकम रहे बेद-तबीब । (सं.बेद > वेदा, तबीब-अ पु.)
भेद-तंचफा-वेद-तंचफा खडे किते से ।

१०. अरबी-फारसी और तुर्की के समानार्थी किन्तु भिन्न भाषा के शब्दों के युग्म 'नौसरहार' में विशेष दर्शनीय हैं । यथा-

खुर्द-सगीर-जघां थे ये खुर्द-सगीर । (खुर्द = छोटा-फा. वि.)
(सगीर = छोटा अ. वि.)

संज्ञा

अविकृत तथा विकृत रूप :—

१५९. ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से न. आ. भा. ने अपनी लिंग-वचन कारक-व्याख्या में अधिकांशतः नया मार्ग अपनाया है, चाहे कुछ पुराने रूप भी साहित्यिक भाषा में मिल जाएँ । म. भा. आ. ने संस्कृत की लिंग वचन कारक सम्बन्धी व्याख्या को स्वीकार नहीं किया था । न. भा. आ. ने 'तत्सम' एवं 'तद्भव' संज्ञाओं को स्वीकार करते हुए भी, उनकी रूप रचना स्वतन्त्र रखी ।

हिन्दवी अपने अखिल भारतीय रूप में, अपने कुल की मध्यवर्ती बोली-भाषा से लेकर सुदूर दक्षिण में भिन्न कुल की भाषाओं के बीच विकसित हुई है । अतः हिन्दवी की वचन तथा लिंग सम्बंधी नियम-व्यवस्था पर्याप्त शिथिल दिखाई देती है ।

वचन :

जहाँ तक 'वचन' का सम्बंध है हिन्दवी के पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग रूप में खड़ी बोली के समान विशेष अंतर नहीं पड़ता। हिन्दवी में वचन व्यवस्था अत्यंत सरल है, इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं :—हिन्दवी में पुल्लिग शब्दों का अधिकृत रूप अपरिवर्तित नहीं रहता। आकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में अंतिम स्वरों के आधार पर बहुवचन बनाते समय विशेष अंतर नहीं पड़ता। पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग के कारण भी शब्दों के बहुवचन में अधिक परिवर्तन नहीं होता।

प्रा. भा. आ. तथा म. भा. आ. से प्राप्त शब्दों के बहुवचन ही नहीं, अरबी-फारसी के शब्दों के बहुवचन भी हिन्दवी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार बनाती है, यद्यपि एतदर्थ अ. फा. के नियम ही प्रयोग में लाये गये हैं।

हिन्दवी की वचन व्यवस्था बहुत कुछ हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों की वचन व्यवस्था के अनुकूल है।

१६०. पुल्लिग-अविकृत तथा विकृत संज्ञाओं का वचन परिवर्तन

१. (क) अकारांत :—

अकरांत पुल्लिगवाची शब्दों के अविकृतरूप का बहुवचन का प्रयोग करते समय 'अ' को 'आ' होता है।

ए नौ बाबाँ नौसरहार।	(ए. व. बाब-बहु. व. बाबाँ)
हैवाँ, इंसां माद-नराँ।	(ए. व. नर, ब. व. नराँ)
ईद बराताँ बार त्योंहार।	(ए. व. बरात, ब. व. बराताँ)
रगाँ खींच्या नाड़ तलफ।	(ए. व. र. ग, ब. व. रगाँ)
सुनो अजीजाँ याराँ हो।	(ए व. अजीज, ब. व. अजीजाँ)

'नौसरहर' में इसी ढंग से अरबी-फारसी शब्दों के बहुवचन रूप बनाये गये हैं। पंजाबी तथा राजस्थानी में अकारान्त शब्दों के बहुवचन बनाने के लिए इसी प्रकार का परिवर्तन होता है।

बीम्स के अनुसार पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग वाची शब्दों के अविकृत अवस्था में बहुवचन बनाते समय हिन्दी की जिन उपभाषाओं और बोलियों में अन्तिम 'अ' को 'ए' 'अन' या 'आ' होता है, वे सब संस्कृत के अकारान्त नपुंसक लिंगी शब्दों के प्रथमा के ब. व. में प्रयुक्त होने वाले 'आनि' प्रत्यय का प्रभाव व्यक्त करते हैं। राजस्थानी में 'आन' वाले ब. व. रूप मिलते हैं। यह 'आन' कथित 'आनि' का ही विकृत रूप है और इस 'आन' से ही आगे चलकर 'आ' का विकास हुआ है।

(ख) अकारांत पुल्लिगवाची शब्दों के विकृत रूप का ब. व. में प्रयोग करते समय भी 'अ' का 'आँ' होता है। यथा—

माँ—बापाँ के मनके सत। पृ. ४ (अली) (ए. व. माँ. बाप, ब. व. माँ-बापाँ)

(ग) अकारान्त पुल्लिग शब्द के बहुवचन में 'अ' की 'ओं' अथवा 'औं' बनाने की प्रवृत्ति हिन्दवी में पायी जाती है। आज की खड़ी बोली में इस प्रवृत्ति का अस्तित्व है।

बीम्स के मतानुसार विकारी रूप में प्रयुक्त होने वाला यह 'ओ' अथवा 'औ' सं. षष्ठी के ब. व. प्रत्यय-आनाम् > प्रा. आणं का रूपान्तर है। उदा०

(अ) वो तीनों कूं उन रिज्क दिया।	(ब. व.-तीनों कूं)
रुखों सेंती पान बिखेर।	(ब. व. रुखों सेंती)
दामों केरा आस पकड़।	(ब. व. दामों केरा)
मारे जाएंगे खरगों सात।	(ब. व. खरगों सात)
(ब) उसी के बोलों यूं पत्याव।	(ए. व. बोल, ब. व. बोलो)
हातों पावों उठया जाल।	(ए. व. हात, ब. व. हातों)

(घ) अ>अन

नौसरहार की अलगढ़ प्रति में इस नियम का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। पुल्लिग शब्दों के सविभक्तिक प्रयोग में अन्तिम अकार के साथ 'न' और जोड़ते हैं। यह रूप भी सं षष्ठी के ब. व. आनाम्' अथवा प्रा. आणं' से बना हुआ है। हिन्दवी में षष्ठी के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी अंतिम आकार के साथ 'न' का प्रयोग होता हैं।

उदाहरण—वह तूं केतों सुखनका। (अग) (ए. व. सुख का ब. व. सुखन का)
आये लोकन के जिवडे दर। (अग) (लोकन के<लोगों के)
क्यों क्यों मारे खरगों न सात। (अग) ए. व. खड्ग ब. व. खरगन)
बहुतन केरा तूं आधार। (बहुत-बहुतन केरा)

२. आकारान्त :—

(क) अकारान्त शब्दों के समान ही आकारान्त शब्दों के बहुवचन बनाने के लिए एक निश्चित प्रणाली का अभाव दिखाई देता है। हिन्दवी में आकारान्त पुल्लिग शब्दों की अविकृत अवस्था में जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

आ>ए	मेरे पोंकरे लागे तुझ।	(पोंकपा—पोंकरे)
	गोर सिराने नारे मार।	(नारा-नारे)
	मानक मोती हीरे जड़।	(हीरा-हीरे)
	शक्कर तब सब हीरे दाँत।	(हीरा—हीरे)
	सब्जबाहां केले खांव।	(केला-केले)

आ>ए के विषय में भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि यह संस्कृत सर्वनामों के प्रथमा के बहुवचन सम्बन्धी कारक चिन्ह 'ए' के प्रभाव के कारण है।

(ख) आ>ओं

विकारी बहुवचन बनाते समय अन्तिम 'आ' को 'ओं या औं' में परिवर्तित कर विभक्ति लगाते हैं।

संस्कृत में सम्बंध कारक के ब. व. के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय 'आनम्> प्रा. आनम् से इस 'ओं' का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। उदाहरण :

होर इन पोंगडों कारन तुझ। (ए. व. पोंगड़ा ब. व. पोंगड़ों)

(ग) आ>अन

आकारान्त शब्दों के विकारी बहुवचन बनाते समय 'आ' का 'अन' में परिवर्तित कर विभक्ति लगाते हैं। यह रूप भी संस्कृत षष्ठी बहुवचन 'आनाम्' अथवा प्रा. 'आणं' से विकसित है। उदाहरण—

ज्यूं तूं अपने प्यारन पर। (ए. व. प्यारे पर. ब. व. प्यारन पर)

३. ईकारान्त—

ई>यां--सविकसिप ईकारान्त शब्द के ब. व. में 'ई' को 'यां' में परिवर्तित करके कारक चिन्ह जोड़ा जाता है। इस 'यां' में 'य' श्रुति के रूप में तथा 'आं' सं. आनाम् का परिवर्तित रूप है। उदहरण—

जानों मोत्या केरा हार। (ए. व. मोती केरा–ब. व. मोत्यां केरा)

१६१. स्त्रीलिंग-अविकृत तथा विकृत-संज्ञा का वचन परिवर्तन

१. अकारान्त—(क) हिन्दवी में अकारान्त स्त्रीलिंगी शब्दों के बहुवचन में भी अंतिम अकार को 'आं' बनाते हैं, जो संस्कृत में नपुंसक लिंगी प्रथमा के बहुवचन वाले प्रत्यय 'आनि' से विकसित माना जाता है। (आनि>आन्>आं) राजस्थानी की मारवाडी तथा मेवाडी बोलियों में यह रूप प्रचलित है।

हूरां जन्नत आयां रोई। (ए. व. हूर, ब. व. हूरां)
ऐसां बातां उस सूं कर। (ए. व. बात, ब. व. बातां)

(ख) स्त्रीलिंगवाची अकारान्त शब्दों के विकारी रूप में भी अ>आं के बाद कारक चिन्ह लगाते हैं—

तेयां बातां (को) उन कोत्या रद्द। (ए. व. बात को. ब. व. बातां को)
मीठयां बातां उस को लाव। (अग)

२. ईकारान्त—ई>यां

(क) ईकारान्त शब्दों के बहुवचन में 'आं' प्रत्यय जुड़ता है, जो 'य' श्रुति के कारण 'यां' बन जाता है। संस्कृत नपुंसक लिंगी प्रत्यय 'आनि' से आं का सम्बध पहले बताया जा चुका है। उदाहरण—

बाल पट्टयां सब लीता कोंछ। (पट्टी-पट्टयां)

काहलियां मेर्यां केते से। (मेरी-मेर्यां)
काहल्या नफीर्यां केते से। (अली) (नफीरी-नफीर्यां)
इहां आज लोहूक्यां नद्यां बहे। (नदी-नद्यां)
खिदमतगारां बांद्यां ले। (बांदी-बांद्या)
दायां नित-नित दान समेट। (दाई-दायां)

(ख) स्त्रीलिंग के ईकारांत शब्दों का विकारी बहुवचन बनाते समय भी 'ई' का 'यां' होता है। यहां भी आं>आनाम् से तथा 'य' श्रुति रूप में आया है।

हरन्यां भीतर चीता ज्यूं। (ए. व. हरिणी भीतर, ब. व. हरन्या-भीतर)

१६२. अरबी-फारसी बहुवचन

अरबी-फारसी शब्दों के साथ हिन्दवी प्रत्ययों का प्रयोग कर बहुवचन रूप बनाये जाते है किन्तु नौसरहार में अ. फा. व्याकरण के अनुसार भी अ. फा शब्दों के बहुवचन रूप बनाए जाते हैं। यहां कुछ अरबी-फारसी नियमों से बने बहुवचन के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(क) कुछ शब्दों का बहु वचन शब्दारम्भ में 'अ' के आगम तथा मध्य में स्वर परिवर्तन से बनता है। यथा—

मुल्क विलायत आकताआत। (ए. व. कतअ–ब. व. अकताआत)
कहें जिब्रील यूं अखबार। (ए. व. अबर-ब. व. अखबार)
कोई न अछे यार असहाब। (ए. व. साहिब–ब. व. असहाब)
आफात आलम जीव-जहान। (ए. न. उफ़ुक–ब. ब. आफ़ाक)
अर्वाह रसूलों बी. बी. बेशक। (ए. व. रुह—ब. व. अर्वाह)
अर्श कुर्सी हफ्त अफलाक। (ए. व. फ़लक–ब. व. अफ़लाक)

(ख) कुछ शब्दों में आरम्भिक वर्ण में परिवर्तन करके बहु वचन बनाया जाता है। यथा—

दाई मुशाता या खवास। (ए. व. खास-ब. व. खवास)

(ग) कुछ शब्दों के मध्य में वर्णागम होता है अथवा मध्य के किसी वर्ण को परिवर्तन करके बहु वचन बनाया जाता है।

हमचूं मशायक शेख जिया। (ए. व. शेख-ब. व. मशायख)
जित दिन होवेंगे ये मकतूल। (ए. व. कत्ल-ब. व. मकतूल)
वहीं लिख्या अराइन। (ए. व. अर्ज ब. व. अराईन)
ल्हरे बरे मर्द औरत। (ए. व. औरंत ब. व. औरात)
जुलला खलाइक आलमरा। (ए. व. खलील ब. व. खलाइक)
शुहदा करबल शाह हुसेन। (ए. व. शहीद. ब. व. शुहदा)

लिंग और विभक्ति

१६३. लिङ्गभेद का ध्यान संज्ञा और क्रिया के संदर्भ में विशेष रूप से रखा है । हिन्दवी में आजकी खड़ीबोली के समान ही दो लिंग हैं । स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग । नपुंसक लिंग का इसमें पूरी तरह अभाव है ।

१६४. लिंग परिवर्तन-पुल्लिंग से स्त्रीलिंग—

भाषा में कुछ शब्द मूलतः स्त्रीलिंगवाची या पुल्लिंगवाची होते । इन के अतिरिक्त अधिकांश शब्दों में प्रत्यय लगाकर अथवा वर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा लिंग परिवर्तन किया जाता है । बहुत से प्रत्ययों का परिचय पीछे दिया जा चुका है । यहाँ मुख्यतः लिंग परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होने वाले हिन्दवी के कुछ प्रत्ययों का का विवरण दिया जा रहा है ।

(१) अन—इस प्रत्यय के योग से पुलिंगवाची शब्दों को स्त्रीलिंगी बनाया जाता है—

पापन बान्दी जन बैठी । (पापी—पापन)
चन्दररूपी ऐ भोगन । (भोगी—भोगन)

२. ई—अकारान्त पुल्लिंगी शब्दों का स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई' प्रत्यय का उपयोग होता है ।

लेकर जा तूं यह निशानी । (निशान—निशानी)
रहया यों कर मूंडी तल । (मूंड—मूंडी)

३. आ>ई अकारान्त पुल्लिंगी शब्दों को ईकारान्त बनाकर स्त्रीलिंग वाची रूप बनाए जाते हैं । इस 'ई' का सम्बंध संस्कृत के 'इका' प्रत्यय से जोडा जाता है ।

देवें बेटी सजोजाह । (बेटा+ई=बेटी)
खूब सलोनी मन लुभाय । (सलोना+ई=सलोनी)

१६५. स्त्रीलिंग से पुल्लिंग

हिन्दवी में कुछ अकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्दों से पुल्लिंगरूप बनाने के लिए उन्हें अकारान्त बनाया जाता है :—

जिस घर पून्योका चन्दना । (चान्दनी-चन्दना)
ब्रेबें पेट कटारा घाल । (कटि+आर=कटार—कटारा)

१६६. लिंगव्यवस्था

हिन्दवी' की लिंग व्यवस्था बहुतांश शिथिल है । इस का मुख्य कारण सम्भवतः यह था कि भाषा शैशवावस्था में थी । साथ ही मुस्लिम संतों और इतर जनों की मातृभाषा अरबी, फारसी या तुर्की थी, अतः वे भारतीय भाषा की लिंग व्यवस्था को यथावत नहीं अपना सके । दूसरी ओर संस्कृत के अनेक शब्दों का अपभ्रन्श में अन्य लिंग में प्रयोग होने लगा था ।

अरबी-फारसी में लिंग व्यवस्था हिन्दी जैसी नहीं है, किन्तु जब उन भाषाओं के शब्द हिन्दवी में लिए गये तो क्रिया में लिंग भेद के कारण यह आवश्यक था कि अ. का. शब्दों को भी हिन्दवी की अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल पुल्लिग में विभक्त किया गया । यह विभाजन प्रायः लेखक पर निर्भर करता था, अतः कई विषमताएँ मिलती हैं ।

(क) म. भा. आ. से प्राप्त शब्द का भिन्न लिंग में प्रयोग—

ऊभी देखूं तेरी पंथ । (सं. पथ> म. भा. आ. पंथ-पुल्लिग> हिन्दवी>पंथ. स्त्रीलिंग)
जिस पर पुन्यो का चंदना—(सं. चन्द्रिका>हिन्दी—चाँदनी>स्त्रीलिंग>हिन्दवी चंदना पुल्लिग)

१६७. विभक्ति

संस्कृत में कारक चिह्न संज्ञा का अंग बनकर प्रयुक्त होता था । बिना सुप् प्रत्यय के किसी संज्ञा को पद नही कहा जा सकता था परन्तु म. भा. आ. में कारक चिन्हों (सुप् प्रत्ययों) के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग होने लगा । अपभ्रन्श में इस प्रथा का अपेक्षा कृत अधिक प्रचलन दिखाई देता है । अपभ्रन्शकाल में कारक चिन्ह संज्ञा के अंग न बनकर स्वतन्त्र रूप से वाक्य विन्यास में सहायता देते थे ।

कारक चिन्हों के विकास के विषय में भाषा वैज्ञानिकों का अभिमत यह है कि वाक्य प्रयुक्त संज्ञाओं से क्रिया को सम्बद्ध करने लिए संज्ञा के अतिरिक्त ओ शब्द प्रयुक्त होते थे । अधिक व्यवहार के कारण इस प्रकार के शब्दों तथा अव्ययों में बहुत परिवर्तन हुआ ।

अपभ्रन्श के समान न. भा. आ. में कारक चिन्ह अथवा परसर्ग के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है । व्रज, अवधी आदि में यह प्रवृत्ति प्राचीन समय से है । हिन्दवी पर इन्हीं बोलियों का विशेष प्रभाव होने से कारक चिन्हों के विषय में अधिक ध्यान नहीं दिया जाता । खड़ीबोली के प्रायः कभी कारक चिन्ह हिन्दवी में वर्तमान है ।

१६८. कर्त्ता—'ने'—नौसरहार में कर्त्ताकारक के इस चिन्ह का पूरीतरह अभाव है । यह स्थिति एक नवीन समस्या को उपस्थित करती है । इस स्थिति से कलाम के इस मत की पुष्टि करती है कि आज से तीन सौ वर्ष पूर्वी हिन्दी में 'ने' का प्रयोग नहीं होता था ।[1] डॉ० श्रीराम शर्मा ने दक्खिनी साहित्य के आधार पर कैलाग के विचार का विरोध किया है । उनका कथन है—'दक्खिनी साहित्य के प्रकाशन के

---

१. कैलाग—ग्रा. हि. लै. १९६, पृ० १३१.

पश्चात् यह तथ्य सामने आया है कि आज से छ: सौ वर्ष पहले इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता था, यद्यपि उस के प्रयोग के लिए नियम स्थिर नहीं हुआ था।"[१] इस विषय में हमारा विचारा यह है कि डॉ० शर्मा ने जिस दक्खिनी साहित्य की चर्चा की है,' "नौसरहार" उसका एक स्पष्ट अपवाद है और यह प्रमाणित करता है कि नौसरहार की हिन्दवी परसर्ग हीन अवस्था की परिचायक है। अशरफ से पहले ख्वाजा बन्दे नवाज हुए हैं तथा उनकी रचनाओं में 'ने' का प्रयोग हुआ है। इसके विपरीत 'नौसरहार' की केवल दो प्रतियाँ मिलती हैं तथा दोनों में 'ने' चिन्ह का अभाव है, अत: निश्चित ही ये प्रतियाँ प्राचीन है।

हिन्दी से सम्बन्धित उपभाषाओं अथवा बोलियों में केवल राजधानी में 'ने' का प्रयोग प्राचीन काल से होता है, किन्तु वहाँ यह कर्मकारक का चिन्ह है। राजस्थानी, पुरानी बैसवाडी, अवधी, भोजपुरी, मागधी और मैथिली में कर्त्ताकारक के चिन्ह का अभाव हैं।

राजस्थानी के समान मराठी तृतीया विभक्ति के एकवचन में तथा गुजराती में द्वितीया में 'ने' का उपयोग होता है। किन्तु हिन्दवी में ऐसे प्रयोग भी नहीं मिलते। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि—

१. नौसरहार की हिन्दवी (१ वीं शताब्दी) में कर्त्ता अथवा किसी अन्य कारक में चिन्ह के रूप में 'ने' का पूरी तरह अभाव है।

२. अन्य भाषा एवं बोलियों के समान कर्म अथवा कारण में भी हिन्दवी (नौसरहार) 'ने' का प्रयोग नहीं करती।

विभक्ति रहित या कर्त्ताकारक के परसर्ग 'ने' से युक्त कर्ताकारक के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

हसन कह्या सुन रे मीत।
बार्जां नबी कहया यूँ।
जिन ये सरज्या भुई-असमान।
कौन कौन पैदा कीते शाह।
जिब्रील मुहम्मद अखीबात।

१६९. कर्मकारक :— (द्वितीया—कूं, कू, एं, ओं.—अन्.

(क) कूं, कू—खडीबोली में द्वितीया की विभक्ति 'को' है। हिन्दवी में 'को' के अतिरिक्त कूं, कू, का प्रयोग भी मान्य है। वस्तुत: लिखित भाषा में उर्दू लिपि के कारण 'को' तथा 'कू' या 'कूँ' में कोई फर्क नहीं किया जा सकता। दोनों वर्ण 'काफ' 'वाव' के योग से लिखे जाते हैं। हिन्दवी के कूं, कू अथवा हिन्दी

१. श्रीराम शर्मा—द. हि. उ. वि.—पृ.१८३.

के 'को' का पुराना रूप को है।[१] अत: हिन्दवी में इन तीनों चिन्हों को स्वाभाविक मानना चाहिए।

हिन्दवी का 'को' बीम्स के मतानुसार इस प्रकार उत्पन्न हुआ है—कक्ष> कक्खं>काहं>कौं> को। 'कूँ' का सम्बन्ध ब्रज के 'कहँ' 'कहुँ' अथवा 'कहुँ' रूपों से सम्बन्धित है पुरानी पंजाबी में इसका रूप—कहु, कउ, को, कू और कूं रहा हैं। 'नौसरहार में इन कारक चिन्हों के उदाहरण निम्न प्रकार है—

हसन कों तूँ जीवों मार।
माँ-बाप उसको रोता देखा।
वो तीनों कूं उन रिज्क दिया।
ले अब दोनों कूँ बांट पसनाव।
पैगम्बर को पूछा भई।

(ख) 'ए'—नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में कारक चिह्न शब्द के साथ नहीं जुड़ता। संस्कृत में विभक्ति शब्द से अभिन्न होती थी। न. भा. आ. भा. में कुछ प्रयोग ऐसे हैं जो संस्कृत की व्यवस्था का स्मरण कराते हैं। इस प्रकार के प्रयोग प्राय: कर्म, कारण तथा सप्रदान कारक में पाये जाते हैं। इसके लिए शब्द को एकारान्त अथवा एंकारान्त बनाकर प्रयोग करते हैं।

हिन्दी की कई उपभाषाओं में 'आहि' प्रत्यय शब्द के साथ जोड़ा जाता है। एकारान्त तथा एंकारान्त रूप इसी 'आहि' से व्युत्पन्न माने जाते हैं।

सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार संस्कृत के अधिकरण कारक के एकवचन में पुल्लिंगी शब्द के साथ जो 'ए' चिह्न लगता है, उसी से 'ए' ऐ अथवा एँ का सम्बन्ध है। हार्नली और भण्डारकर ए, एँ, ऐ<अहि अथव अहिं को संस्कृत के सम्बन्ध कारक को विभक्ति 'स्य' से जोड़ते हैं, जबकि डॉ. बाबूराम सक्सेना और टेसिटोरी इसका सम्बन्ध करण कारक के बहुवचन की विभक्ति 'भि'>ऐ: से बताते हैं। हिन्दवी में इसके उदाहरण—

लीना कूफें आया चड़।

(ग) ओं—द्वितीया के बहुवचन में बिना किसी कारक चिह्न का प्रयोग किए शब्द के साथ 'ओं' जोड़ते हैं। इस 'ओं' का सम्बन्ध संस्कृत की षष्ठी विभक्ति के बहुवचन से है।

तिरतों मारे मूतलक डूब।
मुयों जिवावे, जीतों मार।
हर-हर रुखों लावे फल।

१. डॉ. श्रीराम शर्मा—द. हि. उ. वि. पृ. १८६.

(घ) अन्—ब्रजभाषा के तिर्यकरूप में लगने वाले इस प्रत्यय का प्रयोग हिन्दवी में कुछ स्थलों पर हुआ है—

एकन पाले लाडलड़ाव।
एकन राखे आस तुड़ाव।

(ङ) कर्म कारक के विभक्ति रहित प्रयोग विपुल मात्रा में पाये जाते हैं—

बैठा कूफा काबिल कर। (कूफा को)
दुश्मन पाले बासद नाज। (दुश्मन को)
सीना कूटे दाँत पकड।
कोई न सक्या दरक उतार।
दीठ सुहावे जीव घुमाय।
होंठ सलोने मन लुमाय।

१७०. तृतीया (करण कारण)—ते, तें थें, सात, सेती, से, सूं, आ. ओ, ओं—

(क) ते, तें, थें—ते अथवा तें का प्रयोग ब्रज और अन्य भाषाओं में तृतीया और पंचमी में होता है। कुछ बोलियों में 'थें' अथवा 'थीं' का प्रयोग भी किया जाता है। पंजाबी में 'ते' तथा गुजराती में 'थी' का प्रचलन है। 'थें' में महाप्राणत्व का प्रभाव है।

बीम्स ने ते, तें, थे, थी अथवा थीं का सम्बन्ध संस्कृत के क्रिया विशेषण सूचक 'तस्=तः प्रत्यय से जोड़ा है।[1] हार्नली इसका निर्माण इस प्रकार बताते हैं—सं.-'तृ>तरित रूप> प्रा. तरिए>तइए>तें। अनुस्वार अनियमित है। कुछ विद्वान ते, तें, थें का उद्भव स. शब्द 'स्थान' से मानते हैं। कन्नौजी, ब्रज तथा गढ़वाली में यह कारक चिन्ह मिलता है।

उदाहरण— उसते निपजे पापी पूत।
उसतै मुख न मोरे रे।
मेरे वंस थे गुजरे नां।
रेशम थें भी सक्त अरवार।
शंगरफ थें भी रतरे सत्त।
अब कहाँ थे एका एक।

(ख) सुं, सूं, से—

तृतीया विभक्ति में मुख्यतया सूं > सो का प्रयोग होता है। 'से' का प्रयोग क्वचित ही मिलता है। बीम्स के मतानुसार खड़ी बोली का 'से' 'सो' से रूपान्तरित हुआ है और सों 'सम्' का विकृत रूप है। हार्नली ने 'से' की उत्पत्ति प्रा. सन्तो, सुन्तों तथा सं. अस् (धातु) से मानी है। हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियों में आज भी 'सू' तथा 'सो' का उपयोग होता है, जो 'समम्' के अधिक निकट प्रतीत होता है। मारवाड़ी में तृतीया तथा पंचमी में 'सूँ' का उपयोग होता है। हिन्दवी में इसके उदाहरण—

ऐसाँ बाताँ उस सूँ कर।
एकादी औरत सूँ हो जूथ।
या के करू तो उस सों भोग।
औरत से तूँ खिलवत कर।

(ग) सात-'सात' (साथ) का भी तृतीया विभक्ति के रूप में प्रयोग किया जाता है—

मारे जाएँगे खरगों सात।
ले उस सीने सात पकर।

(घ) सेती—'से' की व्युत्पत्ति के विषय में हार्नली द्वारा निर्दिष्ट प्रा. सन्तों अथवा 'सुन्तो' से ही सम्भवतः हिन्दवी के 'सेती' का विकास हुआ है। मागधी में 'सती' का प्रयोग होता है। हिन्दवी के उदाहरण—

खुशी सती अज हजरत पाक।
सीम तराजू सेथों तोल।
चींत उचाया हसन सेथी।
हुसेन सेतीं हरगिज दन्द।

(ङ) ओ-ओं—स. षष्ठी के बहुवचन वाची प्रत्यय 'आम्' अथवा 'आनाम्' से 'ओं' अथवा 'ओ' का उद्भव हुआ। हिन्दवी-हिन्दी में इस कारक चिन्ह को शब्द के साथ जोड़ देते हैं और कोई अन्य कारक चिन्ह नहीं लगाया जाता—

भूकों मारे प्यासे जाल।
जीवों मार्या सर काट्या।
जीव की होसों या लीखे।
लेवे खरगों सीस उतार।

१७१. चतुर्थी—(सम्प्रदान कारक)—कूं, को, खातिर, कारन, बाहें—

(क) कूं. को. (व्युत्पति के लिए देखिए—द्वितीया-कर्म कारण)

कर्म तथा सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त 'को' अथवा 'कूं' की व्युत्पति सम्भवतः दो भिन्न शब्दों से हुई है। अर्थ की दृष्टि से कर्म कारक का 'को' 'कक्ष' शब्द से और सम्प्रदान कारक का 'को' 'कृते' का विकास मानना चाहिए। हिन्दवी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

वो ही औरत मुज कूँ ल्याव।

---

१. बीम्स-कं., मा. आ. भाग २, पृ० २६३ (२७३)

आने मुज को वह आरुस ।
जिसको थी तूँ जीव प्रान ।

(ख) सम्प्रदान कारक के लिए निम्नलिखित शब्द भी प्रयुक्त होते हैं—

१. खातिर— तो होवें मेरी खातिर शाद ।
मैं मन ल्याया तुझ तन खात ।

२. कारन— मेरे कारन यही कुछ बात ।
अपने कारन बात कही ।
होर इन पोंगडों कारन मुझ ।
नबी कारन तो उस वक्त ।

३. बाहें--(वास्ते, के लिए) बाहें की व्युत्पति 'वास्ते' से सम्भव है ।
नबी बाहें देते आन ।
हसन बाहें गुसल दे ।

१७२. पंचमी-(अपादान)—ते, तें, थें, थे, सती, सेती, सूँ, से, सें, तो.—

(क) ते, तें, थें, थे-(व्युत्पत्ति के लिए देखिए तृतीया)
उस ते निपजे पापी पूल ।
उसतें मुख न मोरे रे ।
तुझ थे बिसर्या है माँ-बाप ।
मेरे बंस थे गुजरे नाँ ।
अब हूँ जो कुछ तुझ तें सो ।

(ख) सती, सेंती, सूँ, से, सें--
इन सभी की व्युत्पत्ति के लिए देखिए तृतीया विभक्ति का विवरण ।

उदाहरण— दुश्मन सती राजी होय ।
दुश्मन सती हरगिज कोई ।
तो हौं सुख सूँ बैसों राज ।
हुसेन सेंती हरगिज दंद ।
रुखों सेंती पान विखेर ।
उस सूँ उठ कर भावी भी ।
औरत से तूँ खिल्वत कर ।

१७३. षष्ठी (सम्बन्ध कारक)-का, की, के, केरा, करी, केरे, ए.

(क) का, की, के—

'का' की व्युत्पति बीम्स के मतानुसार-सं. बृहत्‌ >प्रा. करिओ >केरो और और केरको >केरओ और केरा >करा >हि. का ।

खड़ी बोली में ये चिन्ह विशेषण के अंश के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिस का

अर्थ होता है-सम्बन्धित, अधिकृत, सम्पर्कित । इसी कारण संज्ञा के लिंग, वचन, का प्रभाव 'का' तथा 'केरा' पर भी आकारान्त शब्द के समान पड़ता है । हिन्दवी में भी यही अवस्था है । उदाहरण—

लेकिन हुक्म इलाही का ।
राजिक सफ्लयों का मुतलक ।
साये आलम का नबी ।
तूँ है दोनों जग का सरवर ।
बल्कि पडया जीव का धाक ।
धर्या उसका नाम यजीद ।
औरत की अब खाई सौं ।
तौहीद हक की मौंजूँ आन ।
उन को अंखों राई लून ।
दोनों प्यारे नबी के ।
अली के ये दोय करजन्द ।
माविया के सब आये हात ।

(ख) केरा, केरी, केरे,—चटर्जी इन कारक चिन्हों का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'कार्य' से मानते हैं ।[1] ये सभी चिन्ह विशेष के अंश के रूप में प्रयुक्त होते हैं । अतः आकारान्त संज्ञा या विशेष के अनुसार लिंग और वचन के कारण इनमें परिवर्तन होता है । हार्नली इन चिन्हों का उद्भव सं. 'कृत मानते हैं ।[2] हिन्दवी में इन चिन्हों के कारण पूर्वी हिन्दी से निकटता दिखाई देती है । अवधी में 'कर' का तथा मागधी में 'केरा' 'तथा' 'केरे' का प्रयोग होता है । उदाहरण—

दोनों जग केरा सरवर शाह ।
दीने हकीकी केरा शाह ।
उहाँ केरी माती आन ।
इस दुनिया केरे मकरों कैद ।
औरत केरा छोर्या खयाल ।
आनों जन्नत केरी हूर ।
याजीद भाधी केरे कान ।
जैसे हीरे केरी खान ।
इहाँ आज कियां नद्यां बहे । (कियां <कर्यां <केरी)

---

१. चटर्जी—ओ, डे, वे, ५०३ पृ० ७५३
२. हार्नली—कं, ग्रा, गौ. ३७७ पृ० २३७

(ग) सं. सप्तमी विभक्ति के एक वचन के 'ए' को शब्द के साथ जोड़कर षष्ठी का रूप बनाया जाता है—

घन्दे भीतर गिरफ्तार ।
बेटा सीने सात पकर ।
सब्ज वाहाँ केले खाम्ब ।

अन्तिम उदाहरण में केला—केले (विकृत रूप) के साथ विभक्ति का अभाव है । ऐसे प्रयोग नौसरहार में अधिक मिलते हैं ।

१७८. सप्तमी-(अधिकरण कारक)—पे, पैं, उपर, म्याने, मनें, मूँ, मों, मान्ह, मेह, मोह, में, मझार, ए, एं, बिच, भीतर.

(क) पे, पैं, पर, उपर—

इन सारे चिन्हों का सम्बन्ध सं. 'उपरि', से है । पंजाबी में 'परो' रूप प्रचलित है । ब्रज में 'पै' चलता है । दक्खिनी के 'पो' का प्रयोग हिन्दवी में नहीं हुआ है । उदाहरण—

दब दब पाँव गोशा पैं । (अग)
पे दरवाजा ताक्या तन ।
भावी हुआ भुई पर काट ।
फिर-फिर रोय मुंड पर पड़ ।
हसन के जीवपर मांडया थाल ।
इब्ने अब्बास उस उपर यही ।
ऊपर इलाही चाव तुझा ।
बहिश्तो केरे कांदे पर ।

पे दरवाजा, ऊपर इलाही-इन रूपों में संज्ञा से पहले परसर्ग का प्रयोग विशेष दर्शनीय है । यह क्रम व्यत्यय छन्द के आग्रहवश हुआ है ।

(ख) मने, म्याने, महं मांह, मान्ह, मझार, में, मूँ, मों,—

हार्नली ने सं. मध्ये 'अथवा मध्यम्' से इनका सम्बन्ध जोड़ा है । मध्य < मधि < महि < माहि < मह या महं । ह > य और य > ई = माहि > महं > में, मों । इसी प्रकार मझार 'मध्यम्' का रूपान्तर है । मने, म्याने भी 'मध्ये' + स्थाने से व्युत्पन्न है 'मान्ह' मांझ से बना है यहाँ 'ज' का लोप पाया जाता है । उदाहरण—

फौज मनें थे चल्या यों ।
अबर मनें थे चंदर ज्यों ।
दश्त करबल म्याने उस ।
ऐसे दश्त म्याने किसे मुख अजब ।
दोजख म्याने उसका ठार ।

करबल मंस सब ऊभी गई ।
यह क्यूँ एड़े उस जंगल मांह ।
कीता कूके मान्ह लय ।
छोट न मुझ को कोह मझार ।
हुली बहिश्ती उस में घर ।
उन में जुबती लाई घर ।
ना पीत संघाती घर में ओव ।
मुझ मूँ नाही ऐसी रीत ।
मेरे जीव मूँ यही चाव ।
यह है मेरे मन मूँ चाव ।
भावी मूँ मन मूँ नीयत ।
तो होय मेरे जीव मों सुख ।
जीव मों एकर्या अत सूरात ।
याजीद पकर्या मन मों रोस ।
घर मों लाई मोत देर ।
मन में चोक्या हैबत खाय ।
जग मों बारे नांव रहिया ।

(ग) बिच, भीतर—इन अव्यय शब्दों का भी सप्तमी के चिन्ह रूप में प्रयोग किया गया है । हार्नली ने सं. 'वर्त्ये' से बिच (बीच) को निष्पन्न माना है ।[1] डा० श्रीराम शर्मा ने अपभ्रंश शब्द 'विच्च' की ओर संकेत किया है । भीतर की उत्पत्ति सं. 'अभ्यन्तरे' से है । उदाहरण—

इस अन्देशे बिछ मुझ बाह्या । (बिछ < बिछ < बीछ = मध्य)
उन दोन्हों भीतर लाया सोच ।

(घ) ए. एं.—संस्कृत की सप्तमी विभक्ति का प्रत्यय 'ए' शब्द का अंग बनकर प्रयुक्त होता है तथा किसी अन्य कारक चिन्ह का प्रयोग नहीं होता—

नाहीं तो सदा सीने दुख ।
एस दुख ये सीने सख्त ।
माथे जानों सूरज पाट ।
भाविया उस अन्देशे पड़ ।
अख्या अंझू सीने घम ।
जालूं तुझको चूल्हे घाल ।

---

१. हार्नली कं. प्रा. गो. ३७८ पृ० २४१

(ङ) ऐसे प्रयोग बहुतायत से मिलते हैं जिनमें अधिकरण कारक की विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। यह प्रत्ययाभाव की प्रवृत्ति सभी कारकों में समानरूप से देखी जाती हैं।

तुर्कों हिन्दु ल्याया दंद। (तुर्कों हिन्दु में)
अब तूँ कानों पहन सके। (कानों में)
रहे हैरां सिर घर हाथ।
हरम तुमारे उम्मे सलीम।
जानों लाई अंग अंगार।
उस के घर यह औरत खूब।
इतने दिन में गफ्लत था।
जिस घर पून्यों का चन्दना।
अंख्यां अंझू सीने गम।

१७५. सम्बोधन—रे, एने, ऐ, ओ.

ये चिन्ह अन्य कारक चिन्हों के विपरीत शब्द के आरम्भ में लगते हैं।

केरे मेंरे शाह मतार।
वा ऐ मेरे शाह पतार। (अग)
ए तूं मुझ थीं जाता रे।
ओ हुसेन सवारूँ बाल।
ओ प्यारे मुझ को लेस।
ये तूं सुन ऐ ज्यूँ के कान।
हाँ एं नबी बुजुर्गवार।
अब तू सुन ऐ नबी खलील।
के ऐ जिब्रील हीर एक बात।
राखी थी उस रे मूसे।
ओ हुसेना चन्दर गुन।

१७६. हिन्दवी में अधिकरण कारक के चिन्ह के साथ कुछ स्थलों पर दूसरे कारक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। यथा—

अधिकरण+अपादान

पाथर में थें नीर बहा।
बीज में थें रुख उपाव।
बसरे में थें उतीच रात।

अधिकरण+सम्बन्ध—

बन्दे के भीतर गिरफ्तार।

सर्वनाम

१७७. हिन्दवी में प्रयुक्त सर्वनामों के निम्न लिखित छः मुख्य भेद हैं—

१. पुरुष वाचक सर्वनाम—हों, मैं, तूँ
२. निजवाचक ,, —आप-अपना,
३. निश्चय वाचक ,, —यह-ए, यू, वह, वो, ओ, ऊ, सो।
४. अनिश्चय वाचक ,, —कोई, कुछ।
५. सम्बन्ध वाचक ,, —जो, सो।
६. प्रश्न वाचक ,, —कौन, क्या।

खड़ी बोली के सभी मूल सर्वनाम और उनके विकारी रूप हिन्दवी में प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त ब्रज, राजस्थानी तथा अन्य भाषा-बोलियों में प्रयुक्त कुछ रूप हिन्दवी में उपलब्ध होते हैं।

१७८. (अ) पुरुष वाचक सर्वनाम—पुरुष वाचक मैं, तूँ के निम्नलिखित मुख्य रूपान्तर पाए जाते हैं :—

	उत्तम पुरुष		मध्यम पुरुष	
	एक वचन	बहु वचन	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप-कर्त्ता	मैं, हों,	हम	तूँ तैं,	हम
विकारी रूप	मूंज, मुझ	हम को	तुम, तुजे	तुम, तुमना
कर्म	मृंजे, मुंजकों	हमना	तुजकों, तुझकों	तुमकों
सम्बन्ध	मेरा, मेरे, मेरी	हमारा हमारी	तेरा, तेरे, तेरी, तुझ, तुझा	तुमारे, तुमारा तुमारी

१. मैं—अविकारी एक वचन में 'मैं' का प्रयोग होता है। 'में' सम्बन्ध संस्कृत के उत्तम पुरुष सर्वनाम 'अस्मद' के तृतीया के एक वचन रूप 'मय.' से माना जाता है। बीम्स, कैलाग, चटर्जी वर्मा, आदि सभी इस विषय में एक मत हैं। सं. मय> प्रा. मडाँ, मए,>रप, मइं, मई>हि मैं। कामता प्रसाद गुरू ने इसकी व्युत्पत्ति सं. अहम्>प्रा. अम्भ>मैं मानी है किन्तु यह मत मान्य नहीं है। 'में' का आनुनासिक अंश, डा० चटर्जी के अनुसार, सं. में, मानी है किन्तु यह मत मान्य नहीं है। 'मैं' का अनुनासिक अंश, डॉ० चटर्जी के अनुसार सं. तृतीय-'एन' के प्रभाव से हो सकता है। डॉ० वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी भी प्रायः इस मत से सहमत हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी-अप. 'मइँ' में 'ई' को अनुनासिकता पूर्ववर्ती 'म्' के प्रभाव स्वरूप मानी है। इस 'मइँ' में ही 'मैं' बना। हिन्दवी का उदाहरण—

यूं में हिन्दवी कर आसान।

२. हौं—ब्रज, राजस्थानी के हौं, हूँ का अविकारी एक वचन में प्रयोग होता 'नौसरहार' में 'मैं' के साथ 'हौं' का भी बराबर प्रयोग हुआ है। परवर्ती

दक्खिनी में सम्भवतः इसका प्रचलन नहीं रह गया था । हार्नली, पिशेल तथा बूलनर तथा डॉ० चटर्जी 'हौं' की व्युत्पत्ति सं. अहकं > अहअं > हउं > हौं, मानते हैं । डॉ० वर्मा ने अप-'हमं' से व्रज के 'हउ' या 'हौं' का विकास सम्भव माना है नौसरहार के उदाहरण—

तब हौं अछुगाँ आ नो ।
लुत्फ करूं हौ तुज बाजाँ ।
ही उस लोरूं मुज क्या गत ।
वह हौं लागी जिसकी आस ।
'हौं' के विकृत रूप का प्रयोग नहीं हुआ है ।

३. हम—'मैं' के अविकारी एवं विकारी बहु वचन रूप में 'हम' का प्रयोग होता है । हार्नली 'हम' की उत्पत्ति वैदिक संस्कृत 'अस्मे' से मानते हैं ।[१] तेसितोरी, डॉ० चटर्जी, डॉ० वर्मा का भी यही विचार है । सं.-अस्मे > पा.-अम्हे > प्रा.-अम्हे > अप. अम्हे > अम्ह > हम । एकाध बार 'हमन' का प्रयोग भी हुआ है, जो बहु वचन सूचक है । हिन्दी में 'न' प्रत्यय जुड़ता है जो सं. 'आनि' से सम्बन्धित है, ब्रज भाषा में भी 'न' जोड़ कर बहु वचन बनाया जाता है । अन्य शब्दों के अनुकरण से बहु वचन वाची 'हम' से साथ 'न' का प्रयोग किया हुआ मिलता है—

मज्ञायख हम चूं शेख जिया ।
के तूँ आव मिल हमूँ में ।
जब के हम तुम होएँ एक ।

(४) मुझ—मुज, मेरा—

'मैं' के विकारी एक वचन रूप 'मुझ' तथा 'मेरा' बनते हैं । अल्पप्राण की प्रवृत्ति के कारण 'मुझ' के स्थान पर 'मुज' का प्रयोग भी होता हैं । हार्नली ने सं. 'मदीय' से इसकी व्युत्पत्ति सम्भावित मानी थी ।[१] किन्तु बाद में उन्होंने तथा सभी अन्य विद्वानों ने इसका विकास सं. 'मह्य्' (सम्प्रदान ए. व.) से स्वीकार किया है । सं. 'मह्यम्' > पा. मय्हं > प्रा. मज्झं > अप. मज्झ, मज्झु > हि. मुझ । चटर्जी के मतानुसार सं. मह्यय <प्रा. मज्झु> मझ की उत्पत्ति हुई[२] मराठी में 'मझ' से सम्बंधित माझा, माझी आदि रूप प्रचलित है । 'मुझ' में 'मु' के 'उ' के विषय में बीम्स का विचार है कि सं. 'मह्यम्' का मुझ, 'तुभ्यम' से 'तुझ' के सादृश्य के कारण हुआ । डॉ० वर्मा तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी ने इसे स्वीकार किया है ।

'मेरा' के सम्बन्ध मे चटर्जी का विचार है कि षष्ठी के चिन्ह 'केरे' के योग

१. हार्नली—क. ग्रा. गौ. (४३०) पृ० २८२
२. चटर्जी—ओ. डे, बे, (५४२) पृ० ८१३

से यह रूप बना है । 'मेरा' का प्रयोग खड़ी बोली के नियमानुसार केवल षष्ठी विभक्ति में मिलता है । 'मुझ' से मुझ+ए=मुझे रूप बनता है । डॉ० भोलानाथ तिवारी का विचार है कि अप. तुज्झे के सादृश्य पर अपभ्रंश काल में 'मुज्झें' रूप बना ।[१]

उदाहरण—कर्म-सम्प्रदान—मुजे वाअल्ला बोल न धर ।
वो ही औरत मुज कूँ ल्याव ।
करजंद नाहीं मुज को कोई ।
यह दोनों मुज कूँ अव प्यारे ।
करण-अपादान—वह मुझ वफा करसे ना ।
जो कुछ मुझ थें हुई तकसीर ।
तोन निपजे मुज थें पुत ।
सम्बन्ध —मेरे चीते क्या अब होय ,
के होये तूँ मुझ दामाद ।
हौं उस लोरूँ मुज क्या गत ।
मेरे वंस थें गुजरे ना ।
दुनिया दौलत मुझी जिसम ।
(मुझ माझा, मुझी, शब्द मराठी सर्वनामों से व्युत्पन्न लगते हैं ।)
अधिकरण —अब मुझ पर्या दुख मारी ।
रहे जुल्म मुझ पर व औलाद पर ।
सौ दुख हुआ मुज पर असर ।
तेरा हक है मुख पर यह ।

२. चटर्जी ओ. ने. बे. (५४३ पृ० ८१३)

४. हम, हमें, हमना—

'मैं' के विकारी बहु वचन में मुख्य रूप से हम तथा हमें का प्रयोग मिलता हैं । अलीगढ़ प्रति से प्रायः विकारी रूप हमन, हमना, भी मिलते हैं । बीम्स तथा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[२] 'हमें' का विकास प्रा. अप.—अम्ह इँ से मानते हैं । उदयनारायण तिवारी 'तुमें' में 'ए' का आगमन सं. 'एव' से हुआ बताते हैं ।[३] प्रथम मत ही अधिक ग्राह्य है । 'हमना' का अन्त्य 'ना' षष्ठी के कारक चिन्ह 'ना' से सम्बन्धित है । 'हमारा' में 'आरा' षष्ठी के 'केरा' अथवा 'कर' से सम्बन्धित है । डॉ० उदयनारायण

१. भोलानाथ तिवारी—हि. भा. पृ० ५५३
२. धीरेन्द्र वर्मा—हि. भा. इ. ८१३
३. उदयनारायण तिवारी—हि. भा. उ. वि. ४५१

तिवारी ने 'हमारा' की उत्पत्ति 'अस्म-कर' से मानी है। हमारी में 'ई' स्त्री प्रत्यय लगता है। उदा०—

अविकारी—मशायख हमचूं शेप जिया।
विकारी-कर्म-सम्प्रदान
हमें तो खुदलई अम्बार। (अग)
करण-अपादान—
आव हुसेन अब हम तैं पास।
सम्बन्ध— बात हमारी भी गुजरानी।
उम्र हमारी गयी नाचीज।
अधिकरण— के तूँ आव मिल हमूं पें।
के तूँ आव मिल हमना में। (अग.)
यूँ तुम मांडया हम पर आज।
कें यूँ करते हम पर जोर।
हमें ऊपरी उन्हाँ नागहाँ।

१७९· मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम—तू, तूं ते—

मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम के अविकारी रूप में तू या तूं का प्रयोग होता है। 'तू' की व्युत्पत्ति सं. 'त्वम्' से मानी जाती है अनुनासिकत्व के लोप के कारण 'तू' का कभी-कभी प्रयोग होता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 'तू' का सम्बन्ध सं. त्वया> प्रा. तुम, तुअं,> अप. तुहं—से बताया है किन्तु डॉ. श्रीराम शर्मा ने 'त्वम्' को ही आधारस्वरूप स्वीकार किया है। हार्नली, चटर्जी तथा डॉ. सक्सेना भी इसका स्रोत 'त्वम' को ही मानते हैं।

हिन्दवी में मध्यम पुरुष अविकारी एकवचन के उदाहरण—

अब तूं कानों पहन सके।
जाई दिखा अब तूं हर ठाँव।

'ते' का विकास' अपभ्रन्श के मध्यम पुरुषवाची 'तइँ' से माना जाता है। बीम्स के अनुसार 'मैं' के अनुकरण पर 'तैं' का प्रचलन हुआ। उदाहरण—

तैं उस जीवं मार्यां वाह।
के ऐ मावी तैं जिस आस।
उसका जीव तैं लेतीबार।
उसी सूँ केती तैं ये रोत। (अग)
जिस को दौलत तैं दुखबाज।

२. तुम—मध्यम पुरुषवाची आविकारी तथा विकारी बहुवचन में 'तुम' का प्रयोग होता है। स. 'त्वम्' से तुम का विकास माना जाता है। डॉ. उदयनारायण तिवारी सं. युष्म> प्रा. तुम्ह> हि. तुम विकास मानते है।[1] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तुम का सम्बन्ध प्रा. तुम्हे> सं. 'तुभ्यं' से मानते हैं।[2] द्वितीय मत अधिक ग्राह्य है। उदाहरण—

उन की तुम कों बखत्यारी।

३. तुझ, तेरा, तो—मध्यम पुरुष तुम' के विकारी रूप में 'तुझको' प्रयोग होता है। "तुझ' को सं. तुह्यम् से व्युत्पन्न माना जाता है। डा. धीरेन्द्र वर्मा ने सं. तुभ्यं,> प्रा. तुह> तुज्ह'> तुझ विकास बताया है।[3] उदयनारायण तिवारी का भी यही मत है। 'तो' की उत्पत्ति, 'त्वम' से मानी जाती है। 'त्वम्' के साथ षष्ठी सूचक 'केर' या 'केरा' के योग से 'तेरा' की प्राप्ती हुई। उदाहरण—

कर्म-सम्प्रदान—तुझ को बारे सवाब होय।
अल्ला बक्शे तुझ रहमत।
जिन्हों भेज्या, तुज, मुज पास।
करण-अपादान—कह आल्ला तुझ थैं जम खुशनूर
मावी जो है तुज से सीत।
ज्यूं होवे तुझ थैं तदबीर।
राजी करूँ सूँ धी।
जोरे तुज सूं पिरत सनेव।
अब हों तुज सों कोल करूँ।
सम्बन्ध— अच्छे तेरी यादगारी।
तेरे प्यारे मारन जोग।
जन्नत शरबत लहू तेरा।
अखूँ तुझ दरसन चितवर।
ऊपर इलाही आव तुझा।

'तेरी' का विकृतरूप 'तेरियाँ' भी एकाधदार प्रयुक्त है-

तेरियाँ बातां उन कीता रद्द।
(ए. व. तेरी, ब. व. तेरियाँ, तेर्या)
अधिकरण— याजीद मांडया तुझपर गदर।

४. तुम्ह, तुमन—हिन्दवी में 'तुम' के समान 'तुम्ह' का भी विकारी बहु वचन रूप मैं कहीं-कहीं प्रयोग होता है। 'तुम्ह' का विकास प्रा. तुम्ह, तुम्म> अप.

---

१. उ. ना. तिवारी—हि. भा. उ. वि. ४५१
२. धी. वर्मा—हि. भा. इ. पृ. २८२
३. वही—पृ. २८२

तुम्ह, तुम्हें, तुम्हाण, तुम्हहीं अथवा तुम्हइ या तुम्हही से हुआ माना जाता है । 'तुमन' में 'न' बहु वचन का सूचक है, ब्रज आदि में इस प्रकार का प्रचलन है । कर्त्ताकारक में अविभक्तिक 'तुमें' का प्रयोग होता है, जो 'तुमन' से उद्‌भूत है—

जाओ तुम्हे उन सूं लड़ ।

कर्म-सप्रदान—

तुम्हन अखूं सच्चा भाव खोलकर । (अग)

१८०. निज वाचक सर्वनाम :—आप, आपस,-अपना,

'आप' का प्रयोग नौसरहार में केवल निजवाचक अर्थ में हुआ है । आदर-वाचक अर्थ में इसका प्रयोग नहीं हुआ है आदरणीय व्यक्तियों के सम्बोधन में भी 'तू' और 'तैं' का ही प्रयोग सर्वत्र हुआ है ।

उदाहरण—हौं तुझ बेटी तूं मुझ बाप ।
तूं अत बूढा हौं हूँ जान ।

'आप' की व्युत्पत्ति के विषय में हार्नली का मत यह है कि सं. आत्मा (आत्मन्) प्रा. अप्पा या अप्पो तथा ब्रज आपु > ख. बो. आप विकास हुआ है ।[1] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इसी मत को मानते हैं । चटर्जी भी प्रा. अप्पा का अप्प से आप की व्युत्पत्ति मानते हैं [2] 'आप' के लघुरूप 'अप' में निश्चयवाचक अव्यय 'ही' के ईकार के योग से 'अपें' रूप की निष्पत्ति होती है ।[3] उदाहरण—

कर्त्ता— अपें छुप्या खेलें छन्द ।
अपें अपसों होवा जुद ।
अपें करें उनका चाव ।

सम्बन्ध— अपनी-अपनी रुत उदास ।
बेटी अपनी द्यूं तुझ ब्याह ।
नफस अपनां ले कादं संघात ।

१८१. 'अपना' में 'ना' सम्बन्ध कारक प्रत्यय जुड़ा है । इसका प्रयोग केवल सम्बन्ध कारक में ही मिलता है । स्त्री प्रत्यय 'ई' जुड़ने पर 'अपनी' रूप बनाता है ।

१८२. अपस—निजवाचक 'अपस' की व्युत्पत्ति काल्पनिकरूप—सं. आत्मस्य प्रा. आप्यस्य, हुई है । नौसरहार में इस रूप का भी प्रयोग हुआ है । यथा—

यूँ देख अपस देता सट ।
घूल मिलाई आपस से । (अग)

१. हार्नली—कं, आ. गो. (४४५) पृ० ३०२
२. चटर्जी—ओ. डे. वे, (५९१) पृ. ८४६
३. डॉ. श्रीराम शर्मा—द. उ. वि. (२०१)

१८३. निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—यह-ई, ए-यू-ये ।

१. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने यह, ये की व्युत्पत्ति सं. एषः, एते, एतानि आदि रूपों से स्पष्ट की है ।[1] हार्नली भी इसका सम्बन्ध 'एष' से जोड़ते हैं[2] ।चटर्जी ने निकटवर्ती निश्चयय वाचक के समस्त रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के 'एत' से माना है ।[3] 'एतत्' के 'तत' अंश के लोप से 'ए' शेष रह जाता है । 'ए' का भी 'यह' के अर्थ में प्रयोग होता है । जो लहंदा से प्रभावित माना जाता है ।[4] इस 'ए' से भी 'यह' तथा ये' का विकास सम्भव है । अवधी के अविभक्तिक कर्त्ता कारक के 'यु' तथा बिहारी के अविभक्तिक कर्त्ता के 'ई' रूपों का भी हिन्दवी में प्रयोग हुआ है ।

ई. ए. यू. के प्रयोग की स्थिति में यह तथ्य प्रमाणित होता है कि हिन्दवी पर पूरबी बोलियों तथा लहंदा का भी प्रभाव रहा है ।

ए—ए मैं दूखों चुन-चुन बोल ।
यु—यू क्या देखे नयन पसार ।
यू—जिन यू सरज्या समन्दर केर ।
ये—जिन ये सरज्या भुई असमान ।

२. ये—निश्चय वाचक निकटवर्ती सर्वनाम 'पद' अविकारी बहुवचन में 'ये' के रूप में प्रयुक्त होता है । हार्नली. डॉ. वर्मा डॉ. उ. ना. तिवारी ने सं. एते (एतद् का प्रथमा बहु. व.) से इसका सम्बन्ध माना है । सं एते > प्रा. एए, एये (य-श्रुति) अप. एद > ये रूप में इसका विकास हुआ है । उदाहरण—

पैदा कीते ये दिनरात ।
एक-एक बोल ये मानक मोल ।

३. इस-विकारी एक वचन में 'यह' का 'इस' होता है । चटर्जी के मतानुसार सं. 'एतत्' के पुल्लिगवाची सम्बन्ध कारक के एकवचन 'एतस्य' से इसकी व्युत्पत्ति हुई है । उदाहरण—

कर्म—सम्प्रदान—जो इस मारे सो वो कौन ।
सम्बन्ध— नौसरहार इस धर्या नांव ।

('यह' के विकारी बहु वचन में 'इन' रूप होता है । 'इन' का प्रयोग नौस-

१. धी. वर्मा—हि. भा. इ. (२८३)
२. हार्नली—ई. हि (४३८)
३. चटर्जी—ओः डे वे, (५६६) पृ० ८२९.
४. डॉ. श्रीराम शर्मा—द. हि. उ. वि. २०३.

रहार में कहीं नहीं हुआ है।

१८४. निश्चयवाचक दूरवर्ती तथा अन्य पुरुष वाचक—वह, वो, ओ.

१. अविकारी एक वचन में वह, वो तथा 'ओ' तीनों का प्रयोग मिलता है। चटर्जी काल्पनिक रूप 'स' अप, प्रा. औ. से 'ओ' की उत्पत्ति मानते हैं।[1] हिन्दी की कई बोलियों में अन्य पुरुषवाची तथा दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के रूप में 'ओ' तथा 'ऊ' चलता है। 'ओ' अथवा सं. अदस् के किसी सविभक्ति के रूप से 'वह' का विकास हुआ। वास्तव में इस सर्वनाम की व्युत्पति अनिश्चित है। 'वो' 'व' श्रुति साथ (व+ओ=वो) वना होगा। हिन्दवी में इन रूपों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

ओ—नबी आखे ओ गुजरान।
ओ सब छोटे मेरी आस।
बाजां ऊं यूं दरसाज। (ऊं ओ)
वह—उम्मत केरा वह दरतगीर।
वो— वो ही सके ना होर कोय।
वो जिस लोडे तिस रहे।

(अविकारी बहुवचन में 'वह' का 'वे' होता है। नौसरहार में 'वे' का प्रयोग नहीं हुआ है।)

(२) उस—उन।

विकारी एकवचन में 'वह' स्थान पर 'उस' होता है। सं. सर्वनाम 'अदस' के कल्पित रूप 'अव' के षष्ठी एक अवस्य > अवुस्स से इसके उद्‌भव का अनुमान है। विकारी बहुवचन में 'वह' के स्थान पर 'उन' होता है। सं. 'अदस्' के कल्पित 'अप' के षष्ठी के बहुवचनवाले रूप 'अवानाम्' से 'उन' की उत्पत्ति मानी जाती है। 'उन' के विकल्प में 'उन्हें' तथा 'उन्हों' का प्रयोग होता है। इन के साथ विभक्ति जोड़ी जाती है। हिन्दवी में इस प्रकार के पर्याप्त प्रयोग हैं। 'इन्हें' को डॉ. वर्मा विकृत रूप मानते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी—तुम्हें के सादृश्य पर 'उन' से उन्हें का विकास मानते हैं।[2] उन्हीं में अन्त्य 'ओं' संज्ञा के विकारी बहुवचन के अनुसार हुआ है।

उदाहरण— जो उन कीता किस्मत सोय।
जे उन छोरी वैसी जोय।
कीता उन्हें करता सोय।

---

१. चटर्जी ओ. डे. वे, हु. ८७२ पृ० ८३५

२. भो. तिवारी-ति. भा. ५६९

उन दोन्हों भीतर लाया सोय।
यह सब करनी रची उन।

'उस' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

कर्म-सम्प्रदान—हौं उस लोरूं मुज क्या गत।
करसी उस कूं यूं बेजां।
जानो शहवत उसना थी।
सम्बन्ध— जानों आया वक्त उस का।
कुदरत उस के कुन फैकून।
अधिकरण—तो लग उस में एकाएक।
उस पर नाही तैं यों भार।
भेजूं उस पर लय लानत।

विकारी बहुवचन 'उन' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

कर्ता— उन ही सरज्या ना होर किन।
कीता उन्हीं करता सोय।
हुआ जो उन चिन्त्या सोय।
कर्म-सम्प्रदान—देखन उन कूं होते शाद।
करम उन्हें यों बर देख।
सम्बन्ध— उन की खुशी करते जन।
अधिकरण— उन पर होवा दीवाता।
नबी करते उन पर प्यार।
उन में लाई जुकतीवर।

१८५. निश्चयवाचक तथा सम्बन्ध सूचक-सो

हिन्दवी में 'सो' निश्चयवाचक तथा अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम है। 'वह' तथा 'सो' का प्रयोग समानार्थी रूप में होता है। कभी-कभी सम्बन्ध सूचक सर्वनाम के रूप में 'सो' का उपयोग जो के साथ होता है। डॉ. वर्मा ने व्युत्पति की दृष्टि से 'सो' का सम्बन्ध सं.—सः > प्रा. सो से माना है।[1] हिन्दवी में 'सो' का प्रयोग अविकारी एकवचन और बहुवचन में होता है। विकारी एक वचन में 'तिस' का प्रयोग चलता है। तिस का सम्बन्ध सं. तस्य > प्रा. तस्स से माना जाता है।[2] उदाहरण—

अविकारी कर्ता— जो इस मारे सो वो कौन।
सो दुख हुआ मुज पर असर।

---

१. डॉ. धी. वर्मा—हि. भा. इ. २८५

२. वही

कर्म-सम्प्रदान— वो जिस लोडे तिस रखें ।
सम्बन्ध— तिस का दरसन हर-हर ठाँवें ।
अधिकरण— होर भी तिस पर शाह हुसेन ।
तिस पर मांडया यूँ मुझ कूँ ।
तिस पर भी ये दूजी बार ।

सम्बन्ध सूचक रूप में 'सो' का प्रयोग निम्न प्रकार है—
जो इस मारे सो वो कौन ।
जो उन कीता किस्मत सोय ।

१८६. सम्बन्ध वाचक-जो-जे । चटर्जी 'जो' की उत्पति सं. 'यत्' के प्रथमा के एक वचन -य : ये मानते हैं । अवधी तथा छतीसगढ़ी में प्रथमा के बहुवचन—'ये' के विकृतरूप 'जे' का प्रयोग एक वचन में मिलता है । हिन्दवी ने यही 'जे' अपनाया है । गुजराती तथा मैतिली में भी 'जे' प्रयोग होता है । उदाहरण—
अब इस जे कोई पहर देखे ।
जो उन कीता किस्मत सोय ।

२. अन्य सर्वनाम के साथ 'जो' के अविकारी रूप का प्रयोग मिलता है—
जो उन लिख्या चूक नहीं।

३. जिस—'जा' का विकारी एक वचन में रूपान्तर 'जिस' होता है । जिस की व्युत्पति सं. यस्य>प्रा. जिस्स, जस्स, से सम्बन्धित है ।[1]

कर्म-सम्प्रदान— वो जिस लोडे तिस रखे ।
जिस को चारों यार वजीर ।
या वो मारे जिस कूँ पाल ।
करण-अपादान— जिस थें तुज सुहागन नावें ।
सम्बन्ध— जिसके चाव अठारा सहस ।
हस्सा-हुसेर जिसका नांव ।

४. जिन-विकारी बहुवचन में 'जिन' का प्रयोग होता हैं । सं. काल्पनिक रूप 'यानाम्' से इसका विकास माना जाता है । जिनके वैकल्पिक रूप जिन्ह, जिन्हो भी मिलते हैं । इनमें 'ह' का आगम अनियमित है अथवा तुम्ह, तुम्हे के सादृश्य पर इस रूप का विकास सम्भव है ।

जिन ये सरज्या भुइं असमान ।
जिन ये सरज्या डोंगर-कोह ।
कीता जिन ये फ क्रकबूल ।

१. डॉ. धी. वर्मा—हि. भा. इ., पृ. २८५

जिन्हो भेज्या तुज मुज पास
जिन्हो कीता अत जग राज ।
जिन्ह कूँ हो बेगाऐब ख़ियाल ।

१८७. अनिश्चयवाचक सर्वनाम—कोई । 'कोई' का सम्बन्ध संस्कृत कोऽपि>शौ. कोवि>हि. कोई से है । 'कोई' के अविकारी एकवचन तथा बहुवचन में कोई रूपान्तर नहीं होता । विकारी एक वचन में 'किसी' का प्रयोग होता है । सं. 'कदापि' से 'किसी' का विकास माना जाता है । विकारीं बहुवचन में 'किन' का प्रयोग होता है । संस्कृत के काल्पनिक रूप 'कानाम्' से 'किन' का विकास हुआ । उदाहरण—

अविकारी ए. व. शायद लिखे-पढें कोई ।
कोई राखे क्या मजाल ।
कोई अधाने कोई फकीर ।
अविकारी बहुवचन—
कोई कीले पैगम्बर ।
विकारी रूप— कि से काफिर हिन्दू कर ।

१८८. अनिश्चयवाचक सर्वनाम—कुछ । 'कुछ' की व्युत्पति सं. किंचित् से मानी जाती है । अविकारी तथा बिकारी वचनों में कोई रूपान्तर नहीं होता । यथा—
नाँव निशानी कुछ न कहीं ।
कर येह अशरफ कुछ शइरी ।
हर कुछ अल्लाह का फर्मान ।

१८९. प्रश्न वाचक सर्वनाम—कौन । हार्नली इसकी उत्पत्ति अप. 'केवडु' से मानते हैं किन्तु चटर्जी सं. 'क : पुनः' से मानते हैं । पश्चिमी अपभ्रंश के 'कवनु' या 'कवन' से इसका सम्बन्ध माना जाता है ।
इन जो मारे सो वो कौन ?
कौन करेगा ये मातम ?

२. अविकारी एकवचन में किस और बहुवचन में 'किन' का प्रयोग होता है । किस को उत्पत्ति-सं. कस्य> प्रा. किस्स से मान्य है । बहुवचन वाची 'किन' सं. 'किम्' के पु. षष्ठी के काल्पनिक रूप 'कानाम्' से सम्बन्धित है ।

अविकारी— किस का राज होर किस का पाट ।
होर किस का ताबा छोर ।
विकारी— कौन सो वे किसके आल ।
कहाँ के वे किस के आल ।
किस लग वै से किस के पास ।
किन— उन ही सरज्या ना होर किन ।

वे किन कीया तुझ जीव घात ।

१९०. प्रश्नवाचक सर्वनाम-क्या । डॉ. वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं। डॉ. भो. तिवारी इसका सम्बन्ध सं. 'कस्य' से मानते हैं।[1]

क्या-क्या पैदा कीता देख ।
उन्हें केरा क्या मजाल ।
मेरे चीते क्या अब होय
हौं उस लोरूँ मुज क्या गत ।
षस क्या नफा के तुझ तुही ।

अरबी-फारसी सर्वनाम

१९१. (१) बाजे— बाजे तो खुद तेल मरे ।

विशेषण

१९२. संज्ञा के समान हिन्दवी के विशेषण—शब्दों को भी, उनके मूल स्रोत के विचार से निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है ।

१. संस्कृत से प्राप्त विशेषण शब्द ।
२. म. भा. आ. से प्राप्त विशेषण ।
३. क्षेत्रीय बोलियों से प्राप्त विशेषण ।
४. अरबी-फारसी तथा तुर्की आदि से प्राप्त विशेषण ।
५. मराठी से प्राप्त विशेषण ।
६. संज्ञा, सर्वनाम, अव्यय तथा क्रिया से बनाये गये विशेषण ।

१९३. संस्कृत से प्राप्त विशेषण—

हिन्दवी जन भाषा थी, अतः उसका स्थान तद्भव-प्राकृत-अपभ्रंश-शब्दों के प्रति अधिक है । विशेष प्रसङ्गों और सन्दर्भों में ही संस्कृत के शब्द प्रयुक्त हैं। नौसरहार में प्रयुक्त कुछ तत्सम शब्द निम्न प्रकार हैं ।

अपनी अपनी रुत उदास ।
बीछू छया सर्व अंग ।
छोडी मुतलक कर अधीर ।
नाक सुहावे 'आक' अतुल ।
अंक मजीरा नाक सुरूप ।
उस तैं निपजे पापी पूत ।
राजिक सकल्यों का मुतलक । (सकल+यों)
भेद न पाये कोई चतुर ।

1. भो. तिवारी—हि. भा. ५७३

१९४. संस्कृत के तत्सम विशेषणों की अपेक्षा म. भा. आ. (प्राकृत अपभ्रंश) से प्राप्त विशेषणों की संख्या अधिक है । ये विशेषण शब्द संस्कृत से मध्यकालीन प्राकृतों और अपभ्रंशों में विकसित होते हुए न. भा. आ. भा.—हिन्दवी तक पहुँचे हैं । हिन्दवी का यही मुख्य शब्द भण्डार है । उदाहरण—

नयन सलोने ज्यूँ बादाम । (सलोने <स:+लावण्य)
ठंडा सियाला सीतल सींवें । (सीतल <शीतल)
कोई सयाने कोई असीर । (सयाने <स+ज्ञान)
गगन सगला अब्रभरे । (सगला <सकल)
भेदक सियाना परम सुजान । (सुजान <सु+ज्ञान)
बादल बिजली मेह अचूक ।
राजिक सकल्यों का मुतलक । (सकल्यों <सकल)
अपने प्यारे वेरूँ हात । (प्यारे <प्रिय)
चौखत ज्यूँ के मांज्या थाल । (मांज्या <मज्जन)
(चौखत <चतुष्क+त)
रूप दिखाया बहुत भांत । (बहुत <बहु+त)
सारे आलम का नबी । (सारे <सकल)
खुशी सेंती अत उल्लास । (अत <अति)
ऊँचा नीचा अड़के बोल । (ऊँचा <उच्च)
(नीचा <निच्च, नीच)
गहरे प्यारे नबी के । (गहरे <गम्भीर)
ज्यूँ नित मैले फाटे चीर । (मैले <मृद या मलिन)
खेलन निकले बाहर द्वार । (बाहर <बहिर्)
भीजे कपड़े सब रुमाल । (सब <सर्व)
उन्ह के जिव का दन्दी होय । (दंदी <द्वंद्वी)
तस अंधारी काली निस । (अंधारी < अंधकार > अन्धार +ई)
औरत मर्द बूढ़े जान । (बूढ़े <वृद्ध)
(जान <युवा)

१९५. खड़ीबोली के अतिरिक्त हिन्दी में सम्बन्धित कई बोलियों के विशेषणवाची शब्द हिन्दवी में प्रयुक्त होते हैं—

कौंदे बिजलो तेज अरमाल ।
(बीजुरी की अरमा सोहै—लछीराम)
कोई अघाने कोई फकीर ।

ल्हांडे वड़े सब सदा । (राज. ल्होड़े <लघु)
होर हुसेर जोडा ताया ।
राखे दोनों कूं चुक समझाव ।
उस कूं दीवा क्या कुजना । (कुजना=पुराना)
वो उस घरता गार्ही प्यार । (गार्ही<गाढ़ा<प्रगाढ़)
काँचो मत यूं उन गुलाव । (काँची<कच्ची)
मुज कत लाग्या बावल ध्यान ।
बींगा तींगा ना मौजूं । (वोंगा>वक्र)

१९६. अरबी-फारसी से प्राप्त विशेषण :--

हिन्दवी के मुसलमान लेखकों ने अरबी-फारसी बिश्लेषण शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। धार्मिक तथा शृंगारिक वर्णनों के प्रसंगों में ऐसे विशेषण शब्दों को भरमार दिखाई देती है।

अल्लाह वाहेद हक सुभान । (अ. वि. वाहेद-एक, एकाको)
अतिश सोजां बाद बरां । (फा. वि. सोर्जा-ज्वलित)
माटो कंकर आवे रवां । (फा. वि. खां. प्रवाहित, धारदार)
रिज्क मुअय्यन मौत-हयात । (अ. वि. मुअय्यन-नियत)
ऐसा कादिर हक मुत आल । (अ. वि. कादिर-शक्तिशाली)
(अ. वि. मुतआल-पूज्य)
ये जम फिरते चर्ख मुदान । (अ. वि. मुदाम-निरन्तर)
मख्सूस उस कूं था रे खयाल । (अ. वि. मख्सूस-प्रमुख)
ऐसा सकता कादिर हक । (अ. वि. कादिर-समर्थ)
राजिक सकल्यों का मुतलक । (अ. वि. राजिक-अन्नदाता)
(अ. वि. मुत्तक-निरंकुश)
अतपर रख्या बस्ता जग । (फा. वि. बस्त-बन्धा हुआ)
पैदा कीता शाह गदा । (फा. वि. गदा-भिक्षुक)
किसे काफिर हिन्दू क । (अ. वि. काफिर-वास्तिक)
कोई आजाद कोई असीर । (अ. वि. असीर-बन्दी)
(फा. वि. आजाद-स्वतन्त्र)
कोई सयाने कोई अबलह । (अ. वि. अबलह-बोला)
अपने प्यारे बेरूँ हात । (फा. वि. बेरूँ-कठोर)
सोच भइ नापैद करे । (फा. वि. नापैद-लुप्त)
दानों जग केरा सरवर शाह । (फा. वि. सरवर-सरदार, श्रेष्ठ)
दीन मुहम्मद नेक पनाह । (फा. वि. नेक-उत्तम, श्रेष्ठ)

रोजे महशर का शफी । (अ. वि. शफी-सिफारिश करनेवाला)
दीने हकीकी केरा शाह । (अ. वि. हकीकी-सच्चा)
उम्मत केरा वह दस्तगीर । (फा. वि. दस्तगीर-सहायक)
अव सुन मेरे यार अजीज । (अ. वि. अजीज-प्रिय)
दीगर चन्दे औलिया । (फा. वि. दीगर-अन्य)
(फा. वि. चन्दे-थोड़े)
शाहाने आलम अहला ताज । (अ. वि. अहली-योग्य)
ऐसे ऐसे जहाँदार । (फा. वि. जहाँदार-शासक)
नज्म खिखो सब मौजू आन । (अ. वि. मौजू-उचित)
यू. में हिन्दवी कर आसान । (फा. वि. आसान-सहज)
अदना अछे या अयजूं । (अ. वि. अदना-तुच्छ)
(फा. वि. अफजूं-पचुर)
जघा थे ये खुर्द-सगीर । (फा. वि.—खुर्द—छोटा)
(अ. वि. सगीर—छोटा)
के ये अपनी खास औलाद । (अ. वि. खास—विशेष)
तपकर मिहतर जिब्रील आव । (फा. वि. मिहतर—बड़ा)
सभों को प्यासों हैरान मार । (अ. वि. हैरान—चकित)
बेखुद हुए नारामार । (फा. वि. वेखुद—अचेत)
हस्सा हुसेन दोनों लुच । (तुर्की वि. लुच—नग्न)
आन पहनावें कसूद खूब । (फा. वि खूब—बढ़िया)
जिया उन का है मत्लूब । (अ. वि. मत्लुद—वाछित)
तोलग जिब्रील आया ताक । (अ. वि. ताक—अद्वितीय)
हात तबक धर नूरानी । (अ. वि. नूरानी उज्वल)
हुली बहिश्ती उस में घर । (फा. वि. वहिश्ती—स्वर्गीय)
तो लग असम जिब्रील आव । (अ. वि. असम—वहरा)
जालिम मलून नापेकार । (अ. वि. जामिल—अन्यायी)
(अ. वि मलऊन—तिरस्कृत)
ये मुज प्यारे हर दो सवी (फा. वि. हरदो—उभय)

१९७. मराठी से भी कई विशेषण शब्द हिन्दवी में आये हैं। मराठी के 'ळ' वर्ण को क हिन्दी में 'ल' ही बोलते और लिखते हैं।

हमें तो खुद लई अम्ब र । (लई<अप. लइ)
पहने सगले कापड धोये । (सगले<सगळे<सकल)
या के जानों चांद उलाट । (उलाट<उलट)

क्यों अगले सूरत सार । (अगले < आगले < अग + ल ?)
अंधला लोरे बल्यावर । (अंधला < आंधला < अंधक)
खोले सरसे मोकले बाल । (मोकले < मोकले < मुक्त + ल <
प्रा. मोक्कल)

बीठू नाचा केहें ठार । (ठार < सं.स्थावर < प्रा. ठरिअ)
उस कूं दीवा क्या कुजनां । (कुजनां < सं. कुष ?)

१९८. हिन्दवी में भी संज्ञा, अव्यय तथा तथा क्रिया के साथ उपसर्ग—प्रत्यय जोड़कर विशेषणवाची शब्द बनाये जाते हैं। नौसरहार में उपसर्ग निर्मित विशेषण शब्द पर्याप्त हैं। किन्तु प्रत्यय निर्मित विशेषणों का कम प्रयोग हुआ। यह तथ्य भाषा की आरम्भिक अवस्था का सूचक है।

संस्कृत में शब्दों के पूर्व आनेवाले कुछ नियत अक्षरों को ही उपसर्ग कहते हैं और बाकी को अव्यय मानते हैं। यह अंतर उस भाषा की दृष्टि से महत्व का भी हो, पर हिन्दी में तो ऐसा अन्तर मानने का कोई कारण नहीं है। ऐसी स्थिति में हिन्दी से उपसर्ग शब्द का अर्थ अधिक व्यापक मानना चाहिए। 'हिन्दी व्याकरण,'[1] के अनुसार—"शब्द के पूर्व जो अक्षर वा अक्षर समूह लगया जाता है, उसे उपसर्ग कहते हैं।

निषेधार्थ अव्यय और अन्य उपसर्गों से निर्मित सामाजिक शब्द विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण—

बादल बिजली मेंह अचूक । (अ < न + चूकना)
अब हीं कोई निरधारा । (निर् + आधार + आ)
परकम थाकी हुई निरधार । (,, ,,)
उठ कर फिर्या होय निरास । (निर् + आशा)
आंक मंजीरा नाक सुरुप । (सु + रूप)
खूब सलोनी मन लुभाव । (स + लोन < लवण, स्त्री, प्र.-ई)
तुझ थें आया जीव विरास । (वि (सं. अभाव) + आस)
वाह क्या निचींत बैठा तूं । (नि (सं. निर्) + चींत)

फारसी उपसर्ग 'बे' तथा 'ना' से युक्त विशेषण वाची शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

दोहीं घर हुआ नाउम्मीद ।
उस थें नाखुश नबो यकीन ।
रही अवकम यूं बेखुद ।

---

१. कामता प्रसाद गुरु—हि. व्या. २२७ ।

रो रो होवे यूं बेहाल ।
खस्ता होवे यूं बेआब ।
वो बेराज हो उस पर । (अर.)
नन्हे बडे हो बेदिल ।

(आ) संज्ञा और प्रत्यय के योग से भी विशेषण बनते हैं। संज्ञा के साथ 'आ' जोड़कर पुल्लिंगवाची और 'ई' जोड़कर स्त्रीलिंगवाची विशेषण बनते हैं। कुछ विशेषणवाची शब्द मूलतः आकारान्त होते हैं। स्त्रीलिंगी विशेष्य के साथ जब उनका प्रयोग किया जाता है, तो वे ईकारान्त बनाए जाते हैं। उदाहरण—

ठंडा सियाला सीतल सींव । (ठंड + आ)
ऊंचा नीचा अड़के बोल । (उच्च + आ = ऊंचा)
तम अंधारी काली निस । (अंधकार < अंधार + ई)
मीठी बातों उस को लाव । (मीठा < मिष्ठ + ई)
ज्यूं नित मेले फाटे चीर । (मेल + आ = मेला-ए-मेले)
मत मुज झूटे फेरे बाल । (झूठ < झूट + आ = झूठा-ए-झूटे)

अरबी-फारसी शब्दों में भी 'ई' लगाकर विशेषणवाची शब्द बनते हैं—

हुक्म खुदाई मर गया । (खुदा + ई)
के उसको अहे पुश्ती बल । (पुश्त + ई)

(इ) संस्कृत के तत्सम विशेषणों का प्रयोग करते समय पुल्लिंगवाची अकारान्त शब्दों को आकारान्त बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है—

गगन सकला अंबर भरे । (सकल + आ = सकला)

१९९. भूतकालिक कृदन्त का उपयोग कई बार विशेषण के रूप में किया जाता है। ये शब्द पुल्लिंग में आकारान्त तथा स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं। पुल्लिंग बहु वचन में एकारान्त हो जाते हैं। उदाहरण—

चौखत ज्यूंके मांज्या थाल । (मांजना + इया < सं. इतः = मांज्या)
धोये उजले पक्क अनाव । (धोना + इया = धोया-ए-धोये)
लिख्या याजीद केरा एन । (लिखना + इया = लिख्या)
कूफे का यूं ऐन लिख्या । (,,)
ज्यूं नित मेले फाटे चीर । (फटना + आ—फटा < फाटा
ब. व प्र.-ए = फाटे)

२००. वर्तमान कालिक कृदन्त का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है—

डुबते तारे लावे वार । (डूबना, वर्त. कृ. डूबता < डुबता,
बहु. व डुबते)
कथी तपता धूप काला । (तपना, वर्त. कृ. तपता)

२०१. सर्वनाम विशेषणः—

(१) पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़ कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। कुछ मूल सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। यथा—

पैदा कीते ये दिन रात।
अल्लाह का भी यू फर्मान।
जो इस मारे सो वो कौन।
जो उन कोता किस्मत सोय।
हुआ जो उन जित्यां सो।
देते वो माटी उसके हात।

(२) सविभक्तिक विशेष्य के साथ कुछ सर्वनामों का विकारी रूप प्रयुक्त होता है—

अंपराऊं तुज तेरी हैस।

(३) परिणामवाचक विशेषण—

मूल सर्बनाम—यह, वइ, जो, सो तथा कौन से परिणामवाचक विशेषण बनते हैं—

(क) निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—'यह'>इता-एता, इतना 'इतना, 'इत्ता' की व्युत्पति निम्न प्रकार बताई जाती है—प्रा. भा. आ-इयत्तक>म. भा. आ. एत्तिअ<हि. इत्ता, इतना। 'ना' को बीम्स ने लघुतासूचक अर्थका द्योतक माना है। हिन्दवी में इता या एता-यता पुल्लिगवाची और इती या एती स्त्रीलिंगवाची रूप हैं। ब. व. में ऐते, का प्रयोग होता है। खड़ीबोली के रूप 'इतना' 'इतनी का भी कहीं—कहीं प्रयोग होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'इयत' के साथ इता, एता का सम्बन्ध निकट का है। उदाहरण—

एता दुख तुझ कत सबब।
मुज को लागी एती बार।
एत काफिर सारे मार।
सुनकर इतना उस इस्तेहार।
सकले इतनी सुनकर बात।

(ख) दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—वह >उत्ता, इस की व्युत्पत्ति डॉ. उदयनारायण तिवारी 'इतना' के समान सर्वनाम 'अंग 'उ' में त्तक>त्तिअ,त्तअ>ता, तना ('ना' प्रत्यय लगाकर) आदि लगाकर हुई हैं[1] डॉ. श्रीराम शर्मा सं. तावत'

१. उ. ना. तिबारी—हि. भा. उ. वि ४५७।

से इन रूपों का विकास मानते हैं।[1] 'तावत' से 'उत्ता' रूप का निकट सम्बन्ध दिखाई देता है।

पूछन बैठया उती रात।
बसरे में थे उतीच रात।
उत्ते सकले दोजख बाट।

(ग) सम्बन्ध वाचक—जो<जित्ता. जेता, जेते, जितना]।

इन रूपों को उत्पति सं. 'यावत्' से मानी जाती है। सं. यावत्>प्राः जेतिउ हि. जित्ता, जितना। बहुवचन में 'जेते' रूप का प्रयोग होता है।

जित्ता कहू ये समझावे।
नेता मावी कहया रच-रच।
नेता लोरूँ करूं अजाव।
जितनो तूझको ताकत है।

(घ) सम्बन्धवाचक—सो-विकारी रूप–तिस तिन>तेता, तितना।

उस दिखाई तेती आस।
तेता बक्शू तुझ धन।
तुझ भी दबें तेते दाम।

(ङ) प्रश्न वाचक—कौन>किता, कित्ता, किते, केतो-केते, केतक। 'किता' आदि रूपों को उत्पति डॉ. तिवारी ने 'इतना' आदि के समान प्र. भा. आ.-किमतक>म. भा. आ. केत्तिअ से बताई है।[2]

बेद तंचफा खरे किते से।
ऐसी गुजरो केते से।
ऐसी गुजरी किते सद से
यही बारी केतकबार।
मुये जीते केसे से।
देते हुरमत केता चाव।
होर बलायत केसे गांव।
एकस हमला केते मार

(४) गुणवाचक सर्वनाम—विशेषण-यह, वह, जो, सो तथा कौन से गुणवाचक सर्वनाम विशेषण बनते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी में ये बिशेषण क्रमशः ऐसा, वैसा, जैसा, तैसा, कैसा, होते हैं। सम्बन्ध वाचक सर्वनाम-सो, का विकृत रूप 'तैसा'

१. शर्मा—द. हि. उ. वि. २१८
२. डॉ. उ ना. तिवारी—हि. भा. उ. वि. ४५७

का प्रयोग हिन्दवी में विशेष है ।

(क) निश्चयवाचक निकटवर्ती सर्वनाम—'यह' से एकवचन पुल्लिग ऐसा, बहुवचन-ऐसे. स्त्रीलिग एकवचन तथा बहुवचन ऐसी । हार्नली ने 'ऐसा' तथा उसके अन्य रूपों की उत्पत्ति इस प्रकार मानी है-सं० ईदृश>अप. अइसो>हि, ऐसा ।

मुझ पर मांडया ऐसा जोर ।
तो ना करता ऐसा घात ।
ऐसा वार्ता उस सों कर
नाबोल शाह तूं ऐसी बात ।
ऐसी गुजरी किते सद से ।
देखत पेखत ऐसी जोय ।

(ख) निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम—वह > वैसा । इसका सम्बन्ध सं. 'तादृश' से माना जाता है ।

वैसी औरत नाहीं होर ।
वैसे मानव को परवा।

(ग) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—जो>जैसा । इसका व्युत्पति सम्बन्ध सं. यादृश से माना जाता है ।

बच्चा लोरे जैसा बोल ।

(घ) सम्बन्धवाचक सर्वनाम—सो>तैसा । इस की व्युत्पत्ति सं. 'तादृश' से मानी जाती है ।

तस अन्धारी काली निस ।
दांत बतीसो तैसी ज्ञान ।

(ङ) प्रश्नवाचक सर्वनाम—कौन<कैसा । सं. 'कीदृश' से कैसा की उत्पत्ति हुई है ।

कैसे-कैसे मर मर गये ।
कैसे बीछू कौन जहर ।

२०२. संख्यावाचक विशेषण

हिन्दवी के अधिकांश संख्यावाचक विशेषण संस्कृतोद्‌भूत है । इन तद्‌भव शब्दों का विकास प्राकृत एवं अपभ्रंश के सभी परिवर्तनों से युक्त है किन्तु कुछ संख्या विशेषण ऐसे हैं, जो प्राकृत या अपभ्रंश से नहीं प्राप्त हुए हुए हैं । हिन्दवी में विकल्प से कभी-कभी अरबी-फारसी के संख्या विशेषण भी प्रयुक्त होते हैं ।

२०३. निश्चित संख्या वाचक विशेषण—

'एक'—संस्कृत तत्सम 'एक' का मूल रूप में प्रयोग होता है । 'य' श्रुति के 'य' श्रुति के कारण कभी-कभी 'येक' भी होता है । संयुक्त संख्या के प्रारम्भ में तथा

कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से भी 'ईक'<एक का प्रयोग किया जाता है । फारसी 'यक' का प्रयोग प्रायः होता है । 'एक' और उस के अन्य रूपों के अंत में कभी-कभी निश्चयार्थक 'ई'> ही जोड़ते हैं ।

एक दिखाय एक छिपाय ।
एकन पाले लाड़ लड़ाव । (एक+अन)
मूसा कहया एकस काम । (एक+स<ष्य=एकस)
इक इक मंजिल रहे घाल ।
एको चंदर बारा नांव ।
बाजां एक दिन नबी राव ।

दो—संस्कृत द्वि> दो का सामान्यतया प्रयोग होता है । कहीं-कहीं 'दोय' 'दोइ' का प्रयोग भी होता है । संयुक्त संख्या में 'ब' (मराठी-बे) का प्रयोग होता है-बतीस । उदाहरण—

खंदारूं बाहर दो लबां ।
किस में कुदरत दो लब खोल ।
ये दो बुजुर्ग पीर आजाद ।
हस्सा हुसैन जब लग दोय ।
उस्मान-अली दोय दामाद ।
दोई नवासे उन बल जावें ।

सामासिक शब्दों में 'सं. द्विर>दुर>दु का प्रयोग होता है—

मेरी दुराही भीतर रह ।

तीन—सामान्यतया तीन का प्रयोग मिलता है, जो सं. 'त्रीणि' से सम्बन्धित है । कभी कभी 'तिन' का भी प्रयोग होता है ।

बरसन मरावे तीन हंगाम ।
दीता जोय को तीन तलाक ।
बाद अज इद्‌द मासक तिन ।
यूं पर चलते दीसक तीन ।

चार—सामान्यतया 'चार' का प्रयोग होता, जिसकी व्युत्पत्ति-सम्बन्ध सं. चत्वारि>प्रा. चत्वारि, से है ।

मानस कीता चार मिलाव ।
आसूदा हुआ चार भार ।
ल्याये मैं पैगाम चार गम्हीर ।

सामासिक शब्दों में "चार" का रूप 'चौ' <सं. चतुर, <प्रा. चउरो होता है ।

चीखत ज्यूं के मांज्या घाल ।

पाँच का सम्बन्ध सं. 'पंच' से है ।

जो भी तारीख पाँच हीर तीन

सात—सं. सप्त>सात ।

जीव तुझ गारूं सात पताल ।

धरती काँपी सात बरख ।

तारीख उन दिन चाँदी सात ।

(आठ, आट-काव्य में कभी कभी दो संख्याओं को जोड़कर अर्थ का संकेत किया जाता है ।

जो थी तारीख पाँच हीर तीन । (५+३=८)

आठ-आट—सं० अष्ट>आठ ।

तारीख उन दिन चांदी आट ।

नौ—सं. नव>हि, नौ ।

पूरे हुए जब नौ मास ।

दस—सं दश>प्रा दस—हि. दस ।

मुहर्रम केरे दसवे चांद ।

ग्यारह से अठारा तक के संख्या वाचक विशेषणों का सामान्यता-गयारा, बारा तेरा……इत्यादि होता है, यथा—

बरस अठारा केरे सुन ।

बीस, तीस आदि के साथ जब दो की संख्या जुड़ती है तो 'दो' के स्थान पर 'ब'<सं. द्वि, का. प्रयोग होता है—

दाँत बतीसं झाडे भान ।

पचास—सं. पंचाशत्> प्रा. पंचासा>हि. पचास—

खोदे कोई गज पचास ।

औरत बच्चे सात पचास ।

सौ—सं.>प्रा. सअ.> हि. सौ—सै (सय=सै)

ल्होरे बरे सौ हजार ।

लोझन हारे आट सो चार ।

मुये जीते केते सै ।

बेद तंचफा खरे किते से ।

कमी-कमी सौ के स्थान पर फा. सद का प्रयोग होता है—ऐसौ गुजरी किंतें सद से । सहस, सहसर सं. सहस्र>हि. सहसर—सहस ।

बारा सहसर घोरे सात ।

हजार—सहस्र के साथ फारसी 'हजार' का प्रयोग भी होता है—

बारी तुझ पर वार हजार ।

सोंती छीरे दस हजार ।

लाक, लाख, लख—सं. लक्ष>हि. लाख, लख । प्रायः लाख शब्द का प्रयोग है दो संख्याओं को मिलाकर बड़ी संख्या बनाते समय 'लाख' होता है—

यक लख चौबीस हजार ।

करोर—करोड़, सं. कोटि, ट> ड़ तथा 'ओ' का परवर्ण पर अपसरण+उ प्रत्यय> र ।

लाखों कोरों बांधि माल ।

२०४. अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण—हिन्दवी तथा खड़ीबोली के अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में अन्तर नहीं है । उदाहरण—

तहें ऊठया आधी रात ।

पाव, पौन, सवाया, देवढा, साडे, ढाई इ. के उदाहरण "नौसरहार में नहीं मिलते—

२०५. क्रमवाचक संख्या विशेषण—न. भा. आ. से प्राप्त क्रमवाचक विशेषण प्रयुक्त होते हैं । फारसी सं. वि. भी प्रयुक्त होते हैं ।

१. चार की संख्यात्मक क्रमवाचक संख्या विशेषणों का रूप, भिन्न-भिन्न रहता है किन्तु चार के पश्चात् छः को छोड़कर अन्य संख्यावाचक शब्दों के साथ 'वा <सं. तम—जोड़ते हैं । (वाँ की व्युत्पत्ति के तम् से मानते हैं)

दूसरा-बीम्स के अनुसार सं. द्वि+सृत से दूसरा शब्द की व्युत्पति हुई है ।

उमर खिताब हम दूसरा ।

दूजा, दूजे दूसरा के साथ 'दूजा'>सं. द्वितीय, विशेषण भी प्रयुक्त होता है । हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों में प्रायः दूजा का प्रयोग होता है (स्त्रीलिंग में –दूजी—

यक सब्ज खतीफा दूजा लाल ।

लीता दूजा लाल हुसेन ।

जानों जाया दूजी बार ।

बाजाँ उठकर दूजे दिन ।

नववाँ, नव्वाँ—सं. नवतम>नवां, नववाँ, (आँ-एँ-नवें)

मोहर्रम केरे नववें चांद ।

दसवाँ—सं. दशतम>दसवाँ, दसवें

मुहर्रम फेरे दसवें चांद ।

२०६. कभी-कभी हिन्दी के क्रमवाचक विशेषणों के अतिरिक्त फारसी के क्रमवाचक संख्या विशेषणों के अतिरिक्त फारसी के क्रमवाचक संख्या विशेषणों का

प्रयोग भी किया जाता है—

नौसरहार में फारसी क्रमवाचक विशेषणों का प्रयोग केवल बाबों (सर्ग) क्रम-संख्या सूचित करने के लिए हुआ है । यथा—

बाब दुव्वम बाब दुव्वम बाब सुव्वम बाब सुव्वम बाब चहारूम बाब पुञ्जम बाब शशुम बाब हफ्तुम बाब दहुम ।

२०७. संख्या वाचक विशेषणों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार है—

(अ)+एक । संख्या वाचक विशेषण के साथ एक शब्द जोड़ते हैं । किसी संख्या साथ 'एक' शब्द का योग होने पर उस संख्या के लगभग—कुछ कम अथवा कुछ अधिक का बोध होता है—

जों उन आई नींद चुकेक । (चुक>चक+एक)
(वर्ण विपर्यय कुछ—चुक)

(आ) संख्या को अनिश्चितता प्रकट करने के लिए एक साथ दो संख्या वाचक विशेषणों का प्रयोग किया जाता है—

वाट चल्या वो दो-तीन मास ।
ल्होडे-बड़े सौ–हजार ।
कीमत उस की लाख-हजार ।
लाखों-कोरों बांधे माल

(इ) समुदायवाचक संख्या विशेषण बनाने के लिए संख्यावाची शब्द के अन्त में 'ओं' जोड़ते है । सं. षष्ठी विभक्ति के 'आम' से 'ओ' की उत्पत्ति मानी जाती है । कुछ शब्दों में श्रुति रूप में 'ह' का उपयोग हुआ है—

उन दोन्हों भीतर लाया सोय ।
जिस को चारों यार बजीर ।

(ई) कुछ शब्द संख्यावाचक अथवा परिमाणवाचक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं : कुल :—

मुस्तैद होवा कूल सिपा ।
घनेरा<घना घन-बीरत घनेरी तुझ सों लाव ।
चन्द (अफा) लोग रय्यत चंद औलिया ।
जुमला (अ. फा.) मिलकर आए जुमला सिपाह ।
जुमला फलायक रूहां पाक ।
तमाम (अ. फा.) केतो उस ताकीर तमाम ।
भीत, भीति—सं. बहु>हि. बहुत>भीत, भीत—
जर कमरबंद भीत जेवां ।
घर मों लाई भीत वेर

सारा— कीता सारा काम अउतर ।
सारा दीस उन लोज किया ।
हीना सारा दुख पकड़ ।

क्रिया

२०८. धातु—हिन्दवी में सीधे धातु से बने क्रिया पदों का प्रयोग अधिक होता था । धीरे-धीरे क्रिया पदों में कृदन्त शब्दों के साथ सहायक क्रियाओं का उपयोग बढ़ा ।

हिन्दवी धातुओं की दृष्टि से समृद्ध भाषा रही है । इसकी अधिकांश धातुएँ संस्कृत की धातुओं से सम्बन्ध रखती हैं, जो म. मा. आ. तथा आरम्भिक न. मा. आ. के परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए इस तक पहुँचीं । कुछ धातुएँ हिन्दवी में अन्य भाषाओं से आयी हैं ।

हिन्दवी की धातुओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—
१. अयौगिक २. यौगिक ।

२०९. अयौगिक धातु मूलरूप में अथवा कुछ ध्वनि परिवर्तनों के साथ संस्कृत धातुओं से सम्बंध रखती हैं । यौगिक धातु शब्द और प्रत्यय के योग से बनती है । इन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है । अयौगिक धातुओं के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

घट=सं. घट् ।	चान्द घटे नित झर झर आब ।
थाल=प्रा. थल्ल	थाले सर सूं मौकले बाल ।
	सब तन अपना माटी थाल ।
पीना<पा, (सं.)	ज्यूं उन पीया उठी आग ।
पड़<सं. पत	रोदन लागे मुई पर पड़ ।
छुट=सं. छुट्	धीरे पर थीं आसन छूट ।
बैस<सं. विश	किस लग बैसे किस के पास ।
फुट<सं. स्फुट	सत्तर तुकरे कालज फूट ।
	जभी फुंटा मल्मूं तीर ।
तूट<सं. त्रुट ?	तूट पर्या वाह आज आसमास ।
	तूट पर्या ज्यूं ऊपर थें ।
मल<सं. मर्द	रहया मलता दोन्हों हात ।

२१० यौगिक धातु :—यौगिक धातुओं के तीन प्रकार हैं । १. व्युत्पन्न धातु २. नाम धातु ३. मिश्रित धातु

१. किसी शब्द के साथ प्रत्यय के योग अथवा मूल स्वर के परिवर्तन के कारण जो धातु बनती है उसे व्युत्पन्न धातु कहते हैं । २. जब संज्ञा धातु के रूप में प्रयुक्त होती है तो उसे नामधातु कहते हैं । ३. मिश्रित धातु—मुख्य धातु के साथ सं. 'कृ' के योग से मिश्रित धातु बनती है । उदाहरण—

व्युत्पन्न धातु-चोड<सं. चुट — जोडे वर वर होय निसार ।
नाम धातु—भोग=संज्ञा-भोग । — तूँ मुख सेती भोगे राज ।
चित्या==सं. चितां । — जो उन चित्यां सो होय ।
मिश्रित धातु—चुत्+कृ — चूक न जासे बदल होय ।
थक=सं. स्तम+कृ.>प्रा. थक्कई—
परकम थाकी सदाकाल ।

२११. पंजाबी धातु—हिन्दवी में कुछ धातुएँ पंजाबी से आयी हैं। पंजाबी धातुओं का सम्बंध म. भा, आ. के धातु रूपों से है—

(१) √आख (पं.)—कहना, बताना, वर्णन करना पूछना—

आखूँ तुझ दरसन चितधर ।
तो क्या आखूँ सुन ऐ मार ।
जिब्रील मुहम्मद अखी बात ।

(२) √अपँड़ (पं) पहुँचना<सं आपण

अँपडी खबर दर आलम ।
अँपरी यजीद लग ये बात ।
ये दुख अँपडया हर दुसरा ।
अँपडावूँ तुज तेरी हौस ।

(३) √लोड (पं) आवश्यकता पड़ना हि. चाहना, इच्छा होना ।

हौं किस लोडूँ सो कह दे ।
हौं उस लोरूँ मुज क्या गत :
कासिम कों लोर तूँ दरहाल ।
तो तूँ लोरे हुसेन अली ।

४. √सट (पं. सिट—डाल, छोड)—पंजाबी में सिट सहायक क्रिया भी है किन्तु 'नौसरहार' में यह स्वतन्त्र क्रिया के रूप में ही प्रयुक्त है ।

तूँ सट बिल्ला मेरा ध्यान ।
मुईं पर सट्या नारामार ।
कूके केरा मारग सट ।

२१२. मराठी तथा गुजराती की कुछ धातुयें हिन्दवी में प्रयुक्त हुई हैं ।

√आने=आणणे (आ+नि)

दोनों को आने आपने पास ।
तो आनूँ अपने घर ।
नबी बाहे देते आन ।
जिब्रील आन निशानी दी ।

√दाट=गुज=दाटवुं, मराठी—दाटणें (दबाना, गीं करना)

आये बैरी ऊपर दाट ।

√मूकी=मरा. मुकणें-अंतर पाना, हानि होना ।

अब यों मूकी हौं घर थीं ।

२१३. हिन्दवी से सम्बंधित बोलियों तथा उपभाषाओं में प्रचलित धातुएँ हिन्दवी में प्राप्त होती है। वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी में इन धातुओं का प्रयोग प्रायः नहीं होता :

चांपना — देवँ जिवड़ा नरडी चाँप ।
हांडना होंडना-डांडन लागे खुशी सात ।
बंखान — झूटे सच्चे गात बखान ।
दीठा — सब सुख दीठा तेरे चाव ।
पेसना — फाटे मुई तो पैसन माई ।
भीतर पैसूँ मानूँ दल ।
मुए — यू ये पानी बाज मुए ।
अघाना — कोई अघाने कोई फकीर
अरडाना — यों पर शाह हुसेन अरडाव ।

२१४. ध्वन्यात्मक क्रियाएँ—हिन्दवी में ध्वनियों के आधार पर बनी हुई धातुओं का प्रयोग हुआ है ।

बिजली ज्यूँ के किर्वि ।
बिजली ज्यूँ के कड कड तूट ।

२१५. हिन्दवी में कुछ ऐसी धातुयें भी हैं जो अ. फा. संज्ञाओं अथवा धातुओं के सम्बन्ध रखती हैं। १. अ. फा. की संज्ञाओं अथवा धातु रूपों के साथ सीधे हिन्दी के काल और पुरुष सूचक प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यथा—

ज्यादत तुज नवाजूँगा

२. अ. फा. संज्ञाओं अथवा धातु रूपों के साथ हिन्दी की सहायक क्रियायें जोडते हैं ऐसे प्रयोग में मुख्य क्रिया विशेषण के समान दिखाई देती है। काल-पुरुष सूचक प्रत्यय सहायक क्रिया के साथ जोड़े जाते हैं। उदा०—

लरजन लाग्या जीव प्रान ।
(लर्ज-फा. पु.-कंपकंपी)

२१६. क्रियार्थक संज्ञा अथवा क्रिया का साधारण रूप

क्रिया के साधारण रूप का प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा के लिए होता है। धातु के साथ 'ना' जोड़कर क्रिया का साधारण रूप बनाया जाता है। इस 'ना' का संबंध सं. 'अन' से जोड़ा जाता है। हिन्दवी तथा पंजाबी में 'ना' के स्थान पर 'न' का

प्रयोग भी मिलता हैं। यह रूप सं. 'अन' के अधिक निकट है। वर्तमान कालिक कृत प्रत्यय 'त' <ता के योग से भी क्रिया का साधारण रूप बनता है।

ना— जो कुछ करना करला है।
जांवना तो खुद नाहीं सद्दा।
कोई कहें की कूफे जान्हा।
त— खेलन निकले बाहर द्वार।
त— लखत आए घर मूँ ठब।

२१७ **प्रेरणार्थ क्रिया**—हिन्दवी में क्रिया के प्रथम प्रेरणार्थ रूप में 'आ' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूप में 'वा' जोड़ा जाता है। एक व्यंजनात्मक धातु के साथ प्रेरणार्थक 'ल' प्रत्यय भी जुड़ता है। एकाधिक व्यंजन वाली धातुओं के अन्त में यदि महाप्राण व्यंजन हो तब भी अन्त में 'ल' जोड़कर प्रेरणार्थक रूप बनाया जाता है। प्रेरणार्थक रूप बनाते समय प्रथम व्यंजन के दीर्घ स्वर कों ह्रस्व तथा 'ए' को 'इ' और 'औ' को 'उ' बनाते हैं।

प्रेरणार्थक 'वा' तथा 'ला' के विषय में कैलाग का मत है कि संस्कृत में प्रेरणार्थक 'अय' प्रत्यय के अतिरिक्त कुछ स्वरान्त धातुओं के साथ 'प' का योग भी होता था। प्राकृत में प्रेरणार्थक 'अय' 'ए' में रूपान्तरित होता है। अन्तिम अकार को दीर्घ बना कर 'प' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ। आगे चलकर यह 'प' 'व' में परिवर्तित हुआ। सं. 'कारय'>प्रा. कारे, करोवे>हि. करावे, करा, करो। प्रेरणार्थक 'ला' अथवा 'ल' का सम्बंध सं. 'ल' (=पालन) से है।

प्रथम प्रेरणार्थक—आ. सुखी राखे चीर पिन्हाव।
ले अब दोनों कूँ बाँट पहनाव।
रूप दिखाया बहुत भाँत।
नाद सुनाया बिन कंत-दाँत॥
के हमकूँ भले जर पहनाव।
बरसन मरावे तीन हंगामा।
पाथर में थें नीर बहाव।
हुसेन अली का सीस कटांव।
प्रथम प्रेरणार्थक—'ल' मर्ग उन्हां की ताद दिलाव। (देना-दिलाना)
लिख्या कूफे का दिखलाव।

२१९. **वाच्य**—खड़ी बोली में कर्ता, करम तथा भाव के अनुसार क्रिया के रूप परिवर्तित होते हैं। कर्तवाची में क्रिया कर्ता के लिंग, वचन को स्वीकार करती है। और कर्मवाचक में कर्म के अनुसार किया का प्रयोग होता है। 'नौसरहार में प्रायः कर्त्ता के अनुसार क्रिवा का रूप रहता है। किन्तु कहीं-कहीं कर्म के लिंग-वचन का प्रभाव

भी क्रिया पर पड़ता है। इस दृष्टि से हिन्दवी परवर्ती दक्खिनी से विरोध रखती व पश्चिमी हिन्दी के साथ का नाता स्पष्ट करती है।

उदाहरण—कर्तृवाच्य — बाल पत्यां सब लीता कोंछ।
हौं घर बैठी तेरी आस।
दौड़े आए माँ के पास।
के अल्लाह भेजे दोन्हो का चाव।
मैं मन लाया तुझ तन खात।
कर्म वाच्य— राखी थी उस रे मूसे।

सहायक क्रिया।

२१९. हिन्दी की काल रचना में क्रिया के कृदन्तरूपों तथा सहायक क्रियाओं से सहायता ली जाती है।[१] यद्यपि नौसरहार में सहायक क्रिया के बिना ही काम चलाने की अधिक प्रवृत्ति दिखती है तब भी इसमें सहायक क्रिया के सभी रूपों के उदाहरण मिल जाते हैं।

न. भा. आ. भाषाओं में मुख्य सहायक क्रियाओं के रूप में सं.√अस्√भू √स्था-से उद्भूत रूपों का प्रयोग होता है। इन तीनों के अतिरिक्त एक चौथी क्रिया √"अच्छ" का उपयोग भी किया जाता है।

वर्तमान में 'अस्' से उद्भूत 'ह' प्रयोग होता है। भूत तथा भविष्य में प्रयुक्त होने वाले √ 'हों' के विभिन्न रूपों का सम्बंध सं. √ 'भू' से और 'क्षा' का सम्बन्ध सं. √ स्था से है। √'अ छ' हार्नली के मत में सं. 'अस्' धातु का परिवर्तित रूप है किन्तु डॉ० चटर्जी इससे सहमत नहीं हैं। उनका अनुमान है कि यह धातु आदिकालीन भा. आ. भा. में विद्यमान थी। वररुचि ने 'अस' को 'अछ' में परिवर्तित होने का उल्लेख किया गया है।[२] इसका अर्थ चटर्जी केवल यह लेते हैं कि प्राकृत में 'अस' के साथ-साथ 'अछ' का प्रयोग भी होता था।

नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में √ अछ की स्थिति के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी ने जो विवरण दिया है वह इस प्रकार है। मैथिली और बंगाली में 'अछ' का प्रयोग मिलता है। गंगा के दक्षिण में अंग (भागलपुर) जनपद तथा संथाल परगने की बोली में इसका प्रयोग होता है। मागधी से सम्बन्धित भोजपुरी और मगही में 'अछ' पुराने जमाने में प्रयुक्त होती थी। कबीर की भाषा में इसका प्रयोग मिलता है। पुरानी अवधी में भी इसका प्रयोग होता था। गुजराती में 'अछ' से सम्बन्धित रूप प्रचलित है। राजस्थानी, पहाड़ी और कश्मीरी में इसका प्रचलन

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हि. भा. इ. (४१६ पृ० २९६)
२. वररुची-प्रा. प्र. १२. १९

रहा है। पश्चिमी हिन्दी √ में 'अछ' का प्रयोग नहीं मिलता।[१]

हिन्दवी में √ होना तथा √ रहना के अर्थ इस धातु का प्रयोग होता रहा है। हिन्दवी में इस धातु को गुजराती अथवा पूरब की बोलियों के प्रभाव से ग्रहण किया होगा। महाराष्ट्री प्राकृत की रचना 'लीलावई' तथा 'गाथा' सप्तशती में यह क्रिया मिलती है। संभव है हिन्दवी ने इस स्रोत् से भी यह क्रिया ग्रहण की हो।

हिन्दवी में वर्तमान तथा भविष्य में √ 'अछ' का प्रयोग अधिक होता है। भूतकाल में √ था √ स्था का प्रयोग मिलता है। 'अछ' से सम्बन्धित कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

वर्तमानकाल — उत्तम पुरुष ए. व. तुझ सूँ अछू बादिल जाँ।
,, — मध्यम पुरुष ए. व. अंगे मेरे तूँ अछ यार।
,, — अन्य पुरुष ए. व. अदना अछे या अफ जूँ।
,, — ,, ब. सु. जो कुछ अछें नाकाबिल।
,, कृदन्त प्रत्यय युक्त अन्य पु. ए. व. यों पर अछती एकच रात।
भविष्यकाल उत्तम पुरुष ए. व. तब हों अछूंगा या नां।
,, अन्य पुरुष ए. व. जीवती अछेगी वह तो लग।
,, ,, ब. व. कोई न अछे यार असहाब।
कोई न अछे तो उस वक्त।

आज्ञार्थक-प्रार्थना—

तो तु अछ उन्हों का मा होर बाप।
अंगे मेरे तूँ अछ यार।
सम्भाव्य भविष्य — कोई न अछे तो उस वक्त।
जे ना अछे तो फातिम।

२२०. काल रचना

कामताप्रसाद गुरु ने काल रचना की दृष्टि से क्रिया के रूपों को तीन भागों में विभक्त किया है। १. पहले वर्ग में वे काल आते हैं जो धातु में प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं। २. दूसरे वर्ग में वे काल हैं जो वर्तमान कालिक कृदन्त में सहायक क्रिया 'होना' के रूप लगाने से बनते हैं और ३. तीसरे वर्ग में वे काल आते हैं जो भूतकालिक कृदन्त में उसी सहायक क्रिया के रूप जोड़कर बनाये जाते हैं।

सम्भाव्य भविष्यत, सामान्य भविष्यत, प्रत्यक्ष विधि, परोक्ष विधि, सामान्य संकेतार्थ और सामान्य इन छः कालों की रचना में धातु के साथ प्रत्यय लगाये जाते हैं। शेष कालों की रचना सहायक क्रियाओं के योग से होती है। इन सहायक क्रिया-

---

१. चटर्जी—ओ-डे. बें-(७० पृ. १३६)

याओं के रूप लिंग-वचन-काल-पुरुष के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

२२१. सामान्य भविष्य

हिन्दवी में सामान्य भविष्य काल के दो रूप प्रचलित होते हैं। सामान्य भविष्य के लिए धातु के साथ 'गा' 'सी' जोड़कर पुरुष, वचन सूचक चिन्ह लगाये जाते हैं। 'गा' की उत्पत्ति बीम्स ने इस प्रकार दी है-स.गतः>प्रा.गदो>ब्रज आदि में गओ, गया। स्त्रीलिंगी-गई>गी. पुल्लिंगवाची>गए>गे। पृ.ए.व.-'गा,' पु.ब.व. 'गे। मूल धातु और 'गा' के मध्य ए.एं अथवा 'ऊ' प्रत्यय लगाये जाते हैं। ये स्वर संस्कृत के काल-पुरुष-वचन वाचक ति, तः आदि के अवशेष कहे जाते हैं। अकरान्त धातु को एकरान्त' एकानान्त अथवा ऊकारात बनाकर 'गा' अथवा 'गे' जोड़ते हैं, तथा आकारान्त आदि धातुओं के अन्त में इन स्वारों का आगम, होता है। ए.एं, उ और ऊं के साथ बोलियों में 'य' श्रुति का प्रयोग किया जाता है। हिन्दवी-नौसरहार के उदाहरण—

१. प्रथम पुरुष ए. व. √ कह — कहूँगा उस अंधे जाय।
√ अछ — तब हों अच्छुगा या ना।
मध्यम पुरुष ब. व. √ दे — क्यों तुम देवगे कह जवाब।
अन्य पुरुष ए. व. √ मार— मारेगा वो उसकों जार।
,, ,, — उह कं मारेगें जिस ठांव।
ब.व.√कर—कौन करेगा ये मातम।
,, √दे—जीवड़ा देगा हूर्या पड़।

२. "व" "य" श्रुति के साथ—
√हो उस को गुरबत होवेगी सक्त।
√हो— हायगी गुरबत सक्त।
जिस दिन होवेंगे ये मकतूल।
जिन्हकूँ होवेगा ऐब खियाल।

३. सामान्य भविष्य काल की रचना में 'स' से भी सहायता ली जाती है। इस "स" का व्युत्पत्ति संबन्ध संस्कृत के भविष्य कालिक 'ष्यति' से है। पूर्वी राजस्थानी में धातु के साथ 'स' लगाकर इस प्रकार के रूप बनते हैं। उदाहरण—कद जासी।

नौसरहार के उदाहरण— उत्तम पुरुष ब. व.
√ दृश— बारे दीसें बादल जाँ।
अन्य पु. ए. व.
√ कर— कौन करसी मातम रोय।
ओ पर करसी बेरी घात।
√ जा— चूक न जासो बदल होय।

√जीव— कौन सो तालक जोवसी जान ।
अन्य पु. ब. व.
√ कर— करसीं उसको यूँ बे जाँ ।

२२२. सम्भाव्य भविष्य

हिन्दवी में सम्भाव्य भविष्य के रूप खड़ी बोली के समान ही पाए जाते हैं । ऊँ, ए, ऐं, औ इत्यादि प्रत्यय संस्कृत के वर्तमान काल के अवशेष हैं । उदाहरण

१. उत्तम पुरुष ए. व. √ जा — जावं ना बाअल्ला औरत पास ।
हरगिज औरत पास न जाऊँ ।
√ खा — अब थी अंधे यूँ सौं खाऊँ ।
अन्य पुरुष ए. व. √ निपज- जो न निपजे मुज थें पूत ।
√ लिख- इयायद लिखे पढ़े कोय ।
√ जोड- जोडे वर वर होय निसार ।
√ मारे- जो इस मारे सो वो कौन ।
अन्य पुरुष ब. व. √ रो— वे सब रोवें अंझू ढ़ाल ।

२. आकारान्त क्रिया ओं के साथ, 'ए' 'य' में परिवर्तित होता है ।
√ पा — जो लग पाय कुछ फुर्सत ।
√ होना- तुझ कूँ बारे सवाब होय ।

२२३. विधि और प्रार्थना तथा आज्ञार्थक

विधि के रूप सम्भाव्य भविष्य के समान ही होते हैं केवल मध्यम पुरुष के एक वचन में बिना किसी प्रत्यय के धातु का प्रयोग होता है । यथा :

म. पु. ए. व. √ दिखा (प्रेरणार्थक) — जाय दिखा अब तूं हर ठांव ।
ये तूं सुन ऐ ज्जूँ के कान ।
" √ सुन — अब सुन मेरे यार अजीज ।
√ कह — भला युजधिर कह सब हाल ।
अन्य पु. ए. व. √ देख — अब इस जे कोई पहन देखे ।
" ब. व. √ चल — सब उठ चलें पीठ फिराय ।

क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग विधि के रूप में किया जाता है—

√ कर — हजरत हक की करना यश ।
√ मर — मरना हक है इतना बूझ ।
√ जीव — तुझ कित जीवना इस रहस ।

२२४. वर्तमान तथा भूतकाल

कृदन्तरूपों तथा कृदन्त रूपों के साथ सहायक क्रिया के योग से सामान्य वर्तमान, अपूर्णभूत, सम्भाव्य वर्तमान, संदिग्ध वर्तमान, अपूर्ण संकेतार्थ, आसन्नभुत, पूर्णभूत, संदिग्ध भूत और पूर्ण संकेतार्थ का बोध होता है । वर्तमान तथा भूत काल के रूपों की रचना के लिये धातु के साथ कृत प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।

२२५. सामान्य वर्तमान कालिक कृदन्त

सामान्य संकेतार्थ—

कृत् प्रत्यय के रूप में धातु के साथ 'ता' जोड़ा जाता है । संस्कृत के वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय 'अत्' से इसका सम्बंध है । कैलाग ने इसके निम्नलिखित रूप बताए हैं—

१. सं.पु. कर्ता एक वचन चलन प्रा. चलन्ती, ब्रज—
चलतौ, बो. चलता ।

हिन्दवी में किसी सहायक क्रिया के बिना सामान्य संकेतार्थ का वर्तमान काल में प्रयोग अधिकता से होता है । उदा—

ए.व. पुल्लिग-कहीं सीस लिडता कहीं हात पाँव ।
दो, खंद करतां एकस घाव ।
उन कूं करता नित दुआ ।
दोनों कों करता तूं अत प्यार ।
ए.व. स्त्रीलिंग-काश न जनती मुझ की माय ।

२. वर्तमान कालिक कृदन्त रूप का प्रयोग विशेषण के लिए भी किया जाता है—

डूबते तारे बाहर ल्याब ।
कधी तपता धूप काला ।

३.कहीं 'अत' का प्रयोग सामान्य संकेतार्थ-काल के किया गया है । यह पूर्वी हिन्दी का प्रभाव माना जाता है । देखत तेरीं बाट खड़यां ।

२२६.सामान्य वर्तमान—

सामान्य वर्तमान काल में सामान्य संकेतार्थ रूप के साथ V 'होना' क्रिया से सहायता ली जाती है । पुरुष-वचन का प्रभाव सहायक क्रिया पर पड़ता हैं स्त्रीलिंग में प्रयोग करते समय 'ता' को 'ती' बना लेते है प्रायः सामान्य वर्तमान के लिए बिना सहायक क्रिया के सामान्य संकेतार्थ का प्रयोग नौसरहार में पाया जाता है । उदाहरण—

पुल्लिंग उ.पु.ए.व. जाता हुँ अब घर में भी ।
अन्य पुरुष ए.व जाता है नित खाकेखाक ।
जो लग हसन जीवता है ।
यजीद करता है तेरा चाव ।

२२७. अपूर्ण वर्तमानः—

अपूर्ण वर्तमान का रचना के लिए मुख्य धातु के साथ—'रह' धातु जोडते हैं और फिर सहायक क्रिया जोडते हैं। यह रहना क्रिया के संयोग से बनी क्रियाओं में सहायक क्रिया 'है' का अभाव होता है—

मैं तुझ पकर रह्या पाय

२२८. सामान्य भूतकाल भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय-आ.

सामान्य भूतकाल कृदन्त प्रत्यय के सन्दर्भ में हिन्दवी एक ओर न. भा. आ. के प्रारम्भिक रूपों से जुडी है तथा दूसरी ओर वत् खडीबोली से साम्य रखती है।

धातु के अन्त में भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय 'या' अथवा 'आ' जोडा जाता है।

कैलाग के विचारानुसार सामान्य भूत कालिक कृत प्रत्यय 'आ' की उत्पत्ति इस प्रकार है :—

ख. बो. आ.<प्रा. इत्तकः सं.<इतः सं. चलितः प्रा. चलितः प्रा. चलितकः चलितओ, चलिअओ ब्रज> ख. बो. चला

बीम्स ने सामान्य भूतकालिक प्रत्यय का विस्तार से विवेचन किया है। उनके कथनानुसार संस्कृत कृत प्रत्यय 'इत' का 'त' प्राकृत में 'द' बना-सं.=हारितम> प्रा. हारिदम महाराष्ट्री में 'द' लुप्त हो गया-हसितम>हसिदम>हसिअं। पुरानी हिन्दी बोली में पुल्लिंगी ए, व. में इतः इअ>यो बनता है। स्त्रीलिंग ए. व. इअ ई तथा बहु. व. इअ>ई। मध्यकाल में स्वर विकृतिका 'य' लुप्त हो गया किन्तु ब्रज तथा राजस्थानी में कुछ परिवर्तनों के साथ उसका प्रचलन रहा है। ब्रज ए. व. मार्यो का व. मार्या कुमाऊँ की भाषा में सा. भूत के रूप-ए. व, मारियो ब. व. मारियाँ। खड़ी बोली में पु. ए. व. इतः>आ. ब. व. इताः>ए। स्त्री ए. व. इताः>ई. ब. व. ई। पंजाबी में इतः का 'इ' इवशिष्ट रहता है ए. व. मारिआ व. व. मारे। स्त्रीलिंग ए. व. मारी ब. व. मारीआँ।

१. हिन्दवी में पंजाबी के समान सं. इतः का इकार अकारान्त धातुओं में अवशिष्ट मिलता है और 'त' 'या' में परिवर्तन हुआ है—

√रख—	अत पर रखिया बस्ता जग।
√रह—	रहिया महबूत अखिया हात।

२. हिन्दवी मे ब्रज के समान अकारान्त धातु के साथ अंतिम अकार तथा इतः के इकार की विकृत 'य' में होती है किन्तु 'त' का रूपान्तरण ब्रज के समान 'औ' में न होकर खड़ीबोली के समान 'आ' में होता है—

√भर	अत पर भर्या सब जग माय।
√लिख	जो उन लिख्या चूक नही।
√बैठ	सरवर बैठया ताजवरी।

√सिरजना	उन ही सरज्या ना होर किन।
√लग	अख्यां लाग्यां दीपक यान।
√रह	रहया चुक अदेशे में।
√कह	कहया के ऐ पैगम्बर।
√फिर	खुश होकर फिर्या घरके थिर।
√उठ	लेकर उठया खयाल पलीद।
√लोंर	लोर्या गिल्ला में ऊसे।

३. खडोबोली की भाँति अकारान्त धातु के साथ कृदन्त प्रत्यय 'आ' <इतः का उपयोग भी हिन्दवी से होता है। स्त्री.लि. में 'इया' अथवा 'इ' का प्रयोग होता है।

√लिख—एक वचन पु.	ज्यूँ मैं लिखा खोल आसान।
√राख— ,,	राखे दोन्हों कूँ चक समझाव।
√हो —	भाई हुवा है बेताब।
√उठ—	कुछ ना ऊठा बांदी रोग।
√गुजर ,, स्त्रीलिंग	ऐसी गुजरी किते सद से।
√रच—	यह सब करनी रची उन।
√दे	जितनी दीती गिन मुद्दत।
√जाना	उम्र हमारी गयी नाचीज।
√हो	रो रो हुई यूँ भभूत।
√उठ	उठी उम्मे सलमा आजाद।
√रह	रही अबकम यूँ बेखुद।
√खो	रही हैरान खोई सुद।
√ला	क्यों उन लाये कुल सुतर।
√ला	उन में जुवती लाई घर।
गरजना-लरजना	अम्बर गरज्या जरजी मुई।

४. अकारान्त धातु के साथ इया<प्रा. इतकः के 'इ' का लोप होता है—

ए. व.—ला	तुर्को हिन्दु लाया दंद।
√आ	आया ज्यूँ के मुई पर मार।
	तो लग जिबील आया टाक।

सरज	बहु वचन	आदम- हव्वा सरजे बोई।
√बांध	,,	दो दो छज्जे बांधे खन।
√देख	,,	यूँ क्या देखे नयन पसार।

५. ईकान्त धातु के अन्तिम 'ई' को ह्रस्व बनाकर 'या' जोडते हैं—

√पी	ज्यूँ उनपिया उठी आग।

२२९. आसन्न भूत :—

आसन्न भूत के लिए धातु के सामान्य भूत कालिक कृदन्त रूप के साथ सहा-क्रिया 'हो' के वर्तमान कालिक रूप को जोड़ते हैं।

अन्य पुरुष	Vहोके	माई हुवा है बेताव ।
,,	Vनिकल	निकल्या है ए सरवर शाह ।
उत्तम पुरुष	Vबिसर	तुज थें बिसर्या हों माँ बाप ।

२३०. पूर्ण भूत :—

क्रिया के सामान्य भूतकालिक कृदन्त रूप के साथ सहायक क्रिया 'होना' के भूतकालिक रूप योग से पूर्ण भूतकालकी रचना होती है—

पुल्लिग ए. व.	Vकर	कौल कीता था मुझ सूँ तैं ।
,,	Vहो	पहलेच हुआ था दुख असर ।
	Vरख	पकड रख्या था मुद्दत ।
पु. ब. वचन	Vबैठ	बैठे थे ज्यूँ सदर संवार ।
स्त्रीलिंग	Vरख	राखी थी उस रे मूसे ।

२३१. अपूर्ण भूत :-

अपूर्ण भूत की रचना मुख्य धातु तथाV'रह' के साथ V'हो' सहायक क्रिया के भूत कालिक रूप के योग से की जाती है। नौसरहार में सहायक क्रिया का प्रायः लोप हो जाता है—

देखत रहे दोन्हों त्यों । (देख रहे थे)
फसे आव रहे खूब जरब । (आ रहे थे)

नौसरहार में 'इसी' प्रकार से सहायक क्रिया का उपयोग कल्पित है —

२३२. कुछ विशेष—

हिन्दवी में —'कर' —'दे' आदि धातुओं के भूतकालिक रूप पंजाबी से प्रभावित है—

√कर	पैदा कीता नारी-नर ।
√कर	पैदा कीते थे दिन रात ।
Vकर	मानव कीता चार मिलाव ।
V ,,	कीता उन्ही करुता सोय ।
	कौन कौन पैदा कीते शाह ।
—दे	जितनी दीती गिन मुद्दत ।

२३३. सामान्य भूतकालिक कृदन्त रूप को प्रयोग विशेषण और संज्ञा के समान भी किया जाता है—

२३४. संयुक्त क्रिया—

हिन्दवी में मुख्य रूप से निम्नलिखित धातुयें अन्य धातुओं से मिलकर संयुक्त

क्रिया का निर्माण करती हैं—कर, जा, दे, पड़, लग, ला, ले, सक, लिंग-वचन, पुरुष और काल के प्रत्यय संयुक्त क्रिया के द्वितीय अंश में जुड़ते हैं।

१. क्रियार्थक संज्ञा के साथ—

तलमल करने लागा सकत ।
तड़कन लागा नफ्स तरार ।

२. वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ

चंदर बढ़ता घटता जाय ।

३. मूल धातु के साथ

किस अंदाजा बोल सके ।
अब तूं कानों पहन सके ।
जानों आसमाँ पड़या टूट ।

४. संज्ञा के योग से—

'लग' और 'सक' का प्रयोग स्वतन्त्र क्रिया के रूप में भी हुआ है। यथा—

तूँ न सके ताकत आन ।
तो हौं सकता बाजी दे ।
मेरे पोंगड़े लागे तुझ ।
राज कुँवर का लागा ध्यान ।
वो हूं लागी जिसकी आस ।

क्रिया और मुहावरा :—

२३५. हिन्दवी में कुछ संज्ञाओं के साथ विशिष्ट क्रिया पद का प्रयोग होता है। ऐसे वाक्यांश या शब्द समूह का प्रायः अभिधेयार्थ न लेकर लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ ही लिया जाता है। इन प्रचलित प्रयोगों को मुहवरा कहते हैं। "वस्तुतः लाक्षणिक या व्यंजनात्मक प्रयोग जब किसी भाषा की सामान्य सम्पत्ति बन जाते हैं तो वे मुहावरे की संज्ञा पा जाते हैं।[1]

इस प्रकार के रूढ़ प्रयोग भाषा के अध्ययन में विशेष महत्व रखते हैं। हिन्दवी में प्रचलित में प्रयोग मूलतः संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, अरबी में विशिष्ट अर्थ में रूढ़ थे, उन्हीं के अनुवादित रूप को हिन्दवी ने स्वीकार कर लिया है।

नौसरहार में अशरफ ने मुहावरों का विपुल मात्रा में प्रयोग किया है। इतने मुहावरों का प्रयोग बाद के किसी भी कवि ने नहीं किया है। यह तथ्य देख अशरफ के भाषा प्रभुत्व को सूचित करता है। नौसरहार में प्रयुक्त मुहावरों की सूची नीचे

१. भो. तिवारी—भा. वि, कोश ५२५

दी जा रही है—

१. छन्द खेलना- छल करन., मनो विनोद करना ।
अपें छिप्पा खले छंद तुरकन हिन्दु लाया दंद ।

२, नांव निशानी करना स्मृति छोड़ना ।
नौंव निशानी कुछ न की ।

३. वक्त आना मरणासन्न होना ।
पानी म तो लहू-सा । जानों आया वक्त उसका ।
आया तह कीक मेरा वक्त । अब कुछ तदबीर क्या हाजत ।

४. नावें लेना- याद करना ।
मुँए नावं न लेवे कोय ।

५. चलता होना-मरजाना ।
आवे वक्त और चलता होवे ।

६. उठजाना-मरजाना ।
काई न रहया अतजग आए ।
सब उठ चले पिठ फिराय ।

७. जिव के कान सुनना—गौर से सुनना
ये तूं सुन अब ज्यूं के कान

८. गम खाना फिकर करना । उनकी खुशी करते जम
नितउठ खाते उन का गम।

९. खुशी करना—इच्छा पूरी करना ।
उनकी खुशी करते गम।

१०. हैफ करना—जुल्म करना
बैरी उन पर हैफ करे। जिवडालेवे दुःख धरे।
ऐंजे उसपर हैक करूँ मौरू कूटूं दुख धरूँ ।
क्यूं-क्यूं तुझपर हैफ किया । जोर जफा कर जो लिया ।

११. दुःख धरना—अत्याचार करना-उदा
करना जो कुछ ऊस कहूँ, जिवडा लेऊ दुख धरूं ।
तु कुछ उसको दुख न धर उसके हक्क भलाई कर ।

१२. अजली वक्त आना मृत्यु समीप आना ।
जानो तूं के हुसेन अली । केरा आय वक्त अजली ।

१३. वक्ते वयीद आना—मृत्यु समीप आना
तो तूं जान हुसेन शहीद केरा आया वक्त वयीद ।

१४. ईमान पानी देना—ईमान बरबाद होना.
पकड मारे जिवडा ले । ईमान अपना पानी दे ।

१५. जारबजार रोना—फूट फूट कर रोना.
कोई न सक्या दर्द उतार । मा बि रोरो जार बजार ।

१६. आग उठना—अत्यंत तकलीफ होना.
सरता पावें उठी आग । भावर गया जीव न लाग ।

१७. हात आना—प्राप्त हाना.
मुल्क विलायत अखता आत मावो के सब आया हात ।
जिसके आसन दुनिया सात सो भी न आयी मेरे हात ।
जाय कही मैं उस घर बात लेकिन न आई कभी हात ।
तो सब आवे मेरे हात ये धन सारा संबात ।
माल खजाना सब ले हात जो लग हौं भी सकल्यां सात ।

१८. दौड मिलाना—प्रयत्न करना.
यें मैं केता तेरा चाव, इधर-उधर दौड. मिलाव ।

१९. उम्मीद बांधना—आशा रखना.
अतपर अब्दुल्ला जुबैर, मन में बांधी सकत उम्मीद ।

२०. सबर पकड़ना—धीरज रखना.
जोय बिचारी सुनकर ड़र, चुप रही यूं सबर पकड ।

२१. आस पकड़ना—आशा करना.
सुमा उठ मावी पास, आया मन में पकड़ आस ।
मन में पकड़ी जिस की आस, उस थें सोवा यूं नरास ।
दामूं केरी आस पकड़, झूठेबोलन फांदे पड़ ।
यजीद की उन पकडी आस मौजूद राखी जहर पास ।
ऐसी वदराह राय न कर, दामो केरी आस पकड ।
पानी केरी पकड़ आस, खोदे कोई गज पचास ।

२२. उम्मीद पकडना—आशा रखना.
बाजां सय्यद यूं सुनकर, उम्मीद पकडी जन्नत पर ।

२३. हात मलना—पश्चाताप. करना.
अब्दुल्ला यह सुन कर बात, मलता रहया दोनों हाथ ।
बाजां यजीद सुनकर बात मलता रहया दोनों हात ।

२४. हाथों मानक खोना—प्रिय वस्तु खोना.
हातन मानक तोल देना
हातन मानक खोया वाहः धांय-धांय रोय अब्दुल्ला ।

वाह न जानी उसकी अंत, में अप हातन खोया कंत ।
तू के मूली मेरे बोल हातन देता मानक तोल
२५. दुख रोना—संकट सहना.
हातन खोई घर की जोय वो किस आगे ये दुख रोय ।
२६. क्या मूं लेकर जीना—जीवन कठीण होना.
क्यूं अब जोयू क्या मूं ले ।
२७. आस छोडना—निराश होना.
वो सब छोंडे मेरी आस, जिन्हों भेजा तुझ मुझ पास ।
२८. फल पाना—अच्छा परिणाम मिलना.
जिसके माम उन पाया फल ।
२९. तलमल करना या रहना—परेशान होना.
तलमल करें लागा सख्त, केता हाजिर लोग उस वक्त ।
रहया तलमल हाय हाय हाय ।
३०. हरकत देना—अत्याचार करना.
'पकड रहया यूं नियज, हुसैन अली दोऊ हरकत ।
३१. नीयत पकडना—ख्याल करना.
पकड रहया यूं नियत, हुसैन अली को दऊ हरकत ।
३२. ख्याल पडना—अत्याचा करना.
यूं हुसैन के पडया खयाल, लेकिन मावी बरने हाल ।
३३. मुख मोड़ना—दुर्व्यवहार करना.
जो वो यांगे सी उन्न दे, उन थी मूख न मोडे रे ।
३४. रोस पकड़ना—दुख व क्रोध करना.
यजोद पकडा मन में रोस ।
३५. मन में गाँठ पकडना—मन में कपट रखना.
पकड रहया मन में गाँठ, ऐसा पायी मरदक ताँट
३६. बाजी देना—हराना,
हसन दफा होता जे, तो उस सकता बाजी दे ।
३७. बाल बेंगा करना—नुकसान पहुँचाना.
करे जो उसका बेंगा बाल, किसका अतजग यह मजाल ।
हसन हुसेन जबलग दोय, मुज थैं बाल बेंगा होय ।
३८. लंबी बात बोलना—मुकाबले का इरादा करना ।
याके नपच्या वह किस रात, बोले ऐसी लम्बी बात. ।
३९. लब खोलना—बोलना, हिम्मत करना.

किस ये कुदरत दो—लब खोल ।
४०. मुह देख झाना—दुस्साहसी होना होना.
किसकी ऐसी ब्यानो, देखे उसका मुख न झाम ।
४१. तल की माटी ऊपर होना या करना—अत्यधिक परेशान होना या करना ।
वेरी आये झूंटी पर घर तलकी माटी ऊपर कर ।
अम्बर गरज्या लरजी मुई, तलकी माटी ऊपर हुई ।
४२. जिवडा लेना—हत्या करना.
हसन को अब जहर देवें, यूं घर उसका जिवडा लेवें ।
जीवडा लेयूं दुख धरूं
४३. जीव लेना—हत्या करना.
जोर जफा कर जीव लिया ।
४४. आसमान तुट पडना—बडा संकट आना.
रँदन लागा यूं सर कूट जानी आसमाँ पडया टूट ।
तुज बिन मुज तारीक जहान, टूट पडया है मुज आसमान ।
४५. रिक्कत बाँधना—अंतिम यात्रा करना या मृत्यु होना.
या रब मैं तो बाँध्या रिक्कत । हुसैन दुनिया से बाध्या रिक्कत ।
४६. जिवडा या जीव भर आना—दुखी होना.
ले उस सीनें साथ पकड, आया भर कर जिवडा भर ।
रो रो यूं नसीहत कर, आबे लागो के जीव भर ।
सकलन्ह सर्थो मिलजुल कर, आए लोगन के जीवडे भर ।
४७. बाजू तूटना—असहाय होना.
के ऐ हसन मुज कों छोड़ तनहा कर कर बाजू तोड ।
४८. जीव बहक्के तसलीम करना—मरना.
बेजाँ होकर चूप रहा, जीव बहके तसलीम किया ।
४९. जीव देना—मर जाना.
बिलक-बिलक कर जीव दिया ।
राह खुदा की जीव दिया ।
५०. लोहू नहाना—रक्त स्नान.
पीटन लागा दडी तोड लोहू न्हाया सर मुँह फोड़ ।
५१. सर की छाव ढलकना—बे सहारा होना.
अब ढलके सरकी छावें, केता रोवें लेले नावें ।
५२. सर में छतर ढलना—बे सहारा होना.
सर थीं गया छतर ढल, अब क्यूं जीवूं किसके बल ।

५३. छाती पर दुख टूट पड़ना—बडा संकट आना.
तूट पवया दुख छाती पर ।

५४. जीव की आग बुझना—सबर आना.
अछे दोनों यों जल लाग, तब थीं जूझे जीव आग ।

५५. गरगशा—फिक्र करना.
कुछ गरगशा न लावे ।

५६. डांवा डोल होना—डिगना.
तू अब सम्हाल अपना बोज, हों न दे मुझ डावां डोल ।
हरगज किधरें जावें नको, जिव ते डावां डोल न हो ।
जीव हुआ सब डांवां डो, किस घर आखों यह दुख खोल ।
यह जीव हूवा दांवां डोल अब किस आखों यह दुख खोल ।

५७. कोल करना—वादा करना.
कोल किया था मुझ सूं तैं, तो बस मार्‌या हसन मैं ।

५८. सुख भोगना—आराम करना.
दीठा जग होकर यूं भोग्या सुख ।

५९. दुख : सुख लाड़ भोगना—आराम करना.
जिस सूं भोग्या दुख सुख लाड़ ।

६०. राजभोगना—आराम करना.
जिसकी दौलत तैं दुखवाज सब सुख देख्या भोग्या राज ।

६१. सेज फुलन भोगना—भोग विलास करना.
जिन्हों सेज फुलन सदा भोगकर ।

६२. ऊँची ठाँव पाना—इज्जत और सम्मान पाना.
जिस थी तुज सुहागन नावें, ऊँची बेसक पाया ठावें ।

६३. मुख काला होना—बे इज्जत होना.
तुज पापन का काला मुख ।
काला मुहूँ ले नीले पाव काले लागी जम पछताव ।

६४. धन को आग लाना—सम्पती को ठुकराना.
तेरे धन कूँ लावूँ आग ।

६५. अफसोस खाना—पश्चाताप करना
अब जम बैठी खा अफसोस ।

६६. इधर के ना उधर के होना—अनादर और असफलता पाना.
अब हों अंपडी यूँ घर थीं, इधर की नां उधर की ।

६७. जैसा करना वैसा पाना—कर्म भोग भोगना ।

जैसा किया पाया सोय, ए किस आखों ये दुख रोये ।

६८. नाक चढ़ाना—क्रोध और दुख व्यक्त करना.
यूँ सुन यजीद गुस्से आव भोकन लामा नाक चढाव.

६९. मन में ओट होना—भेद भाव रखना.
यूँ पर हुआ मन में ओट ।

७०. सुद खोना—होश गवाना.
रही अब कम यूँ बेखुद, हुई हैरान खोई सुद ।

७१. दुम्बाल पकडना या रहाना—हाथ धोकर पीछे लगना.
अब मुझ मांडया ऐसा हाल, बैरनिया पकडया मेरी दुम्बाल ।
औलाद तेरी केरे खयाल वह पड रहे जम दुम्बाल ।

७२. बाट देखना—प्रतीक्षा करना.
रहया बैठा देखत बाट ।
हौ हूँ देखत तेरी बाट ।
माई देखे ऊभी बाट ।

७३. पंथ देखना — प्रतिज्ञा करना.
तू घर आवे प्यारे कंत, ऊभी देखूँ तेरो तेरो पंत ।

७४. जहाँ तारीक होना—दुःख होना.
देख ऐ मादर मेहरबान, होवा मुज तारीक जहान ।
तुज बिन मुझ तारीक जहान ।

७५. जीव पर भार पड़ना—मुसीबत से मिलना .
अब मुझ पडया जिव पर मारं ।

७६. हात लेना—कब्जा करना.
माल खजाना सब ले हात ।

७७. औट न लागना—दुःख और क्रोध व्यक्त करना ।
औट न लागा किस किस बात ।

७८. आँख लोहू छुपाना—क्रोध और रोष व्यक्त करना .
यूँ सुन यजीद गुस्से हों दोनों, अँख्या लोहू छाव ।

७९. लोहू की नदी या लहू की खाल बहाना—वीरता का प्रमाण देना .
यहाँ आज लहू केरी नदी बहे ।
मार बहाई लोहू खाल, जरजा पडया सात पताल ।
मारूँ बेरी खरगन घाव लोहू केरी खाल बहाव ।

८०. खून करना—हत्या करना.
करे खून नाहक जीवें मारकर ।

८१. चित उठाना—विरक्त होना।

अब दुनिया थें चीत उचाव।

८२. चित धरना—ध्यान देना.

अब ना यारों फिकर करो मरने ऊपर चीत धरो।

८३. दांत उंगली पकड़ना—हैरान रहना.

दाँतन उँगली पकड़ चाम।

८४. सोना फटना—बहुत कष्ट होना.

जहरे फुटे सोने फाट।

८५. जहरा फुटना—बहुत कष्ट होना.

जो कोई देखे वहाँ आय, जहरा फुटे बैंबत खाय।

८६. सोने की आग बुझाना—आश्वस्त करना.

किधर थें चक निकल आव, सीने केरी आग बुझाव।

८७. पत्थर का सोना होना—निर्दय बनना.

सचें तो वह बज्जर का सीना उसका पत्थर का।

८८. ध्यान लगाना—इच्छा करना.

राजकुँवर वा लाग्या ध्यान।

८९. सोग आनंद देखना—जीवन बिताना.

जिस थें दीठा सोग आनन्द।

९०. हँसना खेलना—भोग विलास करना.

हँसी खेली दीठा जग।

९१. जग दीठना—जीवन बिताना.

हँसी खेले दीठा जग।

पूर्वकालिक क्रिया

२३६. स्व. कामताप्रसाद गुरु ने पूर्वकालिक क्रिया को अव्यय माना है। उनके अनुसार पूर्वकालिक कृदन्त अव्यय धातु के रूप में रहता है अथवा धातु के अंत में 'के' 'कर' या 'कर के' जोड़ने से बनता है।[1] हिन्दवी में पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग खड़ी बोली से साम्य रखता है।

२३७. १. हिन्दवी में कुछ स्थानों पर धातु के मूल रूप का प्रयोग पूर्णकालिक क्रिया के रूप में किया जाता है—

सभों को प्यासों हैरान मार।

बेखुद हुये नारा मार।

लेवे खरगों सीस उतार।

हौं घर बैठी तेरी आस।

हात तबक धर नूरानी।

हुली बहिश्ती उस में धर।

बैठे रो रो याद करत।

दौड़े आए माँ के पास।

बाजां नबी उठ दरहाल।

तबक ले दोन्हों हातों पर।

मा-बाप उन को रोते देखा।

जिस्ता कह ये समजावें।

निकल आया यूँ वर थें।

हसन बाहे गुसल दे।

२. धातु के साथ 'आय' या 'य' प्रत्यय जोड़कर पूर्वकालिक रूप बनाने की भी उदाहरण हैं। हिन्दी की बोलियों में ऐसे रूप मिलते हैं। 'आय' या 'य' का संबंध गुरू ने संस्कृत 'य' प्रत्यय से माना है।

रोय बैठी गोत्यों पास।

३. धातु के साथ Vकर के योग से पूर्वकालिक क्रिया बनती है। इस 'कर' का संबंध संस्कृत 'कृ' से है।

ज्यों उन भेजा सब लिख कर।

बाजां उथ कर सगले यार।

सुन कर इतनाँ उस इस्तहार।

खिलने लागे खुश होय कर। ('य' के साथ 'कर'

सकते इतनी सुनकर बात।

लिख कर भेजा बाताकीद।

४. 'के'—'कर' के समान ही कभी-कभी धातु के साथ 'के' का प्रयोग होने से भी पूर्वकालिक क्रिया बनती है। 'के' की व्युत्पत्ति कृ+य (सं. पूर्वकालिक प्रत्यय) से मानी जाती है।

बाजां खया के खूब होय।

अव्यय

२३७. हिन्दवी के अधिकांश अव्यय आज भी हिन्दी-उर्दू में प्रयुक्त होते हैं। अतः यहाँ हिन्दवी में प्रयुक्त मात्र उन अव्ययों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो बर्तमान परिनिष्ठित खड़ी बोली में प्रयुक्त नहीं होते तथा जो किन्हीं अन्य स्रोतों से

---

१. स्व. कामताप्रसाद गुरू—हिन्दी व्याकरण, ४९९

प्राप्त या प्रभावित हुए हैं। ऐसे स्रोतों में मुख्यतः अरबी-फारसी, हिन्दी की उप-भाषाएँ और बोलियाँ गुजराती, मराठी तथा पंजाबी की गणना करनी होगी।

१. अरबी-फारसी के अनेक अव्यय हिन्दवी में प्रयुक्त हुए हैं। मुसलमान कवियों ने इनका प्रयोग अधिक प्रमाण और तत्सम रूप में किया है। अ. फा से प्राप्त अव्ययों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

१. कालवाचक क्रिया विशेषण—

बादल	—	बाद अज इद्दत मासक तिन।
दायम	—	दायम मेरे अंधे तूं।
		उस के अछे दाइम खयाल। (अग)
रोज	—	सब उठ यही ज्यूँ हर रोज।
		अल्ला अंगे रोज हिसाब।
हनोज (रमेशा)		मरे जीव की हनोज हवस।
पस (अंतल:)		नाहीं के पस आए दिवस।

२. स्थानवाचक क्रिया विशेषण—

पेश (सामने)	—	यूँ कह चल्या मूसा पेश।
दर (भीतर)	—	दर हर बाब।
करीब	—	कूफे केरा लोग करीब।

३. सम्बन्ध सूचक—

दुम्बाल	—	पीछे लाग्या नित दुम्बाल।
		हुसेन केरे दुम्बालों।
बिगर		के ऐ माँ बिगर मुकलाया।

४. परिमाण वाचक :

खूब	—	मौजूँ काबिल खूब नहीं।
कम वेश	—	देखें सब कम-वेश ढिढोल।

५. विरोध दर्शक—

वले	—	शापक्कत न करें वले दुख धरें।
		एहाँ दुख देखे वले कीत तरब।
लेकिन	—	लेकिन दरखूह अंदेशद।
		लेकिन शाह हुसेन हरजिग।

६. संकेत वाचक व्यधिकरण—

गर	—	कहीं गर उस गफलत घाल।
अगर	—	अगर जो जोवे उम्र ले।

७. परिणाम दर्शक—

दरहाल—	बाजा नबो उठ दरहाल।
ता—	जप्त करें ता मिश्रो शाम।
बारे—	बारे ईहां आव हुसेन।
	बारे दीसें बादल जों।
	बारे मैं तो बांध्य िक्कत।

८. संयोजक—

व—	रहे जुल्म मुझ पर व औलाद पर।
हम (दो)	औरत मर्द हम खास व आम।
	बसरे दिया कूफा हम।

९. उद्‌गार वाचक—

काश—	काश ने न जनती मुझ को माय।
वाय—	प्यासों भूखों मरे वाय-वाय।

(२) कुछ पंजाबी से प्रमायित अव्यय निम्न प्रकार हैं—

(१) क्रिया विशेषणवाची अव्यय—

नेडे—	नेडे आया अब फरात।

(२) संयोजक—

होर—	माटी पानी आग होर बाव।
	होर उन पोंगडों कारन मुझ।
	उग्रघाद होर अब्दुल्ला।

(३) मराठी तथा गुजराती—

अवधारण वाचक—'च' इस अव्यय का हिन्दवी में प्रयोग स्पष्टतः मराठी के प्रभाव को सूचित करता है। मराठी सन्तों को हिन्दी रचनाओं में भी इसका प्रयोग मिलता है।

च (हो)—	अजिच बदस्तूँ तेरा व्यास।
	सब कह उठे एकच बात।
	इहांच उसको दफन करें।

कुछ शब्दों में 'च' से पूर्ण एक अन्य अवधारणवाचक 'ई' '-८' हो का प्रयोग भी किया जाता है।

तोइच बोछू उतरेगा दरहाल।

नकारार्थ—

नको—	हरगिज किधरे जावें नको।

(४) हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों से प्रभावित तथा प्राप्त अव्यय-

सम्बन्धवाचक अव्यय—

बाज (=बिना) <प्रा. वज्ज<सं. वर्ज.

पूंटन लागे पानी बाज ।
यूं ये पानी बाज मुए ।
लंका होई हुने बाज ।

अझूं—अज हूं (आज भी)

अझूं दुख सा बापों का । (इस प्रत्यय का प्रयोग अवधी में होता है)

रीति वाचक—

दबदब— दबदब करता हुआ सवार ।

२३९. **हिन्दवी अव्यय भेद—**

हिन्दवी के ऐसे अव्यय यहां उद्धृत किये जा रहे हैं, जिन का रूप वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी के अव्ययों से भिन्न है । यथा—

(१) स्थानवाचक क्रिया विशेषण—

अग्घे, आगे—ईन अव्ययों का विकास सं. अग्र<पं. अग्गे, हि आगे-माना जाता है ।

पीछे बेरी अग्घे घाट ।
कहूंगा उस अग्घे जाय ।
रासे नबी अग्थे आन ।
अग्घे हुआ चाबुक मार ।
आगे बोंगर पखे घाट ।

पछे, पीछे—सं. पश्च>राज. पाछे>पि. पछे—

इक-इक मंजिल पखे थाल ।
आगे डोंगर पछे घाट ।
पीछे बेरी अग्घे घा ।

ऊपर-ऊपर<सं. उपरि । इस का प्रयोग मुख्यतः सम्बन्धसूचक अव्यय के रूप में हुआ है—

रोवन लागे ऊपर पड़ ।
ऊपर इलाहो चाव तुझा ।
तल की माटी ऊपर कर ।

तल— तल<सं. तलम्

आनूं बैसे खाड़े तल ।
तलकी माटी ऊपर कर

नीड़े— नीडे<राज नीडे पं. नेड़े ।

धाजीं उठकर नीडे आव ।

पास— पास <सं. पार्श्व

अब्दुल्ला कूं पास बुलाव ।
किस लग बैसे किस के पास ।

सनमुख— सं. सम्मुख>हि. सनमुख, सम्मुख

सनमुख होए दोनों दल ।

कने, कन्हे— हि. कने<राज. कानी, गुज. काने<सं. कर्ण

हुसेन कने थे ऐसा जनाव
मुझ कन्हे भी कुछ हुवा ।

किधर, जिधर, इधर, उधर, चौधर, चौधीर—

इन अव्ययों में 'धर' का सम्बन्ध सं. 'धरा' से माना जाता है ।[१] इन अव्ययों का पूर्वांश कि, जि, इ, उ, का सम्बन्ध प्रश्नवाचक तथा निश्चयवाचक सर्वनामों से है । चौधर में 'चौ' संख्यावाचक है, जो 'चहूं' भी बनता है । उदाहरण—

के ऐ मूसे किधर जात ।
धूंडन लागे किधरे धार ।
हरगिज किधरे जावें नको ।
की तूं जाता किधरे न्हास ।
जीधर देखे सब ऊजर । (ऊजर=ऊजड़)
इधर ऊधर पसरे जो
नीर बहावे चौंधर रोइ ।
धूंडन लागे चहूँधीर ।

कहाँ, कहीं. जहाँ, यहाँ इहाँ, वहाँ, उहाँ—

कहाँ, जहाँ, वहाँ और का प्रयोग खडीबोली होता है । निश्चयवाचक ई< ही के जोड़ने से कहीं, यहीं, और वही रूप बनता है । 'य' तथा 'व' का रूपान्तर 'इ' तथा 'उ' में होता है । उदाहरण—

अब कहाँ थें एकाएक ।
कहीं गर उस गफलत घाल ।
जहाँ माती हसन की ।
यही दश्त करबल यहाँ हाल होल ।
वारे ईहाँ आव हुसेन ।

१. डॉ. श्रीराम शर्मा—द. उ. वि. पृ.२६३

ईहाँ उलझे ए जो लग ।
जे कोई देखे ऊहाँ आय ।

ऊहाँ हाजिर रूहनवी।

दूर—सं, दूर,

उथें दूर ये थाले वाट।

लेकर जाना दूरदराज।

बाहर बार, बार<सं. बहिर्, उच्चारण सम्बन्ध प्रभावों के कारण बाहर का एक रूप 'भार' भी बनता है तथा 'ह' का लोप होने से 'बार' रूप में भी यह अव्यय मिलता है।

जरुरत जाना अब बाहर।

डूबते तारे लाबे वार।

(२) कालवाचक क्रिया विशेषण—

आज<सं अद्य—आज<अद्य

बाप न माई, माई आज।

अझूँ<अज+हूँ—अझूँ दुख मा बापों का।

अताल(=अब)=व्युत्पति अज्ञात—

की तूं मला अताल ऊथ।

कद, कधीं, जद, जणां—

'कद' और 'जद' का सम्बन्ध सं. 'कदा' तथा 'यदा' से है। कधीं<कदा+ही (कधी=कभी) तथा अनुस्वार के आगम से बना है। जयाँ<यदा+ह, अनुस्वार का आगम।

अबके बिछोड़ कद मिलें।

कधी छाँव कधों धूप।

कधो तपता धूग काला।

जधाँ हावे ये माठी लाल।

जधाँ थे यह खुर्द सगीर।

अब, अबके, जब, जमी, तब—

बीम्स ने संकेतवाचक 'अ' 'इ' तथा 'ए' के साथ सं. शब्द 'बेला' के योग से इन अव्ययों का उद्भव माना है। जमी में ज ब+ही का योग है।

अक तूं यहाँ थें निकल।

अब मुझ नही पुश्ती बल।

अब के बिछोडे कद मिलें।

जब मरेंगे रे जवाँ।

लोझन निकल्याजब शहसवार।

जबके हम तुम होएँ एक।

जमी उठया मार बिछाव।

तब हों अछूगा या नाँ।

तूरत < सं. त्वर, त्वरितम्

सुनकर तूरत उन खवांस।

कुफे कीधर तूरत रवाँ।

कालवाचक—अवधि सूचक अव्यय

'अब' 'जब' आदि के साथ 'लग' के योग से अवधि अव्यय बनते हैं

जबलग हस्सा हुसेन जबलग दोय।

जोलग इहां उलझे ए जो लग।

जो लग जीव्या तोलग मैं।

तोलग तो लग जाकर कोई नस।

सब दश्त करवल यूँ ता लग।

तो लग इस मों एकस रात।

नित<नित्य—उनकों करता नित दुवा।

चांद घटे नित झरझर आब।

जाता है नित खाके खाक।

सदा <सं. सदैव —

रोते रहें लोग सदा।

लहोडे बडे सब ददा।

२४०. सम्बन्ध सूचक अव्यय—

किसी शब्द का वाक्य के अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध सूचित करने के लिए सम्बन्ध सूचक अव्ययों का प्रयोग होता है—

कन<सं. कर्ण—बोल्या पहले तुझ कन धीर।

यजीद कन सर भेज्या काट।

यूँ विवाद ले हुसेन कन।

तल<सं० तल, तलम्—तल की माटी ऊपर कर।

मानूं बैरी खांडे तज।

हौं क्यों अनूं उसके तल।

घर, धिर, धीर—(=निकट)—बेटी घर जा कहती बात।

सो मैं हुसेन घर गुजरात।

हुसेन की धिर कीता चाल।

तुज धिर भाकूँ सच्चा भाव।

ज्यूँ उन फिर्या घर की धीर।

खुश होकर फिर्या घर की धीर ।

बाहें—(?) पानी बाहें नदी किनार ।

हसन बाहे गुसल दे ।

पास<सं. पाश्व—ल्याया हुसेन पास खबर ।

हसन केरी औरत पास ।

हुसेन अली उस पास बुलाव ।

पाछे, पीछे<सं. पश्च—इक इक मंजिल पछे घाल ।

वह यूं पछें मंजिल वार ।

तूं मुझ पछे सब सम्हाल ।

पीछे बेरी अंधे घाट ।

पीछे लाग्या नित दुम्बाल ।

मंझार<सं. मध्य., 'आर' सम्बन्ध कारक का चिन्ह है—

लोट न मुझ को डोह मंझर ।

बीच, बीचक—हार्नली के अनुमान से सं. 'वृत्ये' से इसका उद्‌भव हुआ होगा।[1] अपभ्रन्श में 'विच्च' का प्रयोग हुआ है। इसी से बीच का विकास सम्भव है। बीचक में 'क' सं. 'कृ' का सूचक है।

आपे बीचक जखमा घाव ।

ऊपर<सं. उपरि,—ऊपर इलाही चाव तुझा ।

माई ऊपर पर्या आव ।

भीतर—सं.-अभ्यन्तर,—उन दोन्हों भीतर लाया सोय ।

धन्दे के भीतर गिरफ्तार ।

मेरी दुरही भीतर रह ।

इसी भीतर कोई नसर ।

संगाती, संघात—<सं. सं—हुसेन संगाते बैत आन ।

हुसेन संगाती उसका अक्द ।

यह छन सारा राज संघात ।

बिन—सं बिना—नाद सुनाया बिन कंट तांत ।

पानी बिन यूं मुख पसार ।

तुझ बिन मुझ तारीफ जहान ।

पानी बिन क्यों मर मर गये ।

लग—(=तक) आदम थें ता कयामत लग ।

---

१. हार्नली—कं. ग्रा. गं. (३७८) पृ. २४१.

थें परी याजीद लग ये खबर ।

२४१. रीति वाचक अव्यय—

यूं ज्यूं त्यूं जूके—सु. चटर्जी के मतानुसार सं. किम् के अनुकरण पर जिस, तिम की उत्पत्ति हुई। पू. हि. में जिमि, तिमि, का प्रचलन है। गुजरात में जेम, प्रचलन है। गुजरात में जेम, तम रूप चलते हैं। इन्हीं रूपों से हिन्दवी के ज्यों, त्यों और ज्यूं, त्यूं का तद्‌भव हुआ। उदाहरण—

यूं उन दोनों लेते अड ।

ज्यूं ज्यूं खेले दोनों मिल ।

बिजली ज्यूं के कड कड टूट ।

हरन्या भीतर चीता ज्यूं ।

तूं सुन ऐ ज्यूं के कान ।

त्यूं त्यूं नये अत खुश दिल ।

जाय मिर्या त्यूं वेरें साथ ।

२४२. अवधारणा वाचक अव्यय—

तो<सं. तदपि,—तो हौं सफला बाजी दे ।

तो हम पावें सुख बाजां ।

तो सुन यादीज राजी होय ।

तो न परता यह दुख आय ।

भी<सं. अपि—भी नित दीखें उसी थाँवें ।

हुआ याजीद भी बेजार ।

बाजां में भी अन्दर खवेश ।

तूं भी मत यखादी बार ।

तुझ पर भी उन राते रात ।

च, छ (=ही) — 'च' का विवेचन पीछे मराठी से प्राप्त अव्ययों के प्रसंग में किया गया है। हिन्दवी में 'छ' का भी उसी अर्थ में प्रयोग होता है। 'छ' च+ह से बना है।

तो छ आनूं अपने घर ।

तु छ हो सके राजधनी ।

'च' तथा 'हो' का भी प्रयोग हुआ है

इहांच इस को दफन करो ।

तूं ही कह ऐ मुसे ।

२४३. १. परिणाम वाचक—

चुक, टुक—हिन्दी की बोलियों में इन अव्ययों का प्रयोग होता रहा है।

राखे दीन्हों कूं चुख समझाव ।
देख्या खूबी चुक अदेश ।
रहया चुक अंदेश में ।
टुक न आया मेहर प्यार ।

२. संकेतवाचक व्यधिकरण—

जे<सं यदि, ब्लाक इस की व्युत्पति सं. 'यत' से बताते हैं । मराठी और गुजराती में भी जे (यदि) का प्रयोग है ।

लोजन बाहे जे तूं जाय ।
हुसन दफा होता जे ।

३. करण वाचक—

की, के, क्यूं, केवं.—इन सभी की व्युत्पत्ति अप. केम्ब<सं. किम् से मानी जाती है ।

की तूं जाता किधरे न्हास ।
तू के रहे यूं परकम ।
क्यूं अब होए यह मुश्किक हल ।
क्यूं क्यूं मुझ पर है फकिया ।

ब्रज के 'काहे' का भी प्रयोग हिन्दवी में हुआ है—

काहे जाना मदीने ।

४. अधिकता बोधक—

भीत, भोंत<बहुल-भांति लश्कर दूर दराज ।

भोंत घाले काफिर पार ।

५. स्वीकार्थक-हाँ—हाँ ऐ, सैयद सरवरे पाक ।

६. निषेधार्थक-न, ना. नाहीं-न तदबी चले न हीले रवाँ ।

न हुवा न होसी कधी यूँ अंदर ।
चीतूँ ते दाँवाँदोल न हो ।
घाबर गया जीबन लाग ।
न बोल शाह तू ऐसी बात ।
जो लग नाहीं आये कोय ।
बाट नहीं अब किधर जाँ ।

६. उद्देय वाचक--के (दि. कि.)

ऐब किए के वदसाजी ।
याजीद भेज्या उस फरमान ।

के हुसेन अली को तूँ जुम्बान ।
के ये लश्कर किस का है ।
कि इसे बारे दफन करो ।

७. परिणाम दर्शक—सो-सो मैं हुसैन घर गुजरात ।

२४४. उद्गार वाचक अव्यय—

बारे—बारे दीसें बादल जाँ ।
वारे—वारे मेरे प्यारे ।
वाय<बाए. (अरबी अव्यय=हाय)
लेकर ऊठी सुन ऐ वाम ।
वाह—वाह मेरे शाह जवान ।

४ | हिन्दवी साहित्य का सर्वेक्षण

पीछे डॉ. एहतेशाम हुसेन के शब्दों में हम कह आये हैं कि "अमीर खुसरो ने जिस भाषा को हिन्दुई कहा है, सच यह है कि हम उसी से हिन्दी भाषा का इतिहास भी आरम्भ कर सकते हैं।"[१] अमीर खुसरो १३-१४ वीं शती ई० में वर्तमान थे, जिसे भाषा वैज्ञानिकों ने संक्रमण काल कहा है अर्थात् इस समय तक नव्य आर्य भाषाएँ अपभ्रंश के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी थीं, इसके विपरीत खुसरो की प्राप्त पहेलियों और मुकरियों में भाषा का जो रूप देखने में आता है, उससे भरोसा नहीं होता कि ये रचनायें अपने वास्तविक-मूल रूप में हमें उपलब्ध हो रही हैं। १५-१६वीं शताब्दी में सभी नव्य भाषाएँ अपने वर्तमान रूप में विकसित हो चुकी थीं, यह प्रायः सर्व सम्मत मत है।

साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा के जिस सुष्ठु-परिनिष्ठित रूप की अपेक्षा की जाती है, लोक व्यापार उसके लिए रुका नहीं रहता। सदा ही लोक गति दो कदम आगे होती है, इसीलिए लोक-साहित्य में भाषा का प्रगतिशील रूप दिखाई देता है। यही अवस्था खड़ी बोली के सम्बन्ध में सत्य है इसके बोली रूप का इतिहास विद्वानों द्वारा मान्य तथाकथित "पुरानी हिन्दी", से ही यदि आरम्भ किया जाय तो डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार ७७८ ई० में जनपदीय बोली के रूप में हिन्दी का अस्तित्व था, उनके अपने शब्दों में"..........इस ७७८ ई. में दाक्षिण्याचार्य चिन्होंद्योतन ने 'कुवलय माला कथा' लिखी। उसमें एक हाट का उल्लेख है जिसमें आये हुए देश-देश के बनिये अपनी-अपनी बोली में अपना-अपना माल बेचने का प्रयत्न करते हैं।.........मध्यदेश (हिन्दी भाषी प्रदेश) से आये हुए बनिए के मुँह से उसने 'तेरे मेरे आउ' कहलाया है। तेरे मेरे आउ गठा हुआ वाक्य नहीं है। हो सकता है कि ये शब्द भी लेखक के लिए ध्वनिमात्र हों। फिर भी इस ध्वनि में हिन्दी के दो सर्वनाम 'तेरे' 'मेरे' और एक क्रियापद 'आउं' का साफ सुनाई देना, इस बात का पता देता है कि उस समय मध्यदेश में हिन्दी बोली जाती थी।"[२]

१. एहतेशाम हुसेन—उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८
२. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-मकरन्द (प्रथम खंड), पृ० १

इस प्रकार यह सिद्ध है कि ८वीं सदी ई० में प्रस्तुत भाषा अंकुरित हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत विचार एवं उदाहरण पिछले प्रकरण में आ चुके हैं! वस्तुतः आठवीं से तेरहवीं शताब्दि तक हमारी भाषा अपभ्रंश के अधिक निकट रहते हुए भी गतिशील थी। इस काल के कुछ प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, पुष्प कवि ने ७१५ ई० में 'भलकर की भाषा' दोहों में, अब्दुल्ला एराकी ने ८७० ई० के लगभग "कुरान का तर्जुमा" हिन्दवी में, मसऊद साद सलमान ने लगभग ९०० ई० हिन्दी का एक दीवान और कालिंजर के राजानन्द ने १०१३ ई. में सुलतान महमूद की प्रसंसा में एक शेर लिखा था।[१] किन्तु ये सब रचनायें अप्राप्य हैं और इनका कोई उदाहरण भी उपलब्ध नहीं है। इसीलिए यह कहना कठिन है कि इनमें व्यवहृत हिन्दी का रूप कैसा था और वह विकास की किस अवस्था को पहुँच चुकी थी। इतना अवश्य अनुमान किया जा सकता है कि १०-११ वीं शता. से पूर्व ख. बो. की परम्परा साहित्य और लोक-काव्य में विद्यमान थी।

हिन्दी साहित्य के 'सिद्ध सामन्त' काल अथवा 'आदिकाल' में सिद्धों, नाथों तथा चारण कवियों का साहित्य उपलब्ध होता है। गोरखनाथ और चारण कवियों के उपलब्ध साहित्य को विद्वानों ने सन्देह की दृष्टि से देखा है। स्वयं ६७६ ई० कहणपा (८४० ई०), पुष्पदन्त इत्यादि कवियों की भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है। चारण काव्य में निश्चित ही अपभ्रंश मिश्रित डिंगल का उपयोग हुआ है तथा उसका सम्बन्ध राजस्थान तक सीमित रहा है। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम हमें गोरखनाथ के पदों में ही भाषा की उस शैली का पता चलता है जिसे बाद के सन्तों, अमीर खुसरो तथा दक्षिणी राज्यों में शासकों एवं सूफियों द्वारा अपनाया गया और जो मुख्यतः दिल्ली-मेरठ की खड़ीबोली पर आधारित थी।

गोरखनाथ और उनका साहित्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोरखनाथ के जीवन काल पर विचार करते हुए लिखा है "गोरखनाथ के समय का ठीक पता नहीं। राहुल सांकृत्यायन ने वज्रयानी सिद्धों की परम्परा के बीच उनका जो स्थान रखा है, उसके अनुसार उनका समय विक्रम की दसवी शताब्दी होता है, (किन्तु) गोरखनाथ का समय निश्चित रूप से विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते नहीं बनता।"[२] राहुल जी के मतानुसार इनका समय वि. स. ९०२ (८४५ ई०) के आस-पास माना जा सकता है।[३] आचार्य शुक्ल

१. पी. बड़थ्वाल 'मकरन्द' (प्रथम खंड), पृ० ३
२. रा. शुक्ल हि. सा. ई., पृ० १६
३. राहुल सां. हि. काव्य धारा, पृ० १५६

जो सम्भवतः गोरखनाथ को विक्रम की १३ वीं शती में वर्तमान मानते हैं। इसके विपरीत डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ को विक्रम की ११ वीं शती में वर्तमान मानते हैं। "चाहे ये कृतियाँ ठीक इसी रूप में उस समय की न हों, परन्तु इनमें भी प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनका मूलोद्गम ११ वीं शती ही में हुआ हो।"[1]

नाथपंथी साहित्य में स्वयं गोरखनाथ की ही ४० रचनायें प्रचलित हैं। डॉ. बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित "गोरखबानी"[2] के सम्पूर्ण अध्ययन से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। गोरखनाथ की एक अन्य रचना 'गोरखबोध' भी विशेष प्रसिद्ध है। डॉ. बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की 'सबदी' को सबसे अधिक प्रामाणित रचना माना है। कुल ४० रचनाओं में से गोरखनाथ की १४ रचनाओं को डॉ. बड़थ्वाल ने निःसन्देह प्राचीन माना है।[3] नाथ योगियों की परम्परा में गोरख के अतिरिक्त हमें अन्य नाथ-सिद्धों की फुटकर रचनाओं का भी पता चलता है। इन सभी की प्रामाणिकता के विषय में निश्चयपूर्वक कोई बात कहना असम्भव है।

कबीर से पहले के नाथ-सिद्धों में जिनकी रचनाओं का पता चलता है, उनमें उल्लेखनीय व्यक्ति ये हैं, चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, चुणकरनाथ, भरथरी तथा जलंध्री पाव। नाथ योगियों की अनेक परम्परायें प्रसिद्ध हैं। चौरासी सिद्धों के समान नवनाथ भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें, शिव ही आदिनाथ हैं, तथा मत्स्येन्द्रनाथ (मछेन्द्र), जालन्धरनाथ और गोरखनाथ मुख्य हैं। इन नाथों की गणना चौरासी सिद्धों में भी की जाती है। सम्भव है ये पहले किसी सिद्ध सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहे हों और पीछे से इस पंथ के अनुयायी बने हों।

नाथ साहित्य और सैद्धांतिक मान्यता

अपभ्रंश साहित्य में बौद्ध सिद्धों की जो साहित्यिक परम्परा पाई जाती है उसी की क्रमिक धारा नाथपंथी सिद्धों का साहित्य है। इनके साहित्य में जहाँ एक ओर उलटवासियों की शैली में रहस्यात्मक साधना की व्यंजना पाई जाती है, वहाँ दूसरी ओर साधारण जनता की बोली में पंडितों का पाखंड, ढोंग, जातिप्रथा, रूढ़िवादिता की कटु अलोचना भी है। इस आधार पर "गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थिति की गई, वहाँ दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परा रूढ़ियों पर भी आघात किया।

१. डॉ. ह. द्विवेदी. ना. स., पृ० १०२
२. डॉ. बड़थ्वाल. हि. सा. स. प्र. स. १९९९
३. हि. सा. वृहद इतिहास खंड २, पृ० ४०७

जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहजमार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरख ने किया।"[1]

१४ वीं शताब्दी तक नाथ साहित्य ने भारतीय साहित्य और धर्म में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। इस प्रकार 'नाथ युग' 'सिद्ध युग' और सन्तों के बीच की कड़ी माना जा सकता है।[2] नाथ पंथ की दार्शनिक सैद्धान्तिकता शैवमत के अनुकूल है और व्यावहारिकता की दृष्टि से 'हठयोग' से सम्बन्धित है। ईश्वर सम्बन्धी भावना शून्यवाद में है और यह वज्रयान से ली गई है। कबीर ने इसी शून्य को सहज, सुन्न, सहस्रदलकमल आदि नामों से पुकारा है। नाथों ने इसी शून्य को अलख-निरंजन कहा। नाथ साधना पूरी तरह निवृतिमार्गी थी। वैराग्य से शब्द, स्पर्श आदि से मुक्ति सम्भव है। वैराग्य गुरु कृपा से साध्य होता है। नाथ सम्प्रदाय के अधिक प्रचलित न हो सकने का मुख्य कारण यह था कि ये साधारण ग्रहस्थों को घृणा की दृष्टि से देखते थे तथा दीक्षा देते समय किसी की कठोर परीक्षा ली जाती थी। इसमें प्रचार की अपेक्षा मर्यादा रक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन्होंने कुछ आध्यात्मिक संकेत रहस्यात्मक शैली में, उलटवासियों में और विचित्र रूपकों में किये जो साधारण जनता की समझ से बाहर थे। सम्भवतः बौद्ध विहारों में भिक्षुणियों के प्रवेश का परिणाम गोरखनाथ ने देखा होगा, इसीलिए इस सम्प्रदाय में इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया गया है। इसके बाद प्राण साधना तथा मनः साधना पर अधिक बल दिया गया है। नाथ साहित्य में उक्त 'त्रिविध निग्रह' के साथ ही उलटवासियों में यौगिक क्रियाओं का संकेत पर्याप्त किया गया है :

भाषा—'देश भाषा में लिखी गोरखपंथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में है और विक्रम सं. १४०० के आसपास की रचनाएँ हैं। गोरख गणेश गोष्ठी,......आदि, ये सब ग्रन्थ गोरखानाथ के नहीं, उनके अनुयायी शिष्यों के रचे हैं। हां, साखी और बानी में शायद कुछ रचनाएँ गोरख की हों।'[3] इस प्रकार गोरखनाथ के नाम पर प्रचलित अधिकाँश रचनाएँ प्रामाणिक न होते हुए भी उनका भाषा वैज्ञानिक महत्व है। १३-१४ वीं शती की खड़ी बोली का रूप बहुतांश पदों में सुरक्षित दीखता है।

गोरखनाथ का कार्यक्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत में ही मुख्यतः केन्द्रित था तथापि उनका व्यक्तित्व अखिल भारतीय था। उनके नाम से मराठी में भी दो रचनाएँ मिलती हैं—(१) गोरक्ष-अमर संवाद और (२) गोरक्ष गीता। कुछ लोग गोरखनाथ

१. डॉ. रामकुमार वर्मा—हि. सा. आ. इतिहास
२. शिवकुमार शर्मा—हि. सा. युग और प्र., पृ० २२
३. रा. शुक्ल.—हि. सा. इ. २३

का जन्म महाराष्ट्र के 'चन्द्रगिरि' में मानते हैं तथापि यह विश्वास किया जाता है कि महाराष्ट्र में नाथपंथ उत्तर भारत से आया ।[1] महाराष्ट्र के आद्य संत ज्ञानेश्वर, नाथ परम्परा से सम्बद्ध हैं। गोरखबानी में संग्रहीत पदों की भाषा का रूप—

१. सिष्टि-उतपति बोली प्रकास, मूलन थी, चढ़ी आकास।
ऊरध गौढ़ कियो विस्तर, जाणनै जोसी करै बिवार ॥ (११९/१)

२. दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा, सुरति लुकाईबा कानं।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निर्वानं ॥ (१७/७५)

३. अबूझि बूझिलै हो पण्डिता अकथ कथिलै कहाणी।
सीस नवावत सातगुरु मिलिया, जागत रैंण बिहाणी ॥ (७२/२२२)

मराठी प्रभावयुक्त भाषा—

कैसे बोलौं पण्डिता देव कौनै ठांई।
निजतत निहारतां अम्हें तुम्हें नाहीं ॥ ठेक ॥
परवांणची देवली पखाणचा देव
पखाण पुजिला कैसी फोटील सनेह ॥ १ ॥
सरजीव तोडिला (?) निर्जीव पूजिला
पापाची करणीं कैसी दूतर तिरीला ॥२॥
तीरथि-तीरथि सनान करीला।
बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला ॥ ३ ॥
आदिनाथ नाती मछन्द्रनाथ पूत
निजतत निहारे गोरख अवधूत ॥ ४ ॥[2]

डॉ० श्रीराम शर्मा ने कहा है मध्ययुगीन साधकों में गोरखनाथ का व्यक्तित्व अखिल भारतीय था। उन्हें दक्षिण ही नहीं, चारों दिशाओं के योगियों की पहचान थी।

दखिणी जोगी रंगा चंगा पूरवी जोगी वादी।
पछमी जोगी वाला भोला सिध जोगी उतराधी।
अवधू पूरबदिसि व्याधिका रोग पछिमदिसि मिर्तकासोग
दक्षिण दिस माया का भोग उतर दिसि सिध का जोग।

गोरखबानी में अरबी-फारसी के शब्दों को देखकर (यह कहा जा सकता है कि वे मुसलमानों से परिचित थे, तथा उनके काल में कुछ अरबी-फारसी शब्दों का हिन्दी में प्रचलन हो चला था।

---

१. श्रीराम शर्मा—द. हि. सा., पृ. ४५
२. पी. बड़थ्वाल—गोरखबानी, पृ. १३१, पद ३७

हिन्दू-मुसलमान खुदाई के बन्दे,
हम जोगी न कोई किसी के छन्दे।

मुहम्मद का नाम भी मिलता है—

ओम लोहा पोर। तावां तदबीर
रूपा महम्मद। सोना खुदाई
दुहुँ बिचि दुनिया गोता खाई,
हम तो निरालम्ब बैठे रेखते रहै,
ऐसा एक सुखन बाबा रतन हाजी कहैं।

इन पदों की भाषा में खड़ीबोली, ब्रज के साथ पूरबी तथा मराठी गुजराती का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दवी शैली गोरखनाथ का व्यक्तित्व अन्तरप्रान्तीय था अतः उन्होंने किसी स्थानीय बोली के बजाय उस भाषा-शैली को ही अपनाया और समृद्ध किया, जो व्यापक जन समाज के साथ उनका सम्पर्क स्थापित कर सकती थी। गुजराती प्रभाव से युक्त भाषा के उदाहरण—

१. भणंत गोरखनाथ रुड़रावी, नगरीचोर मलाया।
२. एणे सतगुरि अम्हे परणांव्या, अबलबाल कुंवारी
३. मच्छिन्द्र प्रसादे जती गोरख बोल्या, नितनवेलडी भाणे
४. मनपवना घोरी जोतावों, सतनां आतोडा समथावो (गो. बा. पृ. ६६, १०६)

इन पंक्तियों में रुड़ा एणो अम्हे, बोल्या, मायाना, प्रसादे, नवेलडी, माये जोतावो, धावो इ. शब्दों में गुजराती का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यदि इन पदों को प्रमाणित मान लिया जाय तो गोरखबानी पर गुजराती का प्रभाव सहज ही सिद्ध जाता है।

संत साहित्य में हिन्दवी

'सन्तकाल' (१९८३ से १९०३ ई०) की निर्गुण भक्ति धारा के संत कवियों की रचनाओं, बानियों में खड़ी बोली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'इन लोगों की सधुक्कड़ी या फक्कड़ी भाषा नाथपंथी सिद्धों और योगियों की उस पंचमेल खिचड़ी की परम्परा में आती है, जिसमें खड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं का सम्मिश्रण हुआ है।''[1]

सन्त सम्प्रदाय का सीधा सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से माना जाता है। उन जैसे ही आचारनिष्ठा, विवेक सम्पन्नता, अन्धविश्वासों के प्रति कठोरता, कर्मकांड की

---

१. डॉ. गेंदालाल शर्मा—ब्र. ख. व्या. तु. अध्ययन, पृ. ७०-७१

निरर्थकता सन्त सम्प्रदाय में सीधी चली आयी । आचार्य शुक्लजी ने इस सम्बन्ध में कहा है—"निर्गुणवादवाले और दूसरे सन्तों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कवि योगियों के नाडीचक्र की, कहीं सुफियों के प्रेम तत्व की कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की । अतः सात्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी । दोनों का मिला जुला भाव इनकी बानी में मिलता है । "इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि जिन धार्मिक सम्प्रदायों ने सन्तकाव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार की उन सम्प्रदायों साहित्य प्रवृत्तियों का संतकाव्य में स्वतः समावेश हो गया । सिद्धों, नाथों स्मार्तवैष्णवों, सूफियों—सभी का जो उत्तम लगा उसे सन्तों ने ग्रहण कर लिया । महाराष्ट्र में प्रचलित विठ्ठलभक्ति में मानसिक भक्ति और नाम स्मरण को अधिक महत्व दिया गया था । इसमें प्रेमासक्ति और रहस्यमयता की भावनाएं भी समाविष्ट हैं । इन प्रवृत्तियों को भी सन्त साहित्य में देखा जा सकता है । कबीर ने कई बार विठ्ठ ओर सन्त नामदेव का उल्लेख किया है ।

महाराष्ट्र का सन्त साहित्य और हिन्दवी

कहा गया है "भक्ति द्रविड़ ऊपजी" के अनुसार भाव भक्ति का मध्यकालीन आलवार सन्तों से सम्बन्ध है । हिन्दी क्षेत्रों में भक्ति भाव के प्रसार का विशेष श्रेय महाराष्ट्र के भक्त-सन्तों को मुख्यतया दिया जाना चाहिए । महाराष्ट्र के आरम्भिक सन्त ज्ञानेश्वर-नामदेव उत्तरी भारत में समय-समय पर संचार करते रहे । उनका सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से होते हुए भी 'वारकरी' सम्प्रदाय के रूप में एक नयी 'भक्ति धारा' महाराष्ट्र में प्रवहित हुई, जिसका हिन्दी सन्त परम्परापर भी विशेष प्रभाव पड़ा । "सिद्ध एवं नाथपन्थ को जो विशेषताएँ हिन्दी के सन्त काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं वे सम्भवतः महाराष्ट्रीय सन्तों के माध्यम से हो उसमें आई हैं ।"[1] हिन्दी सन्त परम्परा के प्रथम कवि कबीर के आविर्भाव से बहुत पूर्व चक्रधर(११९४ से १२७४ ई.) ज्ञानेश्वर (१२७४-११९६ ई०) नामदेव (१२७० से १३५० ई०) मुक्ताबाई (१२७९—१२९७ ई०) इ. ने. हिन्दी में ऐसे पदों की रचना की जो शैली की दृष्टि से कबीर के पदों से गहरा साम्य रखते है । इन महाराष्ट्रीय सन्तों ने हिन्दी की अपेक्षा मराठों में अधिक रचना की है अन्यथा हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी उन्हें उतना ही स्थान दिया जा सकता था, जितना कि इन्हें महाठी साहित्य के इतिहास में प्राप्त है । वस्तुतः विचारधारा, भावना, शैली और भाषा से सम्बन्धित प्रायः वे सभी तत्व इन कवियों में मिल जाते हैं, जो परवर्ती सन्तों-कबीर रैदास, दादू

१. डा गणपतिचन्द्र गुप्त हि. सा. वै. इति पृष्ठ १८५ ।

आदि में मिलते हैं ।

'हिन्दी की सन्त-काव्य-परम्परा वस्तुतः इस महाराष्ट्रीय परम्परा की ही एक शाखा है, या उसी का एक विकसित रूप है ।'[1] मराठों में इस परम्परा का सूत्रपात करने वाले कवि 'मुकन्दराज' (११२७-१२०० ई०) मराठी के आदि कवि माने जाते हैं । इनकी रचना 'विविक सिन्धु' तथा 'परमागत' मराठी की अमूल्यनिधि है । "इन दोनों ग्रंथों में शांकर अद्वैत, योगानुभव और सगुणोपासना का प्रतिपादन किया गया है ।"[2] मुकुन्दराज की कोई हिन्दी रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है ।

महानुभाव पन्थ और हिन्दवी

मुकुन्दराज के देहातकाल के कुछ पूर्व ही महात्मा-चक्रधर (११९४-१२७४ ई०) का अविर्भाव हुआ, जिन्होंने महानुभाव पंथ की स्थापना करते हुए अपने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया । उन्होंने विविध देवी देवताओं की उपासना के स्थान पर परब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना पर बल दिया, परन्तु साथ ही वेदों और अद्वैतवाद को अमान्य घोषित किया । जाति पाँति और छुआ-छूत के विचारों का भी उन्होंने पूरी शक्ति से खण्डन किया । इस प्रकार उन्होंने धर्मक्षेत्र में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो परवर्ती सन्तों के द्वारा भी मान्य हुआ ।

चक्रधर—(सं० १२५०—१३३०) महानुभाव पन्थ ने महाराष्ट्र में नाथपथ का जोरदार विरोध किया था । इस पन्थ के प्रवर्तक चक्रधर मूलतः गुजराती थे । कुछ समय आन्ध्र में रहकर वे पैठण पहुचे । पूर्वाश्रम में जुए में सभी कुछ हार जाने तथा पत्नी द्वारा फटकार सुनने पर वे विरक्त हुए । घर बार त्यागकर महाराष्ट्र के रामटेक की यात्रा की । वहीं विदर्भ के गोवन्दि प्रभु से दीक्षा ली । कहा जाता हैं कि इनके बढ़ते हुए यश को देककर सं० १३३० में प्रसिद्ध पण्डित हेमाद्रि द्वारा इन की हत्या हुई ।[3] चक्रधर की चौपदी अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनकी भाषा मराठी, गुजराती मिश्रित हिन्दी है । कुछ शब्द खड़ीबोली के क्रिया रूपों की स्वतन्त्र सत्ता का निर्देश करते हैं ।[4]

महानुभाव पन्थ के कुछ प्रचारक उस समय की हिन्दी (हिन्दवी) से परिचित थे ।[5] महानुभाव पन्थी कवयित्री महदायिसा (यू. १३०८ ई.) का एक हिन्दी पद प्रचलित है—

१. डॉ गणपतिचंद्र गुप्त—हि. सा. वै. इति. पृ० १८३. ।
२. भी. गो. देशपाण्डे—मराठी का भक्ति साहित्य पृ० १५.
३. डॉ. कोलते—मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य, पृ. ८-९
४. डॉ. विनय मोहन शर्मा हि. म. सन्तो को देन,
५. डॉ. श्रीराम शर्मा-द. हि. सा. पृ. ४८.

नगर द्वार हो बिच्छा करो हो, बापुरे मोरो अवस्था लो
जिलो, जावो तिहाँ आए सजिसा कोड न करो मोरी चिन्ता
हाट चौहाटाँ पड़ रहूँ हो मांग पंचपर भिच्छा
बापुड़ लोक मोरी अवस्था कोड न करो मोरी चिंता लो । ४

महानुभाव पन्थ से ही सम्बन्धित दूसरे प्रसिद्ध मराठी कवि दामोदर पण्डित है। (१२७७ ई०) हिन्दी में रचना मिलती है । वे गोदावरी के किनारे--रहते थे विनयमोहन शर्मा ने (१६४९ ई०) लिखित पाण्डुलिपि से निम्न पद उदधृत किया है—

पढ़ो हो पण्डित गुणों हो शास्त्र अलोढी सकल पुराणा
उसमें कर्मकु हा धन्दा उगवति गुरुमुखें खुणा ॥१॥
सुन हो बाबा, सुन हो पण्डित, सुन बैरागी भाई ।
मेंसारी साखी बीरला सुने बूझतो बीरला कोई
अनन्त पुरुष हो अनन्तभाषा पुकारति नाना विचार ।
सब हो मिलकर रहणि नैननि पन्थ तो अपरपार ॥२॥
सिद्धान्त सिद्ध न सिद्धति सारे अवधुत के हम राजे
सब हि व्यापिनि जग की स्वामिनि उस पर जंजीर ॥३॥

बारकरी सम्प्रदाय

पूर्वोक्त मुकुन्दराज तथा चक्रधर को महाराष्ट्र में सन्त परम्परा को पृष्ठभूमि तैयार करने का ही अधिक श्रेय है, उसको, सम्यक् प्रतिष्ठा तेरहवीं शती के अन्तिम चरण में वारकरी सम्प्रदाय के सन्तों द्वारा ही हुई। वारकरी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक तो सन्त पुन्डलिक माने जाते हैं किन्तु उसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री का सर्वथा अभाव है। ऐतिहासिक दृष्टि से सन्त ज्ञानेश्वर (१२८५-१२९६ ई०) ही इस सम्प्रदाय के प्रथम उन्नायक कहे जा सकते हैं। ज्ञानेश्वर के समकालीन नामदेव (१२७०-१३५० ई०) निवृत्तिनाथ (१२७३-१२९३ ई०) सोपान देव (१२७७-१२९७ ई०) मुक्ताबाई (१२७९-१२७९) प्रमुख सन्त हुए जिन्होंने अपनी अलौकिक अनुभूतियों को साहित्यिक माध्यम से प्रकाशित किया। वस्तुतः ज्ञानेश्वर एवं नामदेव ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व, दिव्य चरित्र एवं सच्ची भक्ति भावना से जनता को इस प्रकार मुग्ध कर लिया कि थोडे समय में ही सारे महाराष्ट्र और उत्तरी भारत में भक्ति की बाढ़-सी आ गई।

महानुभाव पन्थ ने जिस प्रकार नाथपन्थ का विरोध किया था उसी प्रकार वारकरी सम्प्रदाय ने महानुभाव पन्थ के भाव को रोका वस्तुतः वारकरी सं. और नाथ पन्थियों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। ज्ञानेश्वर स्वयं नाथ पन्थ से सम्बद्ध थे महानुभाव वेद और अद्वैत के विरोधी थे, साथ ही बहुदेवोपासना का भी निषेध करते थे। जात पाँत, छुआ छूत के विचारों का भी उन्होने खंडन किया था। वारकरी वैदिक धर्म के विरोधी नहीं थे तब भी वे यज्ञ-यागादि वैदिक कर्मकांडों का समर्थन नही करते थे इसी प्रकार वे चातुवर्ण्य के विरोधी नहीं थे किन्त किसी वर्ण को हेय भी नहीं समझते थे[1] कीर्तन भजन पर विशेष बल देते थे। पंढरपुर आज भी वारकरियों का प्रमुख तीर्थ केन्द्र है।

ज्ञानेश्वर-नामदेव

ज्ञानेश्वर का प्रश्रय पाकर 'वारकरी सम्प्रदाय' निर्विवाद रूप से महाराष्ट्र का प्रमुख साधना मार्ग बन गया। ज्ञानेश्वर स्वयं नाथपन्थ से सम्बन्धित थे। उन्होंने अपनी गुरु परम्परा इस इस प्रकार दी है—आदिनाथ, मच्छीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर)। पैठण स्थित शिवदीन केसरी के मठ में एक परम्परागत भजन भक्तजन गाते है, उससे भी ज्ञानेश्वर की परम्परा प्रमाणित होती है, यथा—

आदिनाथ की जय ! मत्सयेन्द्रनाथ की जय ॥
गोरखनाथ की जय । गैणिनाथ की जय ॥
निवृतिनाथ की जय । ज्ञाननाथ की जय ॥
सन्यामल नाथ की जय । गैबीनाथ की जय ॥
गुप्तनाथ की जय । उद्बोधनाथ की जय ॥
केसरिनाथ की जय । भोलानाथ की जय ॥
शिवदिननाथ की जय । नरहरिनाथ की जय ॥
लक्ष्मीनाथ की जय । सब सन्तन कीं जय ॥[2]

निवृतिनाथ ज्ञानेश्वर के बड़े भाई तथा गुरु भी थे। सोपानदेव तथा मुक्ताबाई अन्य दो भाई बहन थे। सन्यास त्यागकर गृहस्थ बने पिता के सन्तान होने के कारण ज्ञानेश्वर को महाराष्ट्र के तत्कालीन समाज में जो तिरस्कार भोगना पड़ा, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप उन्होंने जनसाधारण के लिए भेदभाव-मुक्त भक्तिभाव प्रधान वारकरी सम्प्रदाय का जोरदार प्रचार किया। गीता की भाषा टीका 'ज्ञानेश्वर' के उपरान्त 'अमृतानुभव'ग्रन्थ में ज्ञानेश्वर ने अपनी निजी मान्यताओं का निरूपण किया है।

ज्ञानेश्वर और हिन्दवी—ज्ञानेश्वर के पिता विठ्ठलपन्त ने काशी में श्रीपाद गोस्वामी से दीक्षा ली थी। ज्ञानेश्वर ने स्वयं अपने भाई बहन और नामदेव सहित काशी की यात्रा की थी, प्रमाणस्वरूप गंगा तथा काशी के सम्बन्ध उनके वर्णन

१. गं. बा. सं-म. जी (प्रथम खण्ड) पृ. १४८
२. लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर-मराठी वाङ्मयाचा इति. (खंड दूसरा) पृ. १०

उपलब्ध हैं ।[1] इस प्रकार ज्ञानेश्वर उत्तरी भारत से परिचित हो चुके थे । उत्तर भारत में उस समय जो भाषा प्रचलित थी, ज्ञानेश्वर और उनके साथियों का उससे परिचित होना स्वाभाविक या । ज्ञानेश्वर के नाम पर एक दो पद हिन्दी में भी प्रचलित है, किन्तु उनका कोई प्रामाणिक आधार नहीं हैं ।

नामदेव—हिन्दी में इस (संत) काव्य-परम्परा का प्रवर्तक सर्वथा मौलिक रूप में नहीं हुआ, अपितु यह मराठो में विकसित होती हुई हिन्दी में पहुँची है। हिन्दी में इसे प्रचलित करने का श्रेय भी महाराष्ट्रीय सन्त नामदेव (१२७०-१३५० ई०)को है, जिन्होंने एक और उत्तरी भारत में दीर्घकाल तक रहकर अपने विचारों का प्रचार किया तो दूसरी ओर हिन्दी में विपुल पदों की रचना की ।[2] नामदेव के पदों में परवर्ती हिन्दी सन्त-काव्य की प्रायः सभी विशेषताएँ—विचार, भाव, भाषा शैली आदि मिलती हैं । आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपने प्रबन्ध—'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन'—में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हुए नामदेव को ही इस परम्परा का प्रवर्तक मानने का निर्णय दिया है—वे लिखते हैं-"नामदेव में उत्तरी भारत के संत मत की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं । इसीलिए हम उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण-भक्ति मत का प्रथम प्रचारक एवं प्रवर्तक तथा कबी आदि सन्तों का पथ प्रदर्शक मानते हैं । यह सत्य है कि कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएँ नामदेव की हिन्दी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में नहीं मिलतीं परन्तु जो कुछ प्राप्य हैं । उनमें उत्तर भारत की सन्त परम्परा का आभास मिलता है और उनके परवर्ती सन्तो पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है—जिसे उन्होंने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है । ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानने में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए ।[3]

ज्ञानेश्वर तथा नामदेव के समकालीन होने के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं । यह भी प्रसिद्ध है कि नामदेव पहले सगुणोपासक थे । ज्ञानेश्वर-मुक्ताबाई ने उन्हें तत्कालीन प्रसिद्ध नाथपन्थी योगी विसोबा खेचर के पास भेजा । इन्हीं के उपदेश से नामदेव निर्गुणवादी बन गये । इसके उपरान्त वे ज्ञानेश्वर के साथी और सुहृद बन गये। नामदेव की विठ्ठल के प्रति प्रेमभाव असाधारण था । कहा जाता है जब ज्ञानेश्वर अपने भाई बहन सहित तीर्थ यात्रा के लिए चले तो उन्होंने नामदेव को भी साथ लेना चाहा किन्तु नामदेव विठ्ठल को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते थे । अन्त में में विठ्ठल ने ही उन्हें जाने की अनुमति दी ।

---

१. ज्ञा. ज्ञा. ६ : ३५५, १०, १२४, : ११, ६, १०, १८, ५१.

२. ग. गुप्त हि. सा. वै. ई. १९३

३. विनयमोहन शर्मा—हिन्दी की मराठी सन्तों को देन पृ० १२८-१२९.

ज्ञानेश्वर के साथ तथा बाद में अकेले भी नामदेव ने उत्तर भारत के काशी-प्रयाग आदि तीर्थों की यात्रा की थी । बाद में वे पंजाब की ओर भी गये । सर्वत्र वे जन प्रबोधन के लिए कीर्तन किया करते थे । कीर्तन के लिए उन्हें निश्चित की मराठी मिश्रित हिन्दी का उपयोग करना पड़ता होगा ।

नामदेव का व्यक्तित्व

महाराष्ट्र के एक साधारण शिम्पी (छींपी) परिवार में सन् १२७० में नामदेव का जन्म हुआ । विठ्ठल भक्ति के दीवाने होकर वे पंढरपुर में ही रहने लगे। विठ्ठल प्रतिमा को दूध पीने पर विवश होने को घटना प्रसिद्ध है । ज्ञानेश्वर के जीवन पर्यन्त उनके साथ रहकर वारकरी सम्प्रदाय का प्रचार करने में नामदेव का विशेष योगदान रहा किन्तु ज्ञानेश्वर के समाधि ले लेने पर महाराष्ट्र में नामदेव का मन नहीं रमा वे भक्ति का प्रचार करते हुए—पंजाब की ओर चले गये, जहाँ वे अठारह वर्ष रहे । गुरुदासपुर (पंजाब) जिसके 'छोयान' नामक स्थान पर आज भी नामदेव का मन्दिर है तथा वहाँ नामदेव सम्प्रदायियों की बस्ती है । जीवन के अन्तिम दिनों में वे काठियावाड-गुजरात होते हुए पुनः महाराष्ट्र में लौट आये तथा ८० वर्ष की आयु में पंढरपुर के विठ्ठल मन्दिर के महाद्वार पर समाधि ले ली ।

सन्त नामदेव की देन पर विचार करते हुए प्रो. देशपांडे लिखते हैं—"उन्होंने उत्तर भारत में भक्तिभाव का प्रचार करके हिन्द समाज को जाति भेद की संकीर्णता बहुदेवोपासना का सच्चा अर्थ, धर्माडम्बर और अनावश्यक आचार विचार के सम्बन्ध में जागृत किया । वे यथार्थ में सच्चे लोक शिक्षक थे । उन्होंने सन्त कबीर, गुरु-नानक जैसे परवर्ती संतों का मार्ग प्रशस्त बनाने में कुछ न उठा रखा । सचमुच वे उत्तर भारत के साँस्कृतिक एवं धार्मिक जागरण के आद्य प्रणेता थे । सन्त नामदेव का व्यक्तित्व जितना पवित्र भावुक और महान था, उतनी उनकी साहित्य रचना भी (महान) थी ।[1]

नामदेव के मराठी में लगभग तीन हजार अभंग प्राप्त हैं जो नामदेवकी गाथा में संगृहीत हैं । हिन्दी में उनके लगभग ७० पद उपलब्ध हैं, सिक्खों के 'गुरु ग्रंथ साहिब' तथा श्री आप्टे के सकल सन्तगाथा, में संगृहीत हैं ।

नामदेव की भाषा—नामदेव के हिन्दी पदों में उपलब्ध भाषारूप **के विषय में** में डॉ विनयमोहन शर्मा ने कहा है गुरुपन्थ साहब नामदेव के ढाई सौ वर्ष बाद की रचना है, अतः सम्भव हैं कि उनके पदों की भाषा में परिवर्तन आ गया हो, कि जनता संतों की वाणी में दैवी शक्ति मानकर उनका पाठ शुद्ध रखने का प्रयास करती है, अतः नामदेव के पद बहुत अधिक परिवर्तित हो गये हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

---

१. देशपांडे-मराठी का भक्ति साहित्य पृ० ७५.

वैसे भी नामदेव के पदों में उपलब्ध भाषा कबीर के काव्य की भाषा से प्राचीन प्रतीत होती है तथा उस पर मराठी का प्रभाव भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है, अतः उनमें अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। मराठी के प्रसिद्ध विद्वान श्री प्रियोलकर के मतानुसार नामदेव की भाषा 'पंजाबी मिश्रित हिन्दी है, उस पर मराठी का प्रभाव नहीं है तथा इसी आधार पर उन्होंने इन पदों के रचयिता नामदेव को प्रसिद्ध नामदेव से भिन्न सिद्ध करने का भी प्रयास किया था किन्तु श्री म. गों. वारटक्के ने इन पदों की भाषा का विस्तृत विश्लेषण करते हुए उसे मराठी से प्रभावित माना है तथा उपयुक्त मत का खण्डन किया है। निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ नामदेव की भाषा में मराठी प्रभाव को सिद्ध करती हैं :—

(अ) 'इ' का बाहुल्य—अमामलु, अम्बरीक, एक, कवनू, खेदु इ.

(ख) क्रिया पदों के काल—तारीसे, आनीसे, केसा, दैसा, भेटल आदि

(ग) शब्द एवं विभक्ति प्रत्यय—नादि, घरि, सीम्रू, अकासी सनाते बागला। ताची आणि ताचे असा, तुमच पारसु हमचे लोहा आदि।

(घ) वाक्यों पर मराठी की छाया—रे नाही समाइली सरिगुरू देत्रा भेटले मराठी रूप-अटे ! नाहीं समाविशों, सदगुरुदेव भेटले.

अस्तु, इसमें कोई संदेह नहीं कि नामदेव के हिन्दी पदों की भाषा पर मराठी का थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य है। आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार उनकी भाषा पर ब्रज पूर्वी हिन्दी और पंजाबी का भी प्रभाव है। उनकी भाषा में भी कबीर के सम्मान विविधता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि पहले कहा गया है, उसमें किंचित परिवर्तन परवर्ती लिपिकारों के द्वारा भी सम्भव है। डॉ० श्रीराम शर्मा ने नामदेव की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव माना है, उनके अनुसार हिन्दी संकलनों की अपेक्षा मराठी संकलनों में उपलब्ध नामदेव की कृतियाँ भाषाई अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी हैं···इनमें हिन्दी का वह रूप प्रयुक्त हुआ है जो १३ वीं शती के उत्तरार्ध और १४ वीं शती के पूर्वार्ध में उत्तर भारत में समझा और बोला जाता था। वह भाषा क्षेत्रीय प्रभावों से पूर्णतया मुक्त नहीं हुई थी। राजस्थानी उस समा साहित्य में प्रयुक्त हो रही थी। इसीलिए नामदेव द्वारा प्रयुक्त सामान्य बोलचाल की भाषा पर हमें राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है।''[१] सब मिलकर नामदेव के पदों में हिन्दी का वह रूप प्रयुक्त हुआ है, जो आजकल की परिनिष्ठित हिन्दी के निकट है।[२]

जहाँ तक हिन्दी पदों के रचयिता नामदेव के प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय भक्त नामदेव से भिन्न होने की बात है, यह बात अब सर्वथा अमान्य सिद्ध हो चुकी है। दोनों

१-२ डॉ० श्रीराम शर्मा- द. हि. सा. पृ० ६३

नामदेव एक हैं इसका एक पुष्ट प्रमाण यह है कि हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं के पदों में नामदेव के आत्मपरिचय इष्ट के संकेत समान हैं (यथा-नामदेव ने स्वयं को छीपी कहा है।—

(मराठी पद) (१) शिंपी याचे कुळीं जन्म मज झाला।
परि हेतु गुंतला सदाशिवी।

(हिन्दी पद) (२) छीपे के घरि जनमु दैला, गुरु उपदेसु भैला।

(३) छीपे के जनसि काहे कउ आइआ।

इसके अतिरिक्त आराध्य देव विट्ठल के नाम का प्रयोग, प्रतिमा को दूध पिलाने की घटना इत्यादि के साथ ही भाव धारा, विचार, शैली आदि की दृष्टि से भी गुरू ग्रंथ साहब में संकलित हिन्दी पद प्रसिद्ध नामदेव के ही सिद्ध होते हैं।

नामदेव विसोबा खेचर के उपदेश से निर्गुणवादी हो चुके थे। अतः वे धर्म के नाम पर किसी प्रकार के आडम्बर को अवांछनीय मानते थे। ईश्वर की भक्ति मन की पवित्रता और आचरण की शुद्धता की अपेक्षा रखती है, उदा.

काहे का कीजे ध्यान जपना
जब ते सुध नहीं मन अपना।[१]

नामदेव हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के गुण-दोष से परिचित थे। बुराई की उन्होंने सर्वत्र निन्दा की है :—

हिन्दू अन्धा, तुरक काणा दोहाते ग्यानी समाना
हिन्दू पूजे देहुरा, मुसलमान मसीद
नामे सोई सेव्या जह देहुरा ना (मसीद)[२]

नामदेव के जीवन काल में ही उत्तरी भारत ही नहीं देवगिरि पर भी मुसलमानों का अधिकार हो चुका था अतः उनकी भाषा में उर्दू के शब्द भी स्वाभाविक रूप से आये हैं :—

मेरे अन्धे की टेक तेरा नाम खुदा करा
मैं गरीब मैं मस्कीन तेरा है अधारा।[३]

ज्ञानमार्गियों की गुरू भक्ति परक निष्ठा भी ज्ञानेश्वर में है।—

सत सत गुरुदेव, झूट झुट आन सब सेव।[४]

जनाबाई (मृ. १३५० ई.)

भक्त नामदेव की दासी जनाबाई ने भी मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी

१. स. सं. गा. ना. गा. अभंग २१८४ पृ० ३४७
२-३. स. सं. गा. ना. गा. अभंग २२६० पृ० ३५३, २६२ पृ० ३५४.
४. वही अभंग २२२२ पृ० ३५२

रचना की है । नामदेव ने जनाबाई के विषय में एक मराठी पद में उल्लेख किया है :-

नामयाचे घर असे दासी जनी
तिनें चक्रपणीं वश केला ।
करिता काम धन्दा ध्यानी नारायण
करीत चिंतन अहोरात्र ।

(नामदेव के घर में जनी नामक दासी थी, उसने भगवान विष्णु को वश में कर लिया था । घर का काम धन्दा करते हुए भी वह नारायण का ध्यान करती थी । वह रात-दिन ईश्वर के चिंतन में डूबी रहती थी ।

गोदावरी तट पर स्थित गंगाखेड (मराठवाडा) में (दमा) नामक शूद्र के घर जनाबाई का जन्म हुआ । दया को स्वप्न में प्राप्त साक्षात्कार के आधार पर उसने अपनी पुत्री नामदेव के पिता दामा सेठ को सौंप दी । तभी से जनाबाई दामा-सेठ बन गयी । नामदेव के कारण ही जनाबाई का मन भक्ति की ओर प्रवृत्त हुआ । भक्ति भाव से उद्वेलित मन से मराठी में लगभग तीन सौ अभंगों तथा हिन्दी में भी कुछ पदों की रचना जनाबाई ने की । जनाबाई के उत्तर भारत में जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता तथापि उन के हिन्दी पदों के भाषा को देखते कह सकते हैं कि महाराष्ट्र में भी परिनिष्ठित हिन्दी का व्यापक व्यवहार होने लगा था ।

गोंदाबाई :-गोंदाबाई संत नामदेव की पुत्री थी । पिता के समान ही गोंदा ने भी मराठी के साथ साथ हिन्दी में भी रचना की है । नामदेव के जीवन से सम्बंधित एक घटना का काव्यमय वर्णन गोंदाबाई ने बड़ा उत्तम किया है । इस छोटी सी कथात्मक काव्य रचना में भाषा का सहज प्रवाह गोंदाबाई के हिन्दी भाषा प्रभुत्व को सिद्ध करता है । गोंदाबाई से पहले महाराष्ट्र में हिन्दी में बहुत कुछ लिखा जा चुका था, किन्तु इस तरह किसी घटना का वर्णन गोंदा ने पहली बार किया । घटना वर्णन के साथ कथोपकथन चलता है । संवाद के कारण जहाँ मानसिक भावों का चित्रण हुआ है, वहाँ कथा में भी सजीवता आई है । बातचीत स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ती है । संवादों के कारण कविता में नाटकीयता आ गई है । अपने में सम्बद्ध होते हुए भी गोंदा ने सारी घटना का जिस तटस्थना से वर्णन करती है वह उल्लेखनीय है । "यह कविता इस बात का परिचय देती है कि महाराष्ट्र में विशेषकर मराठवाडा क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग इतना हो चुका था कि पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी इसमें कविता करने लगी थी ।'[1] गोंदा की भाषा १४ वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में प्रचलित परिनिष्ठित हिन्दी है । उस पर मराठी का प्रभाव न्यूनतम है ।

कक्ष सम्भवतः बहमनी बादशाह द्वारा नामदेव से चमत्कार दिखाने के लिए

१. डॉ० श्रीराम शर्मा-द. हि. सा. पृ० ६६

कहने और नामदेव के अपने प्रभु से की सहायता से चमत्कार दिखाने से सम्बंधित है :—उदा०

ये तो पापी चंडाल । इसने बुरे किया हाल
मेरे अब्रू का काल । तुम गोपाललाल जल्दी आव ।

इस आवाहन को सुनकर भक्त के समान भगवान की भी अवस्था वर्णनातीत हो जाती है :—

नामा रोवे झूर झूर । बहे अश्रन का पूर ।
विठू पसीने में चूर । पंढरपूर में डुबे है ।[1]

गोंदा की भाषा के विषय में डॉ० श्रीराम वर्मा का यह कथन पूर्णतया उपयुक्त है कि गोंदा की भाषा में वे सारी विशेषतायें विद्यमान हैं, जो आगे चल कर दक्खिनी से प्रकट हुई ।

जहाँ तक हिन्दी की संत काव्य परम्परा का सम्बन्ध है हम वारकरी संप्रदाय के इतिहास को दो खण्डों में बाँट सकते हैं । (१) आरम्भ से १४ वीं शती के अन्त तक (२) १४ वीं शती के बाद का 'इनमें से प्रथम खण्ड के साधनों को हिन्दी संत कवियों के पूर्वज रूप में स्वीकार किया जाता है, जिन्होंने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विचार भाव एवं शैली को नया रूप देकर हिन्दी संतकाव्य परम्परा का मार्ग प्रशस्त किया । सिद्ध एवं नाथ पंथ की जो विशेषतायें हिन्दी के सन्त काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं, वे सम्भवतः महाराष्ट्रीय सन्तो के माध्यम से उसमें आई हैं ।'[2] पीछे हम चक्रधर, ज्ञानेश्वर, नामदेव, मुक्ताबाई, गोंदाबाई इ. के हिन्दी पदों का उल्लेख कर चुके हैं । उनको भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से कबीर का मार्ग दर्शक मानें तो अनुचित नहीं होगा ।

दूसरे काल खंड में हिन्दी की दृष्टि से मुख्य संत हैं, जनार्दन स्वामी (१५०४-१५७५) संत एकनाथ (१५३३…ई०) संत तुकाराम (१६०५-१६५०) इन कवियों के हिन्दी पदों में भाषा एवं भाव का वह प्रौढ़रूप मिलता है, जिसे हम परिनिष्ठित हिन्दवी शैली का आंतर प्रान्तीय रूप कह सकते हैं । हिन्दी भाषा में स्वाभाविकरूप से साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रयास एकनाथ जैसे कवियों में बड़ा मोहक है ।

एकनाथ :-(जन्म १५२८ ई० मृ० १५९९ ई०) नामदेव के उपरान्त न केवल हिन्दी अपितु मराठी भाषा के लिए भी एकनाथ प्रभामंडल के समान अवतरित हुए । मराठी के अतिरिक्त एकनाथ इस युग में दक्खिन में विकसित होने वाली हिन्दी के भी श्रेष्ठ कवि थे । …एकनाथ की हिन्दी तथा मराठी भाषा में बहुत कम मिलावट

१. स. सां. (गोंदा) ४६८-६९
२. ग. गु. हि. सा. वै. इ. १८४

हुई है ।[1]

एकनाथ का जन्म पैठण के ब्राह्मण कुल में हुआ । उन्होने मराठी में भागवत की टीका १५७३ ई० में की । १५८३ ई० के लगभग उन्होंने ज्ञानेश्वरी का प्रामाणिक पाठ तैयार किया । फाल्गुन कृ. ६ १५९९ ई० को एकनाथ ने स्वर्ग प्रयाण किया ।

नामदेव की मृत्यु और एकनाथ के जन्म की अवधि में दक्खिन में अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन हो चुके थे । लगभग समूचा दक्षिण भारत मुसलमानों के शासन में जा चुका था । दिल्ली में खिलजीवंश के पश्चात तुगलकवंश का शासन हुआ । देवगिरी और गुलबर्गा में बहामनी साम्राज्य की स्थापना हुई जिसका पुनः चार राज्यों में विघटन हुआ । मराठी भाषी क्षेत्र में निजामशाही चला रही थी । उसी के आधीन था । संत एकनाथ के गुरू जनार्दन स्वामी निजामशाही की और से दौलताबाद के किलेदार थे ।" इस समय दौलताबाद किले में मराठों के अतिरिक्त उत्तर भारतीय बड़ी संख्या में रहते थे । राजपूत जाट, बनिये और मुसलमानों के अतिरिक्त ऐसे हिन्दू भी थे जिन्होंने उसी समय धर्म परिवर्तन किया था ।[2] जनार्दन स्वामी किलेदार होने के साथ ही साथ सिद्ध भी थे । घंटों समाधि में लीन रहते थे । कहते हैं एकनाथ को अपने इष्ट दत्तात्रेय का प्रत्यक्ष दर्शन जनार्दन स्वामी ने करवाया था । एकनाथ गुरू की खोज में पैठण से दौलताबाद पहुँचे । वहाँ जनार्दन स्वामी से आध्यात्मविद्या ग्रहण करने के साथ ही सरकारी कामों में मदद भी करते । कहते हैं वे एक बार युद्ध में बड़ी वीरता से लड़े तथा शत्रु सेना को पराजित कर गुरू का आशीर्वाद पाया ।

'एकनाथ संस्कृत के विद्वान होने के साथ-साथ फारसी हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे । बोलचाल की हिन्दी दौलताबाद में पहले ही पहुँच चुकी थी । वहीं संभवतः प्रारम्भिक हिन्दी एकनाथ ने सीखी होगी ।

एकनाथ का साहित्य :—भगवत के एकदश स्कन्ध की टीका एकनाथ की मौलिक रचना मराठी में उनकी विद्वता का प्रमाण है । दौलताबाद में लिखना आरम्भ करने पर भी एकनाथी भागवत काशी में १५७३ ई० में समाप्त हुई । एकनाथ ने बोल चाल की मराठी में आध्यात्मिक ज्ञान प्रसार किया है, किन्तु ऐसे पदों की संख्या बहुत कम है, उनकी अधिकांश मराठी कृतियाँ गम्भीरता लिए हुए है । कुछ मराठी पदों में वेदान्त और व्यावहारिक ज्ञान का अच्छा समन्वय है ।[3]

---

१. श्रीराम शर्मा द. हि. सा. ६८

२. डॉ० श्रीराम शर्मा द. हि. सा. ६८

३. डॉ० श्रीराम शर्मा द. हि. सा. ६८

मराठी पदों के विपरीत हिन्दी के अधिकांश पदों में गम्भीरता के स्थान पर चमत्कार की वृत्ति झलकती है । कहीं कहीं अक्खड़पन होता है । कुछ पदों में ही एकनाथ अपने को गम्भीर रख सके हैं ।

हिन्दी रचना :-देवगिरि (दौलताबाद) में रहते समय एकनाथ बोलचाल की हिन्दी से परिचित हुए थे । उस समय गलबर्गा तथा अन्यत्र इस भाषा में सूफी संतों द्वारा काफी लिखा जा रहा था । एकनाथ इन कृतियों से भी परिचिते रहे होंगे । काशीवास तथा उत्तरमाल भ्रमण के समय एकनाथ हिन्दी से काफी अवगत हो गये होंगे । वहाँ कबीर की रचनाओं को उन्होंने देखा सुना होगा ।

एकनाथ के काल में देवगिरि तथा पैठण दोनों ही स्थान सूफियों के प्रभावशाली केन्द्र थे एकनाथ का कई सूफी संतों से सम्बन्ध था । अतः सूफी जिस तरह की हिन्दी हिन्दवी का प्रयोग करते थे एकनाथ ने भी उसी शैली का व्यवहार किया है । एकनाथ के हिन्दी पदों में दो प्रकार की भावधारा मुख्यतः दिखाई देती है । (१) खंडन-मंडनात्मक (२) आध्यात्मिक ज्ञानपरक । प्रथम प्रकार की रचनाओं में एकनाथ ने उन मुस्लिम धर्म प्रचारकों को बड़े संयम के साथ प्रत्युत्तर दिया है, जो हिन्दू धर्म का और रीतिरिवाजों की आलोचना किया करते थे । अपनी एक संवादात्मक कविता में एकनाथ ने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की है । भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी यह रचना बड़ी अनोखी है । हिन्दी तथा मराठी भाषा का साथ साथ स्वाभाविक प्रयोग एक अनोखे प्रयोग हैं । मुसलमान का कथन हिन्दी में तथा उसका उत्तर मराठी में देते हैं । "उस समय महाराष्ट्र में बहुत से लोग हिन्दी से परिचित थे । एकनाथ ने इसीलिए हिन्दी को मराठी में रूपान्तरित करना आवश्यक नहीं माना । इस कविता में उस समय की बोलचाल की हिन्दी प्रयुक्त हुई है । उल्लिखित कविता का नमूना प्रस्तुत है :—

हिन्दू कू तुरक कहे काफर, तो म्हणे विटाळ होईल परतासर ।
दोहींशी लागली करकर । विनाद थोर मांडला ।
सुनरे, बाह्मण मेरीबात । तेरा शास्तर सब कू फरात
खुदा कू कहते पाऊँ हात । ऐसी ज्ञात नवाजे ।
हिन्दू का उत्तर-एक तुर्का, परम मूर्खा । सर्वांभूति देवो देखा
हा सिद्ध सांडूनि आवांका । शून्यवाद का झालासी ।
कविता के अंत में-तुरुक कहे बो बात सही
खुदा कू तू जात नहीं
बंदे खुदा कू नहीं जुदाई
वो कहया रसूलिल्लाह हजरत पर दे । ६१ । २

एकनाथ को यह खुदा और ईश्वर की एकता का ज्ञान हिन्दू-मुस्लिम साधु

सन्तों की संगति से प्राप्त हुआ था। यह एकता उन्होंने अपने पदों में भी व्यक्त की है। सब घट मो सांई बिराजे। करत है बोलबाला।

सूफी फकीरों द्वारा गाये जाने वाले गीतों की शैली में एकनाथ ने अनेक गीत लिखे हैं। इन गीतों में आध्यात्मिक तत्वज्ञान का रूपकात्मक दर्शन किया गया है। इसी प्रकार का प्रयास उनके बाजीगरों के खेल को माध्यम बना कर रची गयी गद्य पद्यात्मक रचनाओं में किया गया है। बाजीगर और (मदारी) विशेष ढंग से हिन्दी वाक्यों और पदों का उच्चारण करते थे। एकनाथ ने उन पदों का ढाँचा तो ज्यों का त्यों रहने दिया किन्तु विषय बदल दिया। प्रचलित शब्दों और संख्याओं को एकनाथ ने आध्यात्मिक ज्ञान में बदल दिया है। मराठी में रचित इसी तरह के पद 'भारूड' कहलाया। इन भारूडों में भी आध्यात्मिक ज्ञान भर दिया है। ये भारुड महाराष्ट्र के घर-घर और जन-जन के परिचित एवं प्रिय हैं। भारुड रूपी हिन्दी पदों के विषय में डॉ० श्रीराम शर्मा का मत है कि "बाजीगरों और सपेरों के मुँह से कहलाए गये पद वैशेषिक, सांख्य तथा अन्य दर्शनों का स्तर उपस्थित करते हैं। ..... जहाँ तक भाषा का प्रश्न है बोलचाल की हिन्दी का इतना पुराना रूप बहुत कम रचनाओं में सुरक्षित रहा है।"[१]

तुकान्त गद्य में रचित एक हिन्दी बाजीगर का उदाहरण देखिये—

अव्वल याद करो वस्ताद की। गुरू पीर पैगम्बर की।
और याद करो करुतार की जिन्ने मंडन पैदा किया है।

अव्वल देखे एफथा। उसे नाम न था। नाम दरम्याने पैदा हुआ-चल, चल, चल। अव्वल तो एक, एक सौ दोक......।[२] इस प्रकार सृष्टि का विकास क्रम था।

मन इन्द्रिय का निग्रह इत्यादि विषयों का नाटकीय ढंग से उपदेश इन पदों में किया गया है। क्रोध, विषय-वासना और ममता को एकनाथ परम शत्रु मानते हैं। ये शत्रु अजेय हैं। केवल गुरू ही इन शत्रुओं को पराजित कर सकता है।....

इसी प्रकार के एक हिन्दी पद में एकनाथ ने हांडीबाग (गारुडी-सँपेरा) के खेल का आधार लेते हुए संतों की उलट बाँसी शैली में जीव-जगत, गुरु, मन और माया, इत्यादि का चित्रण किया है। उदा०—

देखो मिया, बाजीगिरी विद्या खेल। हांडीबाग बड़ा आलबेला। हात हलावे, पाँव हलावे भले भले लोग भुलावे। बाप बड़ा क्या बेटा बडा? बेटे आगे बाप खड़ा। गुरू बड़ा का चेला? चेले आगे गुरू खड़ा।.......।"[१] "इस प्रकार बाजीगर के बहाने एकनाथ अपनी मान्यताओं का और साधनाओं का चित्रण करना चाहते हैं।

१. श्रीराम शर्मा द. हि. सा. प्र. ७४.
२. श्रीराम शर्मा—सं. स. गा. खं. ३. एकनाथ गाथा अभंग ३९४४ पृ० ४७७-७८

बाजीगरों की इन साधारण उक्तियों को पारिभाषिक अर्थ में एकता शास्त्रीय चर्चा में बदल देते हैं। निर्माता की अपेक्षा निर्मित बड़ा माना जाता है किन्तु तत्व की बात यह है कि न कोई छोटा है न कोई बड़ा।

इस प्रकार एकनाथ की हिन्दी रचनाओं में हम कई प्रवृत्तियों का समन्वय पाते हैं। पुराणों के ज्ञान, सूफी साधनाओं, नाथपंथियों के प्रभाव सभी का समन्वय इन पदों में मिल जाता है। 'उनमें साधुओं और जोगियों से भी अधिक फक्कड़पन है इसीलिए वे अपनी बात बिना किसी लाग लपेट के प्रस्तुत करते हैं।[१]

तुकाराम :—

"नामदेव से लेकर एकनाथ तक मराठी भाषी क्षेत्र में हिन्दी (हिन्दवी) में जो साहित्य लिखा गया, उनमें सगुण को कम स्थान मिला है। नामदेव के कुछ पद ही सगुण से सम्बंधित हैं। नामदेव के पदों में समकालीन समाज और धार्मिकता के विरुद्ध आक्रोश मिलता है। एकनाथ की रचनाओं में इस प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हैं। वे निर्गुणपंथियों द्वारा स्वीकृत परिभाषाओं और रूपकों का प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि कुछ स्थलों पर उनका कथन उलट बाँसी का रूप ले लेता है। सब मिलाकर महाराष्ट्र में लिखी गई दक्खिनी की रचनाओं पर निर्गुण छाया हुआ है।[२] हिन्दी भाषी क्षेत्र के समान ही १७ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भी सगुण भक्ति का प्रभाव बढने लगा। 'तुकाराम, राम दास जैसे प्रभावशाली भक्तों ने सगुण भक्ति की जो धारा बहाई उसमें सारा महाराष्ट्र झूमने लगा।

तुकाराम (१६०९-१६६६ ई०) की भावुक-भक्ति और तल्लीनता ने ज्ञान और शास्त्र को पराजित कर दिया। तुकाराम साधारण कृषक थे। बड़े कष्ट से दिन गुजरते थे तब भी सर्व-समर्पणशील भक्ति ने उनके हृदय को विश्वास से परिपूर्ण रखा।

तुकाराम के हिन्दी पदों की भाषा को डॉ० विनयमोहन शर्मा ने 'मराठी-हिन्दी' कहा है।[३] किन्तु डॉ० श्रीराम शर्मा का मत है कि छन्द और भाषा दोनों दृष्टियों से नामदेव और एकनाथ की हिन्दी मराठी से जितनी प्रभावित है, तुकाराम की हिन्दी उतनी प्रभावित नहीं हैं।[४]

तुकाराम के दोहे हिन्दी संतों के समान ही बोल चाल की अक्खड़ भाषा में कहे गये हैं :—राम कहे सो मुख भला रे खाये खोर खांड

१. डॉ० श्रीराम शर्मा द. हि. सा. पृ० ८०
२. वही पृ० ८०
३. वि. मो. शर्मा हि. म. स. दे.–न. (भूमिका)
४. श्रीराम शर्मा द. हि. सा. पृ० ३७७,

हरि बिन मुख मो धूल परी रे क्या जनी उस रांड
जित मिले तो सब मिले नाही तो फुकट संग
पानी पाथर एक ठोर कोरा न भीजे अंग ।[1]

वस्तुतः नामदेव तथा एकनाथ की हिन्दी की अपेक्षा तुकाराम की हिन्दी अधिक परिनिष्ठित है। हिन्दी तथा मराठी में भी तुकाराम ने फुटकर रचनायें की है, मुख्यतया गेय गीत। अधिक लोक प्रिय हुए हैं। विठठल के प्रति अडिग विश्वास ही तुकाराम के पदों की आत्मा है। स्थित प्रज्ञ भक्त के समान दुख-सुख समभाव का सूचक हिन्दी पद देखिए।

राम भजन सब सार मिठाई हरि संताप जनम दुखराई
कहे तुकाराम रस जो पीवे। बहुरि केरा वो बहुत खावे।[2]

मराठी लोक साहित्य में हिन्दी :—

तुकाराम रामदास के बाद महाराष्ट्र में शीघ्र ही मराठा तथा पेशवों के शासन काल में भी शृंगारिक शाहीरी, लोक साहित्य का युग आरम्भ हो जाता है। संतों के बाद महाराष्ट्र के लोक कवियों द्वारा भी हिन्दवी–हिन्दी के प्रति रुचि दिखाना यह प्रकट करता हैं कि १७ वीं शती में हिन्दवी स्थानीय जीवन में ऐसा स्थान बना चुकी थी जिसकी लोक शिक्षण और लोकरंजन दोनों दृष्टियों से उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। "हिन्दी भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि यहाँ के (महाराष्ट्र के) लोक कवियों को लोक रंजनार्थ मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी रचना करनी पड़ी।[3]

शाहीरी साहित्य :-महाराष्ट्र के लोक-साहित्य में 'शाहीरी-साहित्य' का विशेष बोलबाला रहा। इसके अन्तर्गत पोवाडे, लावनियाँ, लोकनाट्य, मारूड, गोंधल, डफगान आदि का समावेश किया जाता है। अधिकांश शाही साहित्य मनोरंजनार्थ निर्माण हुआ है। रुचि-भिन्नता के कारण इसमें भी वीर, शृंगार, शांत आदि रस पाये जाते हैं।"[4] पोवाड़ा, एक वीर प्रशस्ति काव्य है। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के अनुसार 'पवाडा' प्राकृत का अपभ्रष्ट रूप है।[5] लावनी पोवडे में वीररस की प्रधानता रहती है तो लावनी में शृंगार रस की। वस्तुतः लावनी लोक काव्य की एक अत्यंत प्रमुख तथा महत्वपूर्ण शैली है। इसकी रचना मराठी के समान ही हिन्दी भाषी क्षेत्र की बोलियों

१-२. स. स. तुकाराम खं. २ पृ० ३१३, ३११
३ श्रीराम शर्मा द. प. ग. १०५
४. कृ. ग. दिवाकर महा. हि. लो. का. पृ० ५
५. केतकर श्री. व्य. द. २१७

में भी होती रही है। लावनीबाजों में तुर्रा औ कलगी नामक दो पक्ष होते हैं। तमाशा-लोक नाट्य का यह प्रकार पेशवा काल से ही लोकप्रिय रहा है। नृत्य गीत-नाट्यमय तमाशा मंडली को 'फड' कहते हैं। मारूड-एकनाथ से मारूड प्रसिद्ध हैं। 'ललित नामक लोकनाटय के बीच मारूड को साविनय गाया जाता है। 'ललित' नवरात्र सम्बंधी विशिष्ट कीर्तन है, जिसमें भक्तों के स्वांग आदि दिखाए जाते हैं। 'गोंधळ' धर्ममूलक लोकनाट्य है। विवाहादि प्रसंगों में गोंधल का अभिनय बड़ा मनोरंजक होता है। 'डफगान' में मुख्यतः आध्यात्मिक काव्य गाये जाते हैं। ये कुछ लोक जीवन की जीवन्त सरणियाँ हैं, जिनमें मराठी के साथ-साथ हिन्दी के भी आंतरप्रान्तीय हिन्दवी रूप का प्रयोग हुआ है।

प्रमुख लोक कवि प्रभाकर (१७६९ ई०) अनंतफंदी (१७४४ ई०) होनाजी बला (१७५४ ई०) परशुराम (१७५४ ई०) रामजोशी (१७५८ ई०) अज्ञानदास, तुलसीदास, गंगु हैबती। इन सभी की हिन्दी रचनायें मिलती हैं। भाषा का नमूना नीचे दिया जाता है।

सखे जमुना का पानी पहरा चला। भरन जाती थी रा (ह) मों माधो मिला ॥ धृ ॥
सुनरी जसोदा गोपी मिल सगरी। शिरपे धरती भाई भरी घहरी
जलद चली थी अपने घर नगरी। पकर माहेरा कू कहे जल दे पिया ॥ १ ॥[1]

मराठी लोककवियों की हिन्दी-हिन्दवी भाषा :—

महाराष्ट्र में रचित शृंगार वीर परक हिन्दी लोक साहित्य १७वीं १८वीं शती का है। हिन्दीतर मराठी भाषी क्षेत्र में न केवल मुस्लिम अपितु हिन्दू जनता में भी हिन्दवी बोलचाल तथा साहित्य सृजन का माध्यम थी यह तथ्य निर्विवाद सिद्ध है। "हिन्दी भाषा विशेषतः खड़ीबोली के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से इन लोक कवियों की भाषा का विशेष विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है।[2]

मराठी लोक कवियों की हिन्दी भाषा मुख्य रूप से तथाकथित दक्खिनी हिन्दी, के साथ-साथ मराठी, ब्रज, भाषाओं का मिश्रितरूप प्रस्तुत करती हैं। दक्खिनी हिन्दी की ध्वनि विकास, शब्द भंडार एवं वाक्य विन्यास की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ इन लोक कवियों में मिल जाती है। अंतर केवल इतना है कि हिन्दवी के परवर्ती रूप दक्खिनी का १७ वीं १८ वीं शती में जहाँ तीव्र गति से फारसीकरण हो रहा था वहाँ इस लोक काव्य में देशी हिन्दी–मराठी शब्दों का स्थान बढ़ रहा था।

किने पुंगर बनाया छननन-छननन आवाज आया ॥ धृ ॥
आजी जाती आपने पिहरकूं मिलने जाती।

---

१. कृ. ग. दिवाकर म. हि. लो. काव्य पृ० १५१
२. वही पृ० १११

आज जाती आशक मतवाला जो का साती ।
चाँदनी रात नही सरमाती
बींद सीसफूल चमक बतलाती
बाँके बाल पुरावे मोती । भंग जमाया ।। १ ।। (सगन भाऊ-लावनी)

मातृभाषा मराठी होने से इन लोक कवियों की हिन्दी पर मराठी के उच्चारण ही नहीं शब्द एवं वाक्य रचना का भी प्रभाव होना स्वाभाविक ही था । 'मराठी के तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग भी हुआ है : इन शब्दों के कारण मराठी भाषी जनता इनके हिन्दी पदों को समझने में सुगमता का अनुभव करती होगी । पाणी लाल भड़क, हिरकणी, थंड, एकली, ढुंकून···आदि मराठी शब्द इनकी हिन्दी रचना में मिलते हैं । उपलब्ध हिन्दी लोक काव्य प्रायः कृष्ण से सम्बंधित है अतः उस पर व्रज का प्रभाव होना भी अस्वाभाविक नहीं । हिन्दी-मराठी मिश्रित शैली का भी बड़ा रोचक उपयोग लोक कवियों में किया है—

लावनी—
इस दुनया में जोग लेकर धुडंत मैं जावू
सख्याला कुणीकड पाडू ।। धृ ।।
रंग महल में छपर, पल्लंग में फूवों से छवाया ।
तुझे हार गुंफिते सखया ।
बालीबाल गजमोती पुराये सब सिनगार किया ।
सख्या सी रूप है दावाया ।

गुजरात का सन्त साहित्य और हिन्दवी :—(सं. १२५० से १७५०)

गुजरात के प्रमुख संत कवि तीन काल खंडों में रखे जा सकते हैं । प्रथम सं. १२५० से १५५० तक के बीच के प्रमुख संत ये माने जाते हैं—चक्रधर, कबीर, नरसीमेहता, पीपा, रोहीदास (रैदास) मीराबाई, शेख बहाउद्दीन बाजन, काजीमहमूद दरियायी, मांडण ।

मध्यकालीन सन्त कवियों का काल (१५५० से १९०० तक माना जाता है) पूर्वमध्यकाल (१५५० से १७५०) के प्रमुख संत निम्न प्रकार हैं :—

हीरादास, समर्थदास, शाहअलीगामधनी, माधवदास, दादूदयाल, ज्ञानीकवि अखा, लालदास, प्राणनाथ, मोहम्मद अमीन इत्यादि । उत्तर मध्यभारत (१७५० से १९००) के प्रमुख संत-भाणसाहब, कृष्णदास, हासिम अली, इत्यादि हैं ।

गुजरात के हिन्दी सेवी सन्तों की देन :-लोक कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत गुजरात के सन्तों ने हिन्दी को आपने वाणी का माध्यम बनाया । भाषा के किसी व्याकरणिक स्वरूप की आवश्यकता इन्हें कभी अनुभव नहीं हुई । अपनी वाणी के अन्तर्गत इन संतों ने हिन्दी का वह स्वरूप अपनाया जो व्यापार जगत की भाषा में प्रचलित था । हिन्दी भाषा के प्रयोग में प्रादेशिकता का पुट इनकी निजी विशेषता है । भाषा की मूल प्रकृति-व्रज भाषा अथवा खड़ीबोली के अधिक निकट प्रतीत होती हैं । किन्तु उससे गुजराती, राजस्थानी, मराठी, पंजाबी, सिन्धी और कच्छी प्रयोग भी मिलते हैं । जिस प्रकार कबीर की भाषा में केवल शब्द ही नहीं, अनेक भाषाओं के कारक-चिन्ह और क्रिया पद मिलते हैं उसी प्रकार गुजरात के संतों की भाषा भी वह पंचमेल खिचडी है जिसमें लोकभाषा के आधार पर विविध प्रयोग किये गये इस प्रकार के विशिष्ट कारक एवं क्रिया रूपों-समन्वित लोक भाषा के अनुरूप हिन्दी के विविध प्रयोग हिन्दी को उनकी अपूर्व देन है । गुजराती-हिन्दी, राजस्थानी-हिन्दी, सिन्धी–हिन्दी और कच्छी हिन्दी, विशिष्ट भाषिकीय उपलब्धियां हैं । इनमें वर्णों के आगम, लोप और विपर्यय पाये जाते हैं । भाषा विज्ञान की दृष्टि से जिनका अध्ययन महत्वपूर्ण है । हिन्दी को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए संतों की इस विविधरूपा भाषा के अन्तर्गत एकरूपता खोजी जा सकती है । हिन्दी के इस व्यापक आन्दोलन में गुजरात के संतों ने जो अलख जगाया वह मूक होते हुए भी महत्वपूर्ण है । हिन्दी के प्रसार-प्रचार एव विकास में इनकी मूक साधना अपूर्व है ।

सृजनात्मक साधना :—

गुजरात के संत कवियों की शताधिक हिन्दी कृतियों में से कुछ तो अवश्य ही संत साहित्य की अक्षय निधि सिद्ध होंगी । भाषा की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाओं में अखाकृत संतप्रिया और ब्रह्मलीला' रविसाहब कृत बोधचिंतामणि और रामगुंजार चिंतामणि, प्रीतमकृत 'ब्रह्मलीला' तथा 'साखीग्रंथ' अनुभवानन्द रचित विष्णुपद वस्ताकृत 'साखी ग्रंथ' रंगील दासकृत, रंगील सतसई', देवासाहबकृत कृष्णसागर, रामसागर तथा हरिसागर, कृष्णदास रचित रघुवंशमणि, यदुनंदन तथा ज्ञानगीता नृसिंहाचार्यकृत नृसिंहवाणी बिलास, समर्थराकृत, ध्रुवचरित्र आदि प्रमुख कृतियां हैं

नरसी मेहता (स. १४७०-१५३६ के मध्य)

गुजरात के वैष्णव भक्तों में नरसी मेहता का नाम सर्व प्रमुख है किंतु वे मात्र भक्त ही नहीं ज्ञानी भक्त भी हैं ।[1] उन्होंने जहां एक ओर राधा और कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का निर्दोष वर्णन अत्यन्त तन्मयतापूर्वक किया है, वहां दूसरी ओर इनके वेदांत विषयक पदों में सर्वात्मवाद की भावना स्पष्ट रूपेण प्रतीत होती है । इनका ब्रह्मवाद और प्रेममार्ग वल्लभाचार्य के 'पुष्टिमार्ग' से नितांत भिन्न कोटि का है ।[2]

गुजराती में अनेक रचनाओं के प्रणेता नरसी मेहता के कुछ हिन्दी पद मिलते हैं । भाषा की दृष्टि से इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । भाषा का एक नमूना—

१. कविचरित, भा. १–३ पृ० ५६
२. वही पृ० ५३

कहाँ लगाई एती देर, अरे अरे सांवरे।
हौं गुजराती सिव को उपासी, पूजों सांझ सवेर
भक्ति मर्म को सार न जानों, हांसो कराई मेरी ढेर
ऊँचे चढिके टेर सुनाऊँ अन सुनिये म्हारी टेर।
क्या कहिबाज संवारे भक्तन के क्या निदाने लिए घेर
नरसी के प्रभु अधम उधारन राखिये अबकी बेर ।।[1]

पीपा :-रामानद के निर्गुणिया शिष्यों मे पीपा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। डॉ. बडथ्वाल ने जनरल कनिंघम के मत को स्वीकार करते हुए इनका समय सं. १४१० से १४६० तक माना है।[2] पीपा गांगरौन गढ (राजस्थान) के खींची चौहान राजा थे। और अपनी छोटी रानी सती सहित रामानन्द जी के चेले हो गये थे।[3] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने पीपा का समय सं. १४६५-७५ के आस-पास माना है।[4]

गुरुग्रंथ साहब में पीपा के एक पद का संग्रह मिलता है।

रैदास :-रैदास ने स्वयं को चमार जाति का कहा है। कह रैदास खलास चमारा ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार। आ. परशुराम चतुर्वेदी ने विक्रम की १६वीं सदी के प्रायः अंत तक माना है।[5] डॉ० त्रिगुणायत ने १४७१ वि० मानी है। इन्हें काशी का रहने वाला माना जाता है।

मीराबाई (१५६०-१६०३)

मीराबाई की जीवन धारा ही उनकी भक्ति भावना का क्रमिक विकास है। ये वस्तुतः सम्प्रदाय मुक्त गुरु शिष्य परम्परा विहीन परम वैष्णव भक्तिन थी।[6] मीरा के हिन्दी पदों की स- ४६१४ मानी गयी है। इनमें से केवल १०३ पद ही प्रामाणिक रूप से मीरा रचित माने जाते है।

शेख बहाउद्दीन बाजन (सं. १४४४-१५६२)

इनका समय ६१२ हिजरी अर्थात् विक्रम की पन्द्रहवीं शती उत्तरार्ध माना जाता है। 'गुजरी' के कवियों की एक लम्बी परम्परा इस भू भाग में प्राचीन काल से उपलब्ध होती हैं। इन सभी मुसलमान संतों की भाषा जिसकी प्रवृत्ति खड़ीबोली की है दखिनी के साथ अपूर्व साम्य रखती है। इस परंपरा के सूफी संतों में शेख बहाउद्दीन बाजन का नाम अत्यंत प्राचीन तथा प्रमुख है। भाषा की दृष्टि से इनकी रचना का एक उदा०—

---

१. सन्तज्ञानी संग्रह भा. द. पृ० ७३
२-३. हि. का. नि. स. पृ० १०१
४. उ. सा. सं. प. पृ० २०३
५. वही पृ० २३६
६. मीरा की भ. और उनकी काव्य साधना, डॉ० भगवानदास तिवारी

यूँ बाजन बाजे रे, इसरार छाजे।
दंडल मन में घमके
रबाब रंग झमके
सूफी उन पर ठम के
यूँ बाजन वाजे रे इसरार छाजे।

काजी महमूद दरियायी (सं. १५२२)

सोलहवीं शती पूर्वार्ध के सूफी संतों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचना का एक उदा०—

पाँचों वक्त नमाज गुजारूँ। दायम पढ़ूँ कुरान।
खावो हलाल, बोलो मुख सांचा। राखो दुरुस्त ईमान।

माण्डण—(जन्म सं १५३६)

मांडण बंधारों का समय विक्रम की सोलहवीं शती पूर्वार्द्ध निश्चित किया जाता है।[1] षटपदी, चौपाई का सर्वप्रथम रचयिता मांडण का नाम प्रस्तावनाकालीन सन्त कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अखा को उर्वरा काव्यभूमि मांडण से परंपरागत प्राप्त हुई, वह किसी से छिपी नहीं हैं। मांडण की प्रमुख गुजराती रचना प्रबोध बत्रीसी है।

मांडण की भाषा में मराठी का पुट विशेष उल्लेखनीय है। 'माडण 'चा' शब्द अति सामान्य है। 'चा' विभक्ति नरसीमेहता के पुराने पदों भी मिलती है, वही नहीं आइला, गैला, पाउला आदि रूपों में मराठी का पुट मिल जाता है। मांडण के काव्य में भी विठला (विठ्ठल) शब्द प्रयोग मिलता हैं। इस से नामदेव आदि महाराष्ट्रीय सन्तों का गुजरात में अच्छा प्रभाव सिद्ध होता है।

मांडण की भाषा का एक उदाहरण—

भजन करो राम का भाई, छांड सब तन की चतुराई,
गहरी छांड दे घेली, आखर का को नहीं बेली···भजन।
करे बंदगी सोई बंदा, जीते जिंदगी सोई जंदा,
फकीरी सोई रहत है करता, साधु सोई रहत है रमता. भजन।
हिन्दु सोई धर्मकु जाणे, चले हक सो मुसलमाने,
सबीकु एक राह चलना, अखर तो खाक में मिलतना···भजन।
समज के रहोंगे न्यारा, साहेब का खेल अपारा,
मांडण की एहो चतुराई, सुनो यार सुन भाई···भजन।[2]

नरसी की भांति मांडण के हिन्दीं पदों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है।

---

१. गुजरात की हिन्दी सेवा-डॉ. अम्बाशंकर नागर.
२. भजन रत्नाकर याजे अमर वाणी पृ. २४३

इनकी हिन्दी जकड़ियाँ पर अरबी फारसी की स्पष्ट छाया है । गूजरी भाषा के स्वरूप निर्माण में मांडण कृत ये जकडियाँ निश्चय ही अपना अपूर्व महत्व रखती हैं । हिन्दी संज्ञाओं, सर्वनामों तथा क्रियाओं पर गुजरी ध्वनियों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है ।

मध्यकालीन प्रमुख कवि (१५५० से १९००)

सत्रहवीं शती में अखा और प्राणनाथ विशेष उल्लेखनीय सन्त हैं । सूफी सन्तों में शाहअली गायघनी, हाशिमअली.

शाहअली (९९० हि० सं० १२७१ के आसपास)

शाहअली का जन्म अहमदाबाद में हुआ । अपने पिता से ही दीक्षा लेकर धर्म प्रचार में लग गये सं. १६२२ वि. तक जीवित थी । 'गूजरी' की परम्परा के एक महत्वपूर्ण सूफी संत हैं । इनका दीवान इस प्रदेश की धर्मपरायण मुसलमान में अब भी लोकप्रिय है । इन की भाषा साफ सुथरी एवं स्पष्ट है—

"कहीं सो मजनू हो बनतावे, कहीं सो लैला रो दिखावे
कहीं सो खुसरो शाह कहावे, कहीं सो शीरी होकर आवे ।[1]

इनके पदों का संकलन सबसे पहले इन्हीं के एक शिष्य अबुलहसन ने किया था । तत्पश्चात् इनका पूर्ण संशोधन इनके पोते शाह इब्राहीम बिन मुस्तफा ने किया संकलन 'जवाहर उलअसरार' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे गुजरात की धर्मप्राण जनता 'दीवान' भी कहती है ।

ज्ञानी कवि अखा (स. १६४९ '१७३०)

ज्ञानमार्ग की जो परम्परा चक्रधर से मांडण और धनराज तक चली आयी थी, उसे अक्षुण्ण बनाया अखाने ही । इस प्रकार गुजरात के समस्त मध्ययुगीन साहित्य में अखा का स्थान अप्रतिम है । ये जन्म से स्वर्णकार थे और संस्कार से वैष्णव । जन्म जेतलपुर में हुआ तथा निवास अहमदाबाद में था पिता, पत्नी तथा बालिका की अकाल मृत्यु से वैराग्य की उत्पत्ति हुई । अखा ने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में अधिकारपूर्वक काव्य रचना की है । उनकी रचनायें इस प्रकार है ।[2] ब्रह्मलीला, संतप्रिया, जकड़ी, झूलणा, कुडलिवां एकलक्ष रमैनी, साखिया, भजन, पद थपार, विष्णुपद.

डॉ. रामकुमार गुप्त ने लिखा है "अखेवाणी (अक्षयवाणी) के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजराती संतों में वे सर्वोत्कृष्ट हैं ही, हिन्दी सत साहित्य में भी वे सम्माननीय स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं । उदा.

१. अक्षयरस (भूमिका)—आ. चन्द्रकुवरसिंह पृ.७८
२. वही पृ० ७८.

अकल कला खेलन नरज्ञानी
जैसे हि नाव हिरे फिरे दसों दिश, ध्रुव तारे पर रहत निशानी । ध्रु.॥
चलन चलन अपनी पर बाकी मन की सुरत अकाश ठहरानी,
तत्व समास भयो है स्वतंतर, जैसे हिम होत है पानी ॥१॥
कुपी आदि अनंत न पायो थाह न सकल जहाँ मन बानी ।
ता घर स्थिती गई है जिनकी कही न जात ऐसी अकथ कहानी ॥२॥

प्राणनाथ (सं. १६७५ से १७५१ वि०)

भाषा, संस्कृति तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी प्राणनाथ अपने समय के मौलिक विचार के थे । डॉ. बडथ्वाल तथा 'निजानन्द-चरितामृत' के आधार पर इनका जन्म नवतन पुरी (जामनगर) में सं. १६७५ में हुआ बारह वर्ष की अवस्था में स्वामी श्री. देवचन्द्र जी से आपने दीक्षा ली । स्वामी जी की सर्वप्रथम हिन्दी रचना 'सनंध' (सं. १७३५) बताया जाता है, जो कुरान शरीफ के मानव प्रेम एवं दया के पोषक तत्वों पर आधारित है गुजरात, हरिद्वार एवं दिल्ली का भ्रमण करते हुए स्वामी जी सं. १७४० में 'पन्ना' (बुन्देल खण्ड) पहुँचे' वहीं पर आपने—खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर श्रृंगार, सिन्धी, मारफत सागर, कयामत नामा ई. रचनायें प्रस्तुत कीं । राजा छत्रशाल इनके परम शिष्यों में थे ।

स्वामी जी की संपूर्ण वाणी, श्रीमतारतम्य सागर 'में सं. १७५१ में संकलित की गयी थी । इस संग्रह में चार रचनायें गुजराती १३ हिन्दी में है । स्वामी जी के ग्रन्थों को जमा करने से जो स्वरूप हुआ, उसे 'कुलजमस्वरूप' कहा गया है ।[1] अखिल प्रणाली समाज 'श्रीमुखवाणी' के नाम से प्राणनाथ जी के सदनाओं को अभिहित करते हैं । तुलसीदास के समान प्राणनाथ ने भी अपनी वाणी को वेदशास्त्र सम्मत तथा परम सत्य आध्यात्मिकवाणी कहा है । इस में जहाँ एक ओर मानव कल्याणकारी सकल निगमागम के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, वहाँ दूसरी ओर इस्लाम धर्म समर्थित कुरान की एकता, दया और जन कल्याण का उद्घोष है यथा—

हकीकत फुरमान की, कहूँ सुनो सबमिल
नूर अकल आगेल्याय के, साफ करूँ तुमदिल ॥सनंध पृ.१—११

'सनंध' में उन्होंने कुरान की व्याख्या भारतीय दर्शन के आधार पर की है ।

अपनी भाषा को उन्होंने 'हिन्दुस्तान' कहा है, जो सबके लिए
सुगम थी बिना हिसाबे बोलियाँ मिने सकल जहान ।
सबको सुगम जान के कहूँगी हिन्दुस्तान

"इन की भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का पुट है, जिसमें हिन्दी-गुजराती

१. साहित्य संदेश पृ० ६२ अगस्त १९५८, १९५८—श्री मिश्रीलाल शास्त्री

अपूर्व मिश्रण है । प्राणनाथ जी की भाषा वस्तुतः मध्यकाल की वह हिन्दी अथवा हिन्दुस्थानी है जिसे आधुनिक खड़ी बोली का आदिरूप कहा जा सकता है ।"

अब यह तथ्य प्रकाश में आ चुका है कि 'प्रेमसागर' (लल्लूलाल) की रचना के प्रायः १५० वर्ष पूर्व स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दी गद्य का प्रयोग कर अपनी भाषा को सर्व प्रभाव 'हिन्दुस्तानी' से नाम से अभिहित किया था ।

मोहम्मद अमीन (उप. काल. में···१६९०)

औरंगजेब के समकालीन श्री अमीन ने जिरी ११०९ सं. १६९० वर्तमान थे 'युसुफजुलेखा' आपकी मसनवी उल्लेखनीय है भाषा और शैली की दृष्टि से 'गुजरी' साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है । उदा०

भौंरा लेते फूल रस, रसिया लेते बास
माली सोंचे आस कर, भौरा खड़ा उदास ।
तेरे पंथ कोई चल न सके, जों चले सो चल चल थके ।
पढ़ पंडत पोथी धोया, सब जात सुध बुध खोयी ।
सब जोगी जोग विसारे, सब तपिश तप पुकारे ।
एक दुरस्ती दरस भुले, सिर नांगें पाँव फुसे ।

अपनी भाषा को कवि ने गोधरी (गुजरी) कहा है, यथा—

सुनो मत् लब रही अब यों अमीं का
लिखे गूजरि मने युसुफ-जुलीखा ।[1]

हाशिम अली (उप. काल सं. १७८३)

हाशिम अली गुजरी परम्परा के कवि हैं । कुछ लोग इन्हें बुरहानपुर (म. प्र.) का मानते हैं, किन्तु अन्तः साक्ष्य के आधार पर ये गुजरात के ही प्रतीत होते है ।[2] इन के मर्सिया (शोकांजलि) बड़े प्रसिद्ध हैं । मर्सियों के अलावा इन्होंने शायद ही किसी विषय पर लिखा हो । इन के २३८ मर्सियों का संग्रह 'दीवान' के नाम से प्राप्त है । आपकी शैली भावावेशपूर्ण है :—

तु झकूँ हाशिमअली हुसेन सरूर ।
हर बरस मर्सिया लिखते हैं ।
लिखूँ कहाँ तलक में बयाने सिहम ।
मुझे हर बरस लेके तीरे कलम ।
कहाँ तक लिखूँ इस गम की बातां ।
कि दिल के था जोश सों पुर-खाँ है आँखाँ ।।

१. रा. सांकृत्यायन—द. हि. का. धा. पृ. ३०१
२. डॉ० रामकुमार गुप्त-गुज. के. सं. का हि. सा. दैन. पृ. १५२

हासिम ने कासिम की वीरगति, कासिम और सकीना की विदाई, कर्बला की निर्मम हत्याओं में हुसेन के छोटे बच्चे असगर की हत्या का वर्णन, फातिमा विलाप आदि विषयों पर तो अपनी शोकांजलियाँ अर्पित की ही हैं, अपने समकालीन कुछ कवियों रूही, मिर्जा, कादिर, आदि पर भी उसने स्मरणांजलियाँ लिखी है, जिन्हें कवि ने 'शायराने दखिन' कहा है ।

अंत में निष्कर्षस्वरूप हम डॉ० रामकुमार गुप्त के शब्दों में कह सकते हैं, "गुजरात की सन्त परम्परा उत्तर भारत की ही एक कड़ी है तथा गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी के माध्यम से व्यक्त ऐहिक एवं परलौकिक सत्यों की अभिव्यक्ति अखिल भारतीय सन्तकाव्य की अक्षय निधि हैं । सारांशतः गुजरात के सन्तों की यह देन मानो भाषा के क्षेत्र में ही महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि विचारों में विशेष समझौता वादी, दर्शन में विशेष वेदांतिक, संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन काव्यरूपों, प्रतीकों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण है ।[1]

हिन्दी क्षेत्र का हिन्दवी सन्त साहित्य—

नामदेव के अनन्तर १४ वीं शती के कबीरदास ने जिस निर्गुण सन्त परम्परा का हिन्दी क्षेत्र में सूत्रपात किया, उसने मुख्यतया पूर्वी प्रभावयुक्त खड़ीबोली हिन्दवी का प्रयोग किया । कबीर के अनंतर विभिन्न सन्तों ने अपने अपने अलग पंथों की स्थापना की किन्तु उनमें विचारधारा, साधना पद्धति, भावानुभूति एवं अभिव्यंजना शैली की दृष्टि के परस्पर विशेष अन्तर नहीं मिलता । उतरी भारत के प्रमुख हिन्दी सन्तों की नामावली निम्न प्रकार दी जाती है ।[2]

संत	पंथ	जीवन काल
१. कबीरदास	कबीर पंथ	सं. १४५५—१५७५ वि.
२. रविदास (रैदास)	रैदासी सम्प्रदाय	(कबीर के समकालीन)
३. नानक	सिख पंथ	स. १५२६—१५९६ वि.
४. लालदास	लाल पन्थ	सं. १५९७—१७०५ वि.
५. दादूदयाल	दादू पन्थ	सं. १६०१—१६६० वि.
६. हरिदास निरंजनी	निरजनी सम्प्रदाय	देहान्त १६७० वि.
७. वावरी साहिबा	बावरी पन्थ	सं. १६५०—१७०० वि०
८. मलूकदास	मलूक पंथ	सं, १६३१—१७३९ वि.
९. बाबालहाल	बाबासाली पन्थ	सं. १६४८—१७१२ वि.
१०. प्राणनाथ	धामी सम्प्रदाय	सं. १६७५—१७५१ वि.

१, डॉ. रामकुमार गुप्त-गुज के. सं का हि. सा. को देन पृ०३५९
२. ग. गु. हि. सा. वै. इ. २००

११. धरणीदास	धरणीश्वरी सं.	सं. १७१३—१८ वीं शती
१२. दरियादास	दरियादासी सं.	सं. १६९१—१८३७ वि.
१३. चरणदास	चरणदासी सं.	सं. १७६०—१८३० वि.
१४. सहजोबाई	,,	सं. १७४०—१८२० वि.
१५. दयाबाई	,,	सं. १७५०—१८३० वि.
१६. गरीबदास	गरीब पन्थ	सं. १७७४—१८३५ वि.
१७. पानपदास	पानप पन्थ	सं. १७७६—१८८० वि.
१८. रामचरणदास	रामस्नेही सं.	सं. १७७६—१८५५ वि.

इस सन्त परम्परा में प्रायः सभी ने खड़ी बोली पर आश्रित हिन्दवी का प्रयोग किया है। क्षेत्र भेदानुसार भाषारूप में थोड़ा बहुत अन्तर आ जाता है, अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रसंग में संक्षेप में यही कहना उपयुक्त प्रतीत होता है कि संतों की भाषा में एकरूपता नहीं, उसमें पूर्वी प्रयोगों की बहुलता लिए हुए ब्रज तथा अवधी भाषा का अधिकाधिक रूप उपलब्ध होता है। राजस्थानी एवं पंजाबी प्रयोगों के रूप भी एक अच्छी संख्या में पाए जाते हैं। पर ये प्रयोग विशेष रूप से कबीर नानक तथा दादू में भी मिलते हैं। अरबी-फारसी शब्दों के साथ-साथ गुजराती तथा मराठी भाषा के शब्द भी अपनी झलक दिखाते रहते हैं। इस प्रकार भाषा गत विविधरूपता जितनी अधिक संतों की भाषा में मिलती है, उतनी अन्यत्र नहीं।[1] तथापि ये सभी सन्त जिस प्रकार भाव-विचार में एकता रखते हैं, उसी प्रकार की अनायास एकरूपता इनकी शैली के सम्बन्ध में भी है, क्षेत्रीय प्रभाव के भीतर अन्तःसलिला वाणी का प्रवाह एक ही है, जो महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, राजस्थान के साथ-साथ उ. भा. के. सभी सन्तों के बीच एकसूत्रता स्थापित करता है।

भाषा रूप के आधार पर इन संतों के दो वर्ग किए जा सकते हैं। (१) आरम्भ से १६ वीं शती के अन्त तक (२) १७ वीं शती और आगे।[2] इस सम्बन्ध में डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल का विचार है—'सत्रहवीं शताब्दी के बाद के संत कवियों की रचनाएँ सामान्यतः परिष्कृत अवधी या ब्रज भाषा में पाई जाती हैं, पर उनमें भी यत्र-तत्र सँतई धज दिखाई पड़ जाती है। इस दृष्टि से भीखा, चरणदास, सहजोबाई दयाबाई तथा पलटू साहब का नाम लिया जा सकता है। यों तो कबीर तथा नानक में भी ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं, जिनके पढ़ते समय सहसा सूर और तुलसी का स्मरण हो आता है। पर वह भाषा रूप कुछ स्थलों पर उपलब्ध होता है।[1] आरम्भिक संतों

१. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल संत सा., पृ. ४०५
२. वही, पृ० ४०४

की वाणी में खड़ीबोली हिन्दवी का रूप देखने के लिए निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त होंगे—कबीर—

प्रीति प्रतीति करो दृढ़ गुरू की	संतवानी सं. २ पृ. १६
नानक—दीनानाथ सकलभय भंजन	" " " ४७
रैदास—प्रभुजी तुम चंदन हम पानी	" " " ३१
मलूकदास—खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे	" " " ९३
रज्जब-सकलपतित पावन किये	संतसुधासार पृ. ३११

संतों की इस मिश्रित खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा के व्याकरणसम्मत रूप पर भी प्रायः प्रश्न उठ खड़ा होता है। इस सम्बन्ध में हमारा स्पष्ट मत यह है कि संतों ने व्याकरणिक नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं किया है। इसीलिए उसमें शिथिलता पाई जाती है। पर सामान्यतः व्याकरण के नियमों का निर्वाह करते हुए संतों ने लिखा है। वे व्याकरण शास्त्र के पंडित अवश्य न थे, पर सामान्य भाषा व्यवहार के रूप से परिचित अवश्य थे। सधुक्कड़ी-खड़ीबोली के साथ क्षेत्रीय बोली के व्याकरण का सहज मणिकांचन मेल कर हिन्दवी की अंतर प्रांतीय शैली का ही संतों ने प्रयोग किया है। संक्रमणकालीन लोकभाषा में व्याकरणिक शैथिल्य होना भी स्वाभाविक ही है।

अब यहाँ हम प्रमुख संतों का परिचय एवं उनके साहित्य के साथ-साथ उनकी भाषागत विशेषता का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास करेंगे।

हिन्दी संत परम्परा का प्रवर्तन वस्तुतः नामदेव ने किया था। परन्तु उनका परिचय महाराष्ट्रीय संतों की परम्परा में आ गया है। उनके बाद कबीरदास का स्थान उत्तर भारत की संत परम्परा में ही नहीं अखिल भारतीय दृष्टि से भी अग्रगण्य माना जाता है।

कबीर—हिन्दवी शैली के प्रारम्भिक प्रयोक्ताओं में कबीर से पहले अमीर खुसरो तथा शंकरगंजी, औफी इत्यादि मुस्लिम सूफी कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन सभी का उल्लेख संत परम्परा के बाद अलग से किया गया है।

कबीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व सर्वविदित है अतः यहाँ केवल उनके साहित्य एवं भाषा पर ही चर्चा की जा रही है। कबीर के नाम पर हिन्दी में लगभग ११ रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[1] किन्तु इनमें से अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध है। कुछ अधिक प्रामाणिक समझे-जाने वाली रचनाओं में डॉ. श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रंथावली' गुरु ग्रंथ साहब के पद जो सन्त कबीर (रा. वर्मा) में संकलित हैं और कबीरपंथियों का साम्प्रदायिक ग्रन्थ 'बीजक' ये तीन ग्रन्थ है।

१. डॉ. रा. वर्मा, हि. सा आ. इ., पृ. १५०-५३

कबीर की विचारधारा को मुख्यतः दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है। (१) सैद्धान्तिक (२) व्यावहारिक। अद्वैत तथा ज्ञानमार्गी होते हुए भी वे भक्ति या प्रेम द्वारा ही इष्ट की प्राप्ति सम्भव स्वीकार करते है। ज्ञान और भक्ति के समन्वय का यह आदर्श बहुत पहले महाराष्ट्रीय संत ज्ञानेश्वर नामदेव प्रशस्त कर चुके थे। व्यावहारिक क्षेत्र में कबीर पूर्णतः प्रगतिशील दिखाई पड़ते हैं, वे रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, आडम्बरों तथा अनिष्ट रीति, नीतियों के विरोधी थे। सभी धर्मों के मूलभूत सत्य को धारण करते हुए सर्वधर्म समानभाव को कबीर ने स्वीकार किया था। धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर और कट्टरता पर कबीर ने कठोर प्रहार किये हैं।

कबीर की भाषा—हिन्दी संत काव्य परम्परा में कबीर सर्वप्रथम हैं। अतः विद्वानों ने प्रायः इन्हीं की भाषा को लेकर संत साहित्य की भाषा पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। आचार्य शुक्ल ने कहा है :—'इसकी (साखी) भाषा सधुक्कड़ी अर्थात राजस्थानी पंजाबी, मिली खड़ीबोली है। पर रमैनी और सबद में गाने के पद है, जिसमें काव्य की ब्रज भाषा और कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।'[१] शुक्लजी ने ही 'बुद्धचरित्र' की भूमिका में लिखा है—कबीरदास ने यद्यपि पंचरंगी मिलीजुली भाषा का व्यवहार किया है, जिसमें ब्रजभाषा, उस खड़ीबोली या पंजाबी तक का पूरा-पूरा मेल है जो पंथवालों की सधुक्कड़ी भाषा हुई, पर पूरबी भाषा की झलक उसमें अधिक है, जहिया, तहिया, आइब, जाब आदि पूरबी प्रयोग भरे पड़े हैं। धीरे-धीरे अवध में जब मुसलमानों की खासी बस्ती हो गई तब वहीं की भाषा ने उन्हें आकर्षित किया।[२] इस प्रकार शुक्ल जी कबीर की साखियों तथा रमैनी में भाषा का अन्तर मानते है। दूसरी ओर ब्रज, खड़ी, पंजाबी, राजस्थानी तथा पूरबी इत्यादि का मिश्रण कबीर की भाषा का एक सर्वव्यापी गुण मानते हैं। वस्तुतः तत्कालीन साहित्य भाषा का यही रूप आंतरप्रांतीय स्तर पर प्रचलित था। कबीर जैसे संतों तथा सूफी फकीरों को विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण तथा उपदेश करना पड़ता था। इसीलिए उनकी रचनाओं में आन्तरप्रातीय हिन्दवी शैली का प्रयोग हुआ है। यही बात श्री भगवतप्रसाद दुबे ने स्वीकार की है : पिंगल या ब्रज के साथ-साथ दिल्ली-मेरठ की पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी के साथ, अरबी-फारसी शब्दों के सम्मिश्रण से जिस रेख्ता या हिन्दवी या खड़ीबोली का रूप धारण कर रही थी तथा जिसका आगे चल कर बहुत प्रचार हुआ और अधिकतर संतों ने जिसे अपने काव्य में स्थान दिया, कबीर ने भी उस बोली को सहायक रूप से अपने काव्य में स्थान दिया।[३] अन्तर

१. आ. रा. शु. हि. सा. इ., पृ. ८०
२. रा. शु. बुद्धचरित्र—पृ. १४
३. भ. प्र. दुबे. क. का. भाषा. शा. अ. पृ. २५९

इतना ही है कि श्री दुबे कबीर की भाषा की मूलाधार बोली ब्रज को मानते हैं, तथा खड़ी की हिन्दवी शैली को सहायक शुक्ल जी के कथन में भी यही ध्वनि है। हमें यही संतों की भाषा में हिन्दवी शैली के अस्तित्व एवं स्वरूप का ही विचार करना है। साथ ही इसे नहीं भुलाया जा सकता कि 'कबीर के समय खड़ी और ब्रज की सीमायें बहुत मिली हुई थी।'[१]

कबीर की भाषा के विषय में बाबू श्यामसुन्दरदास ने कहा है—कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचनाओं में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परन्तु भाषा का निर्णय प्रायः शब्दों से नहीं होता। भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक चिन्ह हैं, जो वाक्य-विन्यास की विशेषताओं के कारण होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं क्रियापद कारक चिन्हादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं। क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रज-भाषा और खड़ीबोली के हैं। कारक चिन्हों में 'से' 'के' 'सन' 'सा' आदि अवधी के हैं 'कौ' ब्रज का और 'थैं' राजस्थानी का। यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है 'मेरी वोली पूरबी' तथा पिछड़ी ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी-अरबी फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है।[२] डॉ. रामकुमार वर्मा ने कहा है कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिन्दी का रूप लिए हुए है।[३] कबीर ग्रन्थावली की भाषा में पंजाबीपन अधिक है।[४]

कबीर के अनन्तर संत साहित्य की भाषा या कृतित्व में कोई विशेष नादिन्य या मौलिकता नहीं दिखाई देती। संत परम्परा का नामोल्लेख पीछे हो चुका है अतः यहाँ अधिक लिखने की विशेष उपयोगिता नहीं है।

खुसरो और सूफी संत

अमीर खुसरो और उनकी 'खालिक बारी' के विषय में विस्तृत चर्चा इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ही आ चुकी है। किन्तु वह चर्चा भिन्न सन्दर्भ में थी। यहाँ साहित्य और भाषारूप की दृष्टि से थोड़ी चर्चा करना अत्युक्त न होगा।

ग्यारहवी सदी ई. में ख्वाजा मसऊद ने हिन्दी में रचना की थी, किन्तु वे उपलब्ध नहीं है। १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में देश के कोने-कोने में सूफी फकीरों का संचार होता हुआ दिखाई देता है। इनके विषय में यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि वे किसी ऐसी भाषा से काम लेते होंगे, जो जनसाधारण की

१. भ. प्र. दुबे. क. का भाषा. शा. अ. पृ. २९५
२. डॉ. प्रे. शु. संतसाहित्य, पृ० ३९७
३. रा. वर्मा. संतकबीर (प्रस्तावना) पृ. १७
४. " " हि. सा. आ. इति., पृ. ३७

समझ में आ सके, यह भी स्पष्ट है कि उन्हें धर्म और भक्ति के गहरे भाव और विचार प्रकट करने के लिए संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग विवशता से करना पड़ता होगा। ऐसे संतों में सबसे पहला नाम बाबा फरीद शंकरगंज (मृत्यु १२६५ ई.) का मिलता है। प्राचीन पुस्तकों में उनके बहुत से कथन और शेर मिलते हैं। इसी प्रकार शेख हमीदुद्दीन नागोरी (मृ. १२७४ ई.) शेख शर्फुद्दीन बूअली कलन्दर (मृ. १३२३ ई.) अमीर खुसरो (मृ. १३२४ ई.) शेख शिराजुद्दीन (मृ. १३५६ ई.) शेख शर्फुद्दीन मनेरी (मृ. १३७० ई.) मखदूम अशरफ जहाँगीर (मृ. १३५५ ई.) शेख अब्दुलहक रुदौलवी (मृ. १४३६ ई.) हजरत गेसूदराज (मृ. १४०१ ई.) सै. मुहम्मद जौनपुरी (मृ. १५०४ ई.) इत्यादि के बोल तथा दोहे मिलते हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि १३ वीं शती में एक ऐसी भाषा का विकास हो रहा था, जो जन साधारण की समझ में आ सकती थी और जिसे धार्मिक प्रचार के काम में लाया जा सकता था।

इन नामों में अमीर खुसरो और गेसूदराज हिन्दवी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। खुसरो फारसी के महान लेखक थे और उनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं। उनकी रचनाओं में भारत की बोलियों, त्योहारों, ऋतुओं, फलों, फूलों की चर्चा हुई है। संगीत कला में खुसरो ने उल्लेखनीय विकास किया किया था। एक ओर उनकी पहुँच राजदरबार तक थी, दूसरी ओर वे जनसाधारण के निकट थे इसीलिए फारसी के अतिरिक्त उन्होंने जन भाषा में भी काव्य रचना की। इसमें सन्देह नही कि उपलब्ध हिन्दी रचनाओं में सभी खुसरो की लिखी नहीं है, किन्तु सर्व सम्मत रूप में जो कुछ उनका माना जाता है, उसका अध्ययन किया जाये तो ज्ञान होगा कि उन्होने खड़ीबोली ब्रजभाषा का मिला-जुला प्रयोग किया है। गीतों में वे अधिकतम ब्रज ही से काम लेते थे। खुसरो की पहेलियाँ भी भाषा रूप की दृष्टि से बड़ा महत्व रखती हैं।

यह बात चाहे हम विश्वास से न कह सकें कि हिन्दी में खुसरो की कितनी रचनायें हैं पर इसमें तो बिल्कुल संदेह नहीं कि उन्होने दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली बोली का प्रयोग अपनी कविता में हिन्दवी नाम से किया है। उन्होंने स्वयं कहा है—

चुमन तुतिए हिन्दम, अगर रास्त पुर्सी।
जे मन हिन्दवी पुर्स ता नग्ज गोयम ॥

अर्थात मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ, अगर तुम वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो, जिसमें कि मैं तुमको अनुपम बातें बता सकूँ। डॉ. रामकुमार वर्मा ने खुसरो के गीतों, दोहों की भाषा में शब्द ब्रज भाषा के माने हैं, तथा क्रिया और कारक चिन्ह खड़ीबोली के।[1] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी खुसरो की भाषा को खड़ीबोली स्वीकार किया है।[2]

मध्यकालीन हिन्दवी

सन १५०३ से १६२३ का काल हिन्दी साहित्य में भक्ति और रीति साहित्य की रचना का काल है। यह ब्रज तथा अवधी के साहित्यिक उत्कर्ष का स्वर्णयुग था तब भी इस काल में खड़ीबोली अस्तित्वहीन नहीं हुई थी।[3] अकबर के दरबारी कवि रहीम, टोडरमल, तानसेन, कवि गंग इत्यादि की रचनाओं में खड़ीबोली काव्य सांस ले रहा था।

रहीम के मदनाष्टक का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था।
कटितट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलिबन अलबेला यार मेरा अकेला ॥

सन् १६२३ ई. से १८३२ ई. तक ब्रज भाषा काव्य के उत्कर्ष और अलंकरण का काल था। १८३२ से १८६८ ई. तक परिवर्तन का काल सामने आता है। इस काल में भी, ब्रज ही प्रमुख रही किन्तु बीच-बीच में खड़ीबोली का प्रयोग भी ये कवि करते थे। इस प्रकार की रचना करने वाले कवियों में कुलपति मिश्र, आलम, रघुनाथ, पद्माकर, सूदन, ग्वाल, आनन्द घन-नागरीदास, सीतल, ललित किशोरी, व्रजनिधि आदि कवि प्रमुख हैं। सीतल ने उस ब्रज भाषा युग में भी खड़ीबोली का ऐसा पक्ष लिया कि इसे छोड़ कर ब्रज में रचना ही नहीं लिखी। इसी की सरस और प्रवाहयुक्त रचनाओं को देखकर मिश्रबन्धुओं ने कहा था—"जो लोग खड़ीबोली पर यह दोष आरोपित करते हैं कि उसमें उत्तम कविता नहीं हो सकती, उनको सीतल की रचना देखकर अपना दुराग्रह अवश्यमेव छोड़ देना चाहिए।[4] कुछ कवियों की रचनायें उदाहरणस्वरूप नीचे प्रस्तुत है—

दाने कोन पानी की, न आवे सुद खाने की
याँ गली महबूब की, आराम सुखखाना है। (आलम)[5]
मेरे उरबीच समाय रहे, वे चिन्ह अहिल्यातारी के;

१. डॉ. रामकुमार वर्मा—हि. सा. आ. इ. पृ. १८०-८१
२. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा व्याकरण, पृ. २९
३. रामचन्द्र शुक्ल—हि. सा. इ. पृ. २६५
४. मिश्रबन्धु विनोद भाग २ (१९७० विक्रम) पृ. ६३४.
५. रामचन्द्र शुक्ल हि. सा. इ. पृ. ३९६

दुख हरन कलुष के नास करन वाजिद पद लाल बिहारी के । (सीतल)[1]
दिल दानवीर दयाल है, अरिवर निकर का काल है । (पद्माकर)

लोक रचनाओं में हिन्दवी

उपर्युक्त सभी परम्पराओं के अतिरिक्त खड़ीबोली का प्रचुर प्रयोग लोक-साहित्य में भी होता रहा है । भगत, स्वांग, नौटकी, रास, लावनी, ख्याल, भजन इत्यादि लोक जीवन की अभिव्यक्ति के सहज साधन हैं । इस साहित्य के रचयिता अर्धशिक्षित अथवा अशिक्षित होते थे, सम्भवतः इसी कारण साहित्य ने इनकी रचनाओं को सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा है । फलस्वरूप इस लोक साहित्य की प्राचीन प्रामाणिक सामग्री आज उपलब्ध नहीं होती, जो परम्परागत रचनाएँ उपलब्ध भी हैं, उनके अधिक काल तक मौखिक बने रहने के कारण उनकी भाषा के स्वरूप पर सन्देह किया जा सकता है । तब भी इस विषय में निःसंकोच कहा जा सकता है कि इन रचनाओं की भाषा हिन्दवी खड़ीबोली ही थी और लोक जीवन में इस भाषा का प्रचार बहुत पहले से था । इस विषय में १९१० ई. की मर्यादा पत्रिका में पं० श्रीधर पाठक ने लिखा था कि "हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर, मेरठ, मुरादाबाद, बुलन्द शहर, हाथरस, आगरा इत्यादि स्थानों में भगत और स्वांग नामक परम रोचक और अवलोकनीय अभिनय इस बोली के गद्य-पद्य में स्मरणातीत समय से होते चले आ रहे हैं ।[2] इनकी परम्परा आज भी इन स्थानों पर न्यूनाधिक प्रमाण में विद्यमान मिलती है । इनकी रचनाएँ उन्हीं पुरानी कथाओं-अमरसिंह राठौर, दयाराम, गुजर, सत्य हरिश्चन्द्र, भगत पूरनमल, श्रवण चरित्र इत्यादि पर खड़ीबोली में रची जाती है, जो उस भाषा और परम्परा का स्मरण दिलाती है, जिसका प्रचार पिछली शताब्दी में रहा है ।

पं० बदरीनाथ भट्ट ने अपने एक लेख में लल्लूलाल जी के वंशज मन्नूलाल जी द्वारा 'भगत' के लिए रचे "सीताराम चरित" नामक एक अप्रकाशित नाटक के कुछ अंकों का उल्लेख किया है । यथा—

उसी वक्त दरम्यान सभा के, राज कुँवर दोनों आये ।
जों तारों के बीच चंद दो, जोति छटा छवि में छाये ।

इसी प्रकार हाथरस के चिरंजीलाल और पं. नथाराम शर्मा का 'श्रवणचरित्र' 'संगीत चित्रकूट' लाला गोविन्द राम का 'संगीत मैन-अय्या' औरई के पं. मातादीन चौबे का 'संगीतपूरनमल' 'सुदामाचरित' संगीत हरिश्चन्द्र तथा लछमनदास कृत 'गोपीचन्द भरतरी' इत्यादि महत्वपूर्ण रचनाएँ मिलती हैं । इनका रचना काल

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृ. ६२२-३३
२. मर्यादा भाग १ सं. १ नवम्बर १९१०, पृ० २१

१९ और २०वीं शताब्दी का संधिकाल या प्रारम्भिक वर्ष होने पर भी ये भाषा की उसी प्रवृत्ति को पुष्ट करती है जो १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के हिन्दवी साहित्य में थी । इन शब्दों में इन की भाषा ब्रजमिश्रित होते हुए भी खड़ी बोली है । काशीगिरी बनारसी ने लावनी "लावनी ब्रह्मज्ञान" (१८७७ ई०) 'ख्याल (१८२३ ई०) इत्यादि की रचना की है ।

डॉ. केशरीनारायण ने "आधुनिक काव्यधारा" में भारतेन्दु युग के लावनी वाङ्मय से कुछ उदाहरण दिये हैं । डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य में जमशेद जी हारमसजी पोरान के कलगी के रोचक ख्याल (१८८२ ई०) नन्दलाल का तुर्राराग (१८८३ ई०) आदितराम जोङतराम के कलगी, और लावनियों (१८८७ ई०) तथा शम्भुदयाल का "लावनी ख्यालात तुर्रा" (१८८८ ई०) इत्यादि रचनाओं की चर्चा की है । १९वीं शताब्दी के लोक साहित्य में लावनी का बड़ा प्रचार रहा है ।

इंशाअल्ला और लल्लूलाल :—

उत्तरी भारत को खड़ी बोली हिन्दवी की प्राचीनतम गद्य रचना के रूप में अब तक प्रसिद्ध कवि गंग की 'चंद छंद बरनन की महिमा' (१७वीं शती) का उल्लेख मिलता है । अन्य दो रचनाएँ—(१) रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा योग वासिष्ठ (१७४१ ई०) तथा (२) दौलत राम की "पद्मपुराण" (१७६१) हैं । ये दोनों ही संस्कृत से अनूदित रचनाएँ हैं तब भी भाषा शैली की दृष्टि से इनका महत्व है, विशेषतः 'योगवाशिष्ठ' का ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दवी गद्य के क्षेत्र में एकाएक चार उच्च कोटि के गद्य लेखक अवतरित हुए मुंशी सदासुखलाल, (१७४६-१८२४ ई०) ने "सुखसागर" की रचना की । इन्होंने कथावाचकों, पंडितों और साधु-संतों के बीच दूर-दूर तक प्रचलित हिन्दवी खड़ी बोली का रूप रखा, जिसमें संस्कृत शब्दों का पुट भी बराबर रहता था ।

इंशाअल्लाखाँ (मृत्यु. १८१८ ई०) उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे । किन्तु अपनी "उदयभानु चरित या रानी केतकी की कहानी" (१८०३ ई०) की रचना में विशुद्ध 'हिन्दवी' के प्रयोग का प्रयास किया है । वे स्वयं कहते हैं :—"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले । बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हों । हिन्दवीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो । बस जैसे भले लोग, अच्छों से अच्छे-आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँव किसी का न हो ।" इस प्रकार इंशा ने अपने समय के तथा अपने वर्ग के सुसभ्य समझे जाने वाले (जिनमें हिन्दू

मुसलमान सभी थे) लोगों की भाषा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह दूसरी बात है कि वे अपने संस्कारों के कारण उर्दू-फारसी के प्रभाव से सर्वथा मुक्त न रह सके। विशेष रूप से उनका वाक्य विन्यास फारसी शैली का है। जैसे :— "तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती।" अपनी शैली को रोचक बनाने के लिए मुहावरों के साथ बीच-बीच में तुकान्त गद्य का भी प्रयोग किया है, यथा मुहावरे—जैसा मूं वैसा थप्पड़, छाती के किवाड़ खुलना, हिचर मिचर न रहे, आठ-आठ आँसू होना, सिर मुंडाते ही ओले पड़ना, इ. दूसरी और तुकांत पंक्तियाँ—"रानी बहुत सी बेकली थी। कब सूझती कुछ बुरी भली थी। चुपके-चुपके कराहती थी। जीना अपना न चाहती थी।

अंततः यह कहा जा सकता है कि 'हिन्दवी' शैली के अंतिम लेखक इंशा ने 'रानी केतकी की कहानी' विशुद्ध कलात्मक प्रेरणा से रची थी। 'नौसरहार' की भाषा से तुलना करने पर यह सत्य प्रतीत हो जाएगा कि इंशा की भाषा उसी परम्परा की है, मात्र ब्रज और उत्तर क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाव में काफी कमी आ गयी है। यह तीन चार सौ वर्षों की विकास परम्परा की परिणति ही माननी चाहिए।

लल्लूलाल और सदल मिश्र :—

फोर्ट विलियम कालेज के दो पंडित लल्लूलाल तथा सदल मिश्र की भाषा नीति पर प्रा. गिलक्रिस्ट का प्रभाव रहना स्वाभाविक है। इस बात के प्रमाण हैं कि लल्लूलाल जी के "प्रेम सागर" का प्रथम संस्करण जब प्रकाशित हुआ था तो उसके मुख पृष्ठ पर 'हिन्दवी' भाषा की रचना होने का उल्लेख था किन्तु बाद के संस्करणों पर यह शब्द बदल दिया गया, यह सम्भवतः कालेज की भाषा नीति के अनुसार ही हुआ होगा। गिलक्रिस्ट की हिन्दवी-हिन्दी सम्बंधी नीति का उल्लेख प्रथम अध्याय में हो चुका है।

'प्रेम सागर' के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रंथ अनूदित रूप में लल्लूलाल जी ने रचे किन्तु शुद्ध हिन्दवी शैली की रचना तो "प्रेमसागर" ही है। वस्तुतः कथावाचकों की शैली प्रेमसागर में झलकती है तथा इसमें स्थान-स्थान पर ब्रज भाषा के प्रयोग मिलते हैं, जैसे :—'सम्मुख जाय, सोई, भई, जाते थे, जानलीजे, जद, तद। कहीं-कहीं तुक मिलाने का प्रयास भी हुआ है। शब्द रूपों की अस्थिरता यहाँ भी दर्शनीय है, यथा—पिरथी, पृथ्वी, प्रथिवी, तथा कर्म-करम, मुझ-मुज, मुझे इत्यादि। "सम्यक दृष्टि से विचार करने पर प्रेमसागर की भाषा में माधुर्य और सरसता है, काव्याभास है, लेकिन वाक्य-रचना में सुसम्बद्धता नहीं है।"[1]

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ४१२

दक्षिण में हिन्दवी साहित्य :—

प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मुस्लिम आक्रमणों के साथ हिन्दवी किस प्रकार दक्षिण में पहुँची। 'तारीखे फरिश्ता" के अनुसार स्थानीय बहमनी तथा बाद की मुस्लिम रियासतों के संरक्षण में हिन्दवी का न केवल लोक व्यवहार अपितु शासकीय व्यापार में भी होता था। इसी हिन्दवी का परवर्ती नाम-विधान दक्खिनी हुआ।

दक्षिण में रचित हिन्दवी साहित्य को कई काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है। आरम्भ से बहमनी राज्य के अंत तक धार्मिक साहित्य का काल कहा जाता है। इसी काल की भाषा के लिए मुख्यतः हिन्दवी-हिन्दी शब्दाभिधान का प्रयोग हुआ है। इस काल की रचनाओं का भाषा विज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व है।[1] मुल्लावजही और उनके बाद के साहित्य में ही 'दक्खिनी' नाम का उल्लेख मिलता है। यह हिन्दवी के विकास का दूसरा युग था। इस काल का साहित्य मुख्यतः बीजापुर और गोलकुण्डा में रचा गया। तीसरा युग मुगलसत्ता के आधीन रचित साहित्य का है।

ख्वाजा बंदेनवाज गेसूदराज (१३४६—१४२३ ई०)

जन्म से दिल्ली से सम्बन्धित होते हुए भी कर्मक्षेत्र मुख्यतः दक्षिण में ही रहा। इसी क्षेत्र में रहकर लगभग पन्द्रह ग्रंथ फारसी-अरबी तथा तीन ग्रंथ हिन्दवी में रचे हैं। हिन्दवी रचनाएँ ये हैं— (१) मीराजुल आशकीन (२) हिदायतनामा तथा (३) रिसाला सेहपारा या बारहमासा। "मीराजुल आशकीन" मुस्लिम सूफी संतों द्वारा दक्षिण में रचित आद्य ग्रंथ माना जाता है। यह १९ पृष्ठों की एक छोटी-सी रचना है, जिसमें सूफी साधनाओं का विवरण दिया गया है।

गेसूदराज के पोते अब्दुल्ला हुसैनी सुविख्यात सूफी थे। उन्होंने प्रसिद्ध फारसी-ग्रंथ, 'निशातुल इश्क' का हिन्दवी में अनुवाद किया था। इसी काल के एक कवि निजामी ने एक मसनवी 'कदमराव व पदम' की रचना की।

'नौसरहार' का रचयिता शेख अशरफ पन्द्रहवीं शताब्दी में वर्तमान था। उसने अपनी रचना १९०२ के लगभग समाप्त की थी। विस्तृत परिचय इस प्रबंध के ५ वें अध्याय में प्रस्तुत है। इनके समकालीन ही दूसरे प्रसिद्ध संत थे।

शाहमीरांजी (१५ वीं तथा १६ वीं शती में वर्तमान)

बहमनी राज्य के विघटन के परिणामस्वरूप १४९० ई० में बीजापुर में आदिलशाही राज्य की स्वतंत्र स्थापना हुई। मीरांजी अपनी भक्ति और योग्यता के कारण "शमशूल उश्शाक" (भक्तों का सूर्य) कहलाते थे। वे १४९७ या कुछ लोगों

२. एहतेशाम हुसेन—उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ३२

के अनुसार १५७६ तक भी वर्तमान थे । अपने जीवन काल में मीरां जी ने कई रचनाएँ रचीं जिनमें "खुशनामा" तथा "शहदतुल हकीकत" हिन्दवी को बीजपुरी शैली के अच्छे उदाहरण हैं। इनकी सभी रचनाएँ सूफी मत के सिद्धान्तों और आचारों का उल्लेख करती हैं। इन्होंने अपनी भाषा को स्वयं 'हिन्दी' कहा है और इस सम्बंध में लिखा है कि 'मेरी ये रचनाएँ उन लोगों के लिए हैं जो अरबी-फारसी नहीं जानते । इनकी कृतियों में 'शहादतुल हकीकत' 'खुशनामा' तथा शरहे मरगूबुल-कुलूब प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है । मीरा जी की भाषा का उदाहरण प्रस्तुत है :–

तूं कादिर कर सब जग सब को रोजी देवे ॥
तू सभी का दाना बीना, सब जग तुझको सेवे ।।
एकस माटी भूली देवे एकस माटी बान ।।
केतों भीख मंगावे, केतों देवे राज ।।
केतों पाट पितम्बर देता, केतोंक कर की लाया ।
केतों ऊपर धूप तलावे केतों ऊपर छाया ।
केते ज्ञान भगत बैरागी, केते मूर्ख गँवार ।।
एक जिन एक मान कीता, एक पुरुष एक नार ।।

बुरहानुद्दीन जानम :–

शाह मीरा जी के पुत्र बुरहानुद्दीन भी धर्म के धुरंधर विद्वान तथा अपने पिता के बड़े श्रद्धाशील भक्त थे । आपका जन्म बीजापुर में ही हुआ । 'बसीयतुलहादी' तथा 'इर्शादनामा' के अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का आपने निर्माण किया । जानम ने अपनी भाषा को हिन्दी के साथ-साथ गूजरी भी बताया है । इनकी भाषा के कुछ उदाहरण इस प्रबंध के ५ वें अध्याय के अंत में इर्शादनामा से उद्धृत है ।

हिन्दवी-हिन्दी के इन प्रमुख दक्खिनी कवियों की भाषा परम्परा का आगे की रचनाओं में विकास हुआ, जो आगे चलकर 'उर्दू' को मूर्तरूप देने में प्रतिफलित हुई । ऐसी स्थिति में हिन्दवी साहित्य की परम्परा को यहीं समाप्त समझा जाना उचित होगा ।

प्रस्तुत अध्याय में हिन्दवी साहित्य का भौगोलिक और क्षेत्रीय आधार पर बिखरा हुआ सा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इससे थोड़ी असुविधा हो सकती है किन्तु इस प्रणाली का विशेष औचित्य हमारी दृष्टि में यह रहा है कि यातायात की सुविधाओं के अभाव से पीड़ित उस काल के साहित्य और भाषा में स्थानीय विशेषताओं का समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही था । इन विशेषताओं से युक्त भाषा और साहित्य धारा को अलग-अलग रखने से उनका अध्ययन अधिक सुविधा के साथ हो सकता है । आशा है, सुधी पाठक हमारी धारणा से सहमत होंगे ।

द्वितीय भाग

५ | नौसरहार : एक साहित्यिक विश्लेषण

नौसरहार हिन्दवी की एक महत्वपूर्ण प्राचीन रचना है। यह एक मसनवी है, जो मुस्लिम जगत के इतिहास को महत्वपूर्ण घटना कर्बला में हुसेन के बलिदान से सम्बन्धित है। इस मसनवी की पाण्डुलिपियाँ अत्यन्त दुर्लभ हैं। अब तक केवल दो प्रतियों का पता चलता है, जिनमें एक प्रति हैदराबाद के "इदारए अलबियात उर्दू हैदराबाद" में तथा दूसरी "अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू-हिन्द", अलीगढ़ से सुरक्षित है।

हैदराबाद वालो पाण्डुलिपि में लगभग १८०० छन्द (बैत) हैं। इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

अल्ला वाहेद हक सुभान, जिन यू सरज्या भुइं असमान और अन्तिम छन्द यह है—

फडत्यूँ सुनत्यूँ आभ्रजी. आमीन अल्ला, या आमीन ।।

'अजुमने तरक्की उर्दू हिन्द' की पाण्डुलिपि अपूर्ण तथा दूषित भी है। इसका प्रथम पृष्ठ नष्ट हो गया है। हैदराबाद की प्रति में 'हम्द' के ४५ छन्द हैं, जबकि अलीगढ़ प्रति में केवल ३९छद। इससे अनुमान किया जा सकता है कि हम्द के आरम्भक छः छंद लुप्त हैं, जो प्रथम पृष्ठ पर रहे होंगे।

अलीगढ़ की प्रति नवें 'बाब' (सर्ग) के आरम्भ में हो समाप्त हो जाती है, अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अन्त के कितने पृष्ठ नष्ट हो गये हैं। नवें बाब के केवल आरम्भिक छः छन्द प्राप्त हैं। अलीगढ़ प्रति कुल ७२ पन्नों (१४४ पृष्ठों) में लिखित है। प्रत्येक पन्ने पर प्रायः १२ बैत (छन्द) है। इस प्रकार कुल छन्दों की संख्या लगभग १७०० होगी, जो हैदराबाद की पाण्डुलिपि से १०० या ११६ छन्द कम हैं।

'इदारे अदबियात हैदराबाद की प्रति के अन्तिम छन्द अलीगढ़ प्रति में, आठवें बाब की अंतिम बैत के रूप में मिलते हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि अलीगढ़ की प्रति केवल आठ बाबों तक ही व्याप्त है। इस अनुमान के सत्य होने पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अलीगढ़ की प्रति पूर्णतया अपर्याप्त

है । साथ ही अनेक स्थानों पर छन्दों का क्रम अव्यवस्थित हो गया है, यथा आरम्भ में ही 'नात' के अन्तर्गत अरब खलीफाओं के 'मद्ध' (प्रशंसात्मक छंद) अव्यवस्थित हैं ।

अलीगढ़ प्रति का दूसरा दोष यह है कि यह दीमकों की कृपा से बुरी तरह पीड़ित है । आरम्भ के ५ पन्ने जीर्णशीर्ण हो गये हैं । इस प्रति के लिपिक के अक्षर बड़े बुरे हैं तथा वह [अल्पशिक्षित रहा होगा । वर्तनी की सादी बातों में भी गलतियाँ मिलती हैं । नुक्तों का प्रयोग अनियमित है । नुक्तों से ही कई चिन्हों का काम लिया गया है । गाफ ड और टे के स्थान पर चार नुक्टे लगाकर काम चला लिया गया है । इस प्रति का आरम्भ इस छन्द से होता है—

इतने पैदा कीते आल
मखसूस उसको यह था खयाल ।

और अन्त में यह छ्न्द है—

वाट चल्या वह दोतीन मास
टाक्या अपने चचा पास

हैदराबाद की प्रति में ७० पन्ने हैं । आरम्भ के आठ पन्नों में प्रति पृ० १५ अर्धालियाँ तथा शेष पन्नों में प्रति पृ० १३ अर्धालियां लिखित हैं । इस प्रति का आकार ९-९/५॥ इंच है । अलीगढ़ प्रति के समान इसमें भी घटनाओं के शीर्षक लाल स्याही से फारसी भाषा में लिखे हुए हैं । इस प्रति का लिपिक काजी मुहम्मद आफिस इब्ने काजी मुहम्मद हुमेंन, चांदूर परगने का काजी था ।

हैदराबादी प्रति में दस बाब हैं किंतु नववां बाब आठवें बाब में मिल गया है, अतः नववें बाब का स्वतन्त्र शीर्षक नहीं मिलता । इसमें अलीगढ़ प्रति के अंतिम छ्न्दों में वर्णित शहजादा अलीअकबर के जोर की आंधी में उड़ जाने और अपने चचा के पास पहुंचने का प्रसंग भी नहीं रखा गया है ।

इस प्रकार 'नौसरहार' की दोनों ज्ञात पाण्डुलिपि में पर्याप्त अंतर दीखता है । कुछ स्थानों पर पद्यों की क्रम व्यवस्था और संख्या में भी बड़ा अन्तर मिलता है । दोनों प्रतिलिपिकारों ने अपनी रुचि या आवश्यकता के अनुसार मूल शब्द को पर्यायवाची शब्द से बदल दिया है । कहीं-कहीं शब्द के व्याकरणिक रूप (प्रत्यय) भी बदल दिये गये हैं । इस प्रकार के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

हैदराबाद प्रति	अलीगढ़ प्रति
पुरवे मेरे मन की हौस । (पृ० १७)	पुरवे मेरे जीव की हौस
मन यूं पकर्या सक्त उम्मीद (पृ० १९)	मन में बांधी सक्त उम्मीद
नाहीं बिसर्या बेटा तूं । (पृ० ४१)	नाहीं बिसर्या पूता तूं
तुझ कित ये मम दिया रे । (पृ- ४२)	तुझ कित ये दुख दिया रे ।

कहें लागा यूं बखान । (पृ. ५०)	अंखन लागा यूं बखान ।
जे चख मुझ दुख मरानता (पृ. ४२)	जो कुछ दुख मुझ मरावता ।
ल्हारे-करे सकले रोत (पृ. २६)	नन्हें बरे सकले ऊठ ।

इसी प्रकार का शब्दांतर निम्नलिखित शब्दों के प्रयोग में दिखाई देता है—

हैदराबाद प्रति	अलीगढ़ प्रति	हैदराबाद प्रति	अलीगढ़ प्रति
भाकूं	आखूं	रह्या	रहया
फिर्या	मोर्या (भोडया)	कहते	आखें
अखें	कहते	ल्हरा-ब्रा	तन्हा ता बड
होवा	रह्या	वाहें	कारन
लोता कोंछ	पाल्या पोंछ	हजारा	सहसर
गाढ़ा (गार्हा)	गहरा	कहे	आखें
यारों	लोकन	हीना	हिया
चक (चूक)	टक (टुक)	किवाड	पाट
सर	सिस	तन	सरीर
दीवे	ब-ती		

इसी प्रकार से दोनों प्रतियों में संज्ञा शब्दों के रूप बनाने के सम्बन्ध में भी अन्तर दिखाई देता है । विशेष रूप से बहुबचन और षष्ठी विभक्ति के रूप बनाने के लिए प्रयुक्त प्रत्ययों में अंतर दिखाई देता है । हैदराबाद प्रति में जहाँ आकारांत रूप अधिक हैं वहाँ अलीगढ़ प्रति में ओकारांत रूप । यथा—

हैदराबाद प्रति	अलीगढ़ प्रति	हैदराबाद प्रति	अलीगढ़ प्रति
धावों	धावन	प्यारों	प्यारन
किते	केतक	पूछन लागा	पूछें लागा
बैठया	बैठा	पूछें लग्या	पूछन लागा
हातों	हातन	करने	करन
हैरां	हैरान	दातों	दातन
लागा	लाग्या	ऊँचा-नीचा	ऊँचे-नीचे
मासों	मासन	बैठया	बैठा
लोकों	लोका	हातों	हातन
मीठो	मीठयां	बातों	बातां
बक्शो	बक्शो	तारों	तारन
उध्या	उठिया	कहा	कह्या
पून्यो	पूनम	ऊठा	ऊठया
अपे	आपन	बोलों	बोलन

नैनों	नैनन	लोगों	लोगन
कांपा	कांप्या	बासो	बासन
राखों	राखाँ	केता	किया
खुदाई	खुदा का		

इन प्राचीन हिन्दवी पाण्डुलिपियों का भाषावैज्ञानिक महत्व, साहित्यिक महत्व से कहीं अधिक है। इनके प्रामाणिक—सम्पादन से भाषा के मूलरूप और विकास को स्पष्ट करने में असाधारण रूप से सहायता मिलती है। अच्छी एवं सुलिखित पाण्डुलिपियों का अभाव भाषा की प्रारम्भिक रूपरेखा को स्पष्ट करने में सबसे बड़ी बाधा होती है। खड़ीबोली-हिन्दी के सन्दर्भ में तो यह बात और अधिक सत्य है। ऐसी स्थिति में १५ वीं शताब्दी के प्रस्तुत 'नौसरहार' का प्रकाश में आना अत्यन्त महत्व रखता है।

पाठालोचन की पद्धति और संहिता

पाठालोचन की दो पद्धतियाँ प्रायः अपनाई जाती हैं – (१) किसी प्राचीनतम प्रति को 'संहिता' (प्रमाण प्रति) के रूप में स्वीकार करते हुए अन्य उत्तरकालीन प्रतियों से अन्य पाठ उद्धृत करना अथवा (२) अनेक प्रतियो से शब्द के विविध पाठ देते हुए मूलपाठ को निश्चित करने का प्रयास करना। नौसरहार के अध्ययन के लिए प्रथम पद्धति ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई। हैदराबाद प्रति को प्रमाण प्रति माना गया है। अलीगढ़ प्रति में से पाठ भेद निर्देशित हैं। मूल प्रमाण प्रति के पाठों में किसी प्रकार का संशोधन या परिवर्तन नहीं किया गया है। इससे रचना की प्राचीनतम भाषा तथा उसके तत्कालीन स्वरूप के स्पष्ट होने में सहायता मिलेगी। पाठ भेदों के कारण उन शब्दों के अन्य रूप प्राप्त होंगे, जिनसे मूलरूपों तक पहुँचना सुकर होगा।

कवि शेख अशरफ

'नौसरहार' का रचयिता कवि शेख अशरफ है। प्राचीन तजकिरों, इतिहास ग्रन्थों या काव्य ग्रन्थों में कहीं भी इस कवि के जीवन का कोई संकेत नहीं मिलता। कवि ने अपने ग्रंथ में रचना काल-हिजरी सन् ९०९ का संकेत किया है, इसके अतिरिक्त कवि के व्यक्तिगत जीवन परिचय का कहीं कोई संकेत नहीं किया गया है। मात्र एक स्थान पर वर्णन क्रम में एक महात्मा 'शेख जिया', जो सम्भवतः जियाउद्दीन बियावानी होंगे, का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा—"हमचूं मशायख शेखजिया" इसी शब्द के आधार पर डॉ. सैयद मोहियोद्दीन कादरी जोर ने अनुमान किया है कि ये महात्मा जियाउद्दीन बियाबानी होंगे, जो सैयद अली सांगडे सुल्तान मुश्किल आसान कंवारी (मृत्यु ८४६ हिजरी) के भानजे तथा खलीफा थे, साथ ही जिन्होंने मुतलबुत तालिबीन"[1] की रचना की थी अथवा शेख जियाउद्दीन गजनवी,[2] जो सिराज जुनैदी[3] के खलीफा तथा शेख अजयनुद्दीन गंजुल इल्म[4] के अनुयायी थे और जो बीजापुर में ८०५ हिजरी में स्वर्गवासी हुए।

सूफी सन्तों और भक्तों के अनेक परिचय ग्रंथ—तजीकरे है, किन्तु किसी में भी प्रस्तुत शेख अशफर का कोई उल्लेख नहीं मिलता। 'अखबारुल अख़बार' 'गुलजारे अबरार' 'खजीनतुल असफिया' 'मारजुल वसायत' 'मिरातुल असरार' इत्यादि ग्रन्थों में शेख जिया का भी उल्लेख न होने से यह ज्ञात होता है कि सम्भवतः ये एक स्थानीय महत्व के महात्मा थे। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि "औलिया-ए-दकन" भी शेख जियाउद्दीन बियाबानो के उल्लेख से रिक्त है। डॉ. जोर तथा 'दकन में उर्दू' के लेखक श्री नसीरुद्दीन हाशमी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार कर लिया है कि अशरफ अहमद नगर की निजामशाही का ही निवासी तथा इस हुकूमत का पहला शायर था, जो मलिक अहम निजामुलमुल्क (१२९०–१५०९ ई.) का समकालीन था। तब भी कुछ विद्वानों ने इस विषय में अपने मतभेद का संकेत किया है और वे अशरफ के बीजापुरी शायर होने का अनुमान करते हैं। यद्यपि बीजापुर सूफियों का बड़ा केन्द्र था तथा हिन्दवी भाषा एवं साहित्य के विकास में उस केन्द्र का पर्याप्त योगदान रहा है तथापि अशरफ का उस केन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। डॉ. जोर ने संकेत किया है कि 'नौसरहार' की भाषा लगभग वही है, जो प्राचीन बीजापुरी ग्रंथों इर्शादनामा (९९० हिजरी) इब्राहीमनामा (१०२२ हिजरी) की है किन्तु यह बात उतनी सत्य नहीं है क्योंकि कथित दोनों ग्रन्थों की भाषा से नौसरहार की भाषा कहीं अधिक सहज-स्वाभाविक है। इब्राहिमनामा नौसरहार से एक शताब्दी बाद का लिखा होने पर भी उसकी भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ है। वस्तुतः नौसरहार की भाषा फीरोज के 'पिरतनामा' (९७३ हिजरी से पूर्व) से अधिक मिलती है। इसी कारण 'पिरतनामा' का नागरी लिप्यंतर प्रबन्ध में समाविष्ट कर लिया गया है। 'इब्राहिमनाम' तथा 'दर्शादनामा' रचनाएँ बड़े आकार की होने से उनके कुछ अंश ही प्रस्तुत अध्याय के अन्त में दिये जा सके हैं :

दूसरा अनुमान यह है कि 'नौसरहार' लिखने के ठीक १०४ वर्ष पूर्व शेख जिया नामक महात्मा बीजापुर में स्वर्गवासी हुए थे। स्पष्ट ही ये महात्मा कोई महान

१. तारीखे कंधार दफन पृ० २१२।
२. रौजतुल औलिया-बीजापुर पृ. ४२।
३. 'तजकिर-ए-औलिया-ए-दकन' खंड ८ पृ९ ३९१—९३।
४. वही. पृ० ५३८–५४१।
५. इन दोनों ही ग्रन्थों की भाषा के नमूने इस अध्याय के अन्त में देखिए

व्यक्तित्व नहीं थे अतः सूफियों के सभी तजकिए इनके उल्लेख से रहित हैं। ऐसी स्थिति में उनके स्वर्गवास के इतने कालान्तर से किसी कवि द्वारा उनको इतनी श्रद्धा के साथ स्मरण करना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। हजारों ऐसे सूफी महात्माओं, जिनके कार्य चिरकाल तक स्मरण किये जायेंगे, इन सब की उपेक्षा कर, एक अप्रसिद्ध महात्मा का नामोल्लेख एवं स्मरण यह प्रमाणित करता है कि ये महात्मा निश्चित रूप से अशरफ के समकालीन रहे होंगे। औरंगाबाद के एक तालुका ग्राम 'अम्बड' में शेख जियाउद्दीन बियाबानी की समाधि है तथा उनके वंशजों के पास लेखक को बियाबानी वंश की वंशावली (शिजरा) देखने का अवसर प्राप्त हुआ है, जिसमें अशरफ का नामोल्लेख है। एक तर्क यह भी है कि नौसरहार की उपलब्ध दोनों ही प्रतियाँ वर्तमान मराठवाडा क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। शेख जिया के गुरु 'कंधार' (जिला नान्देड) में निवास करते थे। कंधार उन दिनों अहमदनगर राज्य में सम्मिलित था और इदारे अदबियात उर्दू, हैदराबाद की प्रति 'चांदूर' में लिखी गयी है, जो अहमदनगर का एक परगना था तथा नान्देड में ही यह पाण्डुलिपि प्राप्त की गयी। अंजुमन तरक्की उर्दू, अलीगढ़ की प्रति भी इसी क्षेत्र प्राप्त हुई होगी, क्योंकि लगभग २५ वर्ष पूर्व अंजुमन का प्रधान कार्यालय औरंगाबाद में था।

इन सब प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत कवि शेख अशरफ को 'अम्बड' या आसपास का निवासी मान लेने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

अशरफ ने अपने उपनाम, रचना का उद्देश्य तथा शीर्षक, ग्रन्थ की भाषा एवं रचना काल इत्यादि के विषय में स्थान-स्थान पर उल्लेख किए हैं। आरम्भ में हम्द के बाद कवि कहता है "अब तक का मेरा जीवन व्यर्थ हो गया, मुझसे कोई ऐसा कार्य नहीं हुआ जो मेरी मृत्यु के पश्चात् भी मेरी स्मृति को जीवित रखता। मनुष्य इस संसार में चिरकाल तक जीवित नहीं रहता, अतः उसे सद्कार्य करने चाहिए, ये कार्य ही उसका श्रेष्ठ स्मारक बनते हैं। मैंने ये छन्द यादगार के रूप में रचे हैं, मेरी इच्छा है कि इन्हें लोग पढ़ें और उपदेश ग्रहण करें। यह रचना नौ बाबों में विभाजित होने के कारण ही उसका नाम 'नौसरहार' रखा गया है।" इस सारे भाव के छन्द निम्न प्रकार हैं—

अब सुन मेरे यार अजीज। उमर हमारी गई नाचीज ॥
आया, जिया, मुई पर भार। धंदे भीतर गिरप-तार ॥
पसस्या नफा के गुज तुही। नांव निशानी कुछ नहीं ॥
आवे वक्त उठ चलना होय। मुयें नांव न लेवे कोय ॥
कर ए अशरफ कुछ धेरी। अछे बारे यादगीरी ॥
ये भी बाबौं नौसरहार। कीमत इसकी लाख-हजार ॥
अशरफ लिखे ये बखान। तौहीद हक की मौजूं आन ॥

शाबाश अशरफ तुझ रहमत। कीवे बारे खूब सिफत ॥

लेखन वर्ष का संकेत करते हुए कवि ने कहा है—

हिजरत नबी नौ सौ नौ। कह्या अशरफ नौसर यो ॥[1]

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कवि ने अपनी भाषा को कई बार हिन्दवी कहा है, यथा—

बाजाँ कीता हिन्दवी में। किस्स ए मकतल शाह हुसेन ॥

इसी प्रकार—

इस-इस बोल ये मौजूं आन।
तकदीर हिन्दवी सब बखान ॥

कवि की धार्मिक मान्यता

अशरफ ने करबला की घटना को अत्यन्त हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है किन्तु वह शिया या सुन्नी में से किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध था, इस विषय में कुछ निर्णय करने से पूर्व निम्नलिखित छन्दों पर ध्यान देना उचित होगा—

नबी मुहम्मद हक रसूल। कीना जिन पे फक्र कबूल ॥
दोनों जग केरा सरवर मीर। जिस कों चारों यार वजीर ॥
बूबकर सिद्दीक एक सिरा। उमर खिताब हम दूसरा ॥
ए दो बुजुर्ग पीर आजाद। उस्मान, अली दुइ दादाद ॥
दोय नबारे उन बल जावें। हसन हुसेन जिनका नांव।
अली के ये दोय फरजन्द। बीबी फातमा के दिलबन्द।
अल्ला केरे संवारे। पैगम्बर के प्यारे ॥ (पृ. ४)

इसी क्रम में हजरत अमीर माविया के विषय में हजरत रसूलल्ला के ये उद्गार हैं—

बाजाँ यक दिन नबी राव। बैठे मस्जिद भीतर आव।
होर भी बाजे हाजिर यार। बैठे थे ज्यूं सदर संवार ॥
तो लग माबी भी डर-डर। बेटा सीने सात पकड़ ॥
लेकर नबी पास आय। नबी देख्या इस न जाय ॥

---

१. अलीगढ़ प्रति में इस विषय के पद ८ वें बाब के अन्त में रखे गये हैं, यथा—

बाजाँ जो के तारीख साल। बाद अज नबी हिजरत हाल।
नौ सौ होवे अगले नौ। ये दुख लिख्या अशरफ तो।
नांव धर्या इस नौसरहार। बस यह सब दुख का भार।
अंख्या अंशू सोंधो-धो। लिख्या मैं दुख से रो-रो।
एक-एक बोल ये मौजूं आन। तकदीर हिन्दवी सब बखान।

देखत तो लिया अपना सिर। यारां अंधे कहया फिर ।।
देखो यारां, ऐ असहाब। ये जो आवता कोई शताब ।।
बहिश्ती केरे कांदे पर। दोज खी बैठया क्यों चढ़कर ।। (पृ. १५)

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अशरफ ने चारों खलीफाओं—(१) अबूबकर सिद्दीक, (२) हजरत उमर फारूक (३) हजरत उस्मान गनी तथा (४) हजरत अली मुर्तुजा-का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया है। दूसरी ओर हजरत माबिया को उसने मुहम्मद साहब के मुख से ही 'बहिश्ती' (स्वर्गीय, पुण्यशील) कहलाया है। इस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शेख अशरफ निश्चित ही 'सुन्नी' सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। सुन्नी सम्प्रदाय चार खलीफाओं को मानता है, जब कि 'सिया' सम्प्रदाय में केवल हजरत अली को ही खलीफा माना जाता है। दूसरी ओर 'सिया' सम्प्रदाय के अनुयायी हजरत माबिया का नाम लेना भी पाप समझते हैं, जबा कि 'सुन्नी' लोग उसे पुण्यशील व्यक्ति मानते हैं। यह भी अशरफ के सुन्नी होने का एक स्पष्ट प्रमाण है।

मर्सिया और मसनवी

भारत में सूफी संतों ने असंख्य प्रेम कथाओं का प्रणयन प्रायः मसनवी शैली में किया है। मसनवी को भारतीय महाकाव्य की तुलना में रखा जाता है। यद्यपि दोनों में सूक्ष्म भेद है तथापि तात्विक दृष्टि से दोनों वृहदाकार कथात्मक काव्य हैं। मसनवी में भारतीय महाकाव्यों जैसी सवर्ग बद्धता नहीं, बल्कि सभी घटनाएँ अलग-अलग शीर्षकों के अधीन वर्णन की जाती हैं।[1] कथा आरम्भ से पूर्व ईश्वर वन्दना, मुहम्मद साहब की और उनके खलीफा की स्तुति, समकालीन बादशाह तथा गुरु की स्तुति तथा आत्म परिचय आदि दिया जाता है। यद्यपि मसनवी में नायक के उच्चकुल जात होने का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता तथापि चरित्र की महानता का प्रायः ध्यान रखा जाता है, काव्य की उद्देश्य पूर्ति महान चरित्र से ही सम्भव हो सकती है। भारत में रचित मसनवियों में प्रायः एक दो छन्दों का ही आद्यन्त पालन किया जाता है, जबकि महाकाव्यों के लिए सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का विधान है। ऋतुओं, दृश्यों, वस्तुओं, नगरों, रूप वैभव, भोग विलास इत्यादि का भाव-विभाव

1. T. Grahame Ealley—In the majority of cases and Poetical romance. It may extend to several thousand Lines, but generally is much shorter. A few masnavis deal with ordinary domestic and other occurrances. Mir and Sauda wrote some of this kind, they are always in heroic couplets. (A History of Urdu Literature. Page. 2

निरूपण के अन्तर्गत मसनवियों में भी विस्तार के साथ वर्णन किया जाता है। भारत में रचित मसनवियों में प्रायः एक रसता आ गयी है। प्रेम चित्रण में वियोग पक्ष की प्रधानता के साथ ही करुण रस की अवतारण मुख्य उद्देश्य दिखाई देता है।

'मसनवी' के समान ही 'मर्सिया' भी बहुप्रिय काव्य भेद है। श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव के इस मत से सहमति सम्भव नहीं है कि, फारसी हमें हिन्दी में 'मर्सिया' या शोकगीत लिखने को प्रभावित नहीं कर सकी। भारतीय कवि फारसी में मर्सिया लिखते थे :[1] आपने अमीर खुसरो तथा खानखाना अब्दुल रहीम का उल्लेख इस सन्दर्भ में किया है। आपके इस मत का विरोध प्रस्तुत: 'नौसरहार' के आधार पर ही नहीं, दकनी, गुजरी तथा लखनवी शायरों की अप्रकाशित सैकड़ों रचनाओं के आधार पर किया जा सकता है। डॉ. ग्रहमबेली[2] ने 'एडिनबरा विश्वविद्यालय' के ग्रन्थालय में स्थित दो फाईलों का उल्लेख किया है, जिनमें एक फाईल में हासिमअली द्वारा रचित २३८ तथा दूसरी फाईल में अन्य ६३ दक्षिण के हिन्दवी कवियों द्वारा रचित २८९ मर्सियों का समावेश है। इन फाइलों में संकलित कई मर्सियों के लेखकों और उनकी रचनाओं का अब तक किसी भी सन्दर्भ ग्रन्थ में उल्लेख नहीं हुआ है। यह प्रकाशित सामग्री स्पष्ट करती है कि भारतीय कवियों में भी मर्सिया लेखन एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय की तरह आरम्भ से चलता रहा है।

डॉ. ग्राहमबेली के इस कथन से भी सहमति असम्भव है कि "दक्षिण में मर्सिया लेखन की परम्परा का आरम्भ कुली कुतुबशाह (१५८१ से १६११ ई०) से हुआ।"[3] प्रस्तुत 'नौसरहार' १५०२ ई० के पूर्व की रचना होने के साथ ही हमारे विचार से भारत में रचित अब तक की ज्ञात मर्सिया-परम्परा में सर्वप्रथम एवं प्रवर्तक रचना है।

'मर्सिया' मृत व्यक्ति के स्मरण में लिखा गया शोकगीत होता है। यह फारसी के 'कसीदा' अर्थात जीवित व्यक्तियों के प्रशस्तिगीत के विपरीत अर्थ का द्योतक है। मर्सिया का विषय-क्षेत्र कर्बला के मैदान में शहीद हुए, इमामहुसेन तथा उनके साथियों के दुख और कष्ट का चित्रण करने तक सीमित रहता है। मर्सिया साधारणतया षटपदी छन्दों में लिखा जाता है। डॉ. बेली के अनुसार पूर्ण विकसित 'मर्सिया' एक महा काव्य ही होता है (A fully developed Marsiya is almost an epic.)[4] आरम्भ में यह केवल रुदन-विलाप था, जिसमें कवि मृत व्यक्ति के

१. प्रतिनिधि शोक गीत–पृ. ९
२. ग्राहम बेली–हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर, पृ. ३४
३. वही, पृ० ३४
४. वही, पृ० २

वियोग में उसकी दुखद मृत्यु की चर्चा करता था और उसके गुणों का गान करता था। कालान्तर में उसके क्षेत्र का विस्तार किया गया और उसके स्तर को उन्नत किया गया। ऐसा माना जाता है कि लखनऊ के अनीस और दबीर ने मर्सिया को पूर्वकथा की भूमिका के साथ एक नया और व्यापक रूप प्रदान किया। मर्सिया के आरम्भ में इन विषयों का समावेश किया गया–प्रशंसा या उपहास, युद्ध के दृश्य, भोजन-पान-प्राकृतिक दृश्य, युद्धदेहि का आदान प्रदान, असि–प्रशंसा, अश्व प्रशंसा अस्त्र-शस्त्र आदि की प्रशंसा इ.। इन विषयों के समावेश से मर्सिया की रचना महत्वपूर्ण तथा गौरवान्वित मानी जाने लगी तथा भारत के उर्दू साहित्य में उसने अति उच्च एवं प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।[1]

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान" के अनुसार ही यह माना जाता है कि अरबी भाषा में भी काव्य का आरम्भ शोक गीतों से ही हुआ था किन्तु कवियों को अधिक लाभ प्रशस्तिगीतों से होता था। अतएव अरब तथा ईरान में मर्सिया का स्तर अधिक ऊँचा नहीं उठ सका। मर्सिया ने अपना यथार्थ स्थान उर्दू भाषा के माध्यम से भारत में ही प्राप्त किया। लखनऊ में सन् १८०० और १८७५ के बीच मीर अनीस और दबीर दो महाकवि हुए–इनके लिखे हुए मर्सिए गौरव-काव्य (क्लासिक) माने जाते हैं।[2] उर्दू में मर्सिया अन्य व्यक्तियों पर भी लिखे गए हैं, जैसे मौलाना 'हाली' कृत गालिब का मर्सिया। जिन शोक गीतों को मर्सिया न कहा जाय वे नौहे कहलाते हैं।

यह सत्य है कि दक्षिण और गुजरात के आरम्भिक मर्सिया लेखकों का दृष्टिकोण संकुचित था। वे अपने काव्य में प्रायः करबला की एक या दो ही घटनाओं तक अपनी सीमा मानते थे। वर्णनात्मक कथा काव्य के तत्वों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। सम्भव है इसी कारण यह कहा जाता है कि अनीस और दबीर ने 'मर्सिया' को नया चेहरा दिया, उसे कथाकाव्य के रूप में भव्य भूमिका के साथ खड़ा किया। हमारे मत में यह श्रेय अनीस-दबीर को नहीं अपितु शेख अशरफ को प्राप्त होना चाहिए। प्रस्तुत 'नौसरहार' की कथावस्तु मसनवी-महाकाव्य की सभी तात्विक विशेषताओं से युक्त एक भव्य मर्सिया है। इस प्रकार भारतीय हिन्दी-उर्दू साहित्य में नौसरहार का असाधारण ऐतिहासिक महत्व दिखाई देता है।

मर्सिया लेखन की परम्परा

शेख अशरफ कुलि कुतुबशाह इत्यादि ज्ञात मर्सिया लेखकों के अतिरिक्त सत्रहवीं तथा अठारहवीं शती के पूर्वार्ध में मर्सिया लेखकों की जो परम्परा मिलती है

१. रामबाबू सक्सेना—उर्दू साहित्य का इतिहास
२. वही

उनमें से मुख्य तथा उल्लेखनीय नाम निम्न प्रकार है—

१. हाशिमअली (१६८० ई.) ये सम्भवतः गुजरात के निवासी थे तथा अनेक मर्सियों की रचना की थी, जो 'दीवाने हुसेनी' नाम से जाना जाता है। आप १७२१ से १७४६ ई. तक बुरहानपुर में निवास करते रहे।
२. इमानी—अपने २०० पंक्तियों में आठ मर्सियाँ की रचना की है।
३. गारा—आप गुजरात के निवासी थे। ७२० पंक्तियों में १५ मर्सियों की रचना आपने की।
४. सय्यद—गुजरात के निवासी थे। आठ गुजरी तथा दो फारसी मर्सियों की रचना की।
५. गुलामी—आप भी गुजरात के निवासी थे। ७६० पंक्तियों में १७ मर्सियों की रचना की।
६. कादिर—(१७३६ ई०) ६१० पंक्तियों में १७ मर्सिए रचे, आप सम्भवतः हैदराबाद के निवासी थे।
७. यतीम अहमद 'बरमहानपुरी' १७ लघु मर्सियों को रचना।
८. सय्यद अशरफ 'अशरफ' (१७१३ ई०) अनेक रचनाएँ।
९. मुताबिरज्ञान उमर (१७३० ई०) आप वली दकनी के शिष्य थे तथा अनेक मर्सियों की रचना की थी।
१०. सय्यद मुहम्मद वली—अनेक रचनाएँ।

हिन्दी साहित्य में शोक-गीति

प्रेमचन्द जी ने 'कर्बला' नाटक तथा मैथिलीशरण गुप्त ने 'काबा और कर्बला' काव्य की रचना कर मर्सिया की परम्परा को काव्य रूप में स्वीकार किया है। यह कहा जा सकता है कि कर्बला की घटना के आधार पर रचे गए विधिवत मर्सिया की आधुनिक हिन्दी में कोई परम्परा हिन्दी में अवश्य है, फिर चाहे इस परम्परा का सम्बन्ध 'मर्सिया' से न जोड़कर 'अज-विलाप' और संस्कृत के करुण काव्य प्रसंगों से जोड़ा जाय। आधुनिक उर्दू तथा हिन्दी दोनों ने ही अनेक राष्ट्र नेताओं, साहित्यिकों और अन्य कवियों के अपने निकट सम्बन्धियों, मित्रों आदि के वियोग में शोक गीतों की एक समृद्ध परम्परा दिखाई देती है।

उर्दू में मिर्जागालिब, अल्ताफहुसेन हाली, ब्रजनारायण 'चकबस्त' के मर्सिए प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिन्दी में श्री भगवतीचरण वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा की रचनाएँ "नूरजहाँ की कब्र पर" विख्यात हैं। पं. रूपनारायण पांडेय की रचना 'दलित कुसुम' तथा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'सरोज स्मृति' अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं। हिन्दी में सुभद्राकुमारी चौहान की रचना 'जलियांवाला बाग में वसन्त' प्रथा लोकमान्य तिलक परिलिखित माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल इत्यादि ने राष्ट्रीय

शोक-गीतों की परम्परा को समृद्ध किया। महात्मागाँधी, गणेशशंकर विद्यार्थी इत्यादि महापुरुषों पर असंख्य शोक गीत लिखे गये। विद्यार्थी जी के विषय में शियारामशरण गुप्त का 'आत्मोत्सर्ग' तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन का 'प्राणार्पण' महत्वपूर्ण एवं साहित्यिक शोकगीति हैं।

यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'मर्सिया' यद्यपि आरम्भ में हुसेन की शहादत तक सीमित रहा किन्तु एक काव्य विधा के रूप में इस विषय की कोई सीमा नहीं रही। मर्सिया कुछ पंक्तियों के भी हो सकते हैं और पूरे ग्रंथ के भी। वे महान पर भी हो सकते हैं, और लघु पर भी। वे व्यक्ति पर हो सकते हैं और समष्टि पर भी वे मानव पर भी। हो सकते हैं, अन्य प्राणियों पर भी और खंडहर-समाधि आदि पर भी।

नौसरहार की कथावस्तु

"नौसरहार" की कथावस्तु 'नौ' बाबों में विभाजित होने के कारण ही इसका नाम नौसरहार रखा गया है—"ए नौ बाबाँ नौसरहार" किन्तु हैदराबाद प्रति में दस बाब मिलते हैं। यदि दसवाँ बाब नववें बाब के अन्तर्गत ही मान लिया जाय तो बात ठीक हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यस एक मसनवी के रूप में पूर्वकथा की भव्य पृष्ठभूमि के साथ इचित शोकगीति काव्य है अतः इस के वस्तु संयोजन का विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस रचना का एक तृतीयांश से अधिक भाग मर्सिये को प्राप्त नहीं हुआ है। इसका आरम्भिक भाग ५१ पृष्ठों में व्याप्त है तथा केवल अन्तिम २१ पृष्ठों में मर्सिया का विषय अपने प्रकृतरूप में उपस्थित होता है। आरम्भिक ५१ पृष्ठों की कथावस्तु निम्न लिखित शीर्षकों में विभाजित है—१. हम्द (ईसस्तुति) २. नात (पैगम्बर की प्रशंसा) ३. मनकबत शहनशाह-ए-कोनैन (अन्य पूज्यजनों की प्रशंसा)४. खरयाबतन माविया अज पैगम्बर व सौंगद खुर्दन (माविया अज पैगम्बर से खबर मिलती है और वह शपथ लेता है। (५) सिफ्ते जैनव जन अब्दुल्ला (अब्दुल्ला की पत्नी जैनब का सौन्दर्य वर्णन) ६. फिरस्तान माविया मूसा अशरीरा बरजैनब जेहत निकाह यजीद (यजीद का विवाह जैनब के साथ तय करने के लिए माविया, सूसाअशरी है। ७. गुस्सा गिरपतन यजीद बर इमाम हुसेन जहते (जैनव के कारण इमाम हुसेन पर यजीद का क्रुद्ध होना।) ८. तख्तनशीन शुदन यजीद व बुनियादे अदावत (यजीद का दाज गद्दीपर बैठना ओर शत्रुता की नींव पड़ना) ९. जहरदादन औरत इमामरा बरतमा निकाहे यजीद पलीद (यजीद के साथ विवाह की आशा से इमाम हसन को पत्नी द्वारा जहर देना) १०. ख्वास्तन किनाशे मुबारके-हजरत हसनराव रौजाए मुस्तफा बिरन्द (इजरत हसन की अपने शव को पवित्र रोजे पर ले जाने की इच्छा व्यक्त करना ११. गुप-तन फरिस्तादन औरत इमाम हसन यजीद पलीदरा (यजीद को हसन की

पत्नी का संदेशा भेजना १२. तानाजदन यजीद बर औरत और इमामहसन (इमाम हसम की पत्नी को यजीद का ताना देना) १३. शर्मिन्दा उदन औरत बदवक्त (अभागी स्त्री का लज्जित होना) १४. वैत खास्तन यजीद अज इमाम हुसेन यजीद का इमाम हुसेन से बैत मांगना) १५. रसीदन इमाम हुसेन दरदश्ते करवला (इमाम हुसेन का कर्बला के मैदान में पहुँचना)

नववें बाब की घटनायें निम्न प्रकार है—१. सिफत करदन इमाम दश्त करबलारा (इमाम हुसेन द्वारा कर्बला के मैदान का परिचय) २. मुस्तईद शुदन बराए जग बरोज हप-तुम माहे मुहर्रम को युद्ध के लिए तैयार होना) ३.जंगशुदन बरोजे हप-तुम मुर्रम (सातवीं मुहर्रम को युद्ध होना ४. जंग रोज हश्तुम व शहादत कासिम बिन हसन (आठवें दिन के युद्ध में हसन के पुत्र कासिम का शहीद शुदन शहजादा अली अकबर (शहजादा अली अकबर का शहीम होना) ६. ख्वाबदीदन बारे हजरत फातमा जहरारा (फातमाजहरा का स्वत्व में आना) ७. बेरुन आमदन शाह शहीद बराएजंग रोजे दहुम मुहर्रम (दसवी मुर्रम को हुसेन का युद्ध के लिए बाहर आना ८. सरे सुबारक शाहबुरीदन (हजरत हुसेन का पवित्र शीश करना) ९. रप-तन खबेर शहादत बर मोहम्मद हनफिया व आमदन व कर्दन महरिवां मोहम्मद हनफिया के पास शहादत की खबर का पहुँचना और आमने सामने युद्ध करना)

नौसरहार एक मर्सिया है और उसका मुख्य विषय कर्बला की घटना का वर्णन है किन्तु घटना का विवरण इस काव्य में मर्सिये के क्षेत्र में अधिक व्यापक है, यह तथ्य उपर्युक्त कथा के अन्तर्गत शीर्षकों से स्पष्ट दिखाई देती है, ऐसी स्थिति में एक शोकांतक मसनवी या महाकाव्य कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

कथावस्तु

'नौसरहार' का वर्णन निम्न प्रकार है :—

हसन तथा हुसेन को रसूल (मुहम्मद साहब) बडे लाड़-दुलार से रखते थे। एक दिन दिव्य पुरुष जिब्रील ने हसन हुसेन की भावी शहादत की सूचना रसूल को दी तथा बताया कि हसन को जहर दे कर मारा जायेगा, जब हुसेन की शहादत का अवसर आएगा तो धरातल पर सर्वत्र लालिमा छा जायगी। पानी लहू जैसा होगा, जंगल, पहाड, शंगरफ जैसे होगे इत्यादि। तदुपरांत जिब्रील ने रसूल को कर्बला की पवित्र मिट्टी लाकर दी और सूचित किया कि जब यह मिट्टी शंगरफ की तरह लाल हो जाय तो समझ लेना कि अब शहादत का निर्धारित मुहूर्त आ गया है। हजरत रसूलल्ला ने वह मिट्टी हजरत उम्मे सलमा को सौंपते हुए जिब्रील की भविष्यवाणी सुनाई और मिट्टी को शीशे में सम्हालकर रखने की सूचना दी।

रसूल के पूछने पर जिब्रील ने उन्हें उन लोगों के नाम और निशान बताए, जो हुसैन की हत्या करने वाले हैं। उसने कहा भावी पुत्र यजीद ही वह व्यक्ति होगा और मरते समय हजरत हुसैन एकाकी और अत्यंत लाचार होंगे। उनके सम्बन्धियों, मित्रों और मुसाहिबों में से कोई भी उनके निकट नहीं होगा। ऐसी दीन दशा में वे कर्बला के मैदान में हुतात्मा होंगे। यथा—

जिब्रील कहया सुन रसूल, जिस दिन होंगे ये मकतूल।
तू ना अछे तो उसवक्त, उनको होंगी गुरबत सक्त॥
माई न बाप भाई सात, धोंपर करें बेटी घात।
नाद उठावे तबलकूट, बादल ज्यूँ के बरसे फूट।
मेह ज्यूँ के बरसे तीर, रक्त वहावे ज्यूं के नीर।।

अतपर मारे खर गम्ह धाय, जिवडा लेवे सीस कटाय

यह विवरण सुनकर रसूल अत्यन्त दुखी हुए तब जिब्रील ने उन्हें साहस बंधाते हुए कहा-हुसेन की मृत्यु पर रोनेवाला चाहे उस समय कोई हो न हो किन्तु इस घटना का दुख लोगों के हृदयों में अनंतकाल तक ताजा रहेगा।

एक दिन हजरत माविया रसूल से मिलने के लिए आए। उन्होंने रसूल से उनके दुख और चिंता का कारण पूछा तब रसूल ने जिब्रील की भविष्यवाणी पूरी तरह माविया को बता दी। माविया रसूल को चिन्तामुक्त करने के लिए कहा मैं निःसन्तान हूँ साथ ही यह वचन भी दिया कि मैं भविष्य में कभी किसी स्त्री से अपना सम्पर्क नहीं होने दूंगा किन्तु ईश्वरेक्षा को कौन रोक सका है। एक रात हजरत माविया पेशाब के लिए उठे तब एक बिच्छू ने विशेष स्थान पर डंक मार दिया। अनेक उपाय करने पर भी बिच्छू का विष नहीं उतरा तब अन्त में उन्हें यह परामर्श दिया गया कि यह विष तभी उलट सकता है जबकि तुम किसी स्त्री के साथ सम्भोग करो। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। तब निरुपाय होकर एक दासी के साथ माविया का सम्भोग हुआ। दासी गर्भवती हो गयी और इस यजीद का जन्म हुआ। बालक यजीद को बड़े लाड़ प्यार से पाला गया। युवा होते ही उसने अपने गुण दिखाना आरम्भ कर दिया। एक दिन यजीद ने अपने पिता माविया से कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो किसी भी प्रकार से मेरे लिए अब्दुल्ला जुबेर की पत्नी जैनब के साथ मेरा विवाह करवा दीजिए। यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी तो आपको अपने पुत्र से हाथ धोना पडेगा। यह सुनकर माविया को बड़ी दुविधा हुई किसी की विवाहिता को वह कैसे प्राप्त करे अन्ततः पुत्र की इच्छा पूर्ण करने की हार्दिक इच्छा से जैनब को प्राप्त करने की युक्ति करने लगे। उन्होंने अब्दुल्ला को अपने घर बुलाया और उससे अपनी बेटी का विवाह कर देने और विपुल दहेज भी देने का लोभ दिखा

कर उसे जैनब को तलाक देने का सुझाव दिया। घर लौटकर अब्दुल्ला ने जैनब को तलाक दे दिया और माविया के पास पहुँच कर उसे सूचना दी। इस पर माविया ने बड़ी चतुराई से यह बताया कि उसकी बेटी अब्दुल्ला से विवाह करने के लिए तैयार नहीं है। उसने कहा कि जब तुमने ऐसी सुन्दर पत्नी को तलाक देने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं की तो मेरी बेटी के साथ कैसे निभा सकोगे। माविया की पत्नी के वचन बड़े मार्मिक हैं :—

के भी उस खुद जोय सुरुप। साहवे जमाल अजहद खूब।
बादाम अंख्या, दांत रतन। जेवा सूरत सोमीतन॥
बारे इस मुल्क होर इत दौर। वैसी औरत नाहीं होर॥
मुज तो नाहीं वैसारूप। नाहीं हैं उस जैसी खूब॥
वह बेवफा अत आजिज। उस न लोहूं हौं हरगिज।
जे तैं कहते भी यह बात। तो जीव देवैं अपने हात॥

इस घटना से अब्दुल्ला पर बिजली गिर पड़ी, वह पागल हो गया। पश्चाताप की ज्वाला में जलते रहने के अतिरिक्त उसके वश में अब कुछ नहीं था—

दूसरी ओर माविया ने मूसा अशरी के हाथों जैनब के पास संदेश भेजा कि यजीद तुम से विवाह करना चाहता है मूसा अशरी को कासिम इब्ने अब्बास और हजरत हुसेन एक के बाद एक मिले तथा दोनों ने मूसा के साथ अपनी ओर से भी जैनब के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा इस प्रकार तीन प्रस्ताव लेकर मूसा अशरी जैनब के घर पहुँचा किन्तु वहां जैनब के अतुलरूप को देखकर वह स्वयं उस पर मुग्ध हो गया अतः उक्त तीन प्रस्तावों के साथ स्वयं का भी चौथा प्रस्ताव जैनब के सामने रख दिया।

ज्यूं थे जैनब पास गया। देखत आपें भूल रह्या।
अत पर होवा दीवाना। दीवे पर ज्यूं परवाना।
अब सुन जैनब होर एक बात। मैं मन तुज संघात।
यूं हौं भूल्या तेरे रंग। दीवे कारन ज्यूं पतंग।
उन संघाते मुज भी गिन। तेरे आशक चारों जिन।

लेकिन जैनब ने मूसा के अपने प्रस्ताव की तो यह कहते हुए तत्काल रद्द कर दिया कि—

तूं सट बिल्ला मेरा ध्यान। तूं अत बूढा हौं अत ज्ञान।
ना घर तूं कुछ मन में पाप। हौं तुज बेटी तूं मुज बाप।

इसके पश्चात् मूसा ही के परामर्श से जैनब ने हुसेन को चुना और शीघ्र ही विवाह भी सम्पन्न हो गया। यजीद को जब इस घटना की सूचना मिली तो उसके क्रोध की ज्वाला भड़क उठी तथा वह हुसेन के रक्त का प्यासा हो गया। यजीद

अपने उद्देश्य की पूर्ति में लग गया किंतु जब तक माविया जीवित रहा तब तक वह अपनी इच्छा पूरी करने में सफल न हो सका। माविया की मृत्यु के उपरान्त यजीद ने राज्य प्राप्त कर सबसे पहला कार्य यह किया कि हजरत हसन की पत्नी को स्वयं की रानी बताने का लोभ दिखाकर उसके हाथी हसन को जहर दिलवाया। हसन की शहादत के पश्चात उसकी पत्नी ने जब यजीद से अपना वचन पूरा करने के लिए कहा तो यजीद ने अनिच्छा व्यक्त करते हुए कहा कि जब तूँ ने हजरत हसन जैसे पती को विषपान कराने में संकोच नहीं किया तो मेरी क्या हकीकत है। तुझ जैसी कृतघ्न स्त्री से विवाह करना सबसे बड़ी मूर्खता होगी।

प्रस्तुत काव्य में हसन की मृत्यु मदीने से बाहर कहीं हुई दिखाई गयी है। मरते समय हसन ने हुसेन से अपना शव रसूल के 'रौजे' (मदीना) के पास ले जाने के लिए कहा। किंतु शत्रुओं ने यह इच्छा पूरी न होने दी। इस घटना का वर्णन एक पृथक शीर्षक के आधीन किया गया है।

बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात हुसेन एकाकी रह गये। मजीद ने उनसे बैत मांगी। उसने मदीना में अपने सरदार वलीद इताब के पास पत्र भेजा और कहा कि हुसेन से बैत मांगी जाय। यदि हुसेन को यह स्वीकार हो तब तो ठीक है अन्यथा उसका सिर काट कर मेरे पास भेज दिया जाय। वलीद ने यजीद का पत्र हुसेन को दिखाया किन्तु हुसेन ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इस निर्णय की सूचना वलीद ने यजीद को दी तथा अपनी ओर से यह भी कहा कि हजरत हुसेन को कष्ट पहुँचाना मेरे वश में नहीं है। इस पर यजीद ने पुनः दूसरा पत्र लिखकर यह बतलाया कि उसकी आज्ञा के पालन में विलम्ब न हो, साथ ही यजीद ने उमरसाद के नेतृत्व में एक सेना वलीद की सहायता के लिए भेज दी। वलीद इताब पुनः हुसेन के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने हुसेन को परामर्श दिया कि—

इतने में तूँ स्याना हो।
गफलत केरी नींद न सो ॥
अब तूँ यहाँ थे निकल।
जे तुज आहे सुद-अकल ॥

हजरत हुसेन ने उम्मेसलमा के पास जाकर सारी घटना की सूचना दी। उम्मेसलमा को जिब्रील की भविष्यवाणी स्मरण थी। कर्बला की मिट्टी जो उनके पास रसूलने सुरक्षित रख पाई थी, देखी गयी तो वह रक्त वर्ण दिखाई दी। उम्मेसलमा को हुसेन की मृत्यु का भास हो गया। इधर हुसेन रसूल के रौजे पर अंतिम भेंट के लिए गये, वहाँ रसूल के सामने शत्रुओं के अत्याचार और अपनी असहाय अवस्था का वर्णन कर फूट-फूट कर रोने लगे। रोते-रोते हुसेन को वहीं नींद आ गयी तब उन्होंने स्वप्न में रसूल को यह कहते हुए सुना कि स्वर्ग में सभी

लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और वे स्वागत की तैयारी कर रहे हैं :—

जन्नत केरे खोले द्वार। हूरां रिजवा बहिश्त संवार।
तेरी देखत वाट खड़यां। भर-भर शरबत हात खड़या

रसूल के रौजे से लौटकर हुसेन अपनी माँ के रौजे पर गये और वहाँ भी अपनी दीन दशा और शत्रुओं के अकारण अत्याचारों का वर्णन किया। तदुपरांत वे घर लौटे और मित्रों के साथ बैठकर विचार करने लगे कि अब कहाँ जाए। किसी ने मक्का जाने का प्रस्ताव किया तो किसी ने कूफा। इसी बीच कूफा निवासियों का एक पत्र हुसेन को प्राप्त हुआ, जिसमें उसे बैत और मित्रता का आश्वासन दिया गया था। इस नियन्त्रण को पाकर हुसेन को ढाढस बंधा। उन्होंने तत्काल अपने एक भित्र (इस मसनवी में यह सम्बंध बताया गया है, वस्तुतः सम्बंधी) मुस्लिम बिन अकील को कूफे की ओर रवाना कर दिया। कूफा वासियों ने वचन के अनुसार बैत की। मुस्लिम ने यह सन्देश हुसेन के पास भेजा, तब हुसेन ने अपने मित्र परिजनों के साथ कूफा की ओर प्रस्थान किया।

यजीद की सेना का सरदार उमरसाद भी दस हजार सवारों के साथ हुसेन का पीछा करने लगा। दूसरी ओर एक कूफावासी यजीद के शुभेच्छुक ने उसे पत्र लिख कर यहाँ का सारा हाल बताया तब यजीद ने 'बसरा' के निवासी अपने एक अधिकारी अब्दुल्ला इब्ने जियाद को तत्काल कूफा पर आक्रमण कर देने तथा हुसेन को उस ओर बढ़ने से रोकने का आदेश दिया। आदेश पाते ही अब्दुल्ला इब्ने जियाद 'कूफा' की ओर चल पड़ा तथा बड़ी चतुराई से मुस्लिम बिन अकील का सिर काट कर यजीद के पास भेज दिया, तदुपरान्त वह हुसेन को रोकने के लिए आगे बढ़ा।

इधर हजरत हुसेन को एक कूफा निवासी अपने हितैषी से कूफा के सारे घटनाचक्र का समाचार प्राप्त हुआ तब उन्होंने अपनी कूफा की यात्रा स्थगित कर दी और फरात नदी की ओर प्रस्थान किया। असंख्य वन पर्वत पार करते हुए करबला के मैदान में पहुँचे और वहीं उन्होंने डेरा डाल दिया। उधर साद और अब्दुल्ला जियाद दोनों की सेनायें पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थी। हुसेन के साथियों ने खेमे तानने के लिए झाड तोडे तो झाड में से लहू बहने लगा। इस दृश्य को देखकर हुसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु इसके साथ ही इन्हें विधि लिखित 'शहादत' का मुहूर्त निकट होने का विश्वास भी हो उया। जब रात हुई तो मुहर्रम का चाँद आकाश में दिखाई दिया। हुसेन को जिब्रील की भविष्य वाणी की एक एक बात याद आने लगी। तब उन्होंने अपने उपदेश देना आरम्भ किया :—

आया तहकीक मेरा वक्त। अब कुछ तदबीर क्या हाजत ॥
राजी हू बहुक्मे खुदा। नाहीं चारा बान गजा ॥

अबना यारां फिकर करो । मरने ऊपर चित धरो ।

नहर पर शत्रुओं का कब्जा हो चुका था । हुसेन के परिवार और मित्र-सैनिकों को पानी की एक बूँद भी मिलना प्रायः असम्भव था तब कुवां खोद कर पानी प्राप्त करने का उपाय सोचा गया किन्तु वहाँ भी पानी का कोई पता नहीं । अतः हुसेन ने उमरसाद के पास अपना दूत भेजा और नदी के पानी को खोल देने का आग्रह किया, लेकिन उस क्रूर और निर्दय पर हुसेन की हृदयस्पर्शी संदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ । उसने बड़े व्यंग्य भाव से उत्तर दिया :—

ना कह भैया हरगिज यूँ, तुम कों पानीं तनिक न दूँ ।
घोड़े गदरे आदमी पानी फेरी क्या कमी ॥
दें हम पानी सूक सगां, लेकिन तुमना हरगिज नाँ ।

यह उत्तर सुनकर हुसेन अपने साथियों को धीरज बंधाने लगे । सीमातीत संकटों का क्रम सहते हुए, अन्ततः हुसेन ने जान लिया कि अब 'धर्म युद्ध' के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है । इस निश्चय के साथ वे युद्ध के लिए आगे बढ़े किंतु युद्ध आरम्भ करने से पूर्व एकबार पुनः अन्तिम आग्रह शत्रु पक्ष से किया । उन्होंने कहा तुम लोगों को ईश्वर के न्याय से डरना और नबी से लाज रखनी चाहिए । नबी के नवासे (दौहित) को इस ढंग से भूखा-प्यासा मारना क्या न्यायसंगत होगा ।" हुसेन के इस भाषण का यजीद की सेना पर कोई प्रभाव नहीं हुआ, मात्र यजीद का पुत्र, जो शत्रु सेना में एक सरदार था हुसेन की हृदय विदारक बातों प्रभावित हुआ और वह अपना पक्ष त्यागकर हुसेन के पक्ष में हो गया । उसने हुसेन के साथ पर वैत की ओर युद्ध के प्रथम मुहूर्त सातवी मुहर्रम को यजीद की सेना से संग्राम करने के लिए रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ । युद्ध भूमि में अपना पराक्रम दिखा कर वह हुसेन पर उत्सर्ग हो गया । आठवीं मुहुर्रम को हुसेन के पुत्र कासिम ने 'जेहाद' (धर्म युद्ध) के लिए प्रस्थान की आज्ञा माँगी । हुसेन ने निरुपाय होकर स्वीकृति दे दी । कासिम ने अपनी असाधारण वीरता का प्रमाण युद्ध भूमि में दिया । शत्रु सेना के शवों के ढेर लग गये । प्रत्येक दिशा में रक्त की नदियाँ बहने लगी किंतु अन्त में हुआ वही "जो विधि रच रखा ।" कासिम भी हुतात्मा हुए । अब नवमी मुहर्रम को स्वयं हुसेन की नेत्र ज्योति और पैगम्बर मुहम्मद के तुल्यरूप-अली अकबर ने अपने बाबा से आज्ञा और विदा माँगी । हुसेन ने अपने जीते जी यह स्वीकार करने से आनाकानी की किंतु अंत में उन्हें हृदय मसोसकर प्रिय पुत्र को मरण पथ को अनुमति देनी पड़ी । तब अली अकबर माँ से विदा माँगने के लिए शिविर में गये । यह बात सुनकर माता शोक विह्वल हो उठी । अन्ततः उसे भी निरुपाय होकर सम्मति देनी ही पड़ी । इस अत्यन्त करुण प्रसंग के कुछ पद्य अवलोकनीय है ।...

के ऐ बादा दे रजा । जाय करूँ तो लोज गजा ।

मारूँ बिल्ला काफिरले । जितनी मुझ की ताकत है ॥
अली अकबर मूरत सार । कमूत जेवां मजलिस नार ॥
गोन उजाला घट दीपक । जाग का प्यारा रन धीरक ॥
ऊपा हुआ जैसा चाँद । तेग व तरकश कमर बांध ॥
फोज मने थे चल्या यों । अबर मने थें चंदर ज्यूँ ।
बिजली ज्यूँ के कड कड तूट । मारे रावत एकी मूट ।
हरन्या भीतर चीता ज्यूँ । मार बिखेरे काफिर त्यों ॥

अन्ततः हुसेन को अपने जवान बेटे का शव हाथों पर उठाए हुए घर लौटना पड़ा । पूरे खेमे में प्रलय कालीन शोर मच गया । माता-पिता की अवस्था अत्यन्त करुणाजनक हो रही थी । अन्य सभी अधीर होकर अश्रुपात कर रहे थे । इसी रोने-धोने के वातावरण में एक व्यक्ति को नींद आ गयी और उसने स्वप्न में देखा कि हजरत हुसेन की स्वर्गीय माता हजरत फातिमा जोहरा अपने आँचल से करबला की भूमि को साफ कर रही है । पूछने पर उनसे उत्तर मिला—

लेकर उठी सुन ऐ बाय । हौ हूँ हुसेन की सगी माय ॥
लाड खेला नाजुक तन । के इस करबला के सहन ॥
उन्हों बैरन सीसते पर । जीवडा देगा हया पर पड़ ॥
मत ए चूमे उसके अंग । करवट कांटे ककर नक ॥

"मेरा लाड़ला पुत्र इसी करबला के मैदान में शत्रुओं के हाथों मारा जायगा । उसके कोमल तन में ये कंकर पत्थर चुभेंगे ।" स्वप्न देखने वाले व्यक्ति ने हुसेन को सब हाल बता दिया । अब उन्हें अपनी शहदत का विश्वास हो गया ।

दसवीं मुहर्रम को हजरत हुसेन स्वयं वीरवेश मे शत्रु वाहिनी के समक्ष उपस्थित हुए । उनके आतंककारी रूप को देखकर यजीद की सेना में आतंक छा गया । सारे वीर उनके सामने आने से कतराते हैं, जो कोई सामने पड़ जाता है वह देखते-देखते नर्क का अतिथि बन जाता है । इस प्रकार हजारों शत्रुओं को काट कर, रण भूमि रक्त रंजित कर दी । अन्त में हुसेन थक गये, इसी अवसर का लाभ उठाने के लिए शत्रु सेना का एक जोरदार रेला आगे बढ़ता है और एक तीर आकर हुसेन के कंठ (शहरग) में घुस जाता है । इसके साथ ही हुसेन धराशायी हो जाते है, कलमा पढ़ते हुए उन्होने बड़े शांत भाव से अपनी प्राण ज्योति विसर्जित कर दी । हुसेन का घोड़ा कुछ समय उनके शव के निकट स्तब्ध खड़ा रहा तदुपरांत खाली जीन लिए खेमे की ओर लौटा । घोड़े के खाली आसन को देख कर खेमे में प्रलय का शोर मच जाता है । सारे लेगा रो-रो कर बेहाल हो उठते हैं । यहाँ कवि ने हुसेन की पत्नी का शोकपूर्ण विलाप वर्णन बड़ी सम्वेदना के साथ प्रस्तुत किया है ।

इधर रणभूमि में हुसेन के धराशायी होते ही शत्रु उन पर टूट पड़े और

उनका अभिनन्दनीय शीश काट लिया । इस भयानक करुण एवं लज्जास्पद घटना का प्रभाव सम्पूर्ण जड़ चेतन पर पड़ा । सभी का हृदय सिहर उठता है । संसार में अंधकार छा जाता है । आकाश में मेघ गरजते और भूमि लरजती है । ऐसी भयंकर आँधी उठती है कि उसका वर्णन असम्भव है ।

हुसेन के शव दर्शनार्थ सारे फरिश्ते और पैगम्बर भूमि पर उतर आते हैं । अन्तिम नबी हजरत मुहम्मद अपने नवासे के रक्त रंजित शव को देखकर सिहर उठते हैं । हुसेन की माँ हजरत फातिमा जोहरा भी आती हैं और अत्यधिक शोक एव रोष व्यक्त करती है ।

इधर यजीद की सेना बड़े हर्षोल्लास के साथ हुसेन का शीश अपने साथ लिए हुए यजीद के दरबार की ओर चली । हैदराबाद की पाण्डुलिपि यहीं समाप्त हो जाती है किन्तु अलीगढ़ की प्रति में अलग १४ पंक्तियों में एक घटना की ओर संकेत किया गया है । यजीद की सेना ने अपने साथ पराजित पक्ष की पचास स्त्रियों तथा बच्चों को बन्दी बना रखा था । मार्ग में एक स्थान पर रुके तो देवयोग से ऐसी आँधी उठी किसी को कुछ नही सूझता नहीं था । ऐसे समय हुसेन का एक शिशु हजरत अली असगर सोकर उठा और वहाँ से लुप्त हो गया । दो तीन मास तक यात्रा कर वह अपने चचा के पास पहुँच गया । इसी स्थान पर 'नौसरहार' की कथावस्तु समाप्त हो जाती है ।

इतिहास और मौलिकता

'नौसरहार' में प्रस्तुत कर्बला की कथा पर यहाँ दो दृष्टियों से विचार करना अपेक्षित है । (१) ऐतिहासिक सत्य (२) साहित्यिक निरूपण ।

इतिहास और साहित्य में जो मूलभूत अन्तर है, उसी के आधार पर प्रायः कविगण अनेक बार स्वच्छन्द रूप से ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण में भी स्वच्छन्दता बरतते हुए दिखाई देते हैं । यद्यपि यह स्वच्छन्दता इतिहास को काव्य का रूप देने के हेतु से ही बरती जाती है और उन शुष्क घटनाओं को मानवीय संवेदनाओं से अनुरंजित कर जीवित चित्र-पटल का रूप दिया जाता है तथापि इस सराहनीय मौलिक प्रयास में अनेक बार ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा हो जाती है । ऐसे तथ्यों के निरूपण में कवि से अत्यन्त सावधानी बरतने की अपेक्षा की जाती है ।

कर्बला की कथा जो सत्य और असत्य का नैतिक संघर्ष है नौसरहार में एक अन्य रूप में प्रस्तुत है । नौसरहार में यजीद की शत्रुता किसी राजनैतिक या धार्मिक आधार पर नहीं थी बल्कि हजरत हुसेन के कारण उसको प्रेम में जो विफलता हाथ हाथ लगी, उसी की जीवन व्यापी प्रतिक्रिया इस घटना के रूप में प्रकट हुई । इस प्रकार कवि ने कथा का अंकुरण रागात्मक तथ्य पर स्थित किया है, इससे कथा अपनी विराट भूमिका को त्याग कर संकुचित भूमि पर उतर आई है तथापि इस

स्थिति में वह अधिक संवेदन एवं मार्मिक हो उठी है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता ।

ऐतिहासिक सन्दर्भों से कथा का और भी कुछ बातों से विरोध दिखाई देता है, यथा—यजीद के जन्म की घटना, हजरत मुस्लिम और हजरत हुसेन का नाता, हजरत 'हुर' के बजाय यजीद के लड़के का हुसेन के पक्ष में सम्मिलित होना, हजरत असगर का जीवित रह जाना, मुहम्मद हनफिया का युद्ध के लिए आना इत्यादि । ये सभी बातें मर्सिया की दृष्टि से विशेष महत्व की नहीं हैं किन्तु नौसरहार में इनको विशेष महत्व दिया गया है । यहाँ भी कवि की मौलिक सूझ का संकेत कुछ बातों में किया जा सकता है, यथा स्वयं यजीद के पुत्र को हुसेन के भाषण से प्रभावित कर अपने पिता के विरोध में खड़ा कर कवि ने एक मार्मिक काव्य-प्रसंग का निर्माण किया है । अस्तु,

दूसरी ओर कथा के कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों की कवि ने उपेक्षा कर दी है, यथा—हजरत आबिद (जइनुल अबिद्दीन) जो बीमार थे और बीबी सुगरा का मदीने में ही रह जाना, हजरत कासिम का विवाह, हजरत अली असगर का आत्मोत्सर्ग, हजरत अब्बास अलमदार का बलिदान, हजरत और तथा मुहम्मद की वीरता, इत्यादि प्रसंगों का समावेश कर लेने पर प्रस्तुत मर्सिये को अधिक मर्मस्पर्शी रूप देने में कवि को असाधारण सहायता मिल सकती थी ।

नौसरहार : विशेषताएँ

(१) भाषा :-शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से ''नौसरहार'' अधिक गौरवपूर्ण स्थान नहीं पा सकता । एक अच्छे महाकाव्य (मसनवी) की विशेषताएँ इसमें बहुत कम हैं । कथावस्तु, चरित्र-चित्रण विशेष संगठित एवं प्रभविष्णु नहीं हैं । हुसेन के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का विकास प्रायः कुंठित है । यह कहा जा सकता है कि उस समय हिन्दी खड़ीबोली-साहित्य में कवि के सामने श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के उदाहरण नहीं थे किन्तु मसनवी शैली को अंगीकार करने वाले कवि की दृष्टि फारसी साहित्य पर होती है और फारसी में उस समय भी मसनवी के उत्तम उदाहरण वर्तमान थे, यह निर्विवाद सत्य है । तब भी कवि कोई महान रचना नही निर्माण कर सका, इसके कई कारण हो सकते हैं । मूल कारण यह प्रतीत होता है कि कोई भी भाषा जब अपने आरम्भिक विकास की अवस्था में होती है, उससे किसी ऐसी साहित्यिक रचना की अपेक्षा नहीं की जा सकती जो कालातीत गौरव की अधिकारिणी हो । भाषा में प्रौढ़ता और परिनिष्ठिता का अभाव कवि और पाठक दोनों ही के लिए बड़ी बाधक सिद्ध होती है । सम्भवतः यह महत्वपूर्ण तथ्य है जिसके कारण प्रस्तुत कवि शेख अशरफ जो अपने युग की भाषा और साहित्य का भी मर्मज्ञ था किन्तु कोई अनोखी रचना प्रस्तुत नहीं कर सका । यह स्थिति केवल अशरफ के संबंध

में ही नहीं है, उस काल की किसी भी रचना को प्रौढ़ साहित्य की प्रतिष्ठा और लोकप्रियरा का श्रेय प्राप्त नहीं हो सका है। वस्तुतः इन प्राचीन रचनाओं का साहित्येतिहास और भाषा विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्व है। इनसे हमारी भाषा में उद्भवकालीन स्वरूप को स्पष्ट करने में बहुमूल्य सहायता प्राप्त होती है।

उपर्युक्त बात के सत्य होते हुए भी शख अशरफ की विद्वता एवं भाषा मर्मज्ञता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। उसका शब्द भंडार सीमित है। अनेक वाक्यों और वाक्यांशों की बार-बार आवृत्ति यह प्रमाणित करती है कि कवि की भाषा उसकी अपेक्षा का साथ नहीं दे सकी है। क्योंकि भाषा अभी उद्भव की अवस्था में थी, अतः वे गुण जो किसी पूर्ण विकसित एवं परिनिष्ठित भाषा में होते हैं, इसमें नहीं है। लेकिन अशरफ के इस महाकाव्य (मसनवी) में यह प्रमाणित होता हैं कि वह, जैसी भी थी अपने युग की भाषा पर पूर्ण प्रभुत्व रखता था। भाषा के व्यावहारिक रूप एवं उसमें मुहावरों, कहावतों का विपुल प्रयोग इस मत का और भी पुष्ट प्रमाण है। अशरफ ने अपने काव्य में जितने मुहावरों का प्रयोग किया है, उतने मुहावरे परवर्ती लेखकों की रचनाओं में नहीं मिलते। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भाषा के प्रगति क्रम के अनुपात से ही उसमें मुहावरों की वृद्धि हुआ करती है। ऐसी स्थिति में अशरफ के युग की (१५ वीं शताब्दि) भी भाषा का विचार करने पर यह कह सकते हैं कि उसमें मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त होता होगा। इसके विपरीत अशरफ की भाषा में मुहावरों की विपुलता है। (नौसरहार में आये हुए मुहावरों का विवरण इस प्रबन्ध के तृतीय अध्याय के क्रिया प्रकरण के अंत में देखिये)

इस मसनवी की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता—इसमें शब्दों, वाक्यों; वाक्यांशों और मुहावरों की बार बार पुनरावृत्तियाँ है। इन पुनरावृत्तियों से भी यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत भाषा की अप्रौढ़-आरम्भिक अवस्था कवि की वर्णन शैली को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाएगी :—

१. तूँ न अछे उस वक्त। उस को होगी गुरबत सक्त। ८
ए ना अछे तो उस वक्त। उनको होयगी गुरबत सक्त। ८
यारब मैं तो बांध्य रिक्कत। उनको होयगी गुरबत सकत। ३०
२. वे सब रोदें अंझू ढ़ाल। ८
ताते अंझू बैठो ढ़ाल। ९
रोवन लागे अंझ, ढ़ाल। ७
३. कहया नबी सुन रसूल, के तूं होवा यूं मखमूल। ८
पूछा भाबी ऐ रसूल, के तूं हुवा यूं मखमूल। ९
४. ममूत हुवा सारा लोग। ११

ममूत हुवा त्यूं हैरान। १५
रहयां सारे लोग ममूत। ३८
रहया शाह हुसेन ममूत। ६२
५. अब्दुल्ला कूं पास बुलाव, देये इज्जत हुरमत चाव। १६
अब्दुल्ला कूं पास बुलाव, खाना कंदोरी पान खिलाव। १८
बाद अज देर भाबी आव। अब्दुल्ला कूं पास बुलाव। १०
भाबी उस कूं पास बुलाव। देते हुरमत इज्जत चाव। २२
हुसेन अली इस पास बुलाव। लिख्या कूफे का दिखलाव। ४६
६. बाजां अब्दुल्ला जुबेद। १९
बारे अब्दुल्ला जुबेद। १९
इतना सुनकर अब्दुल्ला। १८
अब्दुल्ला यह सुनकर बात। २१
अत पर अब्दुल्ला जुबेर। १८
७. खुश होय भोडया घर की घीर। १७
ज्यूं उठ भोडया घर की घीर। १९
८. हौं उस लोंडू मुज क्या मत। १८
बस हौं लोंडू आज उसरत। १८
तो हौं लोंडू उस बाजां। १८
उसना लोंडू हौं हरगिज। २०
उस ना लोंडू हौं बिल्ला। २०
९. बाजां भाबी होवा शाद। पाई जीव की ख्वास्त मुराद। १९
सुन कर होवा गहरा शाद। पाई जीव की ख्वास्त मुराद। ३८
१०. हातन खोई घर की जोय। कह किस आखूं यह दुख रोय। २१
हातन खोई घर की जोय। जो लग जोबे बैठा रोय। २१
वाह, न जानी उसका अन्त। मैं अत हातन खोया कंत। ३८
११. अब्दुल्ला जो छोडी नार। २२ अब्दुल्ला जबीर जो छोडी नार। २१
छोडी मुतलक कर अधीर। २२
१२. त्यों-त्यों नबी सिर धर हात ८
रहे हैरान सिर धर हात। ६
१३. जो उन कीता किस्मत सोव। चूक न जासे बदल होय। १
लेकिन हरगिज हुक्म अल्ला। चूक न जासे कद बाअल्ला। १२
१४. बाल व्याही जिसकी थी। ३५
बाल व्याहा जीव का मीत। ३६

१५. ऐसा किसका अगला जीव । ३५
मुज को नाहीं जीव अगला । ३५

१६. बात शरीफ निशानी खास । २३
होर यह भेजी तुज तशरीफ । २३

१७. होर कुछ तशरीफ होर निशानी । २४
ल्याय बा तशरीफ सलाम । २३

१८. सोना मोती हीरे खास । १६, सोना मोती खासलतीफ । २३
मानक मोती हीरे लाल । २७, सोना मोती मानक लाल । २८

१९. दीवे पर ज्यूं परवाना । २३
दीवे कारन ज्यूं पतंगा । २४

२०. हसन-हसन करता धाय । दानों नैना नीर बहाय । २९
• दोनों नैना नीर बहाय । उम्मे सलामां रो—रो धाय । ४१
कबर नवी की गल सूं लाव । रो—रो नैना नीर बहाय । ४२

२१. थरहर होना अंग निढ़ाल । शाह हसन सर सक्त बेहाल । २९
आय हुसेन जो देखे हाल । हसन हुआ सक्त बेहाल । २९

२२. रोवन लागे सहक सहक । सहक सहक कर प्रेझू घाल । ४१
रावन लागे सह सहक । ४१

२३. सहक सहक कर हीया घाल ।
रोव लागा हिया घाल । ६२

२४. छोडे बडे, खासव आम । नौकर चाकर बांद-गुलाम । ३३
कह मों रहे साज मुकाम । न-हे बडे खास न आम । ५०

२५. तुजे देव सथे दाम थोड़े कपड़े बांद गुलाम । १७
नौकर चाकर बांद गुलाम । औरत—मर्द हम खास व आम । ६८

२६. या के ईहांच दफनावे । ३४
ईहांच उसको कबर करें । ३४
ईहांच उसको दफन करो । ३४
अहांच हसन दफनाय । ३४

२७. मनुसनाहक जीवूं मार । ३६
मनुस के जीव तें ना गुजरी ३६
कैठा नाहक जीवं मार । ३६

२८. अवकम रहे वेद—तबीब । १२
अवकम रहया लोग ममूत । २९
अबकम रहे घावर होय । ३७

अवकम रहे सगले बड़ । ५४

२९. अब जम बैठी था अफसोस । ३७
को ले लागे जम पछताव । ३७

३०. केता रोवं ले—ले नांव । ४५
अलीअकबर का ले-ले नांव । ६२
केता रोवं ले-ले नांव । ६३
यों सब रोवें ले-ले नांव । ७०

३१. मुस्तैद होवा कुल सिपाह । ४८, मुस्तैद होकर दानों मार । ५८

३२. दानों फोजां हो रुकरू । ४८, संमुख होए दानों दल । ५८
संमुख आए दानों मार । ६५

३३. बाजां अब्दुल्ला जियाद । ४८, मर्दक अब्दुल्ला जियाद । ४८
नापाक अब्दुल्ला जियाद । ४९

३४. पकड़े बारे सहन सफा । ४९, अब जा पकड़े आब फरात । ४९
पान पकड़ सब रहया ए । ४९ पकड़ उतरे आब फराद । ५०

३५. चांद मुहर्रम केरा देख । ५१, दीठा चांद मुहर्रम का । ५१

३६. कुदपत तेरी ऐ सुभान । २, ६
यह क्या कुदरत ऐ सुभान । ५१
यह क्या कुदरत है यारब । ५१

३७. के ऐ जालिम नापेकार । ५६
ऐ तुम जालिम नापेकार । ५६

३८. किस की ऐसी ब्यानी माय । देखे उसका मुखन झाय । २७
संमुख होवे अखे आय । किस को ऐसी ब्यानी माय । ६५

३९. हातन खांड़े तरकश बांद । मुहर्रम केरे नवें चांद । ६०
ऊभा पोवा जैसा चांद । तेग व तरकश कमर बांद । ६१
तेग व तरकश कमर बांद । मुहर्रम केरे दसवें चांद । ६४
जहरे फूट सीने फाट । तारीख उन दिन चांदू आट । ५९
लीला कासिम का सिरकाट । तारीख उन दिन चांदू आठ । ६०

४०. अपस सारी धूल मिलाव । ६२
धूल मिलाए अपस ले । ६३

४१. हुसेन केरी सगी माय । ६४ हों हू हुसेन की सगी माय । ६४

४२, कहया के मुज दे रजा । जाय करूं तो लाज गजा । ५८
के ऐ बाबा दे रजा । जाय करूं तो लोज गजा । ६०
सकलम केरी के रजा । कासम बल्या लोज गया । ५९

बाप कने थें ले रज । विदा किता मां सो जा । ६३

४३. लोक एका एक दरां । ६७

यों सब लोकन एकाएक । ६७

३. अरबी–फारसी शब्दों की विपुलता

"नौसरहार' को भाषा से ही सम्बन्धित एक विशेषता यह भी है कि इसमें फारसी वाक्यांश-वाक्य, मुहावरे और प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक प्रमाण में प्राप्त होते हैं। कुछ शब्द और उनके रूप जो आज की सरल उर्दू भाषा में सुने जाते हैं, अन सेती कोई खास कठिनाई नहीं होती जैसे जलद जल, बखूबी, बाजाब्ता, बरात इत्यादि किन्तु फारसी के अप्रचलित व्याकरणिक रूपों का प्रयोग अवश्य खटकता है। अरबी-फारसी वाक्यों वाक्यांशों और रूपों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

आंचे खाहद खास्त बेकर्द । १
बाजां मैं भी अन्दरखेश । ४
करदा बाशंद हर एक खाब । ८
बाद अज तुज ता कयामत लग । ९
बाद अज मुद्दत साल मजीद । १३
मुल्क विलायत अखताभात । १३
अजहद साहबे हुस्न जमाल । १४
बासद गैरत ताज कुलाह । १६
करूत शाहां गेव लतीफ । १८
तख्त मुकल्लत बिल्लोरी । ताज मुरस्सा जरजरी । १८
साहबे जमाल अजहद खूब । २०
जाने खूब दरहर बाब । २२
बा तशरीक किसावी खास । २३
तुजको नेव्या वादि जान । २४
लेकिन दर खूद अंदेशद । २६
कसूत जेवर हम जरोमाल । २८
शाह हुसेन शुद सख्ता बेहाल । २९
ना कुछ शर्म अज पैगम्बर । ३८
अजीद था दर शहरे दमिश्क । ३८
स्याना आकिल दर हर बाब । ३८
काफिर दुश्मन दीने इस्लाम । ३९
करते बा फरजन्द नबी । ४२
ना उन शर्म अजमुस्तफा । ४२

अर्श कुर्सी हफ्त अकलाक । ४३
जुमला मलायक रूहां पाक । ४३
जब्त करे ता मिश्री शाम । ४७
निज उठ मन्जिल दर मन्जिल । ४७
मुस्तैद होवा कुल सिपाह । ४८
जालिम मन्सून खल्क आजर । ५०
अपड़े तकदीर अज आसमानी । ५७
शोर उठरा दर हर सूं । ५८
खातूने जन्नत शमए जहां । ६४
अजहद मरदम शोर फरियाद । ६५
औरत मर्द हम खास व आम । ६८
हरसूं अन्दर दश्त करबल । ७०
शोर उठया दरहर महल । ७०

यद्यपि कवि ने कुछ स्थानों पर अमीर खुसरो की खालिकबारी शैली का प्रयोग करने का प्रयास किया है, अर्थात पद्य के अर्धांश में फारसी तथा अर्धांश में हिन्दी अनुवाद देना। उदाहरण—

कीता सारा काम अवतर ।
तलका ऊपर-नेरो जबर । २६

यदि यही पद्धति सर्वत्र अपनायी जाती तो यह रचना अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान हो जाती। इसके विपरीत अधिकांश स्थानों पर फारसी मुहावरों-कहावतों और धार्मिक आयतों के भी अनुवाद नहीं दिये गये हैं।

इतना सब होते हुए भी नौसरहार की भाषा सादगी और सरलता लिए हुए है। यद्यपि कुछ स्थानों पर अर्थ बिलकुल स्पष्ट नहीं हो सका है किन्तु यह कठिनाई बहुतांश शुद्ध लेखन की भूलों के कारण ही प्रकट हुई हैं। इसकी भाषा बीजापुर की दो महत्वपूर्ण कृतियों (१) इब्राहिमनामा अब्दुल (१०१२ हिजरी) तथा किताब नवरस (१००६ हि.) से सरल है। (इब्राहिमनामा की भाषा के कुछ उदाहरण इस ही लेख के अन्त में दिये जा रहे हैं)

'नौसरहार' में दो 'बहरों का प्रयोग किया गया गया है।

पूरे काव्य में छन्द का 'वजन' इस प्रकार है—

"मकूलन मकूलन फा" (दो बार) अर्थात दो यगण तथा एक गुरु। बाब अव्वल के कुछ छन्द "बहरे मुतखरिव (भुजंग प्रयात) में है और उनका वजन यह है—

फऊलन, फऊलन, फऊलन, फऊल

प्रस्तुत काव्य में 'रदीफ' (अंत्यानुप्रास के पश्चात आने वाले शब्द) का प्रयोग बहुत कम हुआ है। अत्यानुप्रास या काफिये में कवि ने पर्याप्त स्वच्छन्दता बरती है। प्रायः सजाती कंठ ध्वनियों या ध्वनिसाम्य मात्र के अधार पर तुक मिलाकर काम चला लिया गया है। फारसी लिपि के अनुसार टे—ते, ते-डे, डे-रे-स्वीन, स्वात, जाल-दाल-जे-जोम, दाल-ते तथा था ए मारूफ व जूल के काफिये जोड़े गये हैं। छन्द निर्वाह के लिए कवि ने शब्दों को तोड़ने मरोड़ने में कोई संकोच नहीं किया है। अरबी शब्दों में दीर्घ या लघु ध्वनि के पश्चात 'ऐन' (अनुनासिकता) है तो उसे अनुच्चरित मान लिया गया है। कभी नूने गुन्ता (अनुनासिकता या अनुस्वार चिन्ह) को तुक के लिए पूर्ण 'न' मान लिया जाता है कभी उसे तुप्त समझा जाता है।

छन्द रचना में पाई जाने वाल अन्त्यानुप्रास और तुकबन्दी सम्बन्धी अनियमितताओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(१) 'ट' (उर्दू 'टे') तथ 'त' (उर्दू 'ते') का काफिया—
हौं हूँ देखत तेरी बाट। फातम-अली हसन संघात। ४३
तेरी देखन बाट खडयां। भर-भर शरबत हात बडया।

(२) स्वात और सोन का काफिया—
लेकर जाता जैनब पास। बा तशरीफ निशानी खास। २३
यू आहे आल नबी के खास। जा ना देते रोजे पास। ३४
सुन कर तुरत उन खवास। लिख पठाया मजीद पास। ३९
यह है आल नबी के खास। नबी हाजिर उसके पास। ३४

'ड' और 'र' (डे—रे) का काफिया—
सीस सरे सब लोहू भर। दोनों अँखिया लोहू झड़। ६७
केते रहे औंधे पड। खारों भीतर छुपे दर। ३१
ले रस सीने सात पकड़। आया भर कर जीवड़ा भर।

'ड़' और 'ढ़' का काफिया—
मुस्तैद हो कर घोड़े चढ़। आव हुसेन के पाँव पकड़। ५८
अभंग रावत सारंग चढ़। वैरनियाँ केरा रुख पकड़। ६५

'द' और 'ध' का काफिया—
तेग व तरकश कमर बाँध। मुहर्रम केरे दसवें चाँद। ६४
(बांध) हातन तेगां तरकष बांद। मैदान सर ज्यूं तारे-चाँद। ५६

'क' और 'ख' का काफिया—
तोलग इसमों एकाएक। चाँद मुहर्रम केरा देख। ५१
जब के हम तुम होवें एक। मजीद कौन जो सके देख। ४६

तोलग इसमूँ एकाएक। कूफकेरे लोखा लीख। ४५
यूँ सब लोगन तुकाएक। खाली आसन घोड़े देख। ६७

'त' और 'थ' का काफिया—
नबी मुहम्मद सुन ये बात। रहे हैरान सर पर हाथ। ६
(हात) दी वो माटी उसके हाथ। कही उसपर ये सबबात। ७
ज्यूँ-ज्यूँ जिब्रील अखेबात। त्यूँ-त्यूँ नबी सिरपर हाथ। ८
बाजाँ पूछा यूँ दुख साथ। के ऐ जिबरील होर एक बात। ४६
(सात) अपने सकले हम्म साथ। तुज पर भी अब राते रांत। ४९
(सात) सारे अपने हशम साथ। पकड़ उत रे आबे फरात।

'द' और 'त' का काफिया—
बाजां मूसे तो उस वक्त। हुसेन संघाते उसका अक्द। २४
वैरनियाँ मांडया मूज पर रुवस्द। ये दुख पडया बिल्ला सक्त। २५

'जे' और जीम का काफिया—
सुबा उठ कर ज्यूँ हर रोज। मुस्तैद होकर दोनों फौज।

'जे' और ज्वात का काफिया—
अंग हुआ सब हर्या सब्ज। होऊँ लागा जिवड़ा खब्ज।

नूने गुन्ना (अनुस्वार) और नून (न) का काफिया—
रो-रो अखे बोल हुसेन। अबके बिछड़े कब मिलें। ३१
बाजां उठकर शाह हुसेन। पैगम्बर के रोजे में। ४२
यों पर बाजां शाह हुसेन। रो-रो सूते रोजे में। ४३
भेज्या बंदगी शाह हुसेन। के तूँ आव मिल हमूँ में। ५
सकले तुज सूँ दाजी हैं। बारे इहाँ आब हुसेन। ४६

'ह' और 'अ' (हा—ए मजकूजी और अलिफ) का काफिया—
बाजां कहया सुन ऐ शाह। मला मुझको दे रजा। ५८

अन्त्यानुप्रास या तुकबन्दी की इन विषमताओं के अतिरिक्त अन्य भी अनेक बातों में कवि ने निःसंकोच स्वच्छन्दता बरती है। छंद के 'वजन' में मिलाने के लिए शब्द के किसी अक्षर को लुप्त या अनुच्चरित कर देने या 'वजन' के लिए एकाध अक्षर की वृद्धि कर देने में कवि को कोई संकोच नहीं हुआ है। ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व तो सहज रूप में कर दिया जाता है। इन सारी अनियमितताओं में प्रतिलिपिकार का कितना हाथ है यह कहना बड़ा मुश्किल है। मुख्यतः प्रतिलिपिकार को असावधानी का ही परिणाम है कि अनेक अस्पष्ट प्रसंगों में यह जानना कठिन हो गया है कि कवि ने क्या कहा था और अज्ञान लिपिक ने उसे क्या बना दिया है।

अंत्यानुप्रास के उपर्युक्त उदाहरणों के अवलोकन से एक निष्कर्ष यह भी प्राप्त होता है कि कवि के पास शब्द—भण्डार अत्यन्त सीमित है, अतः उसकी 'तुकें' अत्यन्त मर्यादित हैं, यथा—बात-घात, हात-संघात इत्यादि शब्दों के काफिये अनेकों बार प्रयुक्त हुए हैं।

छंद के 'वजन' या अंत्यानुप्रास के आग्रहवश कुछ भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूपों में लिखे हुए मिलते हैं। निम्न शब्द ह्रस्व और दीर्घ दोनों रूपों में लिखते हैं : दुख-दूख, तुझ-तुझ, भैं-भई, सुन-सून, गावें गाँवें, निशानी-नीशानी, इहाँ-ईहाँ, नाहीं-नाहि इत्यादि.

भाव पक्ष

अशरफ : एक सक्षम कवि—भाषा-शब्द भण्डार, छन्द-अनुप्रास इत्यादि की अनेक सीमाओं के होते हुए भी नौसरहार के कई प्रसंगों में अशरफ का कवित्व अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रस्फुटित हुआ है। विशेषरूप से उन रागात्मक प्रसंगों के चित्रण में कवि ने अपनी पूरी कुशलता दिखाई है, जो मुख्यतः वीर और करुण रस से सम्बद्ध हैं। इन प्रसंगों को देखकर निःसंकोच कहा जा सकता है कि अशरफ अपने युग की भाषा पर पूर्ण प्रभुत्व रखता था। सहज एवं सरल शब्दों और वाक्यों से इस मसनवी के आरम्भ में ही 'हम्द' (ईश स्तुति) जैसे कठिन विषय के चित्रण में कवि ने जो कुशलता दिखाई है, वह उल्लेखनीय है। इस प्रसंग में अरबी-फारसी तथा संस्कृत के शब्दों का मिश्रित प्रयोग हुआ है साथ ही तद्भव शब्द भी बड़े मधुर रूप में जड़े गये हैं। यथा—

ऐसा कादर एक खुदा। पैदा कीते शाह-गदा।
कोई अद्याने कोई फकीर। कोई आजाद कोई असीर।
आपें छुप्या खेले छन्द। तुर्को हिन्दू लाया दंद।
अपने प्यारे बेरूँ हात। क्यों क्यों मारे खशान सात।
दुश्मन पाले बासद नाज। प्यारे मारे कत कत साज।
वो जिस लोड़े तिस रखे। किस अंदाजा बोल सके।
कोई जिवावे, जीतों मार। डुबते तारे लावे बार।
ऐसा कादर सके ओह। जिन ये सरज्या डोंगर कोह।
पाथर में थें नीर बहाव। बीज में थें रुख उपाव।
हर-हर रूखों लावे फल। कित कित भातों फूल कमल।
आलम ढांके अवर छाये। ज्यूं-ज्यूं लोडे नीर बहाये।
गगन सगला अबर भरे। तोव भइ ना पैद करे।
कधीं छांव, कधीं धूप। अत पर मांड्या यह वह रूप।

लोग भुलाया नाद सुनाव। रूप दिखाया आप छुपाव।
किन्हीं न पाया उसका अंत। अतपर रचे ये वसन्त।
क्यों उन लाया फुल सुतर। भेद न पावे कोई चतर।
अन्त न पाया किन्हीं जात। कत पर मांड्या ये मंडान।
ऐसा कादर अल्ला एक। क्या-क्या पैदा कीता देख।
ये सब करनी रची उन। कुदरत उसकी कुत फैकून।
कुदरत तेरी ऐ सुभान। करना सके कोई बरवान।

सौन्दर्य चित्रण—स्त्री सौन्दर्य के चित्रण में जिस तरल तरंग और रागात्मक चेतना की अपेक्षा होती है वह शेख अशरफ ने पूरी कर दी है। यद्यपि एक धार्मिक विरक्त भक्त होने के कारण श्रृंगारिक हाव भावों के असंयत एवं प्रकृत रूप में चित्रण से बचने का प्रयत्न कवि में दिखाई देता है तब भी विभिन्न अंकों के रूपाकार का बोध करवाने के लिए संयोजित उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं को देख कर कवि की कल्पना शक्ति एवं सौंदर्य बोध की स्वाभाविकता के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

इस मसनवी का प्रतिनायक यजीद जिस जैनब नाम स्त्री पर आसक्त हो गया था, उसका रूप चित्रण कवि ने अपने दौर की अद्वितीय सुन्दरी बता कर किया है। जैनब का सौंदर्य वर्णन दोनों प्रसङ्गों में हुआ है। एक बार यजीद के मुख से तथा दूसरी बार यजीद की बहन या मुखिया की पुत्री द्वारा अब्दुल्ला जियाद का तिरस्कार करते समय। पहली बार के वर्णन को ही दूसरी बार दुहरा कर कवि ने प्रसङ्ग निभा लिया है किन्तु इससे कवि की दुर्बलता प्रकट होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जैनब अहे उसका नाम, नयन सलोने ज्यूं बादाम।
अजहद साहबे दुरुन जमाल, जेबां सूरत मौजूं हाल।
माथा जानो सूरत पाट, याके जानो चांद उलाट।
दांत बतीसी तैसी जान, जैसे हीरे केरी खान।
सरगां जैसे लम्बे बाल, चंदर-सूरज दोन्हों गाल।
दीठ सुहावे, जीव घुमाय, होंठ सलोने मन लुलाय।
चांद पेशानी, दांत रतन, होंठ सलोने मन लुभाय।
सिक्का सूरत खूब अजहद, सब्ज रंग होर मौजूं कद।
अमृत घोले सर तो पाय, जो कोइ देखे भूल जाय।
सब्ज बाहां केले खांब, जोबन बाले आना आंब।

'नख शिख' वर्णन में बाहुओं को केले के खम्भों और स्तनों की आम्र फल की उपमा देने की भारतीय परम्परा है किन्तु इन उपमाओं के प्रयोग में शेख अशरफ की सूक्ष्म दृष्टि एवं रसिकता का बोध तब होता है, जब इन उपमानों के साथ भी

अतिरिक्त विशेषणों की उपस्थिति पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो जाता है। केले के स्तम्भों की उपमा नायिका के श्याम सलोने वर्ण के कारण है, उसके यौवन (स्तन) का आकार आते आम (छोट आम या कैरी) के आकार के हैं। इसी प्रकार की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि 'कदह हम सीमीतन' उपमा में भी दिखाई देती है। रजतोज्वल शरीर पर लल्लावदन मुख कितना सुहावना लगता है। दन्त पंक्ति, ओंठ, भाल सभी का वर्णन कवि की सुरुचि एवं सहृदयता को सिद्ध करने में पूरी तरह समर्थ है। यद्यपि यहाँ नख शिख वर्णन क्रमबद्ध नहीं हैं तथापि लगभग सभी अंगों का वर्णन आ गया है। उपमा-उत्प्रेक्षा, संदेह इत्यादि अलङ्कारों का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

रस विवेचन

(१) अंगी रस करुण—'नौसरहार' एक 'मर्सिया' है, अतः स्वाभाविक रूप से उसका प्रमुख विषय शोक एवं विलाप का चित्रण है। इस दृष्टि से कवि ने चार महत्वपूर्ण व्यक्तियों के मरण और तदुपरान्त परिजनों के अत्यन्त करुण विलाप की पूरी सहृदयता के साथ चित्रण किया है। सर्वप्रथम हसन की मृत्यु, जो उसी की पत्नी द्वारा जहर देने से हुई—दूसरे कर्बला की युद्ध भूमि में हसन के पुत्र का बलिदान, तीसरे हुसेन के पुत्र का बलिदान और चौथे हुसेन का स्वयं का समरभूमि मे देह विसर्जन। इन चारों प्रसङ्गों के चित्रण में कवि ने कथा के सभी अन्य प्रसङ्गों की तुलना में अधिक रुचि ली है। हुसेन का तो पूरा जीवन क्रम ही दुःख-दुर्भाग्य और संघर्ष से भरा हुआ है, इस क्रम का चरम बिन्दु कर्बला में हुसेन और उसके परिवार की पूरी लाचारी की अवस्था में दिखाई देता है। हसन की विदाई और मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी और माँ का विलाप सहृदयों की आँखों में अश्रु भर देता है।

कवि ने वीर तथा शांत रस का चित्रण भी यथा प्रसंग किया है। हसन पुत्र कासिम तथा हुसेन के यौद्धिक पराक्रम का वर्णन कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ किया है। शांत रस का आभास विभिन्न घटनाओं के अन्त में कवि के विरक्तिमूलक उद्गारों एवं विधि-विधान के समक्ष व्यक्ति की विवशता के चित्रण में होता है। हुसेन का युद्ध भूमि में अपने साथियों को दिया गया उपदेश भी विवशता एवं विरक्ति को आन्तरिक अनुभूति से प्रेरित है। हसन की मृत्यु पर विश्वव्यापी करुणा और शोक के चित्रण में कवि की कल्पना चातुरी के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

अम्बर गरज्या-लरजी भुई। तल की माटी ऊपर हुई।
दीस धुदली अत सारी। जानों दुनिया अंदकारी।
सूरज दुखत पकड़े ताव। चन्द घटे नित झर-झर आब।
रुख न विकसे, सूके घाट। पाथर तरके सीना फाट।

फूलों सारी कुमलाई सेवंती, चम्पा, जुई, जाई।
पोगची सबतन लोहू भर, काला तपका मुंह पर धर।
डोंगरे दुखन ददवा लाग, सती ज्यूं के पीसे आग।
यूं पर होवा हुकमे खुदा, रोसे रहे लोग सदा।

इसी प्रकार से जड़ चेतन, प्रकृति-पशु पक्षी एवं वन-वृक्षादि ही नही अखिल ब्रह्मांड में नर लोक से स्वर्ग तक व्याप्त अपार शोक का चित्रण कवि ने अत्यन्त कल्पना चातुर्य के साथ किया है। हुसेन की मृत्यु के प्रसंग के कुछ उद्गार उल्लेखनीय हैं—

सिंकंदर दुखों होवा खार, कोफ उड़ गया परले पार।
गगन उस दुख उठ कर ग्हास, गरज रहया अब जुर्म अकास।
नारे मारे अरडाद, बिजली लँ-लू किरदि।
उस दुख नीला हर्या होय, नीर बहादे चन्दर होय।
एता हुवा खून अंबार, धरती सेह न सकी भार।
लेकर भेल्या गगन पर, गगन सारा लोहू भर।
जंगल केरे पंखेरवा, शायज डूंगर के हिरवां।
छोड़ सुनत उड़ लेता रान, हंसा पकड़या सरवरे मान।
सी मुर्ग अन्दर कोफ फरार, पकड़ रहया जाकर कोहसार।
हुमा गई जग थे ग्हास, जाय रही अब गगन अकास।
दुखत लंका पकड़ी आग, जलबल कोयल हुई राक।
लंका होई सुने बाज, लाजन डूबे सम्मन्दर झाज।
कोयल अपस यों दुख धर, पहरे कापड काले कर।
हरिना काला अकरन ओढ़, जंग लीता सींग मरोड़।
वाजे तो खुद नील भरे, पहने कापड़ सब्ज हरे।
तोते सब्जक हर्याली, बुलबुल होई दुख माली।

इसी प्रकार एक स्त्री के प्रिय वियोग के क्षणों में जो मनोभाव एवं आग्रह होते हैं, उनका चित्रण कवि ने कर्बला-युद्ध के दसवें दिन शाह हुसेन के प्रस्थान के समय उसकी पत्नी के माध्यम से किया है।—यथा—

लोचन बाहें जे तूं जाय, मीनक फिरे मुझ लग आय।
ए ! हों ऊभी आम रकर, देखू बाट झरोखे चड़।
देख रही ओ प्यारे कंता, दो हूं नैनों डेरी पन्ता।
देखूं फिर फिर ऊभी हो, अस्य अंझू सीने दो।
मत तुझ लागे बार बड़ी, मुज बरससुहावे एक घरी।
अब सुन मेरे शाह भतार। बाटी तुझ पर बार हजार

ए तूं मुझ थें माता रे, केवं अब करूं प्यारे ।

हुसेन के पुत्र अली अकबर प्रस्थान का प्रसंग, उसके धराशायी होने पर पिता और माता का करुण विलाप सभी प्रसंग अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं। पिता मोहग्रस्त मनः स्थिति में पुत्र को मरणोत्सव में भेजने से कतराता है तब पुत्र का यह विवशता-सूचक उपदेश पाठक के हृदय को विव्हल कर देता है—

बार्जा बेटे कहया ऐन, सुन ऐ सरवर शाह हुसेन ।
अल्लाबारे मांडया यूं, तदबीर उसकी कीजे क्यों ।
बिल्ला लरने मरने बाज, होर कुछ नाहीं ऐ सरताज ।

इसी बेटे की शत्रुओं द्वारा निर्मम हत्या के बाद पिता का हृदय सौ-सौ आंसुओं में बह चला ।

शाह हुसेन यूँ देखा हाल, रोपं लागा हिया घाल ।
अपने सिर थें काड़ दस्तार, भुई पर सटया नारा मार ।
पीटन लागा सौना सिर, रोता आया घर के घिर ।

पिता के इस हाल की तुलना में माता का शोक विह्वल हाल और भी अधिक प्रभावित करता है—

माई देखे ऊभी बाट, प्यारा आवे बैरी काट ।
तोलग आई ए खबर, घाबर होई सुद बिसर ।
हेरां होर्ड सुनकर माय, अंख्या आया लोहू छाय ।
बाहर निकली अन्धे आव, अपस सारी धूल मिलाव ।
सोवं लागी यूं उस ठांव, अली अकबर का ले ले नांव ।

कवि ने करुण रस के चित्रण हेतु अपनी मौलिक प्रतिभा का पूरा-पूरा उपयोग किया है। कथावस्तु में हुसेन की मृत्यु से पूर्व एक व्यक्ति के स्वप्न में हुसेन माँ का आना और करबले की भूमि को स्वच्छ करना, उसका दुख-दग्ध निवेदन इत्यादि कवि की उर्वर कल्पना है। इस प्रसंग के कुछ पद उल्लेखनीय है—

सो वह मेरा प्यारा पूत, शाह दिलावर रन औधूत ।
लाड खेला नाजुक तन, के उस करबला के सहय ।
करवत कांटे कंकर संक, मत ए चूभे उसके अंक ।

ऐसा ही करुण प्रसंग शाह हुसेन के शहीद हो जाने पर स्वर्ग के पैगम्बरों और देव दूतों के साथ रसूल मुहम्मद साहब और अली, फातिमा तथा हसन सभी का शव के निकट एकत्रित होना, हुसेन के शीश कटे शव को देखकर फूट-फूट कर रोना इत्यादि सभी प्रसंग कवि की उर्वर कल्पना के प्रमाण होने साथ ही करुण रस को इस कृति का मुख्य या अंगीभूत रस बना देने में समर्थ हैं।

(२) वीर रस—करुण रस के चित्रण में कवि की अधिक रूचि होते हुए भी उसने अन्य रसों और भावों के चित्रण में पूरी कुशलता दिखाई है। विशेष रूप से 'वीर' और 'शान्त' रसों के प्रसंग विरल और उनका निरूपण भी संक्षिप्त है किन्तु वह कोरा प्रसंग निर्वाह नहीं अपितु पूरे तादात्म्य के साथ अंकित है। शाह हुसेन के युद्धाभियान, युद्ध कौशल शत्रुओं में व्याप्त आतंक इत्यादि प्रसंगों से सम्बन्धित कुछ छन्द निम्न प्रकार हैं—

उत्साहपूर्ण अभियान—

घोड़े चढ़कर हुआ मुस्तैद, लोबन चाहे निकल्या सैद ।
तो लग बैरी आए चल, बाजन लागे धारों तल ।
चहूं घर पसरे प्यादे सवार, संवमुख ऊभे दीन्हीं मार ।
शोर व गलवल हाय होय, दस्त करबल में दर हर सोय ।
बाजन लागे यू दफ घोल, किस न परता कनों बोल ।
घोल दमामे बरगुने, काहेलियाँ मेरीं केते से ।
हर-हर जिंी काजगतर । बाजन लागे फौज अन्दर ।
सात समदर आए जोश, होए देव परी बेहोश ।
धरती कांपे सात बरख, अम्बर बरज्या हफ्त तबक ।
अर्शकुर्सी हफ्त अफलाक, जुमला फलायक रूहां पाक ।
जुम्बिश आया हैबत खाय, ये क्या चांडया कहर अलाह ।

हुसेन के वीर वेष और युद्ध कौशल का पूरी सजीवता के साथ चित्रण करते समय कवि की भाषा और शैली परुषता धारण कर लेती है। युद्ध भूमि में हुसेन साक्षात रुद्ररूप दिखाई देता है—

तेग व तरकश कमर बांद, जैसा पून्यो केरा चांद ।
सौमुख होइ अन्धे आय, किनको ऐसी ब्यानी माया ।
पैस्या हुसेन नारा मार, थर थर कांपा सारा मार ।
जभी ऊध्या सार बिछाव, दो खण्ड करता एकस धाव ।
हमला केता यूं उन मर्द, करबल मुंह सब उभी गर्द ।

युद्ध भूमि में हुसेन के सारे साथियों के शहीद हो जाने पर वह एकाकी रह रह गया किन्तु उसके रूप और भयानक मारकाट का आतंक हृदय को प्रकंपित कर देता है-

सथे जो थे दो कोई चार, शहीद होए वे सब यार ।
तनहा हुआ शाह हुसेन, सोर हुआ बेरं में ।
फिर फिर लोझें सरसा होय, चहूं घर खांडे बरसा होय ।
आवत शवत मारी हाक, काटे बैरत पारो धाक ।
सरवर शाहां परवरकोट, तरवर बिजली मरवर जोत ।

लहू केरी बही खाल । तुकरे तुकरे माले माल ।
यू' उन केता रन खतर, होरन सके कोई नर ।

शत्रु सैनिकों में इतना भय और आतंक छा गया कि वे हुसेन की मार से बचने के लिए चारों ओर दौड़ पड़े—अगर भूमि फट जाती तो उसमें प्रविष्ट होकर भी बच जाते । इस प्रकार शत्रु पक्ष की घबराहट, पलायन एवं आतंक के माध्यम से भी कवि ने वीर रस का सर्वांग निरूपण करने का सफल प्रयास किया है ।

(३) शान्त रस—"नौसरहार" का कवि एक अनासक्त सूफी संत है अतः उसमें निर्वेद का भाव होना स्वाभाविक ही है । कवि ने इस जीवन की नश्वरता का आत्मबोध प्राप्त करने के पश्चात ही शेष जगत के लिए अपने स्मारक रूप में प्रस्तुत रचना के निर्माण का उद्योग आरम्भ किया था । इस भाव से सम्बन्धित विवरण कवि परिचय के प्रसंग में आ चुका है । अन्यत्र भी कवि ने संसार की नश्वरता और दैवी विधान के समक्ष मनुष्य की निरीहता का कई बार संकेत किया है । कर्बला के मैदान में युद्धारम्भ से पूर्व हुसेन का अपने साथियों के नाम संदेश विवशतामूलक निर्वेद का उत्तम उदाहरण है—

बाजा हुसेन यूं सुनकर । उम्मीद पकरी जन्नत पर ।
कीता अपना मन गम्भीर । यारों को भी देते धीर ।
भली जो गुजरी भलते हाल । उखवे लेव हात सम्भाल ।
गुजरात है ये दुनिया बस । नां दुक जम ना सुक रहस ।
जीवना तो खुद नाहीं सहा । अब जीव देव राह खुदा ।

चरित्र चित्रण

"नौसरहार" की कथावस्तु एक पूर्ण विकसित मसनवी की सभी अपेक्षाओं की पूर्ति करती है । विशेष रूप से चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में यह सहज की कहा जा सकता है कि इसके नायक हजरत हुसेन का चरित्र परिस्थितियों और घटनाओं के घात-प्रतिघात में विकसित एक प्रभावशाली व्यक्तित्व बन कर उभरा है । इतर चरित्रों में प्रति नायक यजीद तथा उसके पिता माविया के चरित्रों में अंकित धूर्तता, क्रूरता एवं उद्दण्डतापूर्ण दुष्टता के रंग एक ओर उनके स्वयं के व्यक्तित्व की रूपरेखा को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी ओर हुसेन के स्वभाव की गम्भीरता और जीवन की स्वाभाविकता को उभारने में सहायक सिद्ध होते है । इन्हीं तीन चरित्रों का विशेष विकास कवि का काम्य है । स्त्री चरित्रों में जैनब के जीवन की रेखाएँ पर्याप्त नहीं तब भी कुछ उभरी हुई हैं । शेष स्त्री पात्रों में हजरत फतमा, उम्मे सलमा तथा माविया की बेटी एक एक प्रसंग में ही उपस्थित होती है अर्थात कथा-वस्तु के साथ उनके चरित्र का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका है । वही हाल पुरुष

पात्रों में पैगम्बर मुहम्मद, हसन, मूसा अशरी, मुस्लिम बिन कासिम तथा अब्दुल्ला इब्ने अब्बास का है । ये सभी पात्र नायक के जीवन क्रम एवं घटना चक्र के एकाध प्रसग में ही उपस्थित होते हैं ।

हुसेन का चरित्र—हसन तथा हुसेन दोनों ही अपने नाना पैगम्बर मुहम्मद के प्रिय नवासे तथा अली एवं फातिमा के पुत्र थे । हुसेन का वास्तविक चरित्र और जीवन संघर्ष प्रसंग से आरम्भ होता है, जबकि माविया द्वारा प्रेषित मूसा अशरी को हुसेन मार्ग में मिलते हैं । पूछने पर पता चलता है कि वह यजीद के लिए जैनब का हाथ माँगने के लिए जा रहा है तब हुसेन ने उसी के हाथों अपना भी प्रस्ताव भेज दिया । संयोग से जैनब, जो अपने देश और काल की अद्वितीय सुन्दी बताई गई है—ने हुसेन के साथ ही विवाह करने का निर्णय किया । मूसा द्वारा यह घटना सुनकर माबी और यजीद दोनों ही दुखी होते है । माबी के मर जाने पर यजीद ने हुसेन से बदला लेने की योजना बनाई । उसी के षडयंत्र का परिणाम था कि हसन अपनी ही पत्नी के हाथों मारा गया । हुसेन पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा । दुनियां में अब वह अकेला रह गया । माबा ने उससे बैत मांगी, बैत न देने पर उसका शिरो-च्छेदन करने का आदेश दिया दिया । शाह हुसेन के लिए अब मदीना में रहना प्रायः असम्भव हो गया । इससे पहले भी शत्रुओं ने हसन की शव यात्रा के समय उसे परेशान किया था किन्तु इस बार उसका सीधा प्रहार अत्यन्त उत्तेजक था । इसका उत्तर हुसेन ने बड़े साहस के साथ दिया और उसने बैत करना अस्वीकार कर मदीना छोड़ देने का निर्णय किया ।

हुसेन के सद्-चरित्र एवं पैगम्बर के वंश में श्रद्धा रखने वाले लोग उनके साथ थे । 'कूफा' निवासियों के आमन्त्रण को स्वीकार कर हुसेन ने उस ओर प्रस्थान किया किन्तु उसका दुर्भाग्य और शत्रु की सेना उसके आगे और पीछे सब तरफ सक्रिय थी । यजीद के षडयन्त्र का परिणाम यह हुआ कि कूफा पहुँचने के बजाय उसे 'फरात' नदी की दिशा में आगे बढ़ना पड़ा किन्तु फरात के जल पर शत्रु पहले ही कब्जा कर चुके थे । अतः हुसेन को कर्बला की भूमि में अपना खेमा गाड़ना पड़ा । पानी के अभाव में सभी लोग तड़पने लगे, दुधमुहे बच्चे बिलख बिलखकर मृत्युमुख के ग्रास होने लगे । इधर हुसेन को अपनी शहादत के सारे संकेत दीखने लगे । जिब्रील की दी हुई मिट्टी लाल हो गयी । हुसेन ने ईश्वरेच्छा के समक्ष नत मस्तक होते हुए अपने साथियों को यही उपदेश दिया कि लाचारी से जीने के बजाय वीरता के साथ मर जाना बेहतर है । पराक्रमी योद्धा का जन्नत में भी स्वागत होता है । अतः हमें अब जीवन का मोह छोड़कर मृत्यु का ही ध्यान करना चाहिए । यदि कोई युद्ध से बचना चाहे तो भी एक न एक दिन उसे भी मरना तो है ही फिर इस पुण्य मरण के प्राप्त अवसर से क्यों वंचित हों ।' इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ

उल्लेख्य है—

गुजरान है ये दुनिया बस, ना दुख जम ना सुक रहसें ।
जीवना तो खुद नाहीं सही, अब जीव देव राह खुदा ।
बेरियों केरे सीने पाव, दे कर भय्या जन्नत चाव ।
अल्ला नेमत दीखे राह, जन्नत शरबत लहू तेरा ।

शाह हुसेन ने सदैव विचारशील रहते हुए पूरे संयम का परिचय दिया है। युद्ध आरम्भ करने से पूर्व अन्तिम प्रयास के रूप में उन्होंने अपने दूत को उपरसाद के पास भेजा किन्तु उन्हें जो तिरस्कारपूर्ण उत्तर मिला वह अत्यंत उत्तेजक है—

न कह भय्या हरगिज यूं, तुमको पानी तनक न दूं ।
घोटे, गेदरे आदमी, पानी केरी क्या कमी ।
देवें हम पानी सूक सगाँ, लेकिन तुमको हरगिज नाँ ।

यह उत्तर सुन कर हुसेन ने दीर्घ निःश्वास छोड़ी। इसके अतिरिक्त और कोई चारा न देखकर उसने युद्ध की तैयारी शुरु कर दी। युद्ध भूमि में पहुंच कर हुसेन ने शत्रुओं को अन्तिम बार चेतावनी दी जिससे वे अपनी भूल को समझ सकें। इस चेतावनी का प्रभाव और किसी पर तो कुछ भी नहीं हुआ; केवल प्रतिनायक यजीद का पुत्र हुसेन के पक्ष में हो गया और युद्धारम्भ के पहले ही दिन हुसेन के पक्ष में तड़पते हुए उसने धर्म और न्याय के लिए आत्म बलिदान कर दिया। दसवीं मुहर्रम को शाह हुसेन ने स्वयं रणभूमि में प्रलय मचा दिया। उनकी वीरता साहस एवं युद्ध कौशल को देखकर यजीदी सेना के छक्के छूट गये—

सवारों-प्यादों लेना रान, केतन पाया यूं जीवनदान ।
एकूं जीता खंगल झाड़, एकूं केसा डोंगर अड़ ।
हुसेन केरी एकस हाँक । पददलपर्या ऐसा धाँक ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हुसेन का जीवन एक दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्ति का निरीह चरित्र है। वह असाधारण रूप से बुद्धिमान, सच्चरित्र, स्वाभिमानी एवं पराक्रमी हैं। उच्चकुलजात धीरोदात्त योद्धा के रूप में अंकित हुसेन का चरित्र एक नायक के सभी गुणों से सम्पन्न है। यद्यपि उसके जीवन में धीर-ललित नायक के उपयुक्त शृंगारिक प्रसंगों का अभाव है किन्तु उसका जैनब के लिए प्रस्ताव और उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप यजीद की शत्रुता का उल्लेख कर कवि ने उस अभाव की पूर्ति कर दी है।

माविया—'नौसरहार' में नायक हुसेन का प्रतिद्वंद्वी और प्रतिनायक यद्यपि यजीद है, वह क्रूर, स्वार्थी एवं हठी है किन्तु उसमें एक चतुर राजनीतिज्ञ की कुटिलता एवं धूर्तता का प्रायः अभाव है। इस महाकाव्य में एक चतुर कूटनीतिज्ञ के रूप में केवल एक ही चरित्र माविया का उभर सका है।

माविया का जीवन अनेक रंगों से सुशोभित है। वह नबी मुहम्मद का मित्र है और उनके हित में आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प करता है किन्तु विधि का विधान कब चूकता है। पुत्र-जन्म के पश्चात माविया ने बड़े लाड़-प्यार से उसका पालन किया। ये दोनों स्थितियाँ माविया के चरित्र के दो गहरे रंगों को उभारने में समर्थ हुई हैं। एक ओर त्याग और ब्रह्मचर्य के दिव्य गुणों को आत्मसात कर अतिमानवीय स्तर तक उठ जाता है तो दूसरी ओर पुत्र मोह के कारण सहज मानवीय दुर्बलताओं के वशीभूत वह अधम नीति को अपनाने में भी नहीं हिचकिचाता। उसने रसूल को वचन दिया था—

बेटा मुज कूं नाहीं हाल, कौन अब मारे तेरे आल ।
अब भी अंबे यूं सौं खाऊँ, हरगिज औरत पास न जाऊँ ।
तो न निपजे मुज में पूत, ऐसा यूं कोई जैसा भूत ।
औरत की अब खाई सौं, जो लग जीऊँ तो लग हौं ।

किंतु एक रात पेशाब करते हुए बीछू द्वारा डस लिए जाने पर और हजार कोशिशें करने पर भी पीड़ा कम न होने पर वैद्यों की अति युक्ति को स्वीकार कर भावी को एक दासी के साथ संभोग करना पड़ा।

बांदी हुई पेट संघात । बीछू पडया काली रात

पुत्र-स्नेह के वशीभूत मावी रसूल के सामने आने में संकोच करता था :—

तोलग मावीं भी ड़र ड़र, बेटा सीने सात पकर ।
लेकर आवता नबी पास, खांदे घर कर खुश उलास ।

माविया स्वयं एक पराक्रमी राजा था। संतान-प्राप्ति के पश्चात उसने और भी अधिक पुरुषार्थ अर्जित किया। उसने अपने वैभव का परिचय इन शब्दों में दिया है :—

कहता मावी ऐ यजीद, दुनिया दौलत हुआ मजीद ।
यह मैं सकला तेरे चाव, इधर उधर दौड मिलाव ।
मुल्क विलायत कीते जब्त, हश्य १ खदम २ लाया रक्त ३ ।
सोना मोती मानक लाल । लाखों-कोरों बांधे माल ।।

माविया के पुत्र स्नेह की सीमा यहीं समाप्त नहीं हुई थी। जवान बेटे से उसने बड़े लाड़ से पूछा :—

अब कह पूता क्या मखसूद, अहे तुजकों सौ भी जूद ४।
अंपराऊँ तुज तेरी हौस, तो न रहे कुछ अफसोस ।

यजीद अपने पिता के स्नेह और तज्जनित उसकी दुर्बलता से परिचित था। उसे यह भी विश्वास था कि उसकी असम्भव से असम्भव इच्छा भी पूरी करने में माविया समर्थ है, अतः उसने निःसंकोच कह दिया—हाँ, ऐ मावी साहवे खैर।
औरत अब्दुल्ला जुबैर ।।

कर कर मेरे कारन ल्याव । यह है मेरे मन मूँ चाव ।
जैनब अहे उसका नाम । नयन सलोने ज्यूँ बादाम

इसके साथ ही यजीद ने वृद्ध पिता को यह चेतावनी भी दे दी थी कि—

जे है तुज कूँ मेरी चाड़, पहले तूँ उस कूँ फांदे पाड़ ।
या के करूँ तो उस सों भोग, या जे नहीं तो लेवं जोग ।

माविया के जीवन में यह पहली अत्यंत विवेचनापूर्ण स्थिति थी। एक ओर पुत्र का स्नेह था और दूसरी ओर नीति और मर्यादा का विचार। इसी दुविधा एवं अन्तर्द्वन्द्व में माविया का हाल :—

शोहरदार पराई जोय, उसको अब क्यों जायज होय ।
जे न करँ तो बेटा राज, जानों हातों खोया आज ।

इस विवशता के आधीन माविया ने वह कूट चक्र रचा जिसे क्रूरतम षडयंत्र कहा जा सकता है किंतु राजनीति में स्वार्थांध व्यक्ति के लिए सब कुछ उचित ही होता है। अतः उसने शीघ्र ही अपना जाल बिछाना शुरू कर दिया। उसने अब्दुल्ला जियाद को बड़े सम्मान के साथ अपने घर आमन्त्रित किया। अब्दुल्ला नबी का निकट सम्बंधी होते हुए भी माविया द्वारा अब तक उपेक्षित रहा, इसके लिए क्षमा मांगते हुए माविया ने कहा—

के अब ऐ अब्दुल्ला, नीयत है मुज यों बाअल्ला ।
के होवे तूँ मुझ दामाद, तो होवे मेरी खातिर शाद ।
बेटी अपनी द्यूँ तुझ ब्याय, बा सद इज्जत ताजी कुलाह ।

अपने अपार धन वैभव का और यथेच्छ दहेज का लोभ दिखाकर माविया ने अब्दुल्ला को अपने जाल में फाँस ही लिया। माविया बड़ा खुश हुआ, अब उसने अपना हेतु आगे बढ़ाया तदनुसार अब्दुल्ला ने स्वपत्नी जैनब को 'तीन तलाक' बोलकर त्याग दिया :—

लेकर उठया छोरी जा, तेरी मुझ को क्या परवा ।
तेरी तो मैं सौं खाई । राजा केरा जंवाई ।
वो मुझ देगा धीरे गाँव, तूँ क्या कीजे दूसरी लावं ।
जोय विचारी यों सुनकर, चुप रही सबर पकड ।

जैसे ही माविया को अपने कृत्य का विवरण अब्दुल्ला ने दिया तो उसने क्रूर धूर्तता के साथ अब्दुल्ला को जवाब दिया कि उसकी बेटी अब्दुल्ला से विवाह करना नहीं चाहती। उसका कहना है कि जब अब्दुल्ला जैनब जैसी अनिंद्य सुन्दरी को तलाक दे सकता है तो मेरा क्या हाल होगा। यह उत्तर सुनकर पश्चाताप के अतिरिक्त अब्दुल्ला के बस और क्या था।

षड़यंत्र की सफलता के पश्चात माविया ने बड़े प्रसन्न मन से मूसा अशरी को अब्दुल्ला की परित्यक्ता जैनब के पास भेजा और यजीद की ओर से मंगनी का प्रस्ताव किया किन्तु दुर्भाग्यवश माविया को इस सन्दर्भ में यश प्राप्त नहीं हो सका। अपनी विफलता और अपने प्रिय पुत्र यजीद की इच्छा अधूरी रह जाने का गहरा दुख माविया को था तब भी हुसेन के विरुद्ध वह कुछ नहीं कर सका और यजीद को भी आजन्म समझाता रहा कि प्रतिशोध के आवेश में कभी हुसेन के प्रति क्रूर मत हो न क्योंकि वह पूज्य नबी का नवासा है :—

मावी उसको कहते पद, हुसेन सेंती हरगिज दंद ।
न कर पूता तूं बुद सुन, उस सूकर तूं जिस के गुन ।
उस सूं न कर तूं बद हरकत, खबे उसकी रख हुरमत ।
यह है खास औलाद रसूल, जग का प्यारा हक मकबूल ।

प्रस्तुत प्रसंग में माविया के मन में स्थित रसूल के प्रति की गहरी श्रद्धा, यही एक मात्र वह सूत्र है जो उसके चरित्र को सहज मानवीय दुर्बलताओं के स्तर से एकबार पुनः असामान्य एवं दुर्लक्ष स्तर पर उठा देता है। माविया के माध्यम से कवि ने मानव जीवन के दो गहरे रंग अत्यन्त चातुर्य एवं तन्मयता के साथ उभरे हैं, साथ ही उसके धार्मिक प्रयोजन की पूर्ति भी अत्यन्त स्वाभाविक क्रम से सम्पन्न हो गयी है, जो निश्चित ही नबी और उसके धर्म के प्रति श्रद्धा को बल देना है।

यजीद :—यजीद का चरित्र 'नौसरहार' में प्रत्यक्ष कम, परोक्ष रूप से अधिक अंकित हुआ है। उसे धूर्तता, छल, कपट उत्तराधिकार में ही मिले हैं, इसके अतिरिक्त हठधर्मिता एवं क्रूरता उसके अपने निजी गुण हैं। कवि ने यजीद के जीवन चरित्र विफल प्रेम की क्रूर प्रतिक्रिया के गहरे रंग से संवारा है।

यजीद का जन्म ही माविया के अनपेक्षित सम्भोग से हुआ था। युवा होते ही उसने पर निकालने शुरू कर दिये। बूढ़े पिता के समक्ष उसने हठ पूर्ण आग्रह किया कि अब्दुल्ला जियाद की पत्नी जैनब से साथ उसका विवाह करवा दिया जाय। यह कहा जा सकता है कि यजीद के तरुण हृदय का अपने युग और नगर की अनन्य सुन्दरी जैनब के प्रति यह स्वाभाविक अनुराग था, अनुचित होते हुए भी इस प्रथम अनुराग का दमन करने के बजाय उसकी उपलब्धि के हेतु पूर्ण पुरुषार्थ का मार्ग अपनाया। पिता की बुद्धि और चातुर्य पर विश्वास कर वह निश्चित बैठा रहा किन्तु जब जैनब ने अब्दुल्ला से मुक्त होकर हुसेन को अपना लिया तो यजीद क्रोध की ज्वाला में धधक उठा।

माविया के स्वर्गवास और राज्य की सारी सत्ता यजीद को प्राप्त होते ही उसने बड़े उन्मत्त भाव से षडयन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। वह जानता था कि हसन और हुसेन दोनों के जीते जी तो उनका सामना करने की शक्ति संसार में कोई

नहीं रखता । अतः उसने हसन की पत्नी को स्वयं की रानी बनाने का लोभ दिखा कर हसन को विष-पान करवा दिया । इस प्रकार हुसेन को एकाकी कर देने पर उसने मदीना निवासी अपने मित्र वलीद इताब के हाथों हुसेन के पास प्रस्ताव भेजा कि यह यजीद के हाथ पर बैत करे अन्यथा उसका सिर काट कर भेज देने का आदेश भी उसने वलीद को दे दिया :—

राजी मेरे कतबे प, अछें मुझ सों बैत कर ।
जो वो अडी कहे बात, ए जे नाहीं तो सर काट ।
भेजे मुही पास उस का, तो सल वैठे सीने का ।

इधर हसन की पत्नी ने जब यजीद से अपने वचन की पूर्ति का आग्रह किया तो उसने अटहास के साथ उसका तिरस्कर करते हुए कहा—

मै कुछ लाया चाली छन्द, पहले सार्या अपना दन्द ।
तू के के भूली मेरे बोल, हातों दीता मान के ताल ।
तुझ पापन का काला मुख, देख न आवे कैसी तुख ।

निरीह स्त्री क्या करती । यजीद ने हसन को जहर खिलवा कर ही समाधान नहीं मान लिया । उसको अधिक क्रूरता तब प्रकट होती है, जब सम्भवतः उसी के आदमी हसन के ताजिये को उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार-मदीने नबी के रोजे में ही दफनाने के लिए ले जाने से रोक दिया ।

हुसेन द्वारा बैत करना अस्वीकार कर देने के पश्चात् यजीद ने अन्तिम आदेश वलीद को दिया :—

हुसेन अली का सीस कराव, तहें ला तूँ मुझ पास पठाव ।

उसने उमर साद को सेना पति बना कर वलीद की सहायता के लिए भेजा । हुसेन ने मदीना छोड़कर कूफा की ओर प्रस्थान किया । कूफा का समाचार पाकर यजीद ने बसरा निवासी अपने मित्र अब्दुल्ला जियाद के नाम आदेश भेजा—

मैं तुझ दिया मुल्क मजीद, उस लिख भेजा यूँ यजीद ।
हुसेन पर बस चल कर जा, मुस्तैद होया फुल सिपा ।
उमरसाद उस पीछे लाग, जाता है निज खाके खाक ।
तू भी जा कर आडा हो, दोनों मिल कर उस को पो ।

इस प्रसंग के बाद कर्बला के मैदान में शाह हुसेन, उनके साथियों और परिजनों पर जो अमानवीय एवं क्रूर अत्याचार हुए, उन सभी का सूत्रधार यजीद ही था । यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में उसकी उपस्थिति कवि ने कहीं नहीं बताई है फिर भी पाठक यह अनुमान कर लेता है कि दमिश्क में बैठा-बैठा यजीद ही कर्बला के सारे घटना चक्र का संचालन कर रहा है ।

इस प्रकार यजीद के व्यक्तित्व में कवि ने सारी अमानवीय प्रवृत्तियों एवं

महत्वाकांक्षाओं के साथ ही असाधारण रूप से सक्रियता दिखाई है । वह प्रतिनायक या खलनायक के सारे 'विघ्न संतोषी' गुणों से युक्त क्रूर एवं कपटी है । कवि ने यजीद के पुत्र को युद्धभूमि में हुसेन के पक्ष में लड़ता हुआ दिखाने की कल्पना नियोजित कर बड़ी कुशलता यजीद के मार्ग और कृत्यों की भर्त्सना करवा दी है । जब उसका अपना बेटा उसके कार्यों का समर्थन न कर सकता हो, तो उसकी निन्दा करने की आवश्यकता बाकी कहाँ रह जाती है । इतने पर भी अपने धार्मिक-नैतिक प्रयोजन से कवि ने बार-बार यजीद की निन्दा की है ।

अन्य पात्र—उपयुक्त तीन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त प्रासंगिक पात्रों के रूप में नबी मुहम्मद साहब को कविन तीन बार पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है । तीनों ही बार वे हुसेन के प्रतिविशेष ममताशील एवं दुःखी दिखाई देते हैं । सर्व प्रथम हसन-हुसेन की किशोरावस्था में नबी तब चिन्तित हो उठते हैं जब बच्चे बहुमूल्य कपड़ों के लिए हठ करते हैं । दैवी पुरुष जिब्रील द्वारा दिव्य वस्त्र प्राप्त कर वे बच्चों को उस समय तो समझा देते हैं किन्तु जिब्रील द्वारा ही उन्हें यह ज्ञात होता है कि ये दोनों ही बच्चे बेमौत मारे जायेंगे तो नबी का सारा धैर्य छूट गया । वे सब जान गये कि माविया का पुत्र यजीद ही उनके प्यारों का शत्रु है किन्तु दैवी विधान को शीश झुका कर स्वीकार करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सके । दूसरी बार नबी हुसेन को सपने में दिखाई देते हैं और उसे दुनिया से अपने चित को मुक्त कर लेने का संदेश देते हैं । उसे स्वर्ग में पहुँच कर सब लोगों से मिलने का आग्रह करते हैं । तीसरी बार हुसेन की मृत्यु के उपरान्त युद्ध भूमि में मौन भाव से आते हैं । इस प्रकार नबी चरित्र शांत गम्भीर साथ ही दिव्य है तब भी कवि ने मानवीय गुणों से युक्त कर उन्हें स्वाभाविक रूप में उपस्थित किया है ।

जिब्रील के चरित्र की कोई रूप रेखा नहीं है वह केवल भविष्य की घटनाओं से नबी को परिचित कराता है ।

हुसेन के बड़े भाई हसन के चरित्र का भी अधूरा विकास हुआ है वह वीर योद्धा है, यजीद उससे डरता है—

जोलग हसन जीवता है । हुसेन से हरगिज कांए ।।
करे जो उसका बेंगा बाल । किस का अतजग यह मजाव ।।

हसन से हुसेन को पर्याप्त वात्सल्य प्राप्त हुआ तभी तो हुसेन ने कहा कि उसको कभी माँ-बाप की याद नहीं आयी । यजीद के षड़यन्त्र के कारण स्वपत्नी के हाथों ही हसन की मृत्यु हुई । मरते समय भी उसने अपने उच्च चरित्र को नहीं छोड़ा । पूछने पर भी उसने जहर देनेवाले का नाम हुसेन को नहीं बताया तब भी उसका प्राण अपने शिशुओं में उलझ रहा था उनकी जिम्मेदारी हुसेन को सौंपकर हसन ने संसार से विदा ली ।

अब्दुल्ला जुबैर का चरित्र यद्यपि क्रूर, विश्वासघाती एवं स्वार्थी है तथापि अन्ततः वह अपने कर्मों का फल भोगता हुआ पाठकों की करुणा और सहानुभूति का पात्र बन जाता है। माबी की कूटनीति को न समझ कर, अपने भोलेपन या स्वार्थांध मन से उसने जैनब पर अनपेक्षित अत्याचार किया किन्तु उसे उसके विश्वासघात का फल ठीक उसी ढंग और उसी प्रमाण में मिल गया।

यजीद के पुत्र का नाम नहीं बताया है किन्तु उस के हृदय परिवर्तन, हुसेन के साथ बैन करना और युद्ध भूमि में प्राणोत्सर्ग करना सभी उसके उज्ज्वल एवं तेजस्वी व्यक्तित्व के स्पष्ट प्रमाण हैं।

कासीम इब्ने हसन का आठवीं मोहर्रम हुसेन के पुत्र अलीआकबर का नववीं मोहर्रम को बलिदान असाधारण यौद्धिक कौशल के प्रदर्शन के बाद ही हुआ। दोनों ही किशोर हुसेन के लिए प्राणों से अधिक प्रिय थे किन्तु धर्मयुद्ध का प्रसंग और हुसेन की विवशता देखते हुए उन्हें अकाल में ही 'युद्धं' देहि की गर्जनी करनी पड़ी कवि ने दोनों की वीरता और युद्ध कौशल का संक्षिप्त किन्तु अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है।

उमरसाद और अब्दुल्ला जियाद के क्रूर कृत्य कर्बला की कथा के प्राणों को मुखा देने वाले कलंक हैं। हुसेन का बेमौत मारने के लिए फरात नदी का पानी रोक कर उन्होंने छोटे बच्चे तक को तरसा-तरसा कर मार डाला। हुसेन के संदेह का उत्तर उन्होंने यूं दिया।

पानी देवें हम सूक संगा। लेकिन तुमको हरगिज नाँ॥

प्रतिदिन मुख्य योद्धाओं के सर काटकर अत्यंत आसुरी अट्टहास के साथ इन्होंने यजीद की इच्छा पूर्ति की। ये दोनों ही वस्तुतः पराये हाथ की बाज थे।

मूसा अशरी को कवि ने बड़ा बुद्धिमान, चतुर एवं कुशल व्यक्ति कहा है तभी तो माविया ने यजीद को दूत बना कर जैनब के पास भेजा था। जैनब के रूप को देखकर मूसा स्वयं ऐसा हो गया कि उसने तीन अन्य प्रस्तावों के साथ ही अपना भी जैनब से विवाह करने लिए प्रस्तुत कर दिया। जैनब ने उसे स्वयं को अस्वीकार करते हुए भी उसी के परामर्श से हुसेन के साथ विवाह कर लिया। इस कार्य में मूसा अशरी की सहायता, तटस्थ परामर्श इत्यादि सभी गुण उसके चरित्र को उज्जल बना देते हैं।

स्त्रीपात्र—जैनब अपने युग की अनिंद्य सुन्दरी थी, अतः सभी पुरुषों के मन उस पर मुग्ध थे। यजीद ने उसी के साथ विवाह के लिए हठ किया था और इस इच्छा की पूर्ति न होने का ही फल था कि वह हुसेन के प्रति आसुरी क्रूरता से पेश आया। जैनब के सौंदर्य वर्णन सम्बन्धी छंद पीछे आ चुके हैं। अब्दुल्ला ने अत्यंत निर्दयता-पूर्वक उसका त्याग कर दिया था किन्तु जैनब चुप रह गयी। अन्य अनेकों प्रस्ताव होते हुए भी बड़े सात्विक भाव से उसने दूसरे विवाह के लिए हुसेन के प्रस्ताव को

स्वीकार किया।

हसन की पत्नी (जिस का नाम नहीं दिया गया है) एक अभागा चरित्र है। यजीद के मोह में पड़कर उसने अपने वचन के साथ और प्रिय पति की हत्या कर दी किन्तु इसका फल भी उसे भोगना पड़ा। काम निकल जाने पर यजीद ने उसके साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप जीवन भर वह पछताती रही—

लाजों उस कों यूं हुआ।
फाटे मुई तो पैसों जा।

हुसेन की पत्नी का भी नाम नहीं दिया गया है किन्तु उसके अंकित चरित्र की करुण रेखायें अत्यंत गीली है। हसन के पुत्र और अन्ततः प्रिय पति को निरुपाय होकर परणोत्सव के लिए बिदा देते हुए उसका हृदय आघात पर सहता रहा। उसकी आँख के आँसू कभी सूखे ही नहीं।

उम्मे सलमा तथा फातमा भी सर्वत्र आंखों में आंसू लिए हुए उपस्थित होती है। उम्मे सलमा नबी मुहम्मद साहब की पत्नी थी। नबी से उसे सारा भावी विधि का विधान ज्ञात हो चुका था। वह दखी थी। मदीना छोड़ते समय जब उसने जिब्रील की दी हुई निशानी-कर्बले की मिट्टी देखी और उसे लाल पाया तब उसे भरोसा हो गया कि अब हुसेन की शहादत का अवसर आ गया है तब भी हुसेन को धैर्य और वीरता का ही उपदेश दिया। यह उसके चरित्र का एक उज्ज्वल गुण है—

बहुत बेरी ऊ याजीदी। करना बा फरजद नबी॥

फातमा जुहरा का प्रथम आगमन एक व्यक्ति के स्वप्न में होता है। कर्बले के आंगन को स्वच्छ करते हुए अपने प्रिय पुत्र हुसेन के प्रति ममता और शत्रुओं की क्रूरता के प्रति रोष व्यक्त करती हुई उस की प्रतिमा हृदय स्पर्शी है। अन्त में हुसेन के शव पर बिलख-बिलख कर रोता हुआ उसका रूप अत्यन्त करुण है।

माविया की बेटी का चरित्र यद्यपि चातुर्यपूर्ण है किन्तु वह परोक्षरूप से ही अंकित हुआ है। पहलीबार माविया ही बेटी का सन्देश अब्दुल्ला को सुनाता है जिस के अनुसार वह जैनब को तलाक दे देता है। दूसरी बार भी उसका संदेश देता है जिसमें वह अब्दुला का तिरस्कार करती है।

ये ही प्रमुख पुरुष एवं स्त्री पात्र हैं जो नौसरहार की कथावस्तु में अपने-अपने रूप और गुणों से प्रवाह एवं आकर्षण निर्माण करते हैं।

आस्था और उद्देश्य

नौसरहार का का कवि निश्चित ही एक धार्मिक पुरुष एवं भक्त है। एके-श्वरवादी तथा उस परम पुरुष की लीला विस्मित है। उस जागरूकता और शक्ति का ही प्रतिफलन सृष्टिरूप में हुआ है—

ऐसा कादिर अल्लाह एक । क्या क्या क्या पैदा कीता देख ।
यह सब करनी रची उन । कुदरत उस के कुन फैकून ।

सृष्टि के निर्माण में पंचमहाभूतों संयोग की भारतीय मान्यता के स्थान पर शेख अशरफ ने चार तत्वों का ही उल्लेख किया है—

मानस कीता चार मिलाव ।
मारी पानी आग होर बाप ।
आदम हव्वा रचे बोइ ।
उन दोनों मतर लाया सोइ ।

अत पर भर्या सब जग माय । एक दिखाय एक छिपाय ।

उस जगन्नियंता की लीला अपरंपार है । स्वयं रहस्य के असंख्य पर्दों के पीछे छुप कर सारा कठपुतलियों का खेल चला रहा है । मानव और प्रकृति के विविध विधान उस क्रीड़ा–विनोद से ही घटित होते हैं, यथा—

अपें छुप्पा खेले छंद । तुर्कों हिन्दू लाया दंद ।
केवँ-केवँ मारे किस किस किस घात । दुश्मन पाले बासद नाद ।
यो जिस लोडे तिझ रखे । किस अंदाजा बोल सके ।

इस प्रकार एकेश्वर की लीला विनोद को शिरोधार्य करते हुए मानव का कर्तव्य एक ही माना है ईश्वर और धर्म के मार्ग पर जीवन उत्सर्ग कर देना ।

गुजरान है ये दुनिया बस ।
ना दुक जम ना सुक रहस ।
जीवना तो खुद नाहीं सद्या ।
अब जीव देव राह खुदा ।

इसप्रकार कवि अशरफ के दार्शनिक नैतिक विचार प्रस्तुत काव्य में यत्र-तत्र बिखरे हुए है । उपदेश देने के किसी भी अवसर को अपने हाथ से जाने नहीं दिया है सम्भवतः यही मुख्य उद्देश्य कवि के दृष्टि बिन्दु में सदा सजग रहा हो ।

उद्धरण

कवि शेख अशरफ के परिचय प्रसंग में, इस ग्रन्थ के पञ्चम अध्याय पृ. सं. २९० पर इब्राहिम नामा, इर्शादनामा तथा पिरतनामा ग्रन्थों का उल्लेख आया है । इन रचनाओं की भाषा की तुलना नौसर की भाषा से कर तथ्य को ठीक से समझा जा सकता है । अतः प्रथम दो रचनाओं के अंश यहाँ उद्धृत हैं । पिरतनामा पूरे आकार में जोड़ दिया है ।

इब्राहीमनामा की भाषा के उदाहरण :—(कवि–अब्दल १०१२ हिजरी)

बचन मुझ है एक बूँद शहगुन समुन्द ।
कहाँ जाय देख्या सो दरिया में बुन्द ।

सदा म्यान बैठे जड़त नौ रतन ।
अधिक मोल हो पाच याकूब कन ।
यही मुझ बचन शेर शह सिफ्त मिल ।
के क्यूं बास होर फुल रहे जगत सिख । (पृ. १२)

ना उस शहर में नयन आँसू झड़ें । सो बिन मेघ बाराने होर कुछ पड़ें ।
न उस शहर में कोई दर्दों हुंकार । सो बिन पाय शहनाई ना कोई प्रकार ।
न पड़ता शहर में को बाँध्या नजर । सो बिन मोतियाँ हीर फूलों की लड़ । (पृ० २४)

कोई बालीं दरम्यान यूं मागचीर । दिसे ज्यूं कसौटी में सोने की कीर ।
कोई जड़त टीका पेशानी में लाय । खड़ा सूरज यूं सुबह मैदान आय ।
अजब टूट बिजली पंड चाँद म्याँ । दिसे खूए बुंद मुख हो गरमी निशा ।
कोई जेब मोती सो मुखडा हिले । सोने घाल दरम्याँ ज्यूं पारा ढले ।

इर्शादनामा की भाषा के उदाहरण (कवि बुरहानुद्दीन जानम-९९० हिजरी)

सिफल करूँ कुछ अपना धीर । जिस थें रोशन हुए जमीर ।
हुहूँ जग में मंज मीत वही । सुमरूँ ले मन चीत वही ।
तिस को सुमरे तन मन शाद । जिस का अहे मंज परसाद ।
जग में आहे तो है रतन । हिरदे में ले में करूँ जतन ।
राध्या कुन्दन कर इस डाँव । तिल तिल सुमरूँ ले इस नाँव ।
ऐब न राखे हिन्दी बोल । माना तो चक देखें खोल ।।
जूं के मोती समन्दर सात । दवरे में लागे हात ।
क्यों ना लेवे उस भी कोई । सुहाना चतुर जे कोई होये ।
ज्यूँ के मन के जागे सूँ । मुहब्बत केरे धागे सूँ ।
मोतियों केरा कर अम्बार । पारो कोता हारे हार ।
हिन्दी बोलों किया बखान । ज कर परसाद था मंज ज्ञान ।
जे कोई पड़कर करे सवाद । राहे हकीकत पर होवे शाद ।

□□□

परिशिष्ट–१

नौसरहार

रचयिता—शेख अशरफ (सन्–९०९ हिजरी)

हम्द

अल्लाह वाहेद हक सुभान । जिन यू सरज्या भुई असमान ।
चन्दर सूरज तारे रुख । बादल बिजली मेह अचूक ।
दोज़ख़-जन्नत अर्श-फलक । लौह-कलम हम हूर-मीनक ।
हैवाँ-इंसां, माद-नरां । आतिश-सोजाँ बाद-बराँ ।
देव-परी, बुत, दैंत, बला । नन्द समन्दर, कोह-तला ।
आफ़ाक-आलम जीव-जहाँ । माटी-कंकर आबेरवाँ ।
अठारह सहसर आलम दिन । उन हीं सरज्या ना होर किन ।
रिज्क सुअय्यन मौत-हताय । पैदा कीते ये दिन-रात ।
सूरज-तारे चर्ख डुलाय । चन्दर बढ़ता-घटत्ता जाय ।
एकी चंदर बारा नाँवँ । तिसका दरसन हर-हर टाँवँ ।
दीस सँवारे सूरज ओत । रात उजाला चंकर जोत ।
अंबर कूँदे तारे धर । धरती सूरत रुँखों सर ।
ऐसा क़ादिर हक मुतआल । फिरता लाया सुतर ववाल ।
ये जम फिरते चर्ख मुदाम । बरसन भरावे तीन हंगाम ।
तीन्हों काले बारहा मास । अपनी-अपनी रूत उदास ।
कधीं छाँवँ कधीं धूप । अत पर माँड्या यह बहुरूप ।
कधीं थरहर बरसे म्हैवँ । ठंडा सियाला, सीतल सीवँ ।
कीता उनही करता सोय । वी ही सके, ना होर कोय ।
मानस कीता चार मिलाव । माटी, पानी, आग होर बाव ।
आदम-हव्बा सरजे वोई । उन दोन्हों भीतर लाया सोई ।

सूचना—आगे सभी पृष्ठों पर पाद-टिप्पणी के रूप में पाठांतर अलीगढ़-प्रति के अधार पर दिए गए हैं । जहाँ संहिता में अलीगढ़ प्रति का अंश स्वीकार किया है, वहाँ पाद-टिप्पणी हैदराबाद प्रति के आधार पर है ।

उन थें पैंदा कीता आल। मखसूस उसकूँ था ये खयाल[१]।
पैंदा कीता नारी नर। उनमें जुफ़्ती लाई घर।
होवन लागी तो जहज़ाद। बढ़न लागी तो औलाद।
अत पर भर्या सब जग माय। एक दिखाय एक छिपाय।
ऐसा सकता कादिर हक। राज़िक सकल्यों का मुतलक।
जीता जीवता जीव जिया। वो तीनो कूँ उन रिज़्क दिया।
इतपर रख्या बस्ता जग। आदम थें ता खयामत लग।
पैंदा कीता औरत-मर्द। आँचे खाहेद ख़ास्त बकर्द।
सकल्या कीता रिज़्क तईं। जो उन[२] लिख्या चूक नहीं।
जो उन कीता किस्मत सोय। चूक न जासी बदल होय।
ऐसा कादिर एक खुदा। पैंदा कीता शाह-गदा।
किसे काफिर हिन्दू कर। कोई कीते पैग़म्बर।
कोई अघाने कोई फकीर। कोई आज़ाद कोई असीर।
कोई सयाने, कोई अबलह। कोई सदमारग, कोई गुमरह।
एकन पाले लाड़ लड़ाव। एकन राखे आस तुड़ाव।
अपे छुप्या खेले छन्द। तुर्कों[३] हिन्दू लाया दन्द।
अपने प्यारे बेखूँ हात। क्यों-क्यों मारे किस-किस घात[४]।
दुश्मन पाले बासद नाज़। प्यारे मारे कित-कित साज़।
वो जिस लोडे तिस रखे। किस अंदाजा बोल सके।
मुयो जीवाके, जीतों मार। डुबते तारे लावे बार[५]।
तीरतों मारे मुत्लक डूब। हर्या सारे सूका जूब।
ऐसा क़ादिर सके ओह। जिन यह सरज्या डोंगर-कोह।
पाथर में थैं नीन बहाव। बीज में थैं रुख उपाव।
हर–हर रूखों लावे फल। कित-कित भातों फूल कमल।
आलम ढांके अब्र झपाय। ज्यूँ-ज्यूँ लोरे नीर बहाय।
गगन सगला अब्र भरे। तोचभ मइ नापैद करे।
चौखत ज्यूँ के मांज्या थाल। जानों न था कुछ अभाल।

१. उसकूँ ये था (अलीगढ़)
२. उन जो (अली.)
३. तरकन
४. खरकन सात.
५. डुबते तिरावे लावे पार

कधीं छाँव, कधीं धूप। इत पर रची[१] यह बहरूप।
भेदक सियाना परम सुजान। रहिया महबूत अंखियाँ तान।
क्यों उन लाए कुल सुतर[२]। भेद न पावे कोई चतर।
अन्त न पाया किन्हीं जान[३]। कित पर मांड्या ये मंड़ान।
रूप दिखाया बहुत भाँत। नाद सुनाया बिन कँट ताँत।
दोनों जग केरे जीवडेबाँट। अकास-पताल खाली काँठ।
ऐसा क़ादिर अल्लाह एक। क्या क्या पैदा कीता देख।
यह सब करनी रची ऊन। क़ुदरत उसके कुनफेकून।
जिन यू सरजे समंदर-गीर। यों कोई सके कह मुजघोर।
लिख्या अशरफ ये बखान। तौहीद हक की मौजूँ आन।
अल्ला बख्ते तुझ रहमत। लिखे बारी खूब सिफत।

बाब अव्वल

(दरनात हजरत मुहम्मद मुस्तफ़ा)

अब नात मुहम्मद पेग़म्बर। आखूँ तुझ दरसन चितवर।
दोन्हों जग केरा सरवरशाह। दीन मुहम्मद नेकपनाह।
सारे आलम का नबी। रोजे महशर[४] का शफी।
जिसके चाव अठारह सहस। आलम सरज्या[५] अति रहस।
दीने हक़ीक़ी केरा शाह। नबी मुहम्मद सल्लिलाह।
सकल नबियों केरा मीर। उम्मत केरा वह दस्तगीह।
जिब्रील आवे जिसके पास। खुशी सेंती अति उलास।
नवी ऊपर भेज दुरुद। कह अल्लाह तुझथैं जम खुशनूद[६]।
हर कुछ अल्लाह का फर्मान। नबी आखें ओ गुजरान।
नबी मुहम्मद हक रसूल। कीता जिन ये फक्र कबूल।
दोन्हो जग केरा सरवन मीर। जिसको चारों यार वज़ीर।
बूबकर सिद्दीक एक गिरा। उमर खिताब हम की दुसरा।

१. मांड्या
२. लाया
३. किन्हे न पाया उसका अंथ.
४. रोजे खयामत.
५. रज्या.
६. 'कह' शब्द नहीं है.

ये दो बुज़ुर्ग पीर आज़ाद । उस्मान–अली दोय दामाद ।
दोइ नवासे उन बल जाँवँ । हस्सा हुसेन जिसका नाँवँ ।
अली के ये दोय फरजंद । बीबी फ़ातमा[1] के दिलबंद ।
अल्लाह केरे सँवारे । पैगम्बर के प्यारे ।
दोन्हों को पाले खूब खिलाव । सुखी राखे चीर पिन्हाव ।
एता था जब उन पर प्यार । ईद–बराताँ बार त्योहार ।
अपैं करें[2] उनका चाव । सुक बधाय लाड़ लड़ाव ।
माई-बाप के मन के सत । पैग़म्बर के प्यारे अत ।
बैरी उनकूँ यूँ दुख दे । मानक दोइ जिवडा ले ।

बाब दुव्वम

(दर सबब साख़तन व तालीफ मजमून)

अब सुन मेरे यार अज़ीज़ । उम्र हमारी गई नाचीज़ ।
आया जीवं के भुँई पर मार । घन्दे भीतर गिरफ़्तार ।
पस क्या नफा कह तुज तुहीं । नाँवँ निशानी कुछ न कहीं ।
आवे वक्त उठ चलता होय । मुए नावँ न लेवे कोय ।
कर ऐ अशरफ कुछ शइरी । अछे तेरी यादगीरी ।
शायद लिखे पढ़े कोय । तुझकूँ बारे सवाव होय ।
हिजरत नव्वी नौ सौ नौ । कह्या अशरफ नौसर यौ ।
जोलग जीवे तूँ इत जग । मुवे पर भी कयामत लग ।
ल्होड़े बड़े सब सदा । करते अछें तुझ दुवा ।
तुझकूँ नाँगे आमर्जिश । हजरत हक़ की करना यश ।
बाजाँ में भी अंदरख्वेज । देख्या खूबी चुक अंदेश ।
ये सच कहतें अशरफ तुझ । मरना हक है इतना बुझ ।
कोई न रह्या इत जग आय । सब उठ बलें पीठ फिराय ।
दुनिया तो खुद गुगरान है । ऐसी गुजरी किते सद से ।
कौन–कौन पैदा कीते शाह । आखिर सोते करवट खाह ।
इस दुनिया केरे मकरोकैद । कैसे–कैसे शाह निपैद ।
आदम हव्वा नूह नबी । यूसुफ इस्माईल जबीं ।
मिहतर दाऊद लुकमान शीश । याकूब इब्राहीम इदरीस ।
मूसा ईसा रूहुल्ला । अहमद मुसिल अब्दुला ।
वह के सुलेमाँ पैगम्बर । देव परी जिस फर्माबर ।

१. खातूने जन्नत के दिलबन्द

कैसे-कैसे उत्थे वाह । चाँद उरुसाँ मानक शाह ।
हमचूँ सिकन्दर जुल्कर्नैन । शोहदा कारबल शाह हुसैन ।
दीगर, चन्दें औलिया । ममचूँ मशायख शेख जिया ।
शाहाने आलम अहलाँ ताज । जिन्हों कीता इत जग राज ।
दाराँ कैसर शहर याराँ । ऐसे-ऐसे जहाँदाराँ ।
डूबे इसते जीवडे बस । तुझ किता जीवना इस रहस ।
तूँ भी मत यखादी बार । जोड़े बर बर होय निसार ।
अल्लाह का भी यू फर्मान । कुल्लमन अलैहाफान ।
कैसे-कैसे मर भर गये ऐसे तुझ से केते से ।
अब भरोसा तुझ क्या है । जो कुछ करना करता है ।
जो लग पाय कुछ फुर्सत । जितनी दीती गिन मुद्दत ।
बाजाँ कीता हिन्दवी में । किस्सए मकतल शाह हुसैन ।
नौसर हार इस धर्या नाँवँ । जाइ दिखा तू अब हर ठाँवँ ।
नज्म लिखी सब मौजूँ आन । यूँ मैं हिन्दवी कर आसान ।
अछे तो ये यादगीरी । सरवर वैठया ताजवरी ।
ऐ मैं दूखों चुन-चुन बोल । रच-रच लिखे सीधे खोल ।
नामा कीता बोल सँवार । जानो मोतियों केरा हार ।
सोने की ज्यूँ खूँटी घड़ । मानक-मोती-हीरे जड़ ।
किन–किन दूखों घड राखे । अब तूँ कानों पहन सके ।
यह तुझ पहरे सब दुख जाय । कान सुखाय-जीव घुमाय ।
यूँ मैं कीता मन सुख हार । ले अब सहेली गल उतार ।
एक-एक बोल ये मानक मोल । सीम तराजू सेथीं तोल ।
बन्द पिरोये सोने तार । सच्चे होवा नौसर हार ।
हर-हर मिसरे कसी[1] लड । हुआ नामा जरोजेवर ।
दो-दो छज्जों[2] बाँधे खन । तो मैं किया यह दरसन ।
हर-हर कीता कीते सर । हुआ नामा जरोजेवर ।
ये नौ बाबाँ नौसर हार । कीमत उसकी लाख हजार ।
अब इस जे कोई पहर देखे । जीव को हौसों या लीखे ।
तो सुन भय्या उनी च कहीं । मौजूँ काबिल खूब नही ।
बींगा तोंगा नामौजूँ । अदनाँ अछे या अफजूँ ।

१. बाँधी.
२. मिसरे.

ऊँचा नीचा अड के बोंल । देखें सब कम वेश ढ़िढ़ोल ।
ज्यूँ कुछ अछे[1] ना काबिल । तो तूं भैय्या सुन ताजील ।
जहाँ लोरे जैसा वोल । तहाँ लिखे सीधे खोल ।
मँजे बाअल्ला बोष न थर । चूक खता का ऐब न कर ।

वाब सुव्वम

अब सुन मेरे भाई बूज । एक कहानी लिखूँ तुझ ।
ये तूँ सुन ऐ ज्यूँ के कान । ज्यूँ मैं लिखा खोल आसान ।
हस्सा हुसेन दोनों बीर । जथाँ थे यह खुर्द सगीर ।
नबी करते उनपर प्यार । ईद बराता बार त्यौहार ।
उन की खुशी करते जम । नित उठ खाते उनका गम ।
देखत उनकूँ होते शाद । के ये अपनी खास औलाद ।
ज्यूँ खुश होते उनको देख । उसी भीतर एकाएक ।
तप कर मिहतर जिब्रील आव । मर्ग उन्हाँ की याद दिलाव ।
यहीं बारी केतल बार । कही जिब्रील यूँ अखबार ।
के वैरी उतपर हैफ करें । कित-कित भातो दुख धरें ।
जिब्रील, मुहम्मद आखी बात । कही सच में सात वफात ।
सात बडायों कही खब । के बैरी उनपर करे गदर ।
सभों को प्यासों हैरान भार । लेवें खडगो सीस उतार ।
गाजाँ नवी सुनकर बात । रहे हैरान सिरधर हात ।
बेखुद हुये नारा भार । ताहद गहरी एक-दोय पहार ।
एता करते गम अंदोह । नीर बहावले जो रो रो[2] ।
हस्साँ हुसेन दोनों ये । गहरे प्यारे नबीके ।
यूँ पर अछते खुशी सात । एक दिन तहाँ कछु ईद बरान ।
पौंगडे लोगों के खुश हीय । पहने सगले कारड धोय ।
सकतें लोगों खुशीघर । न्हाई थोई कसूतकर ।
खेलन लागे हर हर ढंग । कसूत कर कर रंगवरँग ।
हस्साँ हुसेन दोनों लुच । फसती वाहें न था कुछ ।
ज्यूं नित मैले फाटे चीर । वैसे च पैन दोनों बीर ।
खेलन निकले बाहर-द्वार । यूँ क्या देखें नयन पसार ।
लोगों केरे लोंकरे[3] सब । फँके आव रहे खूब जरब ।
जीव उनका उठ्या तब । लखत आए घरमूँ ठब ।

1. ओह, 2. नीर बहाया जो रो रोह . 3. पोंकरे .

दोनों जिवके पकड़ आस । दौरे आए माँके पास ।
के हमकूँ भले जर पहनाव । धोये उजले पक बनाव ।
यूँ उन दोनों लेते अड़ । रोवन लागे भुंई पर पट ।
फातिमा रही तुरत अबकम । इन्हों प्यार्यों केरे गम ।
माँ-बाप उनकों रोते देख । अब कहाँ थें एकाएक ।
आन पहनावें कसूत खूब । जिया उनका है मतलूब ।
जित्ता कह ये समजावें । केहूँ कर न उन भुलावें ।
परकम रहे माँ-बाप अब । तुरत नाहीं कुच कसूत ।
नबी भी उन रोते देख । रहै गमगीन होये ज्यूँ केक ।
नबी कारन तो उस वक्त । नबी होये वेदिल सख्त ।
राखे दोन्हों कूँ चूक समझाव । सर ले सिने सतीं लाव ।
तो लग जिब्रील आया ताक । खुशी सतीं अब हजरत पाक ।
हात तबक धर नूरानी । करदा सरपोश अरमानी ।
तबक वे दोन्हों हातों पर । हुली बहिश्ती उसमें चर ।
राख नबी अंधे आन । दो जन्नत उन नहीं देन्हों कान ।
के अल्लाह भेजे दोन्हों का चाव । ले अब दोन्हों कूँ बाँट पहनाव ।
यक सब्ज खतीफा दूजा लाल । रोशन खूबक जेब जमाल ।
अल्लाह भेजे यह हुल्लें[1] । हस्सा हुसैन पैरन दे ।
तो वह पहने एक भराय । अंदोह उनके जिवका जाय ।
बाजां नबी उठ दरहाल । लेते दोन्हों जुनत जमाल ।
दोन्हों को आने अपने पास । धरे उन अंधे कपडे खास ।
देखत रहे दोन्हों त्यों । बाजाँ नबो कह्या यों ।
जैसा भाव जिनको रंग । सोले भरो अपने अंग ।
बाजाँ लेते दोन्हों मिल । होय गाढ़े यों खुश दिल ।
सब्ज पहरज में हसन पहन । लेला दूजा लाल हुसेन ।
कसूर भरे सिर पेक बांद । ऊभे होलें जैसे चाँद ।
खिलने लागे खुश होय कर । जिब का सगला दुख विसर ।
हाँडन लागे खुशी सात । बिसरे जिवका दुख सनात ।
ज्यूँ-ज्यूँ खेले दोनों मिल । त्यूं-त्यूँ नये अत खुशदिल ।
होये नीका रहे शाद । शुक्र खुदा का कीता याद ।
करम उन्हें यो वर देख । बारी हुए खश जब एक ।

1. हुल्ल: (तुक के लिए)

तो लग असम जिब्रील । लेकर उठ्या एक दलील ।।
हाँ ऐ नबी बुजुर्गवार । दोनों को करता तूँ अतप्यार ।।
नबी कहिया हाँ आरे । यह दोनों मुखकूं अब प्यारे ।।
उनकूं करता निज दुवा । किबले के थिर होय सदा ।
देखूं जब उन का मुख । तब होवें मरा जिव सुख ।।
बाजां कहिया जिब्रील । अब तूं सुन ऐ नबी खलील ।
ये तो दोनों बैरों हात । मारे जाएँगे खडगों सात ।।
हसन जो पहर्‌या जोडा सब्ज । जहर दे कर जिवडा कब्ज ।।
करसीं उनकूँ यूँ बेजाँ । दुश्मन जालिम बेदर्मा ।
होर हुसेन जोडा ताया । कसूत्त पहर्या ज्यूँ नौशा ।।
बैरी उसका यूँ सरकाट । तनके तुकडे बारह बाट ।।
लोहू सारा जंगल भर[1] । लेवें जिवडा यूँ दुख घर ।।
यूँ सुन नबी नारा मार । रोवन लागे बहुत नसार ।।
तते अँसु बैठे ढ़ाल । भीजे कपडे सब रूमाल ।।
तोता रोता हाय-हाय । रहियां दोन्हों अंख्या छाय ।।
बाजाँ नबी पूछा अभी । के ऐ जिब्रील अखी ।
जो इन मारें सो वे कौउ । उनको अखें राई लोन ।।
कहाँ के वे किस के आल । मला मुझधिर कह सब हाल ।।
बाजाँ कहिया अबत्तर[2] भाव । सुन ऐ नबी मुहम्मद राव ।।
तेरी उम्मत केरा लोग । तेरे प्यारे मारन जोग ।।
भावी जो है तुज सें[3] सूत । उसते निपजे पापी पूत ।।
ओलाद तेरी केरे ख्याल । वह पड रहे जम दुम्बाल ।।
भावी केरा फरजंद कोय । उन्ह के जिधका दंदी होय ।।
जालिम मलऊन[4] नातेकार । मारेगा वो उनको जार ।।
बाजाँ[5] जिब्रील अखी बात । त्यूँ-त्यूँ नबी सरघर हात ।।
बाजाँ नबी अति सहक[6] । अंझू ढ़ाले केते लख ।
नबी कह्या[7] यूँ दुख सात । के ऐ जिब्रील होरे एक बात ।।
जब मरेंगे रे, ये जवाँ । तब हौं अछूंगा या नाँ ।।
जिब्रील कहिया सुन रसूल, । जित दिन होवेंगे ये मक्तूल ।।
कोई न अछे तो उस वक्त । उसकूँ गुरबत होवे सख्त ।।

1. जिस. 2. अतपर, 3. सों.
पाठांतर—4. बदबक्त 5. ज्यूँ-ज्यूँ 6. रोऊ लागे सहक-सहक 7. बाजाँ पूछ्या

माँ-बाप कोई अछे नाँ । अबूबकर, उमर हम उस्मान ।
कोई ना अछे यार असहाय । करदा बाशंद हरथक खाब ।
भाई-बाप न भाई सात[1] । उनपर करसीं बैरी घात ।
दश्त करबल म्याने उस । तस अंधारी काली निस ।
खांदे बिजली तेग अरमाल । फौजाँ चलें ज्यूँ के अमाल ।
बिजची ज्यूँ के कड़के तूट । बादल ज्यूं के गरजे भूत ।
मेहूँ जैसे बरसे तीर । रक्त बहायें ज्यूँ के नीर ।
खडगो झमके बिजली सार । ऐसा उन पर कहर उतार ।
उनपर मारें खरगों[2] घाय । जीवडा लेवें दुख बराय[3] ।
उनकूँ मारेंगे जिस धावँ । जंगल का उस करवल नावँ ।
वहाँ जब हुसेन शहीद । करा आवे वक्त वईद ।
तब उस जंगल केरा रंग । होवे जीवँ थर लाल पतंग ।
माटी कंकर दार-दरख्त । शंगरफ़ थें भी रतरे सख्त ।
अस केरे डोंगर माल । जिधर देखों तिधर लाल ।
पानी भी होवे लहू-सा । जानों आया वक्त उसका ।
बाजां जिब्रील उठ चालाक । ऊहाँ केरी माटी पांक ।
नबी बाहे देते आन[4] । करबली ये माटी जान ।
आनी मैं ये निशानी । जत[5] होइ तकदीर आस्मानी ।
तत ये माती[6] होइ रत्त । ज्यूँ के शंगरफ याके रकत ।
जानो तों के हुसेनअली । केरा आया वक्त अजली ।
बाजाँ पूछा पैगम्बर । कह ऐ जिब्रील मुज अकबर[7] ।
कौन सौ तौलक जीवसी जान । जो ये देखे रंग निशान ।
बाजाँ कह्या जिब्रील । अब तूँ सुन ऐ नबी खलील ।
हरम तुम्हारे अम्मे सलीम । तूँ कर उसके ये तसलीम ।
जीवती अछेगी वह तौलग । जोके हुसेन होई मर्म ।
बाजाँ उठकर नबी राव । उम्मेसलीम[8] पास बुलाव ।
देते औ माटी उसके हात । कही उसथिर यूँ सब बात ।
यो है माती करबल की । जिब्रील आन निशानी दी ।
जतन रखो इस शीशे थाल । जवाँ होवे ये माती लाल ।
तो तूँ जान हुसेन शहीद । उन्ह कूं आया वक्त वईद ।

1. भाई न बाप माई न सात. 2. खरगन्ह. 3. सीस कटाय. 4. पैगम्बर को देते आन. 5. जब 6. तो ये माटी होवे. 7. खबर. 8. सलमा

बाजाँ उम्मेसलीम ऊइ। दोन्हों नयनों अंझू घूट।
ली वो माटी शीशे भर। जतन राखी गोशे थर।
भई, ले उठे सुन जिब्रील। अब कह मुजघिर एक दलील।
जे ना अछे[1] तो फातिम। कौन करेगा ये मातम।
सात न कोई तो मा-बाप। हौं भी या कोई होर असहाय।
उनके ताजियत हुरमत कोय। कौन करसी मातम रोय।
इस अंदेशे भीतर पड। ...हिया सारा दुख पकड़।
हुए नबी अन्दोहगींन। वाजाँ कह्या जिब्रील अमीन।
कहिया सुन रे ऐ नबी रसूल। के तूँ हुवा यूँ मजमूल।
मातम उनका सारा जग। वाद अज तुज तैं कयामत लग।
जेते मोमिन मुसलमान। औरत–मर्द–बूढ़े–जान।
वे सब रोवैं आंसू ढ़ाल। मातम उन्हका घर हर साल।
करते अछें यूँ सब लोग। रोते हसना—हुसेन जोग।
वनके सावन रन की तोर। बह भी रोवें हर आशूर।
वाजाँ नबी सीना सख्त। कर चुप रहे यों उस वक्त।
बाजाँ एक दिन पैगम्बर। कूं जो हुवा ये जुख असर।
हसना हुसेन की गुरबत। वैसे[1] रो-रो याद करत।
पूछा भावी ऐ रसूल। तू भी[2] हुआ यूँ मखमूल।
एता दुख तुझ कत सबब। हुआ सो कह मुझ घिर सब।
बाजाँ कहिया यूं नबी। ये भुज प्यारे हर दो सबी।
बैरी उन पर हैफ करे। जीवडा लेवें दुख धरें।
भूकों मारें प्यासों जाल। लोहू बते डोंगर माल।
जालीम मलून दुश्मन जाँ। मेरे बंस थैं गुजरे नाँ।
खडगों काटें ये तन सीस। ऐसे वे बदबख्त खबीस।
सो दुख हुआ मुजपर असर। कहते थे ज्यूं जिब्रील खबर।
ऐसा दुख ये सीने सख्त। रह-रह उठता दरहर वक्त।
यूँ सुन बाजाँ मावी। पैगम्बर को पूछा भई।
अब मुझ कह ऐ पैगम्बर। तू है दोहों जग का सरवर।
कौन सो, के किसके आल। जिन्ह कूँ होवेगा ऐव खियाल।
बाजाँ नबी मुहम्मदराव। कहिया मावी अन्के भाव।
के ए भावी अब सुन बात। तेरे एक फर्जंद केरे हात।

१. वैठे. २. के तूं ३. औरत.

जीवडा उनका जाय सरग। तते घावों होवे मरग।
ऐसे प्यारे तेरे आल। मेरे प्यारे केरे ख्याल।
पड़कर मारे जीवडा ले। ईमाँ अपना पानी दे।
यों सुन रहिया मावी। तहमद होकर बाजाँ भी।
कहता ये सुन ए नबीराव। तुजघिर भाकूँ सच्चा भाव।
बेटा मुजकूं नाही हाल। कौन अब मारे तेरे आल।
फरजंद नाहीं मुजकों कोई। ना पीथ संघाती घर में जोई।
अब भी अंधे यूं सौं खाऊँ। हरगिज औरत पास न जाऊँ।
तो न निपजे मुज थैं पूत। ऐसा यूं को जैसा भूत[1]।
औरत की अब खाई सौं। जोलग जीयूँ तो लग हौं।
जाँवँ ना बा अल्लाह औरत पास। बीवी याकि सुरीतदास।
औरत केतई में परहेज। जाल अछो या नवखेज।
मावी यूँ मनमूँ नीयग। पकड रख्या था मुद्न।
लेकिन हुक्म इलाही का। होना हो सो क्यों चूकेगा।
जो उन चित्यां सो हीय। बरज न सके कहीं कोय।
मावी बारे यूँ यवत्यार। हो कर रहिया शहयत मार।
तितपर गुजरे किते साल। और केरा छोर्या ख्याल।
औरत उन परहेज कती। जानो शहवत उस ना थी।
यों पर अछतीं एकस रात। मावी कीते इराखात।
जबी उठ्या कर पेशाब। धोने न था मौजूद आब।
नफस अपनाँ ले कांद संघात। पूजन बैठ्या उती रात।
भीत संघाती केर[2] पकर। पूछें लाग्या मीर सुखर।
वहाँ बीछू था मौजूद। नफ़स उसके कूँ लडिया जूद।
जैसा लरया चौंक पड्या। बीछू रो रो जात छड्या।
रह्या यूँ मुँह खता कर। हैराँ हुआ दरदूँ भर।
फके बीछू ज्यूँ अंगार। त्यूँ-त्यूँ मावी नाहर मार।
रो-रो हुआ अत निसास। हातों छोडे जीव की आस।
तड़कन लागा नफ़स तराट। मावी हुआ भुई पर काट।
फिर-फिर रोय भुई पर पड। सीना कूटे दाँत पकड़[3]।
बीछू हुआ बहुत नरहाल। रहिया पसर यो दबजघाल।
बीछू छड्या सरवे अंग। हारूँ-हारूँ[4] सांधे सांद।

१. ऐसा पापी जैसा भूत. २. नफस. ३. कड़कड़. ४.हाड़न-हाड़न.

फूटन लागा नफस तरकाँ मार । जानों लाई अंग अंगार ।
तलमल करने लागा सक्त । मिले सगले लोग सस वक्त ।
दारू दरमन केते ले । बेप-तंचफा खरे केते से ।
क्यां क्या कीते मंतर भार । बीछू नाया केहँ ठार ।
हैरां हुआ मरने जोग । महबूत हुआ सारा लोग ।
लोक मिले सब ऊपर पड़ । मावी दातों मुत्थी जड़ ।
रहिया पसर मुंह पलेट[1] । कूटे सर होर सीना पीट ।
यूँ पड़ हुआ शक्त हलाक । बिलख पर्या जीवका धाक ।
कैसे बीछू कौन जहर । कुछ न चल्या भार-मंतर ।
अबकम रहे बेद-तगीब । दारू बिसरी हम तरकीब ।
कोई न सक्या दरद उतार । मावी रोवे जारबजार ।
सर तों पांव ऊठी आग । घाबर गया जीव न लाग ।
बाजाँ किन्ही ये हिकमत । कहै उस घर जरूरत ।
के तं भला एताल ऊठ । एखादी औरत सूं हो जूथ ।
शहवतरानी कर इंजाल । तोंइच बीछू उतरेगा दरहाल ।
औरत से तूँ खल्वत कर । सोइच बीछू जाय उतर ।[2]
काबिल आया मावी के । यही हिकमत चलती जे ।
बाजाँ कइया के खूब होव । देखन लाग्या बांदी जोय ।
जशन बांदी हाजिर थी । उससूँ उठ कीता उठ ।
ज्यूँ इन रानी शहवत लेट । ओही रहिया उसकूं पेट ।
बांदी हुई पेट संघात । बीछू पड़्या काली रात ।
बढ़न लागा दिन-दिन पेट । दायाँ नित-नित दान समेट ।
यूं उस कीती जतन चाव । मत जाए ऊंचा-नीचा पाव ।
कुछ ना ऊठा बाँदी रोग । दीन दसूरे बघन जोग ।
कलका न रहता इस ये काब[3] । या गल होता पानी आब ।
याफता घर दीसों जे ? । खसकर पड़ता बलाले ।
या मर जाता जनती रात । तो ना करता ऐसा घात ।
लेकिन हरगिज हुको अल्लाह । चूक न जासी कद बिल्लाह ।
जतन कर इस यूँ रखिया । दीन दसूरे पेट बढ़िया ।
पूरे हुए जब नौ मास । दायाँ लायाँ तेल तलास ।
पूरे मासें दीसों गिन । आगाज हुआ पेट दुखन ।

१. मुइ पर लेट. २. तोझ ३, कुछ न रह्या उस ये काव

लाग्याँ पीराँ वीछू ज्यूँ । लड़कर छड़्या बीछू त्यूँ ।
तत्याँ पीराँ जलते पेट । पूत निरासा औंधे लेट ।
पापन बंदी जन बैठी । पूता चावँ सुक लेटी ।
सूती पटका माथे लाव[1] । पूतन नरासे केरे चाव ।
वह जिस राखे इत संसार । हरगिज न सके कोई मार ।
अल्लाह लोडे राखे जिस । मारे उस अन्दाजा किस ।
या वे मारे जिसकूं पाल । कोई राखे क्या मजाल ।
जो वह लोडे सो करे । मुये जीते केसे से ।
हुआ जो उन चित्या सोय । मेरे चीतें क्या अब होय ।
धर्‍या जसका नावं यजीद । मलून नापेकार पलीद ।
बढ़न लागा नित बदबख्त । वद मुरब्बत होर संगदिल सख्त ।

अल किस्सा

बाजां यक दिन नबी राव । बैठे मस्जिद भीतर आव ।
होर भी सेथीं बाजे यार[2] । बैठे थे ज्यूं सदर सँवार ।
तो लग मावी भी डर-डर । बेटा सीने सात पकर ।
लेकर आवता नबी पास । खांदे धर कर खुश उलास ।
नबी देख्या ज्यूं इस घिर । याराँ अन्धे कहिया फिर ।
"देखो याराँ ऐं असहाव । ये चढावता कोई शताब ।
बहिश्ती केरे कांदे हर । दोजखी क्यों बैठ्या छड़कर ।
ये है मलऊन नापेकार । दोजख म्याने उसका ठार" ।

बाब चहारूम

बाद अज मुदृत साल मजीद । ज्यूँ के हुआ जवान यजीद ।
मुल्क विलायत अखताआत । माविया के अन्न आये हात ।
हश्म खदम सब घोड़े खील । दुनिया दौलत हौदा फील ।
यों पर अछतें खूशी सात । यक दिन बेटे अखी बात ।
कहता माजी ए-ऐ मजीद । दुनिया दौलत हुवा मजीद ।
यह मैं सकला तेरे चाव । ईधन दौड मिलाव ।
मुल्क विलायत कीते जब्त । हश्म खदम लाया रब्त ।
जाने माले तेरे कान । कीते मैं यूं सब तूं जान ।
असबाब अमलाक हर कुमाश । सरका चँवर हा हो फाश ?

१. सो उन पटका माथे बांद. २. होर भी बाजे हाजिर यार.

सोना मोती मानक लाल । लाखों-कोरों बाँधे माल ।
हर-हर जिसी खास असबाब । पाट पतोली हमकम खाब ।
बांद गुलाम ए घोरे भी । तेजी-तुर्की हर जिसी ।
यह सब देता मैं तुज राज । छत्तर व शाही तख्तोताज ।
अब कह पूता क्या मखसूद । अहे तुजकों सो भी जूद ।
अंपराऊं तुजतेरी हौस । तो न रहे कुछ अफसोस ।
बाजाँ सुनकर यूँ यजीद । लेकर उठ्या ख्याल पलीद ।
हाँ ऐ मावी साहबे खैर । औरत अब्दुल्ला जुबैर ।
कर-कर मेरे कारन त्याव । यह है मेरे मनयूँ चाव ।
उसके घर यह औरत खूब । जवान लतीफ खुस महबूत ।
जैनव अहे उसका नाम । नयन सलोने जूँ बादाम ।
अजहद साहबे हुस्न जमाल । जेबा सूरत मौनूँ हाल ।
माथे जानों सूरज पाँट । याके जानों चाँद उलाट ।
पलखाँ जानों कान कमल[1] । नाक सुहावे अंख्या तल ।
दाँस बतौसी तैसी जान । जैसे हीरे केरी खान ।
अरसे गालों सथी जात । शक्कर लव सब हीरे दाँत ।
आंक मजीरा नाक सुरुप । एथा सर मुख नाक खूब ।
सरगां जैसे लम्बे बाल । चन्दर सूरज दोन्हों गाल ।
दीठ सुहावे जीव घुमाय । खूब सलोनी मन लुभाय ।
चान्द पेशानी दांत रत । खंदा रू हस सीमी तन ।
उन्ह कर पाले सैथी कान । गला-गरदन गोल सवान ।
सक्का सूरत खूब अजहद । सब्द रंग होर मौजं कद ।
अमृत घोले सर तो पाप । जो कोई देखे भूल जाय ।
सब्ज बाहाँ केले खाँव । जोवन वाले अंना आँव ।
रूपों अगले सूरत सार । नयन सलोने जोवन भार ।
जोवन सीना तखती खूब । कमर बारीक तो वह न कूब ।
जांधा बाजू हाथ पाँवँ । सरते पोरते सभी थाँवँ ।
खुक लगे पाले दोनों घर ? । धकरा लाया जानों घर ? ।
अतपर जोवन ऊभारी । जानों उटी औतारी ।
अंक खतीफा काकुम सार । रेशम थें भी सक्त अरवार ।
अल्ला दीता ऐसा नूर । जानों जन्नत केरी हुर ।

1. पलखा चोड़े जान कमल ।

खंदा रू बाहर दो लवा । देखत भूल्या बाप सगा ।
अब्दुल्ला की है वो जोय । वैसी औरत नाहीं कोय ।
मेरे जीव यूं यही चाव[1] । वो ही औरत मुजकूँ ल्याव ।
ज्यूँ होवे तुझ थैं तदबीर । तो लक न कर तूँ तखसीर ।
तो होय मेरे जीवमों सुख । नाहीं तो सदा सीने दुख ।
यह इक रही मुजकूँ हबस । पहले तूं करले उसकों कोयस ।
जे है तुजकूँ मेरी चाड़ । पहले तूँ उसकूँ फाँदे पाड ।
अब सुन मावी ऐ सरताज । तो हौं सुख सौं वैसो राज ।
पुरवे मेरे मनकी हौस । आने मुजको वह आरूस ।
ऐ जे नहीं मुझ यह बात । किसका राज होर किसका पात ।
याके करूँ तो उस सों भोग । या जे नहीं तो लेवं जोग ।
मावी सुनकर इतनी बात । यही रह्या दे दे गल हात ।
महबूत होवा तों हैरान । अब केबँ करनाँ में आसान ।
यह क्या मंड्या इन याजीद । कीता मुजकों दुख मजीद ।
लोगों केरी अब औरत । मैं क्यों कर आनू उस तूरत ।
शोहरदार पराई जोय । उसकों अब क्यों जायज होय ।
क्या उन लेता यह थाया । इस अन्देशो मुझ बाह्या ।
के वह छोड़े जिसके जोय । तदबीर उसकी अब केबँ होय ।
जे न करूँ तो बेटा राज । जानों हातों खोया आज ।
माविया उस अन्देशे पड़ । बाजाँ उठ्या यह पंद पकड़ ।
अब्दुल्लाकों आन बुलाव[2] । देते हुरमत केता चाव ।
बुलाया उस अपने पास । उस दिखाई तेती[3] आस ।
मीठी बातों उसकों लाब । लेता नसकों यूँ बहलाव ।
के नबी का तूँ कुरबत है । तेरा हक है मुझ पर यह ।
इतने दिन मैं गफलत था । कर न सक्या कुछ हक अदा ।
जो कुछ मुझ थैं हुई तकसीर । सो मुझ वबो सब ऐ अमीर ।
अब थैं हरगिज यूँ झखलत । होन न देसूँ यह भगत ।
अब हैं जो कुछ मुझ तैं सो । तेरी खिदमत करसूं हौं ।
ऐसाँ बाताँ उस सूँ कर । लेता उसकूँ हात मतर ।
बाजाँ भी ले ऊठ्या बात । सो कही अब्दुल्ल संघात ।

1. मेरे जीव में ये है चाव ।
2. पास. 3. बेटी.

के अब सुन ऐ अब्दुल्ला । नियत है मुझको यों बाअल्ला ।।
कें होवे तूँ मुझ दामाद । तू होवे मेरी खातिर शाद ।।
बेटी अपनी द्यूँ तुझ व्याह । या सद इज्जत ताजो कुलाह ।।
तेता बक्शूँ तुझ घन इते । जहोज अन्दन बेटी सात ।।
हर-हर जिन्सी पैरावा तुझ । देवँ जहाज अंदन तुझ ।।
सोना मोती हीरे खास । लू लू मिर्जा लाल अलमास ।।
कसूत केरे खुद अंबार । पास पतोली वाले शार ।।
खिदमतगाराँ वांद्या ले । देबं जहाज केते से ।।
तुज भी देव तेते दाम । थोड़े कपड़े बाँद-गुलाम ।।
साख्त मुरक जरखल जीन । ताजी घोड़े असला चीन ।।
तेजी तुर्की तुजकूं ले । बांद गुलामाँ केते से ।।
ताज कूलाह तझ हीरे जड । बन्द शमशीराँ सोने पड़ ।।
जर कमर बन्द भोंत जेबा । सोने तारों खास यबा ।।
सूक लबाची सकला तान । मुश्को अम्यर रह्या नान ।।
एते देवं तुख तशरीफ । कसूत शाहाँ जेब लतीफ ।।
तख्त मुकल्लल बिल्लौरी । ताज मुरस्सा जरी थीं ।।
मुसरफ साजों तुज अमोल । शाह उरूसी बादम्क घोल ।।
होरवलायत केते गाँवं । मसर हवा ले थानें थावँ ।।
लुत्फ करूँ हौं तुज चन्दा । अछे सारा खूश खंदां ।।
तेरे होये जो काबिल । बेटी देवँ तुज ताजीत ।।
इतना सुनकर अब्दुल्ला । गाढ़ा हुआ खुस बाअल्ला ।
लेकर उठ्या यो बरफोर । मुझ क्या लोरे उस थीं होर ।।
जथीं बन्दी केरे वखत । हौं मुशरफ बन्दगी तखत ।।
अम्घला लोरे अंख्याधर । यों वह रह्या आस पकर ।।
बीज सूके पूछें कोई । बूधी बैठी काँसा धोय[1] ।।
अत पर अब्दुल्ला जुबेर । मनमूं पकद्या सक्त उम्मीद ।।
जान्या नाँ के उससों लाव । काँची मत मुह उन भुलाव ।
जैता मावी कह्या रच—रच । जान्या की यह कहता सच ।
अत पर अब्दुल्ला खूश जबीर । खुश होकर फिर्या धर की धीर ।।
अत खुसी थीं होवा यूं । गगन रह्या पो टेक ज्यूं ।।
सच्चे जानों, जीव यों होयगा । इतना कुछ सब उस जोगा ।।

१. बूधी बैठी का नासाद होइ ?   २. मन में बांधी.

यों पर गुजरी उसकों रात । सुबह उठ वही खूशी सात ।
उठ्या घर थैं मुस्तईद होय । बजूकर मुंह हात पाँव धोय ।
कसूत कर हम परमल लाव । राजस्थानी बैठ्या आव ।
तोलग मावी केरा वक्त । होवा निकल बैठ्या तक्त ।
अब्दुल्ला कूँ पास बुलाव । खानाँ कंदूरी पान खिलाव ।
कहैं लाग्या बात इस धीर । सुन ऐ अब्दुल्ला जबीर ।
कल जो मुझ-तुझ हुई बात । बेटी घर मैं केती रात[1] ।
सुनकर रही चुप बारी । बाजाँ कह्या यूँ आरी ।
उसके घर जो आहे नार । गाढी जेवाँ सूरत सार ।
जैसी नाहीं अस्त नगर । उसकूँ कीजै जीवड़ा घर[2] ।
अतसुरूप हम रोशन होय । जेबाँ मौजू हम खुश होय ।
वही प्यारी अुसकूँ अस्त । हौं उस लोरूँ मुझ क्या गत ।
जिस घर पून्यो का चन्दना । उसकूँ दीवा क्या कुजनाँ ।
जिसकूँ है दिवटी मौत । क्या उस परदा दीवै जोत ।
हौंजिस लोरूँ आज उस रीत । उसकों अछे होर कोई मीत ।
वो उस घरता गाढ़ा प्यार । हौं क्यों होवँ उस घरख्वार ।
होर मुझ नाहीं ये ताकत । रवशो तयम्मुल अनूँ सकत ।
जो वो उसकों छोरेगा । तो पस मुझकों लोरेगा ।
इतनाँ बारी खूबी जान । छूटा खाटे मट्ठे कान ।
मनस करे सुख न होय । मुवे भले वैसी जोय ।
जो वह देवे उरा तलाक । होवे फर्द होर फरे कतार ।
तो हौं लोरों उस बाजाँ । ऐजें नहीं तो हरगजनाँ ।
इतनाँ सुन कर अब्दुल्ला । मन मों चौंक्या हैवत खा ।
मत जाइ मुझ दौलत न्हास । हात की रोजी मुँह काबाँस ।
तन्हाई की यूँ आस पकड़ । राजस्तानी लेटे पड़ ।
राजकँवर का लाग्या ध्यान । बिर गया होर सब ग्यान ।
लेकर ऊठ्या क्या खूब होय । अब ना छोरूँ घर की जोय[3] ।
तेरी बेटी को ज्यूँ । अहे रचा राखों त्यूँ ।
मावी कह्या ज्यूँ काबिल । तूँ खुद स्याना है आकिल ।

१. रात कैसा मैं बेटी सात
२. जूड़ा घर
३. केरी जोय

बाजूँ अब्दुल्ला जुबैर । जूँ उठ फिर्या[1] घर कीं धीर ।।
आया अपने घर बसाख[2] । दीता जोयको तीन तलाक ।।
वारे अब्दुल्ला जुबैर । जैनब बाहें तुरत अघीर ।।
लेकर उठ्या छोरी जा । तेरी मुख की क्या परवा ।।
तेरी तो मैं सौं खाई । राजा केरा जँवाई ।।
बा अल्ला अब हौं जाउँगा । बेटी उसकी लौरूँगा ।।
आज येह राजा मावी । हौं छुआ उसका जँवाई ।।
वो मुझ देगा घोडे-गाँव । तूँ क्या कीझें, दूसरी लाँवँ ।
जोय विचारी यों सुनकर । चूप रही यो सबर पकर ।।
अब्दुल्ला उठ मावी पास । आया मनमों पकड़ आस ।।
आवकर कह्या यों खुश होय । मैं जा छोरी घर कीं जोय ।।
ज्यूं कल किर्या बाद अजशाम । जैनब हुई मुझ हराम ।।
तीन तलाक मैं उसकों दी । तेरी बेटी ताई ।।
इतना सुनकर मावीं । बाजाँ कह्या उसकों भई ।।
'सच्चे कह ऐ अब्दुल्ला' । लेकर उठ्या 'हाँ वा लल्ला' ।।
वाजाँ मावी होवा शाद । पाई जीवकी ख्वास्त मुराद ।।
के मुझ जो कुछ था मकसूद । आपैं आप होवा जूद ।।
इतनें पर भी यों कह्या । छोडी तैं तो खूब किया ।।
जाता हूँ अब घर यूँ भी । राजी करूँ तुजसूँ थी ।
जें वह राची होए एताल । ब्याह बदीसों तुझ दरहाल ।।
आजच मांडू तेरा ब्याह । देवँ बेटी सजोजाह ।।
बारे जावँ बेटी घर । कहूँ उसघर यह खबर ।।
अब्दुल्ला अपनी छोडी जोय । मले अब तूँ राजी होय ।।
इतना कहकर मावी जाय । घर मों अपने सुख भुलाय ।।
घरमों लाई मौंत देर । तोलग अब्दुल्ला जुबेर ।।
रह्या बैठा देखत वाट । के अब लागे लगन पाट ।।
बाद अजदेर मावी आव । अब्दुल्ला कूं पास बुलाव ।
कह्या उसकों सुन ऐ यार । मुजकों लागी एती बार ।।
बेटी घर जा कही बात । अब्दुल्ला जोय छोडी रात[3] ।
तेरे आशख उन छोरी जोय । अब तूँ मले राजी होय[4] ।
यों सुन रही अदेशेमन्द । बाजां यह ले ऊठी पंद ।

---

१. भोड्या २. उशाक ३. छोड्या औरत रात. ४. अब तूँ उसको लोर

के उसकों थी जोय सुरूप । साहवे जमाल अज खुद खूब ।
बादाम अंख्याँ दाँत रतन । जेबा सूरत सीमों तन ।
वारे इस मुल्क होर इस दौर । वैसी औरत नाहीं होर ।
सो उस अहमक दीना कान । वैसी औरत छाड़ी जान ।
मुज तो नाँही खूब सुरूप[1] । नाही हौं उस जैसी खूब ।
वह जो करता मेरा चाव । तो सब दुनिया केरा भाव ।
जो वह था ना उस लायत । उस थैं जाय मुझ तूरत ।
भी उठ कर छोड़ेगा । होर एकादी लोरेगा ।
वैसे मानक की परवा । उस ना केती मुझ तो क्या ।
दुनिया तो उस रही नाँ । वह मुझ वफा करसे ना ।
जे उन छोडी वैसी जोय । मुजकों क्यों भरोसा होय ।
वह बेवफा अतआजिज् । उस न लोरूँ हौं हरगिज ।
जे तैं कहते भी यह बात । तो जीव देवँ अपने हात ।
वह बेवफा अब्दुल्ला । उस न लोरूँ हौं बाअल्ला ।
अब्दुल्ला यों सुनकर बात । रह्या मलता दोन्हों हात ।
होवा गाढ़ा घत खबल । रह्या यों कर मूँडीतल ।
लाजों को लाजों यो होवा । फाटे भूई तो पैसूँ जा ।
उठकर फिर्या[2] होय निरास । थंडी-थंडी बाह उसास ।
तूरत अब्दुल्ला जुबेर । दोहों घर हुआ ना उम्मीद ।
होना भर-भर आवे फूट । त्यूँ-त्यूं रोवे मुँह-सर कूट ।
हातों मानक खोया वाह । धाय-धाय रोय अब्दुल्ला ।
क्या यो कीता मैं भोंडी । अब अमराता सरमिन्दे ।
हातों खोई घर की जोय । हौं किस अखूं यह दुख रोय ।
मैं मन पकड़ी जिसकी आस । उस थैं हूवा यूं निरास ।
हौं कत भूला राजस्तान । मुज कत लाग्या बावल ध्यान ।
जिसकी आसे दीता सात । सो भी ना आये मेरे हात ।
जिस भरोसे किया कुछ । वाह निरासी छाव न मूच ।
जावँ दसन्तर काली रात । मूछ मूँडावँ दाढ़ी सात ।
होवँ जोगी पहरूँ भेस । पहरूँ कंठा जा परदेस ।
क्यों अब जीऊंगा यह मुंह ले । कोई बाप सट लीजें ।
बावल हुआ बावल जोग । एक दुख होर मूँदे लोक ।

---

१. वैसा रूप २. भोड्या

अब में भोंडा क्या करनाँ । निकत जानाँ या मरनाँ ।
आव पड्या मुज ऐ[1] हाल । लेवँ पेट कटारा घाल ।
हातों खोई घर की जोय । जोलग जीवँ बैठा रोय ।
अंख्या अंबू सीने गम । अतपर रोता रह्या जम ।

बाव पंजुम

था वहाँ एक कोई शहरी । नाँव उस मूसा अशरी ।
दाना आफिल मर्दें मीर । काम मशालेह की तदबीर ।
जाने खूबें दरहर बाब । याको धरया[2] याकी शिताब ।
आलम पूरा परडेवगार । खुश नूरानी दयानतदार ।
मोषा स्याना एक शायस्ता । थोरा पुस्ता आहिस्ता ।
मात्री उस कूँ पास भुलाय । देता भुरबत इज्जत वाक ।
करया उसको अब उठ सूँ । कर यों कुछ तुझ कान कछूँ ।
सो क्या आहे सुम ऐ बार । अब्दुल्ला की जो थी नार ।
उनको अब्दुल्ला कुबैर । छोरी मुतलक कर अधीर[3] ।
जैनब आहे उसका भाग । तूँ जा कर उस पैगाम ।
होर कुछ तशरीफ अपने सात । से कर जा उस तूँ कह बात ।
वा यजीद करता तेरा भाव । पीरत गनेरी तुझ सों लाव ।
अब तूँ पहले उस कों लोर । लो वह ताहे तुझ गलजोर ।
बाजां मूसा असरी । एताँ खूबें सुनकर यही ।
निकल्या उस घर कहे बाट । चल्या सीधें हाते हात ।
ज्यूँ यह चल्या जैनब पास । तोलग कासिम इबने अब्बास ।
गिल्या जसको पूछी बात । के मूसा किधर जात ।
मूसा कहया सुन ऐ यार । इब्ने जुबैर जो छोरी नार ।
उसको मँगनी जाता जान । याजीद मावी केरे काल[4] ।
बाजां कासिग ऊठा ले । जाता तूँ ऐ मूसे[5] ।
मेरे कारन यही[6] कुछ बात । कह उस अंधे लगे हात ।
मेरी यही कुछ निशानी । लेकर जा उनको दुर्रानी ।
खुब हुवी कर मुसे चल । दब दब चल्या जाइ निकल ।
जातें जातें ऐसे में । मिल्या तोलग शाह हुसैं ।
पूछ्या उसकूँ सीधी बात । कह रे मूसा किधर जात ।
मूसा कह्या, पकस काम । याजीद मावी के पैगाम ।

१. ऐसा २. धीर्‌या ३. वाहिर ४. माजिया ५. जाता तो तूँ ऐ मूसे ६. मो

लेकर जाता जैनब पास । बातशरीफ होर निशानी खास ।
इब्ने अब्बास उपर वही[1] । अपने कारन बात कही ।
तो हूँ जाता यूँ शिताब । यह क्या देगी मुझ जवाब ।
बाजां शाह हुसेन[2] अपनां । मी कह भेजा उस मंगना ।
के मूसे तूँ अब तो जा । मुझ कन्हे भी कुछ हुया ।
लेकर जा तूँ यह निशानी । बात हमारी भी गुजरानी ।
मूसा कह्या हाँ खूब हुई । तेर्या बाता भी एक हुई ।
कहूँगा उम्र अंधे जाय । बार्वा यह ओ कुछ करमाय ।
सो ओ कहूँ तुझकों जवाब । जैसा कैसा तुरत शिताव ।
यूँ कह चल्या मूसा पेश । पकस काम व तीन अंवेश ।
अंपड्या जेनब केरे घर । केते जाकर तुरत खबर ।
ज्यूँ ये जैनब पास गया । देखत अर्पं[3] भूल रह्या ।
उन पर होया दीवाना । दीवे पर ज्यूँ परवाना ।
बाजां पूछा उनसे । 'कह लाँ[4] आवा ऐ मूसे' ।
मूसा कह्या तेरे पास । वाजीद केरे काम उलास ।
उन्ह कर भेज्या मुझ रसूल । पहले तू कर उस कबूल ।
होर उन भेजी तुझ तशरीफ । सोना मोती खास लतीफ ।
भी उन पूछ्या होर क्या का । कह ऐ मूसा सब तमाम ।
लेकर ऊठ्या यूँ बरफोर । ए ही मुझ भी मकसूब होर ।
सो क्या सुन ऐ जैनब तूँ । वह भी तुझ घर[5] खोल कहूँ ।
कासिम करे तुझ पैगाम । त्यावा शरीफ सलाम ।
होर भी तिसपर शाह हुसेन । कहकर भेज्या तुझ बाहैंन ।
होर ये कुछ तशरीफ निशान । तुझ करे भेज्या बादिल जान ।
सुनरी जैनब[6] होर एक बात । मैं मन लावा तुपतन खाव[7] ।
बोल्या पहले तुझकन वीर । लाए में पैगाम गर गम्भीर ।
यूँ हौं भूल्या तेरे ढंग । दीवे कारन ज्यूँ पतंग ।
उन सैंघाते मुझ भी गिन । तेरे आशक चारों जिन ।
अब जिव भावे भले लोर । तुरत उस सूँ कर गलजोर ।
बाजां जैनब उठी ले । तुझ न लोरूँ ऐ मूसे ।
तू सट बिल्ला मेरा ध्यान । तूँ अब बूढ़ा में हूँ[8] जान ।

१. उस ऊपर भी २. हसन ३. आरन ४. कोधर आया ५. तुझको
६. अब सुन जैनब ७. संघात ८. हौं अत जान

ना धर तू कुछ मनमूँ पाप । हौ तुझ बेटी तूँ मुझ बाप ।
तूँ ही के ऐ मूसे । हौं किस लोरूँ सो कह दे ।
बाजा मूसा कह्या सुन । चन्दर रूपी ऐ भोगन ।
जे तुझ भावे मुल्क मजीद । तो अब तुरत लोर यजीद ।
और जो सूरत खूब जमाल । कासिम कों लोर तूँ दरहाल ।
ऐची दुनिया हम उक्बा । ऊपर इलाही चाव तुझा ।
तो तूँ लोरे हुसेन अली । ओ है दोनों जग वली ।
हौर नबी की खास औलाद । अली-फातम की जहजाद ।
जे तूँ स्यानी तो उस लोर । होर किसक्याँ बाताँ[1] छोर ।
यों सुन जैनब राजी हुई । हुसेन करने[2] अपना शोबनी ।
लेकर उठी ऐ मूसे । लोर्या बिल्ला मैं ऊसे ।
मला दबकर अक्द फराव । हरगज तूँ बार न लाव[3] ।
ओ सब छोरें मेरी आस । जिन्हों भेज्या तुझ मुझ ।
बाजाँ मूसा तो उस वक्त । हुसैन संघाती उसका अक्द ।
फरकर फिर्या[4] इतना कर । त्या भावी पास खबर ।
के ऐ भावी तैं जिस आस । भेज्या मुझकों जैनब पास ।
जाइ कही मैं उसघर बात । लेकिन नहीं लेहन हात ।
तेर्या बाताँ उन कीत्याँ रद्द । ऊहाँ होई होर सनद ।
कीता उन हुसैन कबूल । बाकी रहे थैं[5] मामूल ।
हुसैन अली कों बैठी लोर । बाकी थै तपते छोर ।
भावी सुनकर इतनी बात । लेकर बैठा सिरघर हात ।
यू सुन भावी ऊठ्या रोस । लेता अपनी दाड़ी खोस ।
वाह रे मूसा क्या कीता । सर थै सीने गम दीता ।
क्या यूँ कीता मूसे वाह । उधारा सर तो पाह ।
केवँ-केवँ कर मैं किस हीले । राखी थी उस रे मूसे ।
क्या क्या कीता मैं उिल्ला । तो उस छोरी अब्दुल्ला ।
मैं किस हीले करूँ जान । अपने बेटे केरे कान ।
मनस केन न थी छूरवाई? । तो हौं बेटे जो नकाई ? ।
वह ऐ मूसे अशरी । अब कीधर परीतें जाय ।

---

१. बातन २. संघान
३. पर हो दब कर अक्द-निकाह । लाव न हरगिज तूँ बेकाह ।
४. मोर्या ६. सब

कीता सारा काम अवतर । तलका ऊपर जेरो जबर ।

बाब शशुम

बाजाँ यजीद सुनकर बात । रह्या मलता दोन्हों हात[1] ।
जिस के मागों पाया फल । त्यों-त्यों यजीद ऊठे जल ।
यजीद पकर्या मन मों-रोस । वाह न आई[2] जीव की हौस ।
रह्या मचता ही हाय[3] । बाजाँ कह्या[4] यों सौं खाय ।
तो लग नावे मुज भरक । जब के लेऊँ बाटँ खडग ।
हुसेन अली का काटूँ सर । तों होय मेरी खुश खातर ।
नाहीं तो बिल्ला मर्द न होय । जालूँ दादी सबतन जोय ।
यूँ हुसेन केरे पर्या खयाल । लेकिन मावी घरंजे हाल ।
बदबख्त यजीद बदहरकत । देखन लाग्या यों फुरसत ।
कहीं पाऊँ खैर दस्तरस । या होय जो मेरा बस ।
करना जो कुछ उस करूँ । जिवडा लेऊँ दुख घरूँ ।
पकर रह्या यूँ नीयत । हुसेन कों के ही देऊँ हरकत ।
लेकिन कुछ न सके कर । सुन कह मावी केरे डर ।
भावी उस कों कहते[5] पन्द । हुसेन सेंती हरगिज दन्द ।
न कर पूता तूं बुध सुन । उस सूं कर तूं जिस के गुन ।
उस सूं न कर तूं बद हरकत । खूबे उसकी रख हुरमत ।
जो वह मंगे सो उस दे । उस तैं मुख न मोरे रे ।
वह है खास औलाद रसूल । जग का प्यारा हक मकबूल ।
तूं कुछ उस कूं दुख न धर । उसके हक भलाई कर ।
उसपर कुछ……न कोई ? । दोन्हों जग में बदनाम होई ।
नबी केरे कसमी जान । तूं न सके ताकत आन ।
जीता मावी केती खबर[6] । कुछ न हुई उस असर ।
पकर रह्या जीव मों गाँठ । ऐसा पापी सर्दक ताँठ ।
सो लग रह्या चुप केता । जो लग मावी था जीवता ।

बाब हफ्तुम

बाजाँ ज्यूं के माविया । हुक्म खुदाई मर गया ।
यजीद होवा सकला राज । तकत पर बैठ्या सिरधरताज ।
हश्म कदम घोरे खील । दाम खजाबा हाती फील ।

---

१. मलता रह्या २. न माने ३. रह्या तलमल हे हे हे ।
४. बैठा ५. आखे ६. जितना गावी की खबर

हीर सतांम सब आए हात । मुल्क विलायत अखताआत ।
बदबख्त होवा गाछा[1] रह साद । तुरत अदावत की बुनियाद ।
माँडी उन बदबख्त यजीद । लेकिन दरखूह अंदेसद ।
के उस कों अहे पुश्ती बल । क्यों अब होए यह मुश्किलहल ।
हसन दफा होता जे । तो हौं सकता बाजी दे ।
जो लग हसन जीवता है । हुसेन सों हरगिज कोए ।
करे जो उसका बेंगाबाल । किसका अतजग यह मजाल ।
देखे उसका मुख न झाय । किसकी ऐसी ब्यानी माय ।
हसन जो पुश्तेवान । दाँत बतौस झाडे मान ।
हस्सा हुसेन जबलग दोय । मुझ थैं बाल न बेंगा होय ।
हसन जैसा भाई उस । उस घर देखे कोन मनुस ।
किस यह कुदरब दौलब खोल । हुसेन बराबर सके बोल ।
कोबकर जब होय सवार । खरक पर ऊठे लश्कर मार ।
बैरी अपनी झूटी घर । तल की माती ऊपर कर ।
इतपर यजीद बद हरकत । मन मूं पकरी यूं बिन्नत ।
हसन कूँ अब जहर देऊँ । यों पर उसका जिवडा लेऊँ ।
न कुछ चलती ये बाजी । बाजी उन यों दरसाजी ।
सोना रूपा कुछ तशरीफ । पात पतोली शार लतीफ ।
मानक मातीं हीरे लाल । जेवर कसूत हम जरमाल ।
हसन केर औरत पास । दाई मुशाता बाखवास ।
भेजा ये सब उसके हात । जाय कह यूँ उसघर बात ।
ये तुझ भेजा सगला ले । हसन कों तूँ जहर दे ।
होर भी जो कुछ माँगे तूं । सो यही तुरत तुझ देऊँ ।
हसन कों तूं जीवों मार । दे तूँ उस कों जहर निसार ।
तो हो लोरू तुझ बाजाँ । तुझ सूँ अछूं बादिल-जाँ ।
तूँ सुख सेती भोगे राज । आवे तेरे हात रिवाज ।
हसन केरी दुनिया सब । केती दौलत दाम व दव[2] ।
दुनिया दौलत मुझी जिसन । तूँ के रहे यूँ परकम ।
हसना कों तूँ दफा कर । तोछ आनूँ[3] अपने घर ।
हौं तुझ राजा तूँ रानी । तूँछ हो सके राजधनी[4] ।

---

१. गहरा २. दाम दरब (द्रव्य)
३. तो तुज आनूँ ४. तूँ है सकले राजधानी ।

पहले उस कों कर बेजाँ । तो हम पावें सुख बाजाँ ।

बाब हरतुम

यूँ तुम औरत राजी हुई । घन कों भूली प्यारे मुई ।
जान्या के अब यजीद होय । हौं यही उसकी जोय ।
तो सब आवे मेरे हात । यह धन सारा राज संघात ।
उसी के बोली यूँ पत्याव । के सच्चे करता मेरा चाव ।
ज्यूँ ये देख्या सब धन माल । सोना मोती मानक लाल ।
राजी हुई यूँ धन की । कीत उचाया हसन से भी ।
जीव मों पकड्या अत स्रात । हसन के जीव पर माँड्या घात ।
दामों केरी आस पकड । झुटें बोलों फांदे पड ।
मनुस की छोरी यूँ परवा । काट सते जीवँ सनेवा ।
यजीद की उन पकरी आस । मौजूद रख्या जहर पास ।
उन तरा से नाकस जोय । ज्यूँ उन कीता करे न कोय ।
शाह हसन था रोजादार । ज्यूँ के हुवा वक्त इफ्तार ।
पानी माँग्या औरत पास । उन कीता घात बसास ।
कदह भरकर जहर कलाब । हसन बाहें उन पिलावं[1] ।
ज्यूं उन पीया ऊठी आग । गाबर गया जीवं न लाग ।
दाजन लाग्या सीना सक्त । रह्या पसर होय तसत ।
हातों-पावों ऊठ्या जाल । फूटन लाग्या सीस-कपाल ।
अँख्या लाग्याँ दीपक मान । लरजन लाग्या जीव प्रान ।
रगाँ खींचाँ नाड तलफ । जीभ काटता मुह मूं कफ ।
थरहर हुआ अंग निढाल[2] । रह्या हसन यूं बेहाल ।
सर्वे सांधे ढीले हुवे । अंखो फेर्या कालज हार्या होवे ।
चे ही कोंड दें तलसे दिल । लोहू पानी हुवा मिल ।
नरडे सूके खींच गला । कौन जहर ये कौन नला ।
लोहू छाँडे होये खंग । नीला पीला हुवा रंग ।
अंग होवा सब हर्या-सब्ज । होव लागा जीवडा कब्ज ।
कोंडे दम होर मूंडी सूत । अबकम रहे लोग मभूत ।
रोवं लागे उपर पड । हसन दातों मिट्टी धर ।
रह्या पसर हैरा होय । जहर दिया पाप न जोय ।

---

१. बोलन २. शाह हसन को आन पिलाव
३. बदहाल

बाजाँ यूँ सुन शाह हुसैन । दबदब पावँ कफशाँ थैं[1] ।
निकल आया यूँ घर थैं । टूट पड्या ज्यूँ ऊपर से ।
ए जो देखे अत शिताब । भाई हुआ है बेताब ।
हसन हसन करता धाय । दोन्हों नैनों नीर बहाय ।
ऐ[2] हुसेन जो देख्या हाल । हसन हुवा सक्त निढाल[3] ।
रह्या हैरान उन्हें देख[4] । यह क्या माड्या एकाएक ।
यूँ देख अपस देता सट । करने लाग्या वह कट-कट ।
वेखुद हेवे नाराभार । अवकम रह्या सुद्द बिसार ।
रोवँ लाग्या यूँ सरकूट । जानों आसमा पड्या तूट ।
सीना कूटे चोरे[5] हात । क्या यूँ हसन मांडे घात ।
बाजाँ उठकर नेडे आव । लेता हसन कों गले लाव ।
पूछें लाग्या ऐ सरवर । मुझघर कह सब हाल खबर ।
ये किन केता तुझ जीव घात । कह ऐं हसन मुझघर बात ।
हसन कह्या सुन रे मीत । मुझ मूँम्नाही ऐसी रीत ।
ऐब की किये के बदसाजी । गैबत कोई गम्माजी ।
क्या अब आँखों मरती बार । लोगों केरे ऐब इजहार ।
जो कुछ हुक्म इलाही का । हुआ जो उन चित्या था ।
अब सुन मेरे भाई तूँ । तुझघर अपनी बात कहूँ ।
बारे मुझ यूँ मांड्या हाल । तूँ मुझ पछे सब संम्हाल ।
ओ हुसेन चन्दर गुन[6] । एक नसीहत मेरी सुन ।
मेरी आहे यूँ रजा । मेरा ताबूद जनाजा ।
ईहाँ थैं तूँ लेकर जाह । तन्हा मुझ न छोड़े वाह ।
गोरूगरेवाँ भीतर मुझ । गाड न हरगिज अखूँ तुझ ।
मुझ मदीने दफन कर । जहाँ सोते पैंगम्बर ।
मुझ अकेला खुरबत में । हरगिज न घर ऐ हुसैं ।
होर इन पोंगड़ों कारन मुझ । रह्या गले जीय उल्हज ।
मेरे फरजन्द ये बच्चे । तुझकों लागे भतीजे ।
लेव बंटाएँ उन का दुख । गोर में मुझ होए सुख ।
जो लग जीव्या तो लग मैं । पाले उनकों ऐ हुसैं ।
जाने माले उन के कान । कीते मैं सब यूँ तूँ जान ।

---

१. घर थैं गोशाँ पैं २. आय ३. बैंहाल ४. यूँ उस देखा
५. जोरे ६. कौन

अब तो नाहीं ताखत ताब । तो तूछ उन्हों का भा होर बाप
मुझ बिन होते निरधारे । दूखों केरे ए प्यारे ।
सूखों राजे लाड लडाव । ये जीवपापीउन सों लाव ।
मेरे जीव की हनोज हवस । नाहीं के पस आये दिवस ।[1] ।
बारे में तो बाँध्या रिकत । उन को गुरबत होसी सकत ।
कौन अब पाले उनका लाड । सीने आया आप आफाड ।
मुझ बिन होए आज यतीम । ऐसा कीता हुक्म हकीम ।
अब जीव उलझ्या गल्ले आव । इन्हों प्यारों केरे चाव ।
मत ये लोगों केरे बाप । देखत ऐसें के[2] आपें आप ।
नन्हे जीब होर नादान जख । केवँ भुलांवे जीव का दुख ।
किस लग वैसे किसके पास । मत ए तरसे बाह उसास ।
होते ये मुझ वाज गरीब । तुझ बिन नाही कोई हबीव ।
यों अब्र सफर आया मुझ[3] । मेरे पोंकरे लागे तुझ ।
उन पर महर मशक्कत[4] कर । ज्यूँ तूँ अपने प्यारों पर ।
यूँ रहा कह[5] हसन बात । भाई घर हीर यारों[6] सात ।
रो रो यों नसीहत कर । आए सकलों के जीवडे भर ।
बोल लागे ये सीने में । सबर न रह्या हुसेन में ।
रोए गल लख भाई के । रोवँ लागे हिया ले ।
यों पर शाह हुसेन अरलाव । भाई उपर पर्या आव ।
ले उस सीने सात पकर । आया भरकर जीवडा भर ।
गल लग रहे दोन्हों पड़ । रोएँ सहावे अंखों पर ।
हुसेन गल लग सीने आन । रोवँ लागा बोल बखान ।
रो-रो अखे यों हुसेन । अब के बिछोडे कद मिलें ।
वो तूँ जाता मुझ दुंकघर । यों दर मांदा बिलखी कर ।
तुझ थै बिसर्या हौं मा-बाप । अब क्यों आनूँ ताकत ताब ।
तेरे प्यारों हौं था शाद । मा-बाप न आवते कच्ची याद[7]
अब ये दुख में[8] क्यों सहूँ । किस पुकारूँ कि कहूँ ।
अब बिछुरा हुआ जिसम[9] । तुझ बिन थाके यों परकम ।
अब के लेऊँ किस का नाँवँ । किस पुकारूँ कीधर जावँ ।
यूँ पर दोन्हों भाई मिल । बोल्या चाल्या कीता फील ।

---

१. बराए दोस २. तपेंगें ३. मांड्या ४. शफक्कत ५. आखे ६. लोकन
७. मा-बाप कद न आने याद ८. हौं ९. होता जग

बाजाँ हसन कलमा कह । निकल गया जीव जबरह ।
चल्या हसन कलमा कह । निकल गया जीव जबरह ।
जान पैवस्त ब रहमते हक । कुछ न रह्या दम मुतलक ।
बेजाँ होकर छु चुप रह्या । जीव वहक्के तसलीम किया ।
रोयकर उथे सारे लोग । वाहवले कर हसन जोग ।
हुसेन उठकर अप पछाड़ । गर्‌या[1] पकर कपरे फार ।
पीटन लाग्या दाढी तोड । लोहू न्हाए सरु मुँह फोड़ ।
सबतन अपना माटी घाल । खोले सरसूँ मोकले बाल ।
फर-फर रोए बोल बकान । घरती ऊँपर खाल पलान ? ।
तुज गत ऐ मीर गराज । मुझ दुख पर्‌या दूर व दराज ।
तन्हा हूवा हौं तुझ बाज । परकम थाक्या बारे आज ।
बकामुज क्या यूं दुख पहार । जाने ओही ऐ[2] करतार ।
अब ढलकी सर की लाँवँ । केता रोवँ लेले नाँवँ ।
क्या मुझ ये दुख दिया रे । चुक ओ हसन प्यारे ।
रहे[3] दोनों यों गल लग । नहीं[4] बूझी जीवकी आग ।
हुसेन रो–रो बयान कर । सकले लोगों होना[5] मद्द ।
सीना फाटे झरे फूट । नयन छोंड़े यों अम्बू तूट ।
ल्होरे बूरे औरत मर्द । गोत्यों नात्यां हुआ दर्द ।
ज्यूँ-ज्यूँ हुसेन रोए जार । बोल बखाने नारे मार ।
सकल्या कों यों उठ्‌या सोज । रोवँ लागे ताशब रोज ।
ल्होरे बरे खास व आम । नौकर चाकर बाँद गुलाम ।
खवेश खराएव घकले मिल । रोवँ लागे यों वे दिल ।
भाई भैना गोई होर । सकले मांड्‌या मातम शोर ।
रोएँ कूटे[6] सब परवार । होए तुज बिन यों निरधार ।
ज्यों के परिन्दा बेपर होय । गूथ कर बाजू तोरे होय ।
यूँ हो रहे तुज बिन आज । तन्हा होए बेसरो ताज ।
हसन हसन रोइ कहें । शोर उठ्‌या सब नगर में ।
उन पर मांडें ताजियत । हसन हुआ जीवँ मय्यत ।
अम्बर गरज्या लरजी भुई । ज्यानों कयामत हुई[7] ।
सूरज दूखों पकड़े ताब । चाँद घटे नित झर झर आब ।

१. गरेबाँ २. एक ३. अछें ४. तमैं बूझे जीव की आग ५ हियाँ
६. रोबन पीटन ७. तल की माटी ऊपर हुई

डोंगर · बिकसे घाट । फतर तरके सीना फाट ।
रूखों सेंती पान विखर । दूखों होय घँस खाँकर ।
फूलों बाडी कुमलाई । सेंवती चंपा जुई-जाई ।
घोंघची सीना लहू भर । काला लीका मुख पर घर ।
दूखों लसना जंगल जाय । बाग माली तीजी यरवाय ।
डोंगर दूखों बनवालाग । सेती जीवँ के पीसे आग ।
यों पर हुवा हुक्से खुदा । रोते रहें लोग सदा ।

(नाना साहब की कब्र पर जाना)

अतपर बाजाँ उथ सकलें । हसन बाहें गुसल दे[1] ।
आने कपरे कफन साज । ताबूत-दोला दूर दराज ।
यों उन कीता मुस्तईद । बेरूँ तुरत मांडे जीद ।
जेवँ थी हसन केरी आस । पैगम्बर के रोजे पास ।
लेकर निकले ज्यों ए सव । दफन करने कूँ दवदब ।
आए बैरी अरै हुए । तांबूत बाहे पारी कोय ।
जान देते रोजे पास । यूँ आए आल नबी के खास ।
कहूँ सब राखना ज्यूँ ताबूत । रहे सारे लोग मभूत ।
कव कॅव करना क्या तदवीर । आए मुतलक बाजे नेर ।
परकम रहे यों अरे । इस अंदेशे सब पडे ।
क्यों उस रोजे ले जावें । या उस ह्यांच दफनावे ।
यों पर करते सब बिचार । बाजाँ कह्‌या किन्ही यार ।
आंधें मांडे ये आफत । उस कों रोजे गया हाजत ।
लेकर जाना दूर दराज । चंदे टज-टक शोर फराज ।
इस सख्ती से होर जोर जफा । ऊहाँ धरे क्या नफा ।
जहाँ माती हसन की । ऊहाँ हाजिर रूहन नबी ।
बारे उस मशक्कर सात । ऊँथे दूर ये घाले बाट ।
काहे जाना मदीने । इहाँच उस कों दफन करें ।
कि इसे बारे दफनाव । कुछ खरखशा न लाव ।
ये है आल नबी के खाल । नबी हाजर उस के पास ।
क्या उस हाजत मदीने । या की कावे मिल्ले[2] में ।
अब जरूरत राजी हो । इहाँच उस कों दफन करो ।
सकले इतनी सुनकर बात । राजी हुए जरूरात ।

१. शाह हसन को गुसल दे २. मक्के

काबिल सकलों के आया । ओहीं हसन दफनाया ।
बाजां ज्यों थी रीत रसय । करते रहे अंदोह गम ।

(हसन की पत्नी का यजीद के साथ विवाह के लिए प्रार्थना करना)

होर हसन की भी औरत । लोकों[1] लाजों जरूरत ।
रोय बैठी गोत्यों पास । लेकिन जीव मों होर कुछ आस ।
यों पर गुजरे केते दिन । बाद अजड्डत मासक तिन ।
जो उन हसन केरी जोय । झुठे सच्चें रही रोय ।
यूँ कह भेजा यजीद पास । हो घर बैठी तेरी आस ।
ओ यजीद अब मुझको बस । आस लागी रातों दिस ।
अब तूँ अपना बोल संभाल । मत मुझ झूटे फेर घाल ।
तो खुद होई हौं बारा बाटँ । कोई मैं ज्यूँ जिवडे काट ? ।
यों न दे मुझ दुख लाव । आस लगे कों कांजी पिलाव ।
अब यही मुझ कों तेरी आस । बिलखत हों कर लागी कास[2] ।
तेरा पकर्या मैं आधार । लोट न दे मुझ डोह मझार ।
तूँ अब संभाल अपना बोल । हो न दे मुझ दावाँदोल ।
इतना कुछ यों कह भेजा । भला अब तूँ मुझ लेजा ।
कौल केता था मुझ सूँ तैं । तो पस मार्‍या हसन मैं ।
भला अब मुझ अवद पर्हाव । घर मूँ ले मुझ तख्त छराव ।
यजीद इतनी सुनकर बात । मैहने दीते ताने सात ।
लेकर उथा जा उस कह । अपने पत्ती सद्दा रह[3] ।
ऐसा किस का अगला जीव । जोरे तुझ सूँ पिरत सनेव ।
व्याँ ब्याही जिसके थी । तूँ ना गुजरी उस सें थी ।
मुझ कों नाहीं जीव अकला । आनूँ सितम घर जला[4] ।
वैसा सरवर शांह हसन । उस कों केती सख्त जतन ।
तुझ थीं आया जीव विरास । जीवँ उस केता तुरत निरास ।
पैगम्बर की ओह औलाद । अली फातम की जहजाद ।
ल्होरपने का तेरा शाह । तैं उस जीवं मार्‍या वाह ।
हसन सूँ खाया पीया जम । उस को केता यूँ परकम ।
व्याँ ब्याहा[5] जीव का मीत । उस सों केती तूँ ये रीत ।

---

१. लोकन लाजन
२. बिलखती को ले जा पास ३. एहीं अब तूँ तपती रह
४. आ नों सत में घर नुला ५. वाल ब्याहा

उस का जीव तैं लेती वार । टुक न आया मेहर प्यार ।
मुझकों क्यों भरोसा होय । देखत पेखत ऐसी जोय ।
आनू यूँ घर में खुणी मात । वाजां जीव देवें तेरे हात ।
जिस की दौलत तैं दुख वाज । सब सुख भोग्या देख्या राज ।
उस कों बारे तूँ क्या होई । सो मुझ कह ऐ प्यारीं मुई ।
जिस थें तुम सुहागन नावें । ऊँची देसक पाई ठावें ।
जिस थें हुवा तुज कों मान । सब बीबीयाँ में जहान ।
जिसके घनतैं कोसती मुख । दीठा होर यों भोग्या सुख ।
साहूरी पीव की माने लोक । सता खसमत सब जोकं[1] ।
जिस थें दीठा सुख आनंद । ऊँची बैठक सदर बलंद ।
हसी खेली दीठा जग । ल्होरपन पे बटपन लग ।
हसन सूँ भोग्या सब सुख लाड । उस पर चाही तैं यों धाड ।
फट पडे[2] ये तेरे ढ़ंग । तुझ पापन सों कैसा संग ।
ऐसी बिल्ला तू गदरी । मनुस के जीव पें नामुजरी ।
बैठी[3] नाहक जीवँ मार । वैसा सरवर शाह मतार ।
जिसकों[4] थी तूँ जीव प्रन । उसे क्या होई हक जहान ।
जाने भालें जिन दीते तुज । उस क्या हुवा वाजां मुझ ।
ऐसी खोटी तूँ वेबफ़ा । हौं तूझ लोरूँ क्या नफा ।
आल नबी की हसन शाह । उस कों तैं यों मार्या वाह ।
बैठी नाहक जीवँ मार । क्यों तुझ चकेगा करतार ।
मनुस मार्या प्यारे मुई । मेरे भी अब ख्यालों हुई ।
दुश्मन सतीं राखी होय । धन कों भूली मायी खोय ।
बैठी अहमक यों कर कुछ । फट न राखी छाचें न मूच ।
भी कुछ लाया चाली छंद । पहले तों सारे अपना दंद ।
तूँ के भूली मेरे बोल । हातों दीता मानक तोंल ।
दुश्मन केरे बोलों पर । ल्होर पने का यूँ मितर ।
फी तैं मार्या गैबानी । अब जक खा तूँ पशेमानी ।
मुज कों नाहीं तेरी चाट[5] । आनूँ नितम घरमूँ धार ।
ना तुझ अल्ला केरा डर । ना कुछ शर्मअज पैगम्बर ।
वो तूँ ऐसी कालज जोग । तुझ सेतीं कँ ही भोग ।

---

१. सब तुज जोक २. वहू वुरे ३. गनस
४. जिसकों ५. चाड़

तुझ पापन का काला मुख । देखा न आवे कैसी तुख ॥
तेरे धन कों लाऊं आग । मुझ क्या कीजे यह बज्जाक ॥
जालूं तुज को चूल्हे घाल । जीव तुझ मारूं सात पताल ॥
अब मर बिल्ला सत्यानाश । जलते चूल्हे अपस दाट ॥
काला मूं ले नीचे पांव । कोई लागी जनम पछताव ॥
मुझ कों नाहीं तेरी होस । अब जम बैठी खा अफसोस ॥
बाजों हसन केरी जोय । ऐसा सुन शर्मिंदा होय ॥
रही मूँवी तल्हें कर । तूट पर्या दुख छाती पर ॥
हातों पावों ऊथा कांप । देवें जिवडा मरजी चांप ॥
यूं पर रही कारी खूत । कीधर मुंह छुपावें ऊथ ॥
लातों उस कों यूं हुवा । फाटे मूई तो पैसों जा ॥
अबकम रही शबर होय । किस आखों वे दूख रोय ॥
रही परकम मुंड पलेट । कुटे मुंह होर सीना पीट ॥
तोरे केहीं देह परान[1] । या गल घाले फासी तान ॥
यह जीव अब क्यों काढ़ी जाय । सदा तपती दूख बढाव ॥
ले ले मुं मे धूल । वह मुझ काली कैसी भूल ॥
अब यों मूक्री हों घर थी । इधर की ना उधर की ॥
यूं क्या होवा ऐसा कुछ । परकम रही छाछन मूछ ॥
वह हों लागी जिस की आस । उन मुझ केती यों निरास ॥
वाह न आन्या उसका अंत । मैं अथ हातों खोया कंत ॥
अब दुख दाधी किधर जायें । म्हारे पिव के नाहीं ठावं ॥
रही तों मुख माटी डाल । परकम थाकी सदाकाल ॥
वो क्यों सोरे ये दुख हों । आखों अंझू सीना दों ॥
जैसा किया पाय सोय । अब किस अखूं दुख रोय ॥
दबती रही निरधारा । रो रो दिवा जरमारा ॥
जैसा किया सद्दा पाय । जो लग जीव पछताय ॥

(करबला की घटना)

हुसन पीछे ज्यों अफात । अंपरी यजीद लग ये याद ॥
सुनकर होवा माढा शाद । पायी जीवें की खास मुराद ॥
के अब हुवा हों बेगम । हुसेन पर्या बाजू कम ॥
जो उस करना अब करूं । ज्यूं मुझ कहाये भावे दुख धरूं ॥

1. जीवती गा रूं 2. अब किस आखों

जेता लोरूं करूं अजाब । कोन अब वरजे मुझ इस बाब ॥
बाजां यों खयालों । हुसेन केरे दुंबालों ॥
यजीद थाँ दरशहरे दमिश्क । लेकिन शबो रोज अंदर फाक ॥
उसके बहतों कोई वजीर । था मदीना मान अमीर ॥
उसका नावँ वलीद उखाव । स्याना आकिल दरहर बाब ॥
यजीदभेजा उस फरमान । के हुसेन अली को तूं जुबान ॥
मर नेवती उस कों कह । मेरी दुराही भीतर रह ॥
राजी मेरे खतबे पर । अच्छें मुझ सों बैत कर ॥
जैसी वो आडी कहे बात । एं जे नाहीं तो सर काट ॥
भेजे मुही पास उसका । तो सल बैठे सीनेका ॥
जीवँ ए अँपर्या उन नामा । कहें वलीद उस बाजों ॥
हुसेन अली कों उन बुलाव । ओहीं लिख्या उन किखलाव ॥
लिखा यजीद केरा ऐन । ज्यूं फर[1] देख्या शाह हुसेन ॥
ई गैरत कह्या जवाब । अब सुन ऐ वलीद इताब[2] ॥
यजीद बारे कों कह आम । काफिर दुश्मन दीन व इस्लाम ॥
हक की रहमत सूं बेजार । जालीम मलून दावेदार ॥
हक कार उ दुश्मन दीन? । उस थें नाखूश नबी यकीन ॥
हों क्यों आनों उस बैत । भेजूं उस पर जम लानत ॥
दुश्मन सती हरगीज कोय । अपें बैत राजी होय ॥
हों खुद खास औलाद रसूल । क्या उन लिखूया नामाकूल ॥
हीं क्यों आनूं उस के तल । क्या उन के केती बात सहल ॥
बाजां जो के वलीद इताब । हुसेन कने थे ऐसा जवाब ॥
सुनकर तुरत उन खास । लिख पठाया यजीद पास ॥
कैस ने भेज्या मुझ फरमान । सो मैं हुसेनघर गुजरान ॥
कह्या उस कों जों कहना सों । तेरे खतों भी एक दो ॥
केती उस ताकीद तमाम । जो तेरा मुते होय मुदाम ॥
लेकिन शाह हुसेन हरगिज । नाथा कहें तुझ आजीज ॥
अब जे एंजे उस पर हैफ करूं । मारूं पकरूं दुख धरूं ॥
तो मुझ नाहीं यूं कुदरत । उस कर सकूं ले हुरमत ॥
ज्यों उन भेजा सब लिखकर । अंपरी यजीद लग ये खबर ॥
यो सुन यजीद गुस्से आब । भौंक न लाग्या नाक छडाव[1] ॥

1. पत्र (पत्र) 2. जवाब

बाजाँ तभी उठ मर्दक खर । नामाँ लिखकर रोसूँ भीतर ।
भेजा रोई वलीद इताब । कह ये फिर तूँ जूद शताब ।
हुसेन अली का सीस कटाव । तहें ला तूँ मुझ पास पठाव ।
होर कुछ भेजी मदद ले । हस्य घोरे केले से सै ।
सरे लश्कर सो उमरशाद । वलीद को भी यों कागज ।
लिखकर भेजा बाताकीद । उन बदबख्त नापेकार यजीद ।
जो न अंगू आए तुज हुसेन । तो ये मदद भेजी मैं ।
अब ये नामाँ तूँ फिर सहेज[१] । हुसेन अली का सर काट भेज ।
ज्यूँ वलीद ने सुनी ये बात । तहें उथ्या आधी रात ।
हुसेन अली को की खबर । यजीद मांड्य तुझ पर गदर ।
मुझ लिख भेज्या यूँ ताकीद । होर भी मदद फील मजीद ।
जोलग आवे नामजदी । या तुझ अपरे कुछ दली ।
उतन्हें मैं सियानाँ होय । गफलत केरी नींद न सोय ।
हौं हूँ बारे तुझ होस । ना कर या अल्ला मुझ पर रोस ।
शाह हुसेना चंदरुकन[३] । बिल्ला मेरा कह्या सुन ।
अब तूँ यहाँ थैं निकल । जे तुझ अहे सुद अकल ।
भला तूँ ए शहर छोड । सितम अपने नावँ मोर ।
घर थैं चुक जा रह दूर । जाले झारे इद जरूर ।
न्हास हुसेन अब गावले । जितनी तुझकों ताकत है ।
देर न लावे तू ए शाह । हौं हूँ तेरा एक खवाह[४] ।
जो लग किस कों नाहीं सुद । देख कर जा सुन मेरी बुद ।
वाके आवे जो लग कोई । यजीद कने थें नामजद होय ।
तूँ जा तोलग यहाँ थैं । झारा मेरा बठे भी ? ।

(अन्ततः इमाम हुसेन का मश्विरा)

जो वलीद उसकी खबर । तहें हुसेन घर जा कर ।
उम्मे सलमा पास बुलाव । लागे करन मश्विरत भाव ।
यूँ उन मांड्या मुझ पर जोर । अब मुझ नाहीं पुश्ती होर ।
केवँ करे अब किधर जायें । ओ किस जंगल-रान भराय ।
ये कुछ बुद दे ए मादर । जिस थैं खैरियत होय असर ।
बाजाँ उम्मे सलमा सुन । अबकम हो रही सर धुन धुन ।
क्या ये मांड्या बेरों जोर । आया मत के आखर दौर ।

१. हुवा २. पडतेज ३. चंदरकोन (चन्दर गुन) ४. नेक खाह

बाजां माती करबल की । सीसा भर जो रखी थी ।
सो वो आई उस को याद । ऊथी उम्मे सलमा आजाद ।
ए जो देखी सीसा खोल । माटी हुई सब रकत घोल ।
देखत ऊठी सीना कूट । अंखो बररे अंझू टूट ।
रही अबकम यों वे खुद । होई हैरान खोई सुद ।
बाजाँ उठ यों रोती आव । हुसेन अली को गले लाव ।
पेट संघाती पकड रख । रोवन लागी सहक सहक ।
रो-रो हुई यों मभूत । वाह हुसेना प्यारे पूत ।
वक्त शहादत आया तुझ । कह्या था यों[१] नबी मुझ ।
सो अब हुआ सब जाहर । जरूरत जानाअब बाहर ।
यों सुन खबर चुपकर दोऊ । हुसेन थैं भी उठ्या सोज ।
रो-रो होए यों बेहाल । सहक सहक अंझू ढाल ।
उम्मे सलमा रोई हाय । दोन्हों नयनों नीर बहाय ।
हुसेन केरे केते पाव । अंखो ऊपर राखे लाव ।
सरपर वारे दोनों हात । तनवे झारे केरूँ सात ।
यों घर लाया सीस गले । रो—रो अखे बाहवले ।
वाह ए मेरे शाह जवान । क्यों हो रह्या रे हैरान ।
पैगम्बर का प्या तूँ । बैरी मडिया यूँ तुजकूँ ।
बहुत बैरी[३] ऊ याजीदी । करना बाफरजन्द नबी ।
एता जुल्म होर जोर जफा । ना उन शरम अजनुस्तफा ।
ना डर अल्ला का उनकूँ । ना तक पैगम्बर का मूँ ।
ना कुछ उन कूँ शफवकत । आई घरी तुज मशकत ।
क्यों करदन रे प्यारे । तुझ कित ये गम[२] किया रे ।
वह तूँ केतों सुखों का । अझूँ दुख मा बापों का ।
नाहीं बिसर्या बेटा तूँ । तिसपर मांड्या यों तुझ कों ।
अतपर दोनों रहे रोय । हुक्म खुदा के राजी होय ।
बाजाँ उठ शाह हुसेन । पैगम्बर के रोजे में ।
ऐ जो हुवा यूँ मशगूल । खतम दरुद बरुहे रसूल ।
सलाम शकसियत उन बजाव । कीता रोजे सात विदाव ।
पैगम्बर की जियारत कर । दोनों आंखे पानी भर ।
गौर नबी की गल सूँ लाव । दोनों नयनों नीर बहाव ।

१. ज्यूँ २. दुख ३. बड़े

कह्या के ऐ पैगम्बर । तेरी उम्मत यूँ मुझ पर ।
खस्द किया मुझ मारन जोग । होवा सब वरगश्ता लोग ।
नाब ये डरते अल्लाह कूँ । न चख रखतें तेरा मूँ ।
मुझ पर मांड्या ऐसा जोर । सुन रे नबी आखर दौर ।
तन्हा हुवा हौं तुझ बाज । बाप न माई भाई आज ।
हौं तुझ पकर रह्या पाय । छोर न वक्या किधरे जाय ।
जे चख[1] मुझ दुख भरावता । तो तुझ देखूँ भूलावता ।
अब मुझ मांड्या ऐसा हाल । वैरू पकर्या यूँ दुम्बाल ।
केवें रहूँ हौं तेरे पास । जरूरत जाऊँ किधरे न्हास ।
अतपर मांड्या यूँ परदेश । कौन करे मुझ अब कोसीस ।
वही क्या जावें हौं ईहाँ । आवं पावं या के नां ।
उन बेबी के सबब । छोर मदीना जावं अरब ।
यु पर होवा हुक्म खुदा । मुंझ तुझ इलाही आज विदा ।
यूं पर हुसेन रो-रो जार । रोजे भीतर न्हारे मार ।
रो-रो हुवा यूँ बेहाल । सहक सहक कर हीना घाल ।
गोर नबी की गले सो लाब । फर दूखों बन्या जीव सराब? ।
कबर नबी केरी सीने सात । पकर रह्या दोन्हों हात ।
यूं बाजाँ शाह हुसेन । रो-रो सूता रोजे में ।
ज्यों उस आई नींद चकेक । ऐसे में यू सुहना देख ।
जानों आए नबी रसूल । पूछा तूँ के यू मखमूल ।
पकर्या उस ले सीने सात । उतारे सब तन उपर आत ।
सर ले चूम्या सारे बाल । पूछप अंख्या मूं होर गाल ।
बाजाँ कहेता ले उसास । आव रे प्यारे मेरे पास ।
हौं हूँ देखों ततेरी राह[2] । फातम अली हसन शाह ।
तूँ आव रे दबकर प्यारे । यह तुझ कारन ऊभ्यारे ।
अर्श कुरसी हफ्त अफलाक । जुमला मलायक रूहां पाक ।
ये सब होय तुझ इस्तकबील । आई तुझ शाहादत बेल ।
ओ प्यारे बार न लाव । अब तूँ दुनिया थैं चीत उचाव
जन्नत तेरे खोले द्वार । हूँरा रिजवाँ बहिश्त सवांर ।
देखत तेरी बाट खड्या । भर भर शरबत हात खड्या ।
अबशाहादत पावे तोय । तुझ ये दरजा रोजी होय ।

१. जी कुछ दुख मुझ २. देखत तेरी बाट

जो उन देख्या यह सपना । जान्या तहखीक अब मारनाँ ।
यूं देख हुसेन उठ्या जाग । गोर नबी की गले सों लाग ।
सरधर रह्या पायां पर । ताबीरे मुहम्मद पैगम्बर ।
सरमल चुमे झारे गोर । बाजाँ ऊथ वह बरफोर ।
सिर के बालों दाडी सात । गुम्बज रोजा अपने हात ।
झार्या सब हुसेन अली । राजी कुश्त बहुक्मे अजली ।
आया बाहर बाजाँ भी । जियारत भाई की होर मा की ।
केती जा यूँ दुख रो–रो । गोर सिराने ऊमहा हो ।
देख ऐ मादरे मेहरबान । हुवा मुझ तारीक जहान ।
बेरूं माड्या मुझ पर खस्द । ये दुख पर्या बिल्ला सख्त ।
तुझ विन रह्या तन्हा होय । बाप न भाई साती कोय ।
ये दुख सुन में जफा जोर । पकर रह्या तेरी गोर ।
इहां सूं भी बेरी आय । रहन मुख नाही देय ।
केवं करूं अब कीधर जांव । केता रो-रो ले-ले नावं ।
तों की कह खतर मर । औरी मां चुख निकल कर ।
गल लगकर चुक दे अधार । आव पर्या मुझ पर भार ।
के ए मां विगर मुकलाया । अस्सु के भीतर मुझ वाह्या ।
तूँ मर खतर निस्तारी । अब मुझ पर्या दुख भारी ।
अतपर रोए हुसेन जार । गोर सिराने नारे मार ।
बाजाँ फर्याद अदाकर[1] । सीस मुबारक मुउ पर घर ।
उन गुलाए सकले यार । करते अपस मों बिचार ।
कैसा मांड्या यह किस्सा । कीवर जाएं अब किस दिसा ।
कोई कहें की मक्के खाना । कोई कहे की कूफे जाना ।
यों पर करते सब बिचार । धूंडन लागे किधर ठार ।
तोलग इस मूं एकाएक । कुफे केरे लोगों लीख ।
भेजा बन्दगी शाह हुसेन । के तूं आव मिल हमूं में ।
ओं हुसेन आव हों पास । की तूं जाता कीघरे न्हास ।
हरगिज कीधरे जाव नको । की तूं ते दांवा दोल न हो ।
अपना तुझी मदद ले । हश्म घोरे केते से ।
माल खजाना खूब अम्बार । लोग रय्यत चंद हजार ।
सगले तुझ सों राजी है । बारे इहाँ आव हुसेन ।
तो सव मिल कर तुझ बाजाँ । बारे दिसे बादल खा ।
जब के हम तुम होएं एक । यजीद कौन जो सके देख ।

१. बाजाँ भोड्या बढ़ाकर

कूफे का यूं ऐन लिख्या । शाह हुसेन ज्यों फर देख्या ।
हुसेन अली का था एक थार । मौंजूँ काबिल मर्दे होशियार।
मुस्लिमबिन अकील उस नाम । स्याना आकिल दरहर काम ।
हुसेन अली उस पास बुलाव । लिख्या खूफे का दिखलाव ।
कह्या उसकों सुन ऐ यार । तो उठ भला तूं हो सवार[1] ।
कूफा जाकर काविज होय । जोलग नाही आये कोय ।
माल खजाना सब ले हात । तौलग हौं भी सकलों सात ।
लोग बराबर अंधे घाल । ल्होर बरे सब संभांल ।
आवेगें रे कोई अताक । यूँ तूं जाने ऐ चालाक ।
मुस्लिमबिन अकिल बरां । कूफे कीघर तुरत रवां ।
होवा बर हुक्मे इशारत । हुसेनअली के न्याबत ।
तोबड तोगर दब दब गया[2] । कुफा तुरत का बीज किया ।
सकले लोगों वैत आन । राजी उस सूं हौए जान ।
रहें लागे खुशी सात । सब बिलायत आई हात ।
कुफा केता यूं काबीज । वहीं लिख्या अराईज ।
भेजी मुस्लिम इब्ने अकील । बंदरी हजरत शाह शहीद ।
के कुफा काबीज कीता मैं । ऐ सब तुझ सों राजी है ।
हां ऐ सैयद सरवरे पाक । भला आव तूं कुफा ताक ।
पकर रहें ये मुकाम । जप्त करें ता मिश्रो शाम ।
माल खजाना आहे ले । हश्म घोडे केते से ।
मुस्लिम केरा लिख्या ऐन । यूं पर देख्या शाह हुसेन ।
बाजां दब दब चल्ले छर । कुफे केरी बाट पकर ।
यूं पर जाते सकले मिल । नित उठ मंजिल दरमंजिल ।
निकले ज्यूं मदीने थैं । उम्रसाद भी पछे थैं ।
दब दब करता हुवा सवार । सेंती घोरे दस हजार ।
पीछे लाग्या नित दुम्बाल । कहीं गर उस गफलत घाल ।
आडा पड यूं मारूं कोय । तो सुन यजीद राजी होय ।
वह यों पछे मंजिल वार । आंव लागा नापैंकार ।
तो लग याजीद कों यह बात । अंपरी दब दब कर राती रात ।

(यजीद को कूफे का समाचार मिलता है)

कूथे[3] में फोई मावी को । याजीद केरे जयों था ।
उन कह भेजा यजीद कों । वह क्या निचींत बैठा तुं ।
हुसेन केरा कोई नेब । कूफे केरा लाग करीब ।

१. तुरत भला हो तूं सवार २. बाजाँ ३. गया

बैठा कूफा काविज कर । सब उस मिल्या खल्क शहर ।
यूं सुद यजीद आया धाव । दोनों थंको लोहू छांव ।
औटन लाग्या किस किस घात । रोमूँ तोडे दाडी हात ।
बाजाँ यजीद का कोई यार । बस रें मूषा रह्या पंदार ।
जालेम मलून आहल फसाद । नावं उस अब्दुल्ला जियाद ।
उस लिख भेजा यूँ यजीद । मैं तुझ दिया मुल्क मजीद ।
बसरे दिया कूफा हम । तुझ पर भी लुत्फ करम ।
तं अब तुरत ज्यूद शताव । न कर हां अहमाल इस बाव ।
तू तो मेरा हलाल ख्वार । कूफे जाकर उस कों मार ।
हुसेन पर बस चलकर जा । मुस्तैद हो या फुल सिपा ।
के उमर साद उस पीठें लाग । जाता है नित खाके खाक ।
तूँ भी जाकर आरा हो । दोनों मिलकर उस कों पो ।
दुम्बाल हैं ज्यों उमरसाद । तूँ भी उस कों हो मद्दद ।
निकल भला देर न कर । मैं तुझ केता सरेलश्कर ।
सीस हुसेनअली का काट । कर उस चाहें बारा बांट ।
बाजां ज्यों हौं जानूंगा । जादत तुझ न बाजूंगा ।
यजीद केरा लिख्या यूं । बारे भीतर अपड्या ज्यूं ।
बाजाँ अब्दूल्ला जियाद । फा फर हुवा चाढा शाद ।
ज्यूँ फर देख्या ए नामां । ओहीं केता दम्मामा ।
बसरे में थें उतीज रात । बारा सहसर घोरे सात ।
निकल बैठा बाहर आव । लश्कर आन्या सब मिलाव ।
तोदर तोकर कूफे अताक । आयाज अब्दुल्ला नापाक ।
झोले केता किस किस बात । मुस्लिम इब्ने अकील संघात ।
के यजीद थैं हौं फक हूं । लोरू हुसेन कों मिलूं ।
पूं अहे हुसेन केरा गोई । तेरे हातों जो मिलना होई ।
सूँ मुझ जानों जागा होशी । मेरे जीव में नाही दोई ।
समतुम मिलें बारे आव । मुस्लिम उस का बोल पत्याव ।
मुस्लिम आया ज्यूं उस पास । उन्हों थप केता घात विसास ।
यूँ पर उस को पकर्या आन । जीवं मार्या गर्दन तान ।
यजीदकन सर भेजा काट । तन हिंडाया हाटे हाट ।
लीना कूफे हुवा शाद । मुर्दक अब्दुल्ला जीयाद ।
अपने जथों कोई ले । केता कूफे मान्ह तैं ।
बाजाँ आंपे उथ दरहाल । हुसेन कांधर कीता चाल ।
आव के पचे वाट बरू । दूजा बैरी आडा होऊ ।

(दरयाए फरात का रुख किया)

इसी भीतर कोई नसर । ल्याया हुसेन पास खबर ।
आश केती यूं फरियाद । के नापाक अब्दुल्ला जियाद ।
लिना कूफे आया चढ । मुस्लिम बाहें आन पकड ।
जीवूं मार्या सर काट्या । तन ले तांक्या उफराता ।
सीस पठाया यजीदकन । पे दरवाजे तांत्रया तन ।
अपने सकले हरक सात । तुझ पर भी उन रातेरात ।
निकल्या यही ऐ सरवर शाह । अब तुझ राखे एक खुदाह ।
यूं सुन किस्सा शाह हुसेन । रह्या चुक अंदेशे में ।
बाजां कह्या चलो जायं । पानी पकरें सकले धाय ।
ह्यां अछते क्या नफा । पकबें जारे सहन सफा ।
या के खुलवा कुछ आधार । जहाँ मिले पानी चार ।
खुलवा पाकर रहें शाद । जहाँ मिले पानी खास फराद ।
तो जा पकरें अब फरात । होर कहीं की छोरें बात ।
यूं पर कीता सब विचार । ऊँ ही दब-दब हुए सवार ।
कूफे केरे मारग सट । ल्हरे बरे सब तापत ।
रातों-हीसा चल्ले चाट । छोड केते डोगर घाट ।
जीधर देखें सब ऊजर । चल्ले सकाठे सिम्त पकर ।
दीस अंधारे काली रात । यक-यक दुख ये उतोबात ।
एंत विपत्ती दूंगर मअल । इक-इक मजिल पछे घाल ।
नेरे आया अब फरात । तोलग इसमों पकस रात ।
ज्यूं नित जाते खबेखाह । जोके सकले सीधी राह ।
सारा लोक होर शाहहुसेन । जाय परे दश्त करबल में ।
जेता चलें थाले थाँव[1] । भी नित दीखें उसी थावं ।
यूं पर चलतें दीसक तीन । हैरां होये ए मिस्कीन ।
फिर फिर होवन भरे यहाँ । आये सारे लोग खफां ।
ईहां उसझे ए जोलग । सब दश्त करबल मूँ तोलग ।
उग्रसाद होर अब्दुल्ला । मिला कर आये जुमला सिपाह ।
सारे अपने हश्म सात । पकर उतर्या आब फराफ ।
अपना सारा हश्म आन । रिक्कत सिराजी खेमे तान ।
उतर्या लश्कर नापेकार । जामील भलून हलक आजार ।
भोत लश्कर दूरदराज । धोल दमामें की आवाज ।
आवं लागी उन के कान । सुनकर रहे सब हैरान ।
के ए लश्कर किस का है । थोरे मानस केते सै ।

१. जेता जायं दिन दूनें

अतपर ए उतरे दो कोस[1] । दुश्मन आहे याके दोस ।
तौलग जाकर कोई नफर । ल्याया हुसेन पास खबर ।
के ये है लश्कर याजीदी । उतर्या पकर आब नदी ।
केते मानस घोरे हश्त । उन्हों मांड्या तुझपर खश्त ।
केवं करे अब किधर जाएँ । गुत परे इस जंगल में ।
पीछे बेरी अंघे घाट । रात अंध्यारी भूले बाट ।
बाजां पूछा कोण ये ठांव । कौन ए जंगल क्या इस नावं ।
कैह्या के यह उ जंगल । जिस कों अंखे दस्त करबल ।
बाजां सुनकर उन शाहसवार । दश्त करबल में नेजा मार ।
सकले लोगों सूँ उस थावं । रक्कत सिराजी खेमें छाँवं ।
कर यूँ रहे साज मुकाम । ल्हरे बरे खास-आम ।
घांस करवी के ख्यालों को । ईधर उधर पसरे जो ।
तो लग कहीं खेमै काम । तोरन बैठ्या लकरी जान ।
झारों ज्यूँ के मार कुरार । लोहू केरी लागे धार ।
ये ही रह्या देख अजब । ये क्या कुदरत है यारब ।
बाँजों ज्यूँ के तोरे झार । कहीं घावें पार कुरार ।
झार चीरें ना फाटे डाल । जो कोई तोरे या को उखाल ।
लोहू निकले बहता जाय । ज्यूँ कोई काटे छेले-गाय ।
देख रहे सब लोग हैरान । ये क्या कुदरत है सुभान ।
हुसेन सुन्या यूँ खबर । रह्या हो यूँ अजब कर ।
तो लग उसमें एकाएक । चाँद मुहर्रम केरा देख ।
कीते सकले दस्त बोस्ते । ये चाँद मुबारक तुम होस्ते[2] ।
दीठा चाँद मुहर्रम का । आया मास ये मातम का ।
बाचाँ सरवन सय्यद पाक । होवा गाढा यूँ गमनाक ।
अंखे भरकर पानी आन । कहें लाया यूँ बखान ।

(करबले में इमाम हुसेन का चरित्र वर्णन)

सुनो दोस्त यांरां तुम चित्त धर । को न ठाँवं येह सो आखों खबर ।
तुम्हन अखों सच्चा भाव खोल । यही दस्त करबल यहाँ हालहोल ।
हमें ऊपरी यहाँ नागहाँ । न तदवीर चले न हीले रवाँ ।
दरेगाँ-दरेगाँ पड्या यू ग्लब । सलामत निकलना यहाँ थे अजब ।

१. नेडें उतरे दो-एक कोस.
२. तुज होसी.

यहाँ होय बाअल्ला ऐसा कहर। न हुआ न होसी कधीं यूँ गदर।
यहाँ लोग दुश्मन जो शादी करे। यहाँ दोस्त प्यारे बखवारी मेर।
इहाँ आज लोहू क्याँ नद्याँ बहे। यहाँ गोदचीलाँ रवायज मिलें।
ऐसे दश्त म्याने किसे सुख अजब। इहाँ दुख देखें वले कित तरब।
करें खून नाहक जीव मार कर। रहे जुल्म मुझ पर व औलाद पर।
तते घावं इहाँ ठण्डी छावँ नहीं। किसे गोर कफन किसे ठावँ नहीं।
जिन्हों सेज फुलों सदा भूल कर। सोंत्रे नाजनी तन लिडे धूल पर।
जीवं मार वाले बहोत दुख धराव। कहीं सीस लिडता कहीं हात-पावँ।
कहीं खंडत कर कहीं सर सरीर। न कोई मेहरकर आसे न कोई दस्तगीर।
तते घाव से जैते मीत यार। तते होए वैसे मरें जार-जार।
इहाँ खाल वाकी नहीं सीस तन। इहाँ होय बिल्ला फना फन।
गंदे घाव बाजें करें मार चूर। लहू बहे चले जीवन नद्याँ गंगपूर।
इहाँ होय फरयाद जारी वले। इहाँ नाद बूट्याँ करें गुलबुले।
इहाँ होय औलाद मेरी जो ख्वार। करें नोह मातम इहाँ जार जार।
प्यासों भूकों मरे वाव वाय। करो खबर बारां बहुक्के खुदाय।
सभी यार देसी यहां जीवड़ा। बराह खुदाबन्द ल्हरा व बरा[1]।
इहाँ यूं यारां नसीहत करें। शफक्कत न करें वले दुख धरें।
इहाँ ये जीवँ मारे काटें गला। जहे वाए खुखार दश्ते करबला।
सो ये दश्त अहे मया सरवरे। इहाँ होय बिल्ला मानक मरें।
कहीं हाड हीडा कहीं सीस गांल। कहीं नाक अंख्या कहीं होंट बाल।
कहीं जाय जीवडा कहीं दीलपर। कहीं अंग लिडता कहीं सीस धढ़।
न इहाँ शफक्कत न हुरमत रखें। विना हक मारे प्यारा हुसेन।

(उद्देश्य········अलमकसूद)

ये ज्यूँ पडे उस जंगल माह। बाट नहीं अब कीधर जाह।
बाजाँ आहे उन्हे सब। सकलों पड्या यूँ कल्ब।
जा न सके वहाँ थैं। कुछ न किधरें पानी भी।
नीर न कहीं आस न पास। ल्हरों बरों लागी प्यास।
पानी बिन यूँ सक्त अडे। सभी ये ल्हरे[2] व बरे।
धुंडन लागे चहूँ धीर। किन्हीं न पाया नहीं नीर।
ऐमो हुई पानी तूट। नीर न पाया कहीं घूंट।

१. नन्हा ता बड़ा.
२. नन्हे.

यूंपर लागे प्यास मरन। बाजाँ लागे भूई खोदन।
जितना खोदे मार कुदाल। पानी गया सीस पताल।
न चक पाझर या की झरा। सूकी माती ज्यूँ भिकरा[1]।
पानी केरी पकर आस। खोदे कोई गज पचास।
पानी गया यूँ सब फांक। बूंद न पाया किन्हीं तांक।
अबकम रहे सकले अड। उथ कर मोडे सबर पकड।
फूटन लागे पानी बाज। सोसे कानज सीना दाज।
नन्हें पोंकरें हाय-हाय[2]। पानी बिन क्यों मर-मर गये।
तान्हें बच्चे शरीर ख्वार। पानी बिन यूँ मुख पसार।
बिलक बिलक जीव दीया। अल्ला ऐसा कहर कीया।
यूँ ये पानी बाज मुए। प्यासों सख्त हालाक हुए।
बाजाँ जो की सैय्यद पाक। देख्या ऐसा हाल हलाक।
दातों उंगली पकर चाँप। अंग कटालिया कालज काँप।
अल्लाह तोबा कौन अजाब। खस्ता होवे यूँ बेआब।
बाजों उठकर शाह हुसेन। उमर शाद की लश्कर में।
भेजा तुरत कोई यार। के यूँ उस घर ये अखबार[3]।
भला जा कह बाफोर। के यूँ करते हम पर जोर।
क्या यूँ मांड्या नाहक दंद। नबी केरा बाफर जंद।
क्यों तुम देवंगे कह जवाब। अल्ला अंबे रोज हिसाब।
ए तुम अल्ला पास डरो। नबी केरी शरम करो।
तो तुम वक्षेगा ए अल्लाह। नाही ·························।
नाही तो अब पानी बांज। गाढ़ी मुश्कील होई आज।
सीने तरसें कालज सूख। मोत मुआ यूँ केता लोग।
पानी देव इज्जत कर। सोसे सीने होएँ तर।
जफन बच्चों कायूं बांचेजीव। होवे आसूदा पानी पीवें।
वारे चुक पानी देओ। बाजाँ तुम सों होवे सो करो।
इतना सुन कर उमरसाद। लेकर उठ्या खयाल फसाद।
न कह भय्या हरगिज यूँ। तुमको पानी तांक न दूं।
धारे [गदरे आदमी। पानी केरी क्या कमी।
देवँ हम पानी खूक सगाँ। लेकिन तुमकों हरगिज ना।

१. भगरा. २. है है है.
३. के तूँ जा कह ये अखबार

यूँ जवाव उन उस दीता । ये उथ फीर्या[1] चूप केता ।
आव कही उन सकली बात । शाह हुसेन होर यारां सात ।

(इमाम हुसेन ने युद्ध शुरू किया)

बाजां हुसेन यूं सुन कर । उम्मीद पकडी जन्नत ।
केता अपना मन गम्भीर । यारों को भी देते धीर ।
सुनो अजीजाँ यारां हो । भूकों प्यासों सवर करो ।
की जरा है ये दुश्वार । उन्ह की तुम कों वख्त्यारी ।
भली तो गुजरी भलते हाल । उखवे लेव हात संभाल ।
गुजरान है ये दुनिया बस । न दुक जम ना सुक रहस ।
जीवना तो खुद नाही सद्दा । जब जीव देव राह खुदा ।
बेर्गों केरे सीने पाव । देकर भैया जन्नत चाब ।
अल्ला नेमत दी के रा । जन्नत शरबत लहू तेरा ।

बाब दहम्

बाजाँ उघ कर सगले यार । सुनकर इतना उस इस्तहार ।
यूं अल्ला से खुशी सात । गल लग सकलों देते हात ।
मुस्तइद होकर कसूत पेन । सकले यार होर शाह हुसेन ।
लोझन कारन होवे सार । निकल आग्रे फौज सँवार ।
हातन तेगाँ तरकश बाँद । मैंदां सर ज्यूं तारे चाँद ।
उभे होवे नारे मार । के ऐ जालीम नापेकार ।
ऐ तुम काफीर बदबख्त हो । बारे अल्ला पास डरो ।
नबी की तुम नाहीं लाज । यूं तुम माँड्या हम पर आज ।
नबी केरे वा औलाद । करते नाहक दंद-इनाद ।
ऐ तुम जालीम नापेकार । क्यों तुभ बक्षेगा करतार ।
निकलो ऐ बदबख्ताँ हो । मैदान उपर लोज करो ।
आज तुम्हारे कारन अत । दोजख हुआ प्यासा सख्त ।
बाजां उम्र सार सुन कर । ज्यं के हनोत रोसों भर ।
अपने लोकन यारन सात । लेकर उठ्या ये क्या बात ।
भले यांरा मुस्तईद हो के । हुसेन अली सों लोज करो ।
ए हैं मुतलक थोड़े सवार । हमें तो खुद लई अंबार ।
जा अब तुम्हें उन सूँ लड[2] । हुसेन जीबते जीव पकड़ ।

---

१. मोड्या
२. जा अब तुम्हें अंधू वड़कर

ल्हरे वरे सकले आत । मारो करो सब बारा बाट ।
बाजाँ मलून नापेकार । लोझनहारे अत से चार ।
निकल आये मैदान सीर । जब लग[1] रहे वहीं थीर ।
बेटा यजीद का उन सात । जमीं आया फौज मने ।
ताजी घोड़े उपर सवार । अँघे हुआ चावुक मार ।
लकत आया उन अंघे[2] । हुसेन अली की फौज मने ।
आया उतर घोरे थीं । हुसेन अली की खिजमत की ।
लेकर उठ्या सुन ऐ शाह । अब है तेरी मुज पनाह ।
उन थें हुआ बरगश्ता । तुज सूं मुतलक दीलवख्ता ।
यूं ओ उनसों मिल इख्तियार । हुआ यजीद थैं वेजार ।
बाजूं कह्या सुन ऐ शाह । अला मुझकों दे राज ।
तो हौं जाँव मैदान सीर । मार बिछाऊँ सब काफीर ।
जब हों उठूं लेग अरमाल । उन्हों केरा क्या मजाल ।
मेरे मूं ये रह सकें । हौं सच कहता ऐ हुसेन ।
ए सब मारूँ जावँ आन । एक न जीवता देऊँ जान ।
एकस हमले कैसे मार । भेजूं बिल्ला दोजख बार ।
उँचे इसमें नागहाँ । अंपडे तकदीर अज आसमा ।
तू खुद रहे सादत । पावं जे हौं शाहादल ।
यूं जीव देवं राहे खुदा । पीवं शरबत बहिश्त सदा ।
बाजां शाह दिए रजाँ । जा तूं अब कर लोज गजा ।
अब हां तुज सों कौल करूँ । दायम मेरे अँघे तूं ।
बहिश्त में भी जातीवार । अंगे मेरे तूं अछ यार ।
यूं विदा कर शाह संवात । तारीख उन दीन चांदो सात ।
मुस्तईद होकर होवा सवार । बैरूँ बाहे हाँक हुंकार ।
कमर तरकश खंडा हात । जाय पद्या यूं बैरूँ सात ।
मैलान भीतर चीता ज्यूं । वैसे बिखरे जिन घर त्यों ।
जिनका तनकर सकले लोग । घाँदल बैठे हाल का होल ।
यूँ उन मारे बैरी ले । हर-हर हमले केते से ।
भोत घाले काहिर मार । उतं सकले दोजख बार ।
सारादीस उन लोज किया । तकना पाएँ ताँक पीया ।

---

१. उभे धीर.
२. अलग आया उन कन से

तो लग पर्या अपें भी । खास्त इलाही[1] की यूं थी ।
तो सब रहे लोजनबार । आसूदा हुआ चार मार ।

(नया शीर्षक)

बाजां उठकर दूजे दीन । जो थी तारीख पाँच हार तीद ।
मुस्तईद हो कर दोनों भार । चलकर आये फौज संवार ।
लश्करे यजीद हम सैदां । हाजिर आये दरमैदां ।
दोनों फौजा रुबरू । शोर उठा बादर हरसूं ।
जभी आए बेरी चल । सनमुख होए दोनों दल ।
तोलग कासिम इब्नेहसन । बरस अठारा करे सुन ।
मुस्तईद होकर घोड़े चड़ । आब हुसेन के पाव पकड़ ।
कह्या के मुज दे रजा । जाय करूँ तो लोज गजा ।
भीतर पैसूं मानूं दल । आनूं बैरी खाण्डे तल ।
इतना सुन कर सय्यद राब । ले गल लाया सीस उचाव ।
अंख्या पानी भर कर आन । रो-रो लागा यूँ बखान ।
के तूं जाता ऐ कासिम । मत सरथै होइ मुज मातम ।
एक हसन की नीशानी । तूंच रहता ऐ जवानी ।
अपस जीवते हौं तुजकूं । बैरन में अब क्यों भेजूं ।
मत तुज अंपरे कूछ खतर । तिस थै होइ मुज दुख असर ।
कासिम कह्या सुन ऐ शाह । ऐसा माड्या कहरे अल्लाह ।
जीवने का अब क्या है गम । लोझें बारे जोलग दम ।
बाजां कह्या सरवर शाह । अल्ला तेरी तुज पनाह ।
जा ऐ कासिम बैरी भान । तुजको बारे दे सुभान ।
यूं विदा ले हुसेन कन । भी उठ कासिम इब्ने हसन ।
घरमें जाकर सकल्या सात । ल्हरे बरे मर्द ओरात ।
सकलन सथे मिलहिल कर । आए सकलों के जिव भर ।
झरे फूटे सीने फाट । तारीख उन दिन चाँदू आठ ।
सकलों की[2] ले रजा । कासिक चल्या लोज गजा ।
आया अंधे रकाबदार । कीता घोरें का तंग बार ।
बुलन्द घोरे बिजली पाव । अतबल बैठा रावत राव ।
हमलाकीता ज्यूं उन आगाज । तूट पड्या ज्यूं बहरी बाज ।

१. तकदीर अल्ला की यूं थी.
२. सकलन केरी.

बैरन माथे खरग बजाव । बरसन लागा खाण्डे घाव ।
ज्यूं ये पैठा फली फोर । केते बैरन घाले तोर ।
जिन के तन धोंका ज्यूं । फूजे काफर सकले त्यों ।
इतने काफिर सरे मार । कर ना सके कोई शुमार ।
जैरूँ केरी बाट परो । जखमों भीतर तक तक हो ।
हर हर हमला हर हर घाव । लोहू केरी खाल भराव ।
बाजां ज्यूं के आया वक्त । बेताब हुव्वा कासिम सख्त ।
पानी बिन मइ रह्या अड । सीना कालज सोस पकर ।
नाक अंपर्‍या काले घाव । कासिम सब तन लोहू न्हाव ।
बाजां हुक्म इलाही किया । पड्या कासिम जीव दिया ।
बैरी आये ऊपर पड । लम्बे-लम्बे बाल पकड़ ।
लीता कासिम का सर काट । तारीख उन दिन चाँदू आठ ।
जभी कासिम पर्या जंग । हुसेन होवे यों लि तंग ।
मार मुरासा सरथैं गारे[1] । तोरी धारी कारे फार ।
रोवन लागा यो फिर फिर । पीवन लाग्या सीना सिर ।
हुसेन रोन्दो नारे मार । कासिम कारन जारबजार ।
नन्हें बड़े हो बेदिल । औरतां मरदां सकले मिल ।
मातम केता यूँ उस ठांव । कासिम कारन ले ले नांव ।
यूँ पर सकल्पों को दुकसान । रोते गुजरी सकली रात ।

(शीर्षक)

सुबह भी उठ जीवें हररोज । मुस्तइद होंकर दोन्हो फोज ।
हातन खांडे तरकश बांद । मोहरमें केरे नववें चाँद ।
लोजन बाहें निकले जीवं । बेटा शाह हुसेन का त्यूं ।
उतर खड़ा होया पाँव । अली अकबर उसका नावें ।
होसर आया हुसेन कन । हफदा बरस केरे सन ।
मानिद सूरत नदी का । अली अकबर मने था ।
सका सूरत खुश नौखेज । लाल हम ज्यूं सरजा बशर ।
हुसेन केरे दोनों पाँव । पकर रह्या सर सूं लाव ।
के ए बाबा दे रजा । जाय करूँ तो लोज गजा ।
मारूँ बिल्ला काफिर ले । जितनी मुंज को ताकत है ।
मारूँ बेरों खरगमन घाव । लोहू केरी खाल बहाव ।

१. मार मंद उसासर ठैंकार.

यूँ सुन बाजां हुसेन उठ । दोनों नयन अंझू घोंट ।
बेटे का सर दोनों हात । ले कर लाया सीने साल ।
पकर रह्या केती बार । रो-रो नयन लाया धार ।
क्यों तुज भेजूं प्यारे पूत । वह तूं तन्हा वे बहुत[1] ।
अब मुझ जीवते तूं कत आज । दुख दे जाता कालज दाज ।
अल्ला मांड्या बीम बला । दुख पर दुख मुज नित अकला ।
मत तुज लागे धक्का चोट । मुज सर आवे दुक की मोट ।
ये दुख क्यों मुज भेर्या जाय । प्यारे के किस लागूं धाय ।
बाजां बेटे कह्या ऐन । सुन ऐ सरवर शाह हुसेन ।
अल्या बारे माड्य यूं । तदबीर उसकी कीजे क्यों ।
बिल्ला लरने मरने बाज । होर नाहीं ऐ सरताज ।
बाप कने थें ले रजा । विद कीता मा सों जा ।
सुन कर ऊठी यो अरडाव । सर ले उसका सीने लाव ।
कीधर जावं अरारा मार । प्यारे मत तूं कोई बार ।
जे तूं जाता वेगा आव । हों हूं ऊभी तेरे चाव ।
आन मिलाय भी करतार । जानूं जाया दूजी बार ।
यों पर माँ सूँ बिदा कर । सर वर पाँव ऊपर धर ।
वाजां होवा ऊठ खड़ा । रोता सब नन्हा व बड़ा ।
अली अकबर सूरत सार । कसूत जेवां मजलिस सार ।
नीत उजाला घर दीपक । जग का प्यारा रन्धीरक ।
ऐसा पहुँचा ऊपर थैंज । जानों उतर्या ऊपर थैं ।
ऊभा होवा जैसा चांद । तेग व तरकश कमर बांद ।
पांवरे पाँवरे तेजी चर । वेरी केरा रुख पकर ।
फौज मने थें चल्या यों । अवर मर्नें थे चंदर ज्यों ।
जाइ मिर्या त्यूँ बैरन साथ । निसंक खांडे वससे हाथ ।
बिजली ज्यूँ के कड-कड तूट । मारे रावत एकी मूट ।
हरन्या भीतर चोता ज्यूँ । मार बिखेरे काफिर त्यूँ ।
ज्यूं ये पैठा सूरा हो । मारे काफिर केते सो ।
आपे बीचक जखमा घाव । लाल होका लहू न्हाव ।
तिसपर भी अुक पानी बाज । फूअन लागा सीना दाज ।
एक असोद होर पानी तूट । जखमां भीतर सब तन फूअ ।

1. तूं है नन्हा वे हैं मूत

बैरी कन तेरा गुजारा हो? । अली अकबर पड्या तो ।
ये जीव देता राहे खुदा । बैरन केता सीस जुदा ।
जभी पड्या रन में पूत । रह्या शाह हुसेन मभूत ।
शाह हुसेन यूँ देखा हाल । रोवं लागा हिया घाल ।
अपने सर थैं काड दस्तार । गुइ पर सथ्या नारा मार ।
पीअन लागा सीना सीर । रोता आया घर के धीर ।
जभी रोता आया शाह । पूत प्यारा खोया वाह ।
यूँ सुन ऊई सब अरडाव । औचीत आया कालज घाव ।
करने लागे हाय होय । शोर उठाया दर हर सोय ।
औरतां मरदां केता सोज । रोऊँ लागे ता घव रोज ।
माई देखे ऊभी बाट । प्यारा आवे बैरी काट ।
तोलग आई ए खबर । धावर होई सुद बिसर ।
हैरां होई सुन कर माय । अंख्या आया लोहू छाय ।
बाहर निकली अंधे आव । अपस सारी धूल मिलाव ।
रोवं लागी यूं उस ठाँव । अली अकबर का ले ले नांव ।
रो-रो माई अरडावे । बिजली ज्यों के करडावे ।
खुली वज्यां ऊभी होय । पूत प्यारे कारन रोय ।
नीर बहावे अंझू ढाल । वो क्यों देखूंगी जमाल ।
आव प्यारे देखूँ चुक । तुज बिन जभ मुज खरा दुख ।
तेरे जीव पर वारी जावं । क्यों जिव दीता तैं कस ठांव ।
क्यों तुज बैरन मायाँ पार । मुज दुख लाया सीने आर ।
तु बिन मेरे प्यारे पूत । जंघरा जीर्या जक हातूं ।
आव प्यारे धीरक दे । बाव की मारी जाती रे ।
आ मुज पर्या यूँ दुख भार । जाने वो ही एक करतार ।
करबल थें जक निकल आव । सीने केरी आग बुझाव ।
बैरी तुज क्या किया रे । आव रे मेरे प्यारे ।
पन्हा आया सीना भर । किस पुकारूँ हौं फर कर ।
ऊभ्याँ धरां बरस जोग । बिछड्या देखो कैसा लोग ।
केवें करूँ अब कीदर जावँ । केता रोवं ले ले नावँ ।
आव रे मेरे नाजुक तन । तुज बिन हौं क्यों धरूँ तन ।
केता रोवं हिया घाल । सोन पतावे पीतन जाल[1] ।
यों उन केता मा एक अंकाल । रोई बखाने किस किस भाँत ।

1. ज़र

ये जीव हुआ दावांदोल । अब किस आखू ये दुख खोल ।।
तालां पीलां होइ रोय । बैठी हातन मानक खोय ।।
धूल मिलाई अपस ले । लोरें अपना जीवड़ा दे ।।
तैसा ऊठ्या दर में नाद । सारे घर में शोर फरयाद ।।
यों पर गुजरी रोते रैन । मा-बाप गोती भाई भैन ।।
अली अकबर के कारन । रोवं लागे सकले जन ।।
रो-रो होवे यूँ बेताब । ना उन पायन खुशखाब ।।

यों पर गुजरी चार पहार । इसी भीतर कोई यार ।।
ज्यूँ चक सूता तक्या कर । रो रो बाँह सिर अपने धर ।
तोलग ज्यूँ ये सहगा देख । जानों सच्चे एकाएक ।।
आई बीबिन की बीबी । नबी मुहम्मद केरी धी ।।
हुसेन केरी सगी माँ । खातून जन्नत शमए जहाँ ।।
फातमा जहरा जिसका नावं । सरगन उतरे आय पावं ।।
जावं उठ कर अपने हात । दावने केरे पलू साथ ।
करबल का सब झाडा अगन । कंकर कसवत खपरे तन ।।
खार व खस्ता कर खाशाक । झार कर करते सकला पाक ।।
ज्यूँ उन पूछा क्या है नाँवँ । काहे झाड़े तूँ येढ ठांवं ।
लेकर उठी सुन ऐ वाय । हौं हूँ हुसेन की सगी ।।
सो कह मेरा प्यारा पूत । शाह दिलावर रन औधूत ।।
लाड खेला नाजूक तन । के उस करबला के सहन ।।
उन्हों बैरन सीसते पर । जीवडा देगा ह्याँ पड़ ।।
मत ए चूमे उसके अंग । करवट काटे कंकर संग ।
यूँ रो अखी फाती भी बात । सहना देख्या सारी रात ।।
ज्यूँ थप जाग्या सुभा दिन । रह्या यहीं जें गमगीन ।।
उठ कर कहे सकले खाव । हुसेन घर हम आर[1] असहाब ।।

फसल दहुम

(माह मुहर्रम इमाम हुसेन स्वयं बाहर आए और विदा ली, वे शहीद होते हैं, शोक छा जाता है)

बाजाँ उठ ज्यूँ नित सुबाह । निकल मुस्तैद होकर शाह ।।
तेग व तरकश कमर बाँध । मुहर्रम केरे. दसवें चाँद ।
शाह हुसेन उठ कर घर मूँ आव । सकल्यों को ले गल लाव ।।

१. बान

सकले आये ऊपर पड़ । हुसेन केरे पाँव पकड़ ।
रोवं लागे जारबजार । बहुतन केरा तूं आधार ।
कीधर जाएँ अब किसके पास । किसलग बैसें किसके पास ।
हुसेन भी रोवा कही बात । लहरों बरों सकलों सात ।
हुक्म खुदाई क्या करनां । ज्यूँ उन लिज्या त्यूं मरना ।
बानों भी सुन नेडे आव । तूं जम मेरे सिर की छाँव ।
केरे मेरे शाह भतार । तूं भी चलता लोजें बार ।
अब कह तुजबिन जीवूं क्यों । अल्लाह तुरत मांड्या यूं ।
इस रन हुसेन की मांहै । कहे भर अंख्या रे ।
मानिक तन सब आए रन । कवां-जीलां होई घन ।
कोई न भर्या जीव तैं जीव । अब सुन मेरे प्यारे तू ।
लोजन बाहें जे तूं जाय । भीतक फिरें मुझलग आय ।
ऐ हौं ऊभी आस पकड़ । देखूं घाट उस ऊँची चढ़[1] ।
दबकर आव प्यारे कंथा । देहू नयनों तेरे पंथा ।
देखूं फिर फिर उभी हूँ । अंख्या अंझू सेनी दूँ ।
मत तुज लागे बारबरी । मुझ बरस सौ आवे एक घरी ।
अब सुन मेरे शाह भतार । बारी तुझ पर बार हजार ।
ऐ तूं मुझ थीं जाता रे । केवं अब करूँ प्यारे ।
रोवे बानों यूँ दुख तान । झुटे सच्चे गान बखान ।
ओ हुसेन सवारूँ बाल । अंख्या भर भर अंझू ढाल ।
ले दोनों हातों गले लाई । रो रों भी चक समझाई ।
की ऐ बानो दुख न रो । हुक्म खुदाई राजी हो ।
यूं पर बाजाँ सब घर में । विदा कर उठ शाह हुसेन ।
बाहर आया फौज सवांर । हौर भी सथें जितने[2] यार ।
घोरे चरकर हुआ मुस्तैद । लोझन बाँहें[3] निकल्या सैंद ।
तोलग बैरी आये चल । बाजन लागे घोरों तल ।
चहूँ घर पसरे प्यादे सवार । सवं[4] मुख उभे दोन्हो भार ।
शोर व गलबल हाय होय । दश्त करबल में जरहर सोय ।
बाजन लागे यूँ दफ, घोल । किस न परता कानों बोल ।
घोल दमा में बरगूने । काहेलियाँ भेरां केते से ।
हर-हर जिसी बाजंतर । बाजन लागे फौज अन्दर ।

१. झरोके बड २. केतक ३. बाहर ४. सनमुख

ऐसा ऊठ्या चहूँ घर नाद । अजहार मरदुम शोर फरिवाद ।
हैवान आलम लदोंरी । जग के कानों धनक परी ।
सात समन्दर आये जोश । होई दव-परीं बेहोश ।
धरती कांपे सात बरख । अम्बर गरज्या हफ्त तबक ।
अर्श कर्सी हफ्त अफलाक । जुमला फलायक रूहाँ पाक ।
जुम्बीश आया हैवत खाय । ये क्या मांड्या कहर अलाह ।
हूराँ जन्नत आया रोई । पावूं उतर्या उभ्या होई ।
खोले सातों सर्ग दुवाद । लोझन निकल्या जब शहसवार ।
तेग व तरकश कमर बाँध । जैसा पून्यो केरा घांघ ।
ऊभ्रक रावत सांरग चड़ । बैरू केरा रुख पकड़ ।
लोझन आया शाह हुसेन । अहे कोई उस पर दल में ।
संमुख होई अंधे आय । किसकी ऐसी व्यानी माय ।
जेते थे ए दाबेदार । ऊहूँ सते बातरवार ।
कोई न सके रह हुजूर । रावत थके दूर का दूर ।
परदल था क्या औजक खाय । देख जो बैरी मुँह फिराय ।
पैस्या हुसेन नारा मार[1] । थर-थर काँपा सारा भार ।
जमी उथ्या[2] मार बिछाव । दो खंद करता एकस घाव ।
जीता जीवै ए मारे पर । तल की माटी ऊपर कर ।
हमला केता थूं उन मर्द । करबल मुँह सब उठी गर्द ।
रन मुंह पैंठा रन नूरा । मार उठाया धूलूरा ।
चहूँ घर[3] ऐसी धूल उडो । अम्बर धरती काँप परी ।
साथी जो थे दो कोई चार[4]। शहीद होए वे सब यार ।
तन्हा हुआ शाह हुसेन । सोर हुआ बेरूँ में ।
फिर फिर लीझे सरसा होय । चहूँ घर खांडे बरसा होय ।
आवत रावत मारी हाक । काटे बैरन पारी धाक ।
कल्हन खंद एकस मुथ । तुरकी आसन धोरे फूट ।
सरवर शाहां परवर कोट । तरत्र विजली मरवर जोल ।
तेजी घोरा अटील सवार । काल या होता सारा भार ।
रनतल झुता करबल मान्ह । परदल फूता, रान भरान ।
मार पकड़ सब काफिर । करवल भीतर चहूँ घिर ।

---

१. शाह जो पैंठा नारा मार. २. जीदर उठे. ३. चौंधर
४. सबें जो थे कोई दो-चार.

लहू केरी भूई घाल[1] । तुकडे-तुकडे मालेमाल ।
यूं उन केता रन खतर । होर न सरे कोई नर ।
हरफुल रावत सारंग छर । मार बिछाए घर पर घर ।
धावर होये वे सूद गंवाय । फाटे भूई तो पैनन माय ।
वाह छुड़ावे कोई नहीं । दे अब धरतरी ठांव पछें ।
रावत प्यादे सवांरोपर । हैदर उठे यह मूं घर ।
सकंलों पर तो एसे फूट । जानों आसमां पर्या तूट ।
तल सर लिडते उपर पाव । आडे पडे काल कूट आव ।
एकस पर एक पडते न्हास । पारी हैबत ले तराश ।
केते रहे औंधे पड मोर । दोरां भीतर छुपे डर ।
सवारों व्यादों लेता रान । केतन पाया यूं जीवदान ।
एकूं लेता जंगल झार । एकूं केता डोंगर आर ।
हुसैन केरी एकस हांक । परदल पर्या ऐसा धांक ।
यावा बिसरी भूली बाट । धाकों मुए सीना फाट ।
यूं अब बेरीं जाय कहें । मैदान अन्दर शाह हुसेन ।
ऐसा माता सवार होई । एकस खांडा खंडता दोई ।
ऐसा हुसेन लोज किया । जग मों बारे नाँव रह्या ।
ऐसे मारे[2] काफर ले । हर-हर हमले केते ।
मार खदाड़े परले पार । वैरों की सर लाई धार ।
बाजौं होवा मांदा सख्त । होर भी हुआ आखर वख्त ।
ऊभा होवा ज्यूं शह सवार । पानी बाछें नदी किनार ।
तोलग एका एक दराँ । अंपर्या नागह तीर परां ।
बेजां हुवा शहरग में । भूई आया शाह हुसेन ।
जमी फूटा गलमूं तीर । लोहू चल्या ये ज्यूं नीर ।
तीर गुजरा शहरग फूट । घोड़े पर थें आसन छूट ।
भूई पर्या दोरा आव । पूरा बैठा कारी घाव ।
हुसेन कलमा अर्ज किया । राह खुदा की जीव दिया ।
घोरी जिसपर था शहसवार । वही ऊभा रह्या ठार ।
सब तन सव ये. लोहू भर[3] । दोनों नयना अंझू घर[4] ।

---

१. लहू केरी बहती खाल. २. यूं उन मारे.
३. सीस सरीर सब लोहू भर.
४. दोनों अंख्या लोहू छर.

आया घर में देहलीज आड । घोड़े दिया जीव पछाड ।
ज्यूं सब लोगसें एकाएक । खाली आसन घोरा देख ।
अबकम रहे हैरान होइ । उथे सकले हाय-हाय रोइ ।
ऐसा उठा घर में शोर । कह न सके कोई होर ।
ल्होरे बड़े सौ-हजार । नारे पसरे एक ही बार ।
बानों हुई ऊभी पाव । घर से निकल आँगन आव ।
जूरा खोल्या चूडा भान । तोरन लागी बाल्या कान ।
अंको केरा काजल पोंछ । बाल पत्याँ सब लीता कोंछ ।
घाबर गई दावाँडोल । सरके बालों जूरा खोल ।
पीटन लागी बाहा भर । कूटन लागी सीना सर ।
चाह मेरे शाह भतार । अब मूज नाहीं कोई अधार ।
तूं घर आ ओ प्यारे कंत । ऊभी देखूं तेरी पंथ ।
तुझ बिन मुझ जग उजाड । किस पर चले दुख-सुख ।
वह साहोरी पीवकी नाहींकोय । क्यूं घालू जरभारा होय ।
मुझ मर्क न आई तुझ अंधे । क्यूं सुक्ष जीवं किसके बल ।
किस लग बैसू किसके पास । ना पिव का कोई ना सासिरास ।
ये दुख पर्या क्यों बाटूँ । जुर्म दुहेखा क्यों काढूं ।
काश के न जनती मुझको माय । तो न रपता यह दुख आय ।
बारी हूँ तुझ बातड़ियाँ । गुलाल इस रातडियाँ ।
बिछड़ा ज्यूं के निर्धारा । किस लग घांलू जड मारा ।
तुझ बिन मुझ तारीक जहान । तूट पर्या वाह आज आसमान ।
ये दुख मुझ क्यों काट्याजाय । जीवं तंई पर्या रुंधने आय ।
परकम था की हुई निरधार । केता रोऊँ तुझ पुकार ।
ओ प्यारे मुझको लेस । परदेश हुआ मुझ इस देस ।
रोना तो यूं बोल बखान । सच्चई फूटे कोह-पखान ।
बेटा बेटी औरत गोत । ल्होरे बड़े सकले रोत ।
नफर चाकर बाँद गुलाम । औरत-मर्द हम खास व आम ।
हश्म खजम जेते यार । रोए सकले नारे मार ।

(शीर्षक)

जहाँ पड्या सय्यद राव । घोडे पर में भुई पर आव ।
आवे बैरी ऊपर दाट । सीस मुबारक ओता काट ।
तो क्या आसूं सुन ऐ यार । जग में होवे यूँ अंदकार ।

ऐसी ऊठी औधी बाव । चंदर सूरज रूप छपाय ।
हुवा यूँ तारीफ जहान । कर न सके कोई बयान ।
अम्बर गरज्या लरजी भुई । जानों कयामत कायम हुई ।
शहीद हुए सय्यद शाह । हाजिर आए सब अरवाह ।
हूराँ रिजयाँ आयां पाव । जहां पड्या सय्यद राव ।
रूहां जुमता पैगम्बर । हाजिर आयां ताजियत घरे ।
नबी मुहम्मद सल्लुलाह । दरहाल आप आवरे बाह ।
अंबे बिछीं फौज और मुल्क । लरजां हुई हफ्त फलक ।
ऊठे रोइ नारे मार । जन गल लाया हात पसार ।
पक तक चौबीस हजारां । रूहाँ जुमता पैगम्बरा ।
मलकूत कीते ताजियत । हुसेन अली की नियत ।
अली की भी आई रूह । करदंद हरएक हाय व हो ।
तोलग बीबीफातमा जो । सतें हूरां चद रिजवां ।
थाय पडी यूँ उडी घाल । आइ खडी ही मोलक बाल ।
दोहों हातों ले उचाब । पूत प्यारे गल सूं लाब ।
लहू रोए दोनो नयन । नारे मारे अखें बयन ।
वाह रे मेरे प्यारे । क्यों क्यों जिवडा दिया रे ।
बहोत बडे आए बैरी हर । कातों उन कों तम्बी कर ।
क्यूँ क्यूँ तुझ पर हैफ किया । जोर जफा कर जीव लिया ।
मेरा जाया नाजुक तन । मार्या करबल के सहन ।
उजडे ठई ए बैरी माय । काला मूँ उन नीले पाय ।
काट्या सिर उन पकड नाजुक । अल्लाह सिरजे दोजख जोग ।
मेरा प्यारा यूं दुख धर । उन्हों मार्या टुकडे कर ।
यूँ मा रोबे दुख अफ़ोल । पूत प्यारे केरे सोज ।
होर भी जेते[1] वहाँ कोय । करबल भीतर हाजिर होय ।
हुरां रिजवां जुमता मुल्क । हवाह रसूलां बीबी बेशक ।
ये सब रोयं लेले नांवं । शाह हुसेन जीस पड्या थांव ।
हरसूं अंदर वख्त करबल । शोर उठ्या दरहर महल ।
जे कोई बेखे वूहां आय । झरे कूटे हैवत खाय ।
आवाज उठी करबल में । कह हुसेन ऐ शाह हुसेन ।
पैगम्बर का प्या तूं । करबल भीतर मार्या क्यों ।

---

१. जितने

फातम जुहरा के फरजंद । अली केरे भी दिलबन्द ।
दोनों जग[1] के प्यारे । उन्हों बैरी यूँ मारे ।

(तीसरी फसल आखीर)

अंपडी खबर दरआलम । हैवां ईसां परी हम ।
के हुसेन दुनिया बांध्या रखत । ये दुख हुवा सार्‌या सखत ।
समन्दर दुखों हूवा खार । काफ उतर गया पेली पार ।
इत उस दुख अंधे न्हास । गरज रह्या अब जम आकास ।
यक वह हसन का जहर । पहलीब हुवा था असर ।
उस दुख नीला हर्या होय । नोत वहावे चौंधर रोइ ।
तिस पर भी ये दूजी बार । दिया दुख पर करतार ।
नारे मारे अरडावे । बिजली लू लू रिडावे ।
आल नबी के सैयद पाक । उस कों बैरों यों बेबाक ।
नीर बहावे लड घाल । लरज्या पड्या सात पताल ।
एता हुवा खून अंबार । धरती सह न सकी भार ।
कंकड ककीया गगन पर । गगन बालू ल्हऊ भर ।
तू सून हरनिस सांजे बार । होता रतरा जैसा श्यार ।
वह गत हुई हर दो सहनां । यूँ दुखहुवा हर दो जहाँ ।
जंगलकेरे पसेरू । सावज दोंगर के हरसूँ ।
छोड बसंत लेता रान । हँसूं पकड्या सरवर मान ।
सीमुर्ग अन्दर काफ फरार । पकड रह्या जाकर गिर्द कुहसार ।
हुमाँ गया जगथैं न्हास । जाय रह्या अब गगन अकास ।
दूखों लंका पकडी आग । जलबल कोयल हुई राक ।
लंका हुई सुने बाज । लाजों डूबा समन्दर झाग ।
कोयल जल बल काली हुई । वाह आंधी बन-बन रोय ।
कोयल अपस यूँ दुखधर । बैठी कपडे काले कर ।
मातम यूँ तन लालख लाव । लाल केती चक लहू भराव ।
बनबन खनके नारे मार । बनखंड हांडे अत संसार ।
जोडों[2] जुफ्ती बिसर घाल । रोवंलागी अंझू ढाल ।
हरनियों काला पहरन ओड । जंगल लीता सीग मरोड ।
बाजी तो खुद तेल भरे । पहरे कापर सब्ज-हरे ।
तोते सब्जक तन हर्यालां । बुलबुल होई दर नालाँ ।

१. जग केरे प्यारे २. मुहें जुफ्ती

रावने सब तन हर्या कर । मुख सुहाया लहू भर ।
दुक्खों हुवा हर्याजर्द । तौक गले में लाया दर्द ।
गुंगची सब तन लहू भर । काला टीका मू कूं धर ।
भूलों बिसरे सहारे आप । उनके मूए ज्यूं मा-बाप ।
दुख सिर बजू घर कसरी झाड । वहत्यां ते सिर उपर खार ।
तुझ देखत न आया बाज । फूल न फल तूं होवे खार ।
सुम्बल उस दुख सीना जाल । सर के तोडे लम्बे बाल ।
सोसन श्रीफल कातवार । दस जीवां सूं करे पुकार ।
कसरी मारी फूल गुलाल । काँट्या पर दी उसे डाल ।
भूजो रोया न आनी ताब । तिस अंझू नहीं हुआ गुलाब ।
पानी सौला कीता आब । आतिश जलबल होय कबाब ।
बाव और आई काली धूल । चहूंघर जय में पाडी हूल ।
लई सिर घाली अपस धाव । कहीं न बैसी जिव के भाव ।
ये दुख अंपर्या हर दूसरा । जुमला खलाइक आलमरा ।
वाह उस दुखों निकसी काट । पत्थर तरके सीना फाट ।
होर भी रोये सारा जग । उस दिन थें ता कयामत्तलग ।
बाजाँ ज्यूँ के तारीख साल । बाद अज हिजरत नव्वी हाल ।
नौ सी हुए अगले नौ । ये दुख लिख्या अशरफ तो ।
नांवँ धर्या इस नौसर हार । लेकिन ये सब दुख का भार ।
अंख्या अंघू सों घो–घो । लिख्या मैं ये दुख रो रो ।
यक-यक बोल थे मौजूँ आन । तकरीर हिन्दवी सब बखान ।
तोब लिख्या अत खरब । खोल कही मैं कंधा सब ।
तो ये सुनते सकले कोय । ये सब लिख्या मैं दूख रोय ।
लिख्या सगला खूब संवार । ये सुन खुलते काल किवाड ।
पडतें उस कों सब जग रोय[1] । कालज जलबल कोयला होय[2] ।
ये दुख सुनकर होते भार । खुले सीने केरे कवार[3] ।
नयनों लागे अंझू धार । हीयाँ विकसे दुख की ठार[4] ।
सच्चें तो घह बजर का । सीना उसका पत्थर का ।
ऐसा कौन जो संग दिल होय । ये दुख सुस कर वो ना रोय ।
अशरफ अख अथघार[5] । बिनऊँ तुझ कों ऐ करतार ।

१. पडते या के सुनते इस २. कालज होता जल को इस ३. सीने केरे खोले पाट
४. भार ५. अल्लाबार

सकल्यों बाहें रहकत कर। जेते समी मजलिस भीतर[1]।
पडत्यों सुनत्यों अग्रजी। मैं अल्ला या अमीन[2]।

यह किताब नौसरहार ले अज गुफ्तार शेखे अशरफ मरहूम मनखुलस बाता-रीख......काजी मुहम्मद हुसेन काजी परगना चाँदूर नविस्त: वमान तहत गरीब नसरे मन अल्त फतह अल करीब हर के दावा कूलद गुनेजात शरेशरीफ बाशंह रहमतुल्ला वबखम........

पुनश्च :—अलीगढ़ की प्रति में निम्नलिखित पंक्तियाँ अतिरिक्त मिलती हैं...
जो सर सैयद अज हुक्मे खुदा। केता तन थें काट जुदा।
लेकर चले यजीद पास। औरतां बच्चे सात पचास।
रात कर उतरे एकस बार। मैदान भीतर कर खरार।
उठी अंधी तोलग यू। एकस एक न सूझे त्यों।
अली अजगर सोता उठ। उनों भीतर थे हुवा मूट।
अली असगर जिसका नाम। जंगल पर कद न्हाक्या पाँवें।
बाट चल्या वो दो-तीन मास। टाक्या अपने चचा पास।

१. जितने बैठे मजलिस भर २. आमीन अल्ला आमीन

परिशिष्ट–२

पिरतनामा

रचयिता—कुतुबुद्दीन कादरी "फीरोज" बीदरी

(पिरतनामा हजरत सुलतान मोहियोद्दीन सैयद अब्दुल कादर जीलानी)

बिस्मिल्ला ए अर्रहमान ए रहीम

तुहीं कुतुब अखताब जगपीर है। तुहीं गौस आजम जहाँगीर है।
तुहीं चांद बाकी वली तारिए। तू सुल्तान सरदार हैं सारिए।
विलायत सूँ जब तूं उचाया अलम। अलम तुज तलें हैं वलीसब हशम।
मोहियोद्दीन तूं दीन तुजते जिया। तू स्लाम कूँ जोर सर थे दिया।
तहीं नूरे दीदा नबी का यकीं-। तुहीं ऐनदिस्ता अली का यकीं-।
के बागे अली कूं तूं गुलशन किया। चिरागे हसन कूं तूं रोशन किया।
दिसे तुज मने सब सगादत की सैन। के दादा हसन तुज नाना हुसेन।
अली बाद बरहक इमामे वली। नबो का नवासा हसन बिन अली।
मुना जात कीता हसन शाह सवार। के जग रखन्या परवरदिगार।
हुसैनां मने तू किया नो इमाम। हम औलाद में फज्ले अकसर तमाम।
निदा आइया हजरते गैब ते। के ए शाह!' तूं पाक है ऐब ते।
तुज औलाद में एक ऐसा रतन। नबी का सो दां जग करेगा जतन।
बुजुर्गो हुसैनी इमामा मने। जो कुछ है सो सब जमा है उसकने।
जग इस नाँवें शाह अब्दुल कादर कहें। उसे सेवते दुई जग जम रहें।
सुनें शाह हसन गैब को बात जब। किये शुक्र हक का बहुत घात तब।
के अपना मोहियोद्दीन फर्जंद है। हुसैनी अमामां में नौ चन्द है।
सो तूं चन्द जूं सूर तुज नूर तल। न रोशन दिसे चन्द जूं सूर तल।
हसन के सु दरया का सो मोती तुही। हुसेना मने जग जीती तुही।

उद्धरण—कवि शेख अशरफ के परिचय सन्दर्भ (पंचम अध्याय पृ० २९०) में आये उल्लेख के पुष्ट्यर्थ ही 'पिरतनामा' यहाँ उद्धृत है। वैसे हिन्दवी-साहित्य भंडार की यह भी एक महत्वपूर्ण रचना है।

ना निपता जो तूँ किस निपाता करीम । हसन कूं सो भी क्यूँ मनाता करीम ।[1]
तू फरजन्द है कर हसन को खुशी । सो दरिया कूँ तेरे रतन की खुशी ।
अमोलक तू रतन कह जग मानिया । खुदा के खजीने ते तुज आनिया ।
सो फरोज सहने में पाया रतन । रखिया सो रतन ढाँ जो सो जतन ।
सुने सार दिल गाल कुन्दन किया । गडता साफ कूंदन जिला मन दिया ।
के जब तुज रतन जोत हम दिल पड़ी । पदक दिल मने लाल मयामें जड़ी ।
हमन दिल पदक में सो तूं लाल है । पदक लाल जोती सों ऊजाल है ।
रतन खास फेरोज जब हाइया । पदक दिल मने लाल बिसलाइया ।
कहो कौन ऐसा दुनिया-दार है । के जिस का पदक लाल तुजसार है ।

हिंडन निकल्या खिजर यक दिन जंगल । सोता अथा मद यक झार तल ।
कह्या खिजर मन में के इस मर्द कूँ । जगाऊँ जो सोया हों उसफर्द कूँ ।
उठया नाद भज हातिफेगैब तब । कि ऐ खिजर हो दूर अराखें अदब ।
अचंबां हुवा खिजर सुनकर विदा । के ऐसा कौन मर्द है ऐ खुदा ।
जो इसका इता मैं अदब राखना । छिपायां सो के मज थे आखना ।
कौन है वली जो मैं न जानता । कौन मर्द है जो न मुंज मानता ।
निदा यों हुआ के ऐ सब्जपोश ! । उनन कूँ न तू जानता अछ खमूश! ।
हमारे जो आशिक न पहचानसी । जो माशुख मेरे न तू जान-सी ।
किया खिजर भीतर मनजात ये । के तूँ जान है मंउ जनाबात ये ।
जो माशूक तेरा उनन पर बड़ा । कौन है कहे खिजर पूछन खडा ।
मनाजात पर खिजर सुनी आवाज । कि ऐ खिजर! तेरी कुबुली नियाज ।
बडा अब्दुल कादर मोहियोद्दीन वली । हिन्दें जुमला माशूक इसकी गली ।
के इस कों वसाया सो बाजार रास । सच्चा अब्दुलकादर खरीदार खास ।
जो इसका सदा गर्म बाजार है । के जिस अब्दुलकादर खरीदार है ।
सो सुलतान माशूक सुभान का । के सुभान आशिक सो सुलतान का ।

खुदाया जो माशूक तेरा अहे । मोहियोद्दीन सो पीर मेरा अहे ।
मन्जे रावने जग राता जनम । मोहियाद्दीन सूँ तूँ कमाता जनम ।
मोहियोद्दीन माशूक आशिक खुदा । नहीं इश्क माशूक आशिक जुदा ।
बन्दे इश्क मेरा जो दिल में धरे । सो बन्दा जो मेरा कूँ आशिक करे ।
मोहियोद्दीन मेरा निगेहदार गंज । दुनिया सूँ नको कर गिरफ्तार मंज ।
मुजे दीन भाता न भाती दुनियाँ । अंधे दीन आता न जाती दुनियाँ ।

१. हसन कू बजा क्यो बनाता रहीड

तू सुलतान सलातीन रअयत तुजे । तू हाकित कि जग पर हुकूमत तुजे ।
वली चाव कर पाव अपे सर लिए । कदम राखने तुज खान्दे दिये ।
मगर शेखे सना हुआ पारखा । हुवा दीन खां काफिरां सारख ।
भूलिया देख तरसा की एक पूतनी । लगी लंक पूजन लग्या मूतनी ।
सुरा पीव कुरान ले जालिया । चडा खून के दोजख अपस घालियां ।
फरिश्ते तुज आजमावने आए जब । परां जल पड़े थे सजा पाय तब ।

तुही अब्दुलकादर सो कादर दिसे । के कादर की कुदरत में नादर दिसे ।
नजर तूँ करे तू मुवा जी उठे । वजू बिन जो तुज नाव ले सर लुटे ।
रब अपने सूँ आशिक वली सब अदा । तू माशूक आशिक तोसों रब सदा ।
बुजुर्गी तुजे सब वलियाँ में सोहे । वली जिस मोहे वही तुज मोहे ।
वली सब सिफाती तजल्ली तुजे । तु अफजल के जाती तजल्ली तुते ।
मद्दत हो सके तूँ न कोई जिस मदद । न तू जिस मदद कोई ना तिस मदद ।
तूं फेरोज किस्ता कूँ मान दे । मंगू दान तुजकन मंज ईमान दे ।
तूँ जिस रात सहने में मंज पाइया । मुसलमाँ कर मैं अपस में जानिया ।
वले भी मंगू दान ईमान का । तूँ ईमान राखे मुसलमान का ।
सुता था जो एकस रात वक्टे सहर । सो सहने में दीखा जो यक खूब घर ।
कहया मैं कि ये कौन खाना अहे । मोहियोद्दीन का आसताना अहे ।
मुजे आरजू थी भितर जावने । उनन का सो दीदार चुक पावने ।
खड़ा था सो परदा उडया दारका । भितर पैसे मरहम हुआ बारका ।
मोहियोद्दीन कों मैं देख सर भूई धर्या । केती ठार भी सीस यौं ही रख्या ।
रुपेश राख हन्त जोड़ पाँप पड़या । जो मैं ढूंडता था सो मुंज अपडया ।
मुंजे बैसने की इशारत दिये । मुरीद होंवने की बशारत दिये ।
दिये सस्ते पंजा मोहियाद्दीन मुजे । किये प्यार सूँ जिक्र तलकीन मुजे ।
मोडते हमन हात देते अकाल । सो नेमत जो पाया सो मज्जूब हाल ।
मोहियोद्दीन हम सोने में आइया । सो मैं जाग यकदूम जी पाइया ।
मोहियोद्दीन मकदूम जी जागना । हमें जीव उस पीवसूँ लगाना ।
मोहियोद्दीन सानी सो मकदूम जी व । अरे जीव उस हत्त परम मद पीव ।
बराहीम मकदूम जी जीवना । के मय सिर्फ वपदत सदा पीवना ।
उतम बेल मकदूमजी जाइया । मोहियोद्दीन दूजे जनम आइया ।
बड़ा पीर मकदूम जी जग मने । मगें नेमतां मोंतखिद इकसने ।
करें मंज उपर प्यार एं पीर जग । के तुज प्यार ते हुए मधीर जग ।
पिया, जीवते तूँ हमन पास है । तो हम जीव के फूल की बास है ।

वही फूल जिस फूल की वास तूँ । वही जीव जिस जीव के पास तूँ ।
सो तूँ रुख है दीन का बारदार । जो तुज छावँ तल जग पकडया करार ।
तो तुज छावँ तल है सदा सुक उसे । न दुनिया व दीन का कधी दुख उसे ।
अछो मुँज उपर छाँवँ तेरा जरम । के आदार मेरा सो तेरा करम ।
करीमाँ की मजलिस करामत तुजे । अमीना की सफ में अमामत तुजे ।
तुजे फक्र दमडी न तूँ कुछ धरे । गुनी तूँ दुनूँ जग तसर्रफ करें ।
तू सुलतान जग का वह जग में फकीर । के सब बादशाहाँ कूँ तू दस्तगीर ।
सदा मस्त तूँ वादा नौशी न तुज । वली तूँ करामत फरोशी न तुज ।
सच्चा तू तलबगार करतार का । के है मस्त मदहोश दीदार का ।
तू निरमल दो पंख निरमला गोत तुज । हियाँ आरसी जिवं जगा जोत तुज ।
दिसे तुज हिये क्यों न दो जग बसत । के जग में[1] बसनहार है एक कंत ।
मोहब्बत के दर्या में गव्वास तूँ । के सब मोतियाँ में रतन खास तूँ ।
परम मद भा-या समंदर तुज दिल मने । पिला मस्त मुँज कूँ सके तिल मने ।
पिया चरक प्याला पिलाए मुजे । पिया तूँ जिसूँ मिल मिलाए मुजे ।
मिले तूँ तो करतार सूँ मिल रहूँ । मिला मुँज रखे जो जनम हल रहूँ ।
समंदर परम मद भर्या तू धरे । करे प्यार तूँ हम सुराही भरे ।
भर्या समन्दर तूँ दमबदम नोशकर । मुजे एक प्याला सूँ मदहोश कर ।
हर एक शेख दुनिया में जूँ डोलना । तूँ नहीं दीन का रुख न तुज जोलना ।
तु साबित कदम कुतब करतार का । सितारा जगा जोत संसार का ।
भोत शेख वेकार मशगूल तूँ । जो वेकार काट्याँ भया फूल तूँ ।
करनहार तूँ कशफ असरार का । के बक्शो गुन्हा मुँज गुनहागार का ।
मुँजे दान दे दीन दिलशाद कर । दुनिया के गुनाहाँ ते आजाद कर ।
निगेहबान मेंरा तू मुंज रख निगाह । मुंजे देव-दुश्मन ने तेरा पनाह ।
जिसे पीर मकदूमजी पाक । उसे दीन दुनिया में क्या बाक है ।
जिसे पीर मकदूमजो साइयाँ । धरे तख्त जन्नत में उसताइयाँ ।
जिसे पीर मकदूमजी कंत है । नबी पास लग निपत उस पन्त है ।
जिसे पीर ऐसा जो सरताज है । न किस पास कधी ओ सो मोहताज है ।
जिसे पीर मकदूमजी इश्कबाज । वही दोही जग में हुवाकारसाज ।
जिसे पीर ऐसा को सदा दीजिए ? । चैन पास इस जेब अस बराजिए? ।
जिसे पीर मकदूम जी राजाना । तबल ढाल उस दार जाम गाजाना ।
सो मकदूम जी पीर फीपोज का । निगेबान परदा वह इमरोज का ।

---

१. इसमें

जो तेरी नजर मुज पें इकबार होए । के सब खाक मेरी सो बंगार होए ।
मुहम्मद अली का तुँ ही दोस्तदार । के तुज पर मोहम्मद अली का प्यार ।
मोहिबा खानदान का तूँ इखलास तूँ । के सादात का दोस्त है खास तू ।
मोहियोद्दीन सैयद सूँ तूँ एक जहत । के सब जग को मार तेरी रहमत ।
तुजे पेशवा अब्दुलकादर इमाम । उसे ते हुआ तुज आला मुकाम ।
मोहियोद्दीन तेरा तु शीरा मियाँ । तु मेरे मोहियोद्दीन के दर मिया ।
कह्या तूँ कि फेरोज मेरा मुरीद । बड़े वक्त मेरे जो तेरा मुरीद ।
अजे नांव है छुतबदीन कादरी । तखल्लुस सो फेरोज है बीदरी ।
सदो बीस तो यक जब किया बैत में । दो जग मब से मार्या सैत में ।

परिशिष्ट ३

नौसरहार का शब्दार्थ कोश

१) अंकों	आँख	अंकों केरा काजल पोल
अंखी	आँख,	अँख्यों उपर राखी लाक
अंख्या तानना	आँखे फाड कर देखना,	रहा महबूत अंख्या तान
अंग	शरीर'	सोले पहरो अपने अंग
अगला	निराला, बढकर	दुख पर दुख मुझ नित अगला ऐसा किस का अगला जीव
अंगात	तकलीफ,	यों उन कीता भाई अंगात
अंघे	आगे,	पीछे वेरी अंघे घाट धरे उन अंघे कपड़े खास
अघाना	तृप्त होना,	कोई अघाने कोई फकीर
अचूक	निर्दोश,	बादल बिजली मेंह अचूक
अछना	होना, रहना,	जीवती अछेगी वह तो लग
अजली वक्त आना	मृत्यु काल आना	जानो तो के हुसेन अली केरा आया वक्त अजली
अंझू (अज-हूँ)	अभी, अब तक,	अंझू दुख मा-बापों का
अंझू	आँसू,	अंखों बरसे अंझू टूट
अंझू घूटना	आँसू पीना,	बाजां उम्मेसलीम उठ दोन्हों नयनो अंझू घूट
अंझू ढालना	आंसू बहाना,	अंझू ढाले केते लक
अडलेना	जिद करना,	यूँ उन दोनों लेते अड
अतबल	शक्ती शाली,	बुलंद घोडा बिजली पाव अतबल बैठा रावत राव
अत	अति, बहुत	आलम सरज्या अत रहस
अतुल	अनन्य,	नाक सुहावे आंख अतुल
अदना	अकिंचन	अदना अछे या अफज्यूँ
अंदकार	अंधेरा,	जग में होवे यूँ अंदकार

अंधला	अंधा,	अंधला लोरे अंख्यां धर
अंधारा	अंधेरा,	रात अंधारी भूले बाट
अधीर	बेचैन,	छोडी मुतलक कर अधीर
अन्त	सीमा,	अन्त न पाया किन्हीं जान
अंपडना	पहूँचना,	अंपड्या जैनब केरे घर
अंपडाना	पहूँचाना,	अंपडाऊं तुझ तेरी हौस
अपना ईमान पानी देना	अनीति करना,	ईमान अपना पानी दे
अपनी	खुद,	अपने कारन बाद कही
अपस सट देना	होश गुम करना'	देख अपस देता सट
अपें	आपही,	अपें छुप्या चेले छंद
अपें आप	खुद ब खुद	अपें आपसूँ होवा जूँद
अफजूँ	श्रेष्ठ,	अदना अछे या अफजूँ
अंबर	आकाश,	अंबर कौन्दे तारे धर
अमराता	घमंडी,	क्या यूँ कीता मैं मोंडी अप अमराता सर मोंडी
अमाल	बादल,	फौंजां चले ज्यूँ के अमाल
अरत	अर्थ,	रतन पद अरत मानक जड
असमान	आसमान,	जिन यह सरज्या भूई असमान
असला	असील,	ताजी घोडे असला चीन
आ		
आखना	कहना,	आँखू तुझपर मुन चित धर
आघूँ	आगे,	किस आघूँ यह दुख रोये
आट	आठ,	तारीख उस दिन चाँदू आट
आदमी	मनुष्य	घोडे गदरे आदमी
आधार	नहर,	या के खुलवा कुछ आधार जहाँ मिले पानी चार
आधार	सहारा,	बहुतन केरा तूँ आधार
आधार पकड़ना	सहारा लेना,	तेरा पकड्या मैं आधार
आना	लाना,	आने मुज कों वह आरस
आना	छोटा,	जोवन बाले आना आंब
आनना	लाना,	यक-यक बोल ये मोजूँ आन
आवत	आकर,	दीस संवारे सूरज आवत
आस तुडाना	निराश करना,	एकन राखे आस तुडाव

आसन	घोडे की जीन,	घोडे पर थें आसन छूट
आस पकडना	उम्मीद रखना,	दामों केरी आस पकड
आ हाँ	वहाँ,	आहाँ शफक्कत न हुरमत रखें
आहिस्ता	मस्त दिल,	भला सियाना शाएस्ता
		धीरा पुख्ता आहिस्ता
		दुश्मन आहीं या की दोस
आहीं	हैं,	मेरी आहे यूँ रजा
आहे	है,	

इ

इत	इस,	वह जिस राखे इत संसार
इतनई	इतने,	इतनई दिन में गफलत था
इतनां	इतना,	इतनां बारे खूबी जान
इराखात	पेशाब,	मावी केते इराखात
इस्तकबिल	इस्तकबाल,	आये सब तुझ इस्तखबोल

ई

ईहाँ	यहाँ,	ईहाँ थें तूं लेकर जा
ईन्हों	इन,	ईन्हों प्यार्यों केरे गम

उ

उचाना	उठाना,	दोहूँ हाथों ले उचाव
उदास	निरपेक्ष,	तीन्हों काले बारहा मास
		अपनी अपनी रुत उदास
उघारना	बे सहारा करना,	काम उघारा सर तो पा
उन्ह	उन,	जीवडा उन्ह का जाये सर्ग
उन्हां	उन,	मर्ग उन्हां की याद दिलाक
उन्हीं	वह ही,	कीता उन्हीं करता सोय
उन्हों	उनकों	उन्हों मार्या तुकडे कर
उपाना	पैदा करना,	बीज में थें रुख उपाव
उलाट	उलटा हुवा,	माथे जानो चांद उलाट
उलास	बलवला, इच्छा,	याजीद केरे काम उलास
उल्लासी	उत्साहित,	यूं उल्लासी खुशी सात
उसास घालना	आह भरना,	बाजा कह्या घाल उसास
उसास बहाना	” ”	किस लग वैसे किस के पास
		मत ए तरसे वाह उसास
उम्मे सलीम	उम्मे सलमा, हजरत मुहमद की पत्नी,	हरम तुम्हारे उम्मे सलीम

ऊ

ऊ	वह,	ऊ भी होए जैसे चांद
ऊठना	उठना,	बाजां हुवा ऊट खडा
ऊँहाँ	वहाँ,	ऊँहाँ हाजिर रह नबी
ऊँही	वहीं,	ऊँहीं हसन दफनाया

ए

ए	यह, ये,	ए नौ बाबां नौसरहार
एकाएक	अचानक,	इसी भीतर एकाएक
एकन	एकको,	एकन पाले लाड लडाव
		एकन राखे आस तुडाव
एकी	एकही,	मारे रावत एकी मुट
एकूं	एकको,	एकूं कीता जगंल आड
एता	इतना,	एता था जम उन पर प्यार
एकस	एक,	मूसा कह्या एकस काम

ऐ

ऐब करना	बुरा मानना	चूक खता का ऐब न कर

ओ

ओह	वह,	ऐसा कादीर सबके ओह

औ

औतारी	सुन्दर, अद्वितीय,	अतपर औवन ऊघारी
		जानो औ थी औतारी
औधूत	बहादुर,	शाह दिलावर औधूता

क

कन्त	पति,	मैं अठ हार्यो खोया कंत
कत	कहाँ, कैसे,	हौं कत मूल्या राजस्तान
कतीफा	रुमाल,	यक सब्ज कतीफा दूजा लाल
कद	कब,	अब के बिछोडे कद मिलें
कंदोरी	दस्तरखान, जियाफत,	खाना कंदोरी पान खिलाव
कधीं	कभी,	कधीं छांव कधी धूप
कपाल	सिर,	फुटन लाग्या सीस कपाल
करकर लाला	ब्याह कर लाना,	कर कर मेरे कारन ल्याव
करतार	ईश्वर,	क्यों तुझ बक्षेगा करतार

करनी	कर्म,	यह सब करनी रची ऊन
कराएव	समीप का,	खवीश कराएव सगले मिल
कर्बल	कर्बला,	दश्त करबल म्याने इस
कलाना	मिलाना,	कदह भर कर जहर कलांव
कसमी	शत्रु,	नवी के कस्मी जान
कसूत करना	कपड़े पहचानना,	कसूत करत कर हम परमल लाव
कांजी	राई, जीरा मिला नमकीन पानी	आस लगे को कांजी पिलाव
काढ़ना	निकालना,	जीव अब क्यों काढ़ा जाय
कांद	दीवार,	नफस अपना ले कांद संघात
कापड	कपडा,	पहने सगले कापड धोय
काबिल	योग्य, स्वीकार्य,	काबिल सकलों के आया
काले	मौसम,	तीन्हो काले बारह मास
कित कित	कैसे कैसे,	कित कित मातों दुख धरे
किते	कितने	अंझू ढाले कितने एक
किन	किन ने,	उनतीं सरज्या ना हौर किन
किन्हीं	कोई, किसी ने	वाजाँ किन्हीं यह हिकमत
किस	कौन,	किस अंदाजा बोल सके
की	क्यों,	की तूं होवा मखमूल
कीता	किया,	पैदा कीते वह दिन रात
कुजना	पुराना	उस कूं दीवा क्या कुजना
कुरबत	निकट का व्यक्ति	के नबी का तूं कुरबत है
कुलवा	पानी का सोता,	याके कुलवा कुछ आधार जहाँ मिले पानी चार
के	की,	के हो तूं मुझ दामाद
केरा, केरी, केरे	का, की, के,	उम्मद केरा वह दस्तगीर
केस	बाल,	तलबे झाडे केसों सात
कोडों	करोड़ों	लाखों कोड़ों बाँधें माल
कोय	कोई,	शायद लिखे पढ़े कोय
क्यों-क्यों	किस-किस तरह,	क्यों-क्यों मारे किस-किस घात
ख		
खडग	तलवार,	लेवे खडगों सीस उतार
खंडा	,,	कसम तरकस खंडा हात

खवास	खास दूत	सुनकर तुरत उन खवास
खांकर	गढ	दुखों होये घस खांकर
खांदा	कंधा,	बहिश्ती केरे खांदे पर
खाँदे धरना	उठाना	खांदे धर कर खुश उलास
खोसना	बाल नोचना,	लेता अपनी दाडी खोस
ख्याल लेकर उठना	इरादा करना,	लेकर उठ्या ख्याल पलीद
ख्वास्त	इच्छा	पाई जब की ख्वास्त मुराद
ग		
गगन	आकाश,	गगन सगता अवर मरे
गत	दशा,	हौं इस लोरूँ मुझ क्या गत
गंभीर	गहरा, ध्यानमग्न,	कीता अपना मन गंभीर
गम्हीर	बड़ा आदमी,	ल्याये पैगाम चार गम्हीर
गल	गला,	तो वह रहे तुझ गल जोड़
गलना	पिघलना,	या गल होता पानी आव
गल्ले लाना	गले से लगना,	लेता हसन कों गले लाव
गोई	गोत्रज, निकट का,	बापन भाई गोई होर
गोत	गोत्र,	गोत उजाला घर दीपक
घ		
घनेश	बहूत जादा	पिरत घनेरी तुझ सौं लाव
घात मांडना	घात करना,	मनुस के जीव पर मांड्या घात
घालना	बिखेरना,	घाले सर सूँ मोकले बाल
घुमाना	लुभाना, बहलाना,	दीठ सुहावे जीव घुमाय
च		
चकेक	जरासा,	ज्यूँ उस आई नीद चचेक
चतुर	होशियार,	भेद न पावे कोई चतुर
चंदना	चाँद, चाँदनी,	जिस घर पून्यों का चंदना
चंदर	चाँद	चंदर सूरज तारे सूरज रुख
चंदर गुन	चंद्रमा के समान,	ओ हुसेना चन्दर गुन
चाड़	गहरा प्रेम,	जे है तुझ कों मेरी चाड़
चाँपना	दबाना, मरोडना,	देऊँ जीवड़ा नरडी चांप
चार	चारा,	जंहाँ मिलई पानी चार
चालाक	शीघ्रतासे,	बाजाँ जिब्रील उठ चालाक
चित्त	दिल, खयाल, ध्यान,	आखूँ तुझ घर सुन चित्त

चित्तघर सुनना	ध्यान से सुनना,	आखूँ तुझ घर चित्त घर
चितना	चिंता करना, सोचना	जो उन चित्या सो होय
चीर	वस्त्र, पोषाख,	सुखी राखे चीर पिन्हाव जिबं नित मैले फाटे चीर
छ		
छन्द	चाल, तरकीब,	आंवें छुप्या खेले छन्द
छेले	बकरा, (छेंरी=बकरी)	ज्यूँ कोई काटे छेले गाय
ज		
जंगल	वन,	लोहू सारा जंगल भर
जत	जिस,	जत दिन होवें गे यह मकतूल
जम	हमेशा,	वह पड़ रहे जम दुम्बाल
जहजाद	संतान,	अली फातमा को जहजाद
जहतों (जत्यों)	तरफ से, पक्ष में,	उसके जहतों कोई वजीर
जहेज	दहेज,	देऊँ जहेज वन्दन तुझ
जाई	पुष्प का एक प्रकार,	सेवंती, चंपा,-जुई-जाई
जालना	जलाना,	जाँलू तुझ कों चूल्हे घाल
जानो	मानो, जैसे,	जानो लाई अग अंगार
जारवजार	फूट फूटकर रोना,	मावी रोये जारवजार
जित्ता	जितना,	जित्ता के ए समझावे
जिधर	जिस दिशा में,	जिधर देखूँ तिधर लाल
जिन	जिसने,	जिन यूँ सरज्या मूई आसमान
जिवें	ज्यूँ,	नयन सलोने जिवें बादाम
जीव	जिंदगी,	आफाम आलम जीव जहान
जीव तप उठना	दुखी होना,	जीव उनका उठ्या तप
जीव का धाक पडना	जान का अंदेशा होना,	दल्के पड्या जीव का धाक···
		जोड़ा सब्ज
जीवड़ा कब्ज करना	जान लेना,	हसन जो पहर्या जीवडा सब्ज
जीवमूँ गाँठ पकड़ना	मन में कसक रखना	पकड़ रह्या जीवमूँ गाँठ
जीवों मारना	मार डालना,	हसन को तूँ जीवों मार
जुंबानामा	हरकत में लाना,	हुसेन अली कूँ तूँ जुंबान
ज्यूँ	समान, जैसे,	नयन सलोने ज्यूँ बादाम
ज्यूँ के	जैसे के, जब से,	आया ज्यूँ के मुंई पर मार
जेते	जितने,	जेते मोमिन मुसलमान

जेवें जोग	वास्ते	खसद किया मारन जोग
जोय	स्त्री, पत्नी,	शोहर दार पराई जोय
जोलग	जब तक,	जोलग जीवे तूँ अत जग
झ		
झमकना	चमकना,	खडगुँ झमके बिजली सार
झाडना	तोडना, गिरा देना,	दाँत बतीसी झाडे मान
ट		
टक टक	झक झक करना,	चन्दे टक टक शोर फराज
ठ		
ठार	स्थल,	दोजख प्याने उसका ठार
ठार	ठंडा,	बीछू नाया केहं ठार
ड		
डुलान	झुलाना	सूरज तारे चर्ख डुलाय
डोंगर	पहाड,	जिन यह सरज्या डोंगर कोह
डोह	तालाब, गहरा गढा,	लोट न मुझ को डोह मंझार
त		
तखसीस	कमी, तसाहुत,	जो लग न कर तूँ तखसीस
तडकाँ मारना	टीसें उठना,	लागा नफस तड़काँ मार
तत्ता	तेज, गर्म,	तनें अझू बैठे ढाल
तलमल करना	तिल मिलाना,	तलमल करने लागा सख्त
तलहें	नीचे,	रही मूँडी तलहें कर
तला	निचला भाग,	नंद सवन्दर कोह तला
तसलील करना	हवाले करना,	तूँ कर उसके यह तसलीम
तहें	तभी,	तहें वलीद उठ बाजाँ
ताजियत मांडना	शोक मनाना,	इत पर मांडे ताजियत
तांठ	मजबूत	ऐसा पापी मर्दक तांठ
तुकडा	टुकड़ा,	तन के तुकडे बारह बाट
तुर्क	मुसलमान,	तुर्कों निन्दू लाया दंद
तूटना	टूटना,	बिजली ज्यूँ के कडके टूट
तेजी	अरबी घोडा,	तेजी तुर्की हरजिन्सी
तेता	इतना,	तेता वस्यूँ तुझ धन अत
तैसी	ऐसी, वैसी,	दाँत बतीसी तैसी जान

तैं	तूने,	छोडीं तैं तो खूब किया
तो	तब,	गोर में तो मुझ होये सुख
तों	तक,	अमरत घोले सर तो पाय
तोलग	उस समय तक,	तो लग जिब्रील आया टाक
त्यों	वैसे, समान,	ममूर हुवा त्यों हैरान

थ

थें, थीं	से	उस थें निपजे पापी पूत

द

दंदसारना	बदला लेना,	पहले तूं सार्या अपना दंद
दंदलाना	संघर्ष करना,	तुर्कों हिन्दू लाया दंद
दंदी	शत्रु,	उनके जीव का दंदी होय
दव (द्रव्य)	संपत्ति	केती दौलत दाम व दब
दत कौंडना	श्वास घुटना,	कोंडे दम होर मुण्डी सूत
दर साजन	तय करना,	बाजाँ उन यूँ दर साजी
दरहाल	तत्काल,	ब्याह बदीसों तुझ दरहाल
दसन्तर	परदेश,	जाऊँ दसन्तर काली रात
दहली	दहलीज,	आया घर सूँ दहली आड
दांत कड़कड़ाना	दाँत पीसना,	सीना कूटे दांत कडड
दांतों मीठी जडना	दांतों और मुट्ठियों को भीचना	मावी दांतों मीठि जड
दार	लकड़ी,	माटी कंकर दार-दरन्त
दारू दर्मन	दवा दारू, चिकित्सा,	दारू दर्मन कीले ले
दास	दासी,	बीबी या की सूरीत दास
दिन दिन	प्रत्येक दिवस,	बथन लागा दिन निन पेट
दीठ	दृष्टि,	दीठ सुहावे जीव घुमाय
दीठना	देखना,	सब सुख दीठा तेरे चाव
दीस	दिवस	दीस अँधारे कालीरात
दुई	दो,	उस्मान-अली दुई दामाद
दुख दाधी	दुख की मारी,	अब दुख दाधी किधर जावेँ
दुख धरना	तकलीफ देना	कित कित मांतो दुख धरे
दुम्बाल पड रहना	पीछे लगना,	वह पड रहे जम दुम्बाल
दुम्बालो पडना	पीछा करना	बाजाँ पड्या यूँ ख्यालों हुसेन केरे दुम्बालो
दैत	भूत, दैत्य,	देव-नारी बूत दैत-बला

दोन्हों	दोनों,	उन दोन्हो भीतर लाया सोई
दोभ	स्वर्ग,	मेरे जीव को हुनोवज होस नाही के बस आए दोस
दोस	मित्र,	हौं हूँ बारे तुझ दोस
दोराही	आशा,	मेरी दो राही भीतर रह
दौं	आग,	आँखों अंझू सीने दौं
द्वार	दरवाजा,	खैलन निकले बाहर द्वार

ध

धर	तरफ, से,	होवा सो कह मुझ धर सब
धात	तरीका, ढंग, प्रकार	क्यों क्यों मारे किस किस धार
धीरक	हिम्मत,	आओ प्यारे धीरक दे
धूपकाला	ग्रीष्म ऋतु	कधीं तपता धूपकाला
धै	पुत्री	राजी करूँ तुझ सूं धै

न

नको	न, नही, मत	इस पर कुछ चिंतन नको
नन्द	तुफानी सागर	नन्द समन्दर कोंह तला
नफस	पुल्लिग,	नफस अपना ले कान्द संघात
नबी	रसूल	बाजाँ नबी सुन कर बात
नरडी	कंठ,	देऊँ जिवडा नरडी चांप
निस	रात्री,	तस अंधारी काली निस
न्हासना	भागना,	मत जाए मुझ कों दौलत न्हास
ना	नही,	फरजन्द नाही मुझ को कोई
नाकस	नालायक,	उन तरा से नाकस जोय
नाड	रग, नब्ज,	रगाँ खीच्याँ नाड तलफ
नाद	ध्वनी,	नाद सुनाया बिन कंटतांत
नापेकार	अधम जीव, नीच,	जालीम मलून नापेकार
नामाँ	ग्रंथ, पत्र,	नामाँ कीता बोल संवार
नारा	चीख,	बोल बखाने नारे मार
नारा मारना	चीखना,	बेखुद हुए नारा मार
निपचना निपजना	पैदा होना,	उस थैं निपजे पापी पूत
निरधारी	बे सहारा,	मुझ बिन होते निरधारे
निरास	कम्बख्त, दुख	पूत निरासा औंधी लेट
निसार	प्रकार,	रोऊँ लागे बहुत निसार

निसास होना	आहें भरना	रो-रो खोवा अतिनिसास
नीर पकड रहना	इरादा करदा,	भाबी यूँ मन मों नित
नेरे	नियरे, निकट,	बाजाँ उठ कर नेरे आव
नैंन पसारना	चारों ओर देखना,	यूं क्या देखें नैंन पसार
प		
पठाना	भेजना,	लिख पठाया यजीद पास
पन्द	खयाल, युक्ति,	बाजाँ उठ्या यह पन्द पकड
परम	श्रेष्ठ,	भेदक स्याना परम सुजान
परम	सं. परिमल, सुवास,	कसून कर हम परमल लाव
परवार	परिवार,	रोये कूटे सब परवार
पसर रहना	चित्त लेटना,	रह्या पसर मुँह पलेट
पहरना	पहराना	यह तुझ पहरे सब दुख जाय
पाट	पाटा,	के अब लागे लागन पाट
पाडना	उडाना, फेंकना,	चौधर जग में पाडी धूल
पाथर	पत्थर,	पाथर में थें नीर बहाव
पिरत	प्रीति,	पिरत घनेरी तुझ सूँ लाव
पीथ	प्रीति,	ना पीथ संघाती घर में जोय
पुश्तेवान	सहायक,	हसन जैसा पुश्ते वान
पूता	पुत्र बेटा,	अब कह पूँता क्या मकसूद
पून्यो	पूर्णिमा, पूनम की चाँदनी,	जिस घर पून्यो का चंदना
पेखना	देखना,	देखत पेखत ऐसी तोय
पैराव	पोषाख,	हर हर जिन्सी पैराव तुझ
पैसना	प्रविष्ट होना,	फाटे भुई तो पैसों जा
पोंगडे	बच्चे,	पोंगडे लोगों के खुश होए
		होर इन पोंगडों कारन मुझ
फ		
फट	फटकार, प्रकट होना,	फट पडे ऐ तेरे ढंग
फटना	पढना,	ज्यूं फड देख्या शाह हुसेन
फांकना	दूर होना,	पानी गया यूं सब फांक
फाटे	फटे हुए,	जिवं नित मैले फाटे चीर
फांदे पाडना	फंदे में फंसना,	पहले तूं इस कूं फांदे पाड
फिरावना	फिराना, घुमाना,	बरस फिरावे तीन हंगाम
फुरसत	अवसर,	देखद लाग्या यूं फुरसत

ब		
बखान	वर्णन,	रोवं लाग्या बोल-बखान
बजार	वज्र, पत्थर, कठोर,	सच्चें तो वह बजरका
		सीना उसका पत्थर का
बजाना	बजा लाना,	सलाम तहीद उन बजाव
बज्जाक	सांप का एक प्रकार	मुझ क्या कीजे यह बज्जाक
बद्दल	परिवर्तन,	चूक न जासे बद्दल होय
बन्दी	बान्दी, दासी,	पापन बन्दीं जन बैठी
बवना	बढना,	बधन लागा दिन दिन पेट
बनवा	दावानल,	डोंगर दूखों बनवा लाग
बरां	वर्षा,	आतिश सोंजा बाद बरां
बरगूने	एक प्रकार का वाद्य,	ढोल दमामें बरगूने
बरजना	मना करना,	कौन अब बरजे मुझ इस बाब
बराबर	समक्ष,	हुसेन बराबर सके बोल
बलवंद	बुलवन्द, शक्तिशाली,	बलवन्द घोडा बिजली पाव
बर्शगाला	वर्षा,	कधीं पडता वर्शगाला
बसात घात	धोखा, विश्वासघात,	ऊन कीता घात बसास
बहावना	बहाना,	नीर बहावते तो रो रोह
बहुतन	कहून सारे,	बहूतन केरा तूं आधार
बाअल्ला	ईश्वर की शपथ लेना,	जावं ना बाअल्ला औरत पास
बाँचना	बचना,	तिफल कच्चे यूं बांचे ज्यूं
बाज	बगैर, शिवा,	बाअल्ला लडने मारने बाज
		होर कुछ नाही ऐ सरताज
बाजंतर	बाजा,	हर हर जिन्सी बाजंतर
बाजना	वजना,	बाजन लागे फौज आन्दर
बाजाँ	बाद, इसके बाद,	बाजाँ नबी कह्या यूं
बाजी आना	प्रसंग आना,	आए मुतलक बाजी नीर
बाजी चलना	युक्ति सफल होना,	तो कुछ चले यह बाजी
बाजी देना	पराजित करना,	हसन दफा होता जे
		तो हीं सकता बाजी दे
बाट	मार्ग,	रात अंधारी भूले बाट
बाट देखना	प्रतीक्षा करना,	देखत तेरी बाट खंड्या
बाडी	खेती, क्यारी,	फलों बाडी उमलाए

बाद	बान्दी, दास-दासी,	बान्द गुलाम ए घोडे भी
बार	अवसर,	ईद बराताँ बार-त्यौहार
बार	देर, विलम्ब,	मुझ कों लागी एती बार
बाराबाट	टुकडे टुकडे होना,	तन के तुकडे बाराबाट
बार लाना	देर करना,	ओ प्यारे बार न लाव
बारहा	बारह,	तीन्हो काले बारहा मास
बारां	बारह,	वारी तुझ पर बारां लख
बालबेंगा करना,	हानी पहूचाना,	करे जो उसका बेंगाबाल
बाला	युवती,	जोबन बाले आना आंव
बाव	हवा, वायु,	माटी पानी आग होर बाव
बाव की मारी	संकट ग्रस्त,	आवो प्यारे धीरक दे बाव की मारी जातीं रे
बावल	दीवाना,	मुझ कत लाग्यां बावल ध्यान
बाहना	डालना,	इस अंदेशे बिच मुझ बाह्या
बाहें	के लिए, वास्ते,	कहकर भेजा तुझ बाहे
बिकसना	फुलना,	हीना बिकसे दुख के भार
बिच	भीतर,	इसअंदेशे बिच मुझ बाह्या
बिछोडा	वियोग,	अव्र बिछोडा होवा जम
बिछोडे	वियुक्त, बिछडे हुए,	अब के बिछोदे कद मिले
बिजली पाव	तीव्र गति,	बलवंद घोडा बिजली पाव
बिलखना	तडपना, रोना,	यूं दर मांदा बिजली घर
बिसरना	भूलना,	जीव का सगला दुख बिसर
बिसलाना	बैठाना,	बिसलाया उस अपने पास
बीछू	वृश्चिक,	वहां बीछू था मौजूद
बुद	शिक्षा,	ना कर पूता तूं बुद सून
बुध देना	परामर्श देना,	ऐ कुछ बुद दे ऐ कुछ भादर
बेंगा	भेढा,	बेंगा तेंगा न मौजूं
बेजान करना	मार डालना,	पहले उस कों कर बेजां
बेरू	शत्रू,	अपने प्यारे बेरू हात
बैरी	शत्रु,	बैरी उन कों यूं दुख दे
बैसक	बैठक,	उंची बैसक पाई ठांव
बैसना	बैठना,	किस लग बैसे किस के पास
बोल धरना	आरोप रखना,	मंजे बिल्ला बोल न धर

बोल संभालना	वचन पालना,	अब तूं अपना बोल सम्भाल
बोल्या चाल्या	बातें,	यूं पर दोनो भाई मिल
ब्याना	पैदा करना,	किस की ऐसी ब्यानी माय
ब्यां ब्याही	विवाहित,	ब्यां ब्याही जिस के थी
ब्याह बांदना	विवाह करना,	जे वह राजी होय एताल ब्याह बदी सूं तुझ दरहाल
ब्याह मांडना	विवाह करना,	आजब मांडू तेरा ब्याह
भ		
भतार	पति,	वैसा सरवर शाह भतार
भात	प्रकार,	कित कित भातों दुख धरे
भानना	तोडना,	भीनर पैसों भानू दाल आनूं बैरी खांडे तल
भाना	डालना, बहाना	इस अंदेशे बिच मुझ भाया
भार	बोझ,	आया ज्यूं के भूंई पर भार
भार	सेना,	सौंमुख आए दोनों भार
भार	बहार,	नैन सलोने जो बन भार
भार पडना	संकट आना,	आव पड्या मुझ पर भार
भाव	मन की बात,	मुझ घर भांकूं सच्चा भाव
भिकरा	पोला अनाज,	सूकी माटी ज्यूं भी भिकरा
भीजनना	भीगना,	भीजे कपडे सब रूमाल
भीतर	अन्दर,	बैठे मस्जिद भीतर हाव
भुई	भूमि,	भूई आया शाह हुसेन रोबं लागे भूई पर पड
भूलाना	भूल जाना,	केहूँ करना उन भूलाये
भूकों प्यासो भार	भूख से तडपाना,	भूकों प्यासों हैरां मार
भूल घालना	चूक होना,	वह मुझ कैसी घाली भूल
भूलना	घोखा खाना,	घन कों भूली प्यारे मुई
भेदक	भेद जानने वाला,	भेदक सियाना परम सुजान
भेरां	भेरी, एक वाद्य,	घोल दमामें बरगूने काहलियां भेरां केते से
भेस पहनना	पोषाख पहनना,	होव जोगी पहरूं भेस
भैन	बहन,	गोती मा बाप भाई भैन
भैना	बहन,	भाई बहना गोई होर

		सकले मांड्या मातम घोर
भोगम	भोग विलास	या के करूँ तो उस सूँ भोग
भोगन	सुन्दर, गुणवान,	चन्दर रूपी ऐ भोगन
भोगना	प्राप्त करना,	हुसन सों भोग्या सब सुख लाड
भोडना	लौटना,	उठ कर घोडे सवर पकड
भोंत	बहुत,	का बेखूद हुवा भोंत निढाल
भोतन	बहुतों का,	बहूत न केरा तूँ आधार
भोंदी	भोंडा, बेवकूफ,	क्या यूँ कीता में भोंदी

म

मखमूल	निढाल,	के तूँ होवा यूँ मखमूल
मगंना	मगंनी,	भी क्या भेज्या उस मगंना
मझार	बीच,	लोट न दे मुझ डोह मझार
मत	मति, ध्यान,	में मत पकडी जिस की आस
मनमूं रोस पकडना	क्रुद्ध होना,	यजीद पकड्या मनमूं रोस
मर्दक	बदमाश,	ऐसा पापी मर्दक तांठ
मुस्तईद करना	तैयार करना,	थूँ उस कीता मुस्तईद
महबुद	हैरान, मभूत,	महबूत होवा सारा लोग
माई	माता,	माई आई बांह पसार
माटी	मिट्टी,	माटी कंकर आब रवां
मांडना	बनाना, निर्माण करना,	अतपर मांड्या यह सह रूप
मान	इज्जत, प्रतिष्ठा,	जिस थें होवा तुझ कों मान
मारग	मार्ग,	कूफे केरा मारग सट
मास	महीना,	पूरे हुए जब नौ मास
		तीन्हो काले बारह मास
मासक	महीना,	बाद अज मुद्दत मासद तिन
मांह (मान्ह)	में, भीतर,	था मदीना माह अमीर
मीत	मित्र,	क्यां ब्याहा जीका लीत
मंझ	मुझ,	ना कर बिल्ला मंझ पर रोस
मुतआल	श्रेष्ठ,	ऐसा कादीर हक युत आल
मुया	मुडदा, मृत,	मुयो जिवाबे जीतों मार
मुसा आशरी	मुसे आशरी,	नांव उस मुसा आशरी
मुंहे	मेरे,	भेजे मुहे पास इस का
मूं	में,	यह है मेरे मन मूं चाव

मूडों	सिर, शीश,	रह्या यों कर मूंडी तल
मूंठीतलहे करना	सर झुकाना,	रही मूंडी तलहें कर
मोकल	मुक्त,	आय खडे हो मोकल बाग
मोकला	खुला हुवा, स्वतन्त्र,	चाले सरसूँ मोकले चाल
मोट	गठरी, पोटरी,	मुझ सर असवे दुख की मोटे
मोंह	में, भीतर,	मेरे जीव मोह यह है चाव
म्याने	भीतर, बीच,	दो जग म्याने उस का ठार
म्हेंवे	वर्षा,	कधीं खरहर बरसे म्हेंवं

य

यश	प्रशंसा,	हजरत हक को की करना यश
यादगीरी	स्मारक,	अछे तेरी यादगीरी
याजेद	यजीद, मावीका पुत्र,	याजेद करता तेरा चाव
यू	यह,	जिन यू खरज्या भूई असमान
यूँ पर अछना	ऐस होना,	यूं पर अछती एचक रात

र

रक्त	खून,	ज्यूँ के शंगरफ याक के रकत
रकत घोल	रक्त रंजित	आटी हुई सब रक्त घोल
रचना	बनाना,	जेता मावी कह्या रच रच
रत	लाल,	तत यह माटी होय लाल
रतरा	लाल,	शंगरफ थें भी रतरे सख्त
रहस	रहस्य,	आलम सरज्या इत रहस
राखना	रखना,	एकन राखे आस तुडाय
राजिस्तानी	गद्दी,	कसुत कर हम परतम लाव
		राजिस्तानी बैठा आव
रातना	दीवाना होना,	राती होई यूँ धन की
राती	दीवानी,	राती होई यूँ धन की
राव	राजा,	सुन ऐ नबी मुहम्मद राव
रिक्कत	यात्री की तैयारी करना,	बारे में तो बान्ध्या रक्कत
रूख	वृक्ष,	चंदर सूरज तारे रूख
रूख पकडना	ध्यान देना,	बैरूं केरा रूख पकड
रूत	ऋतु,	अपनी अपनी रूत उदास
रूस उठाना	गुस्सा होना,	यू सुन मावी उठा रूस
रोस करना	गुस्सा करना,	ना कर बिल्ला मुझ पर रोस

रोऊँ लागना	रोने लगना,	रोऊँ लागे भूई पर पड
ल		
लख	लाख,	अंझू टाले केते लख
लडना	काटना, डंक मारना,	वहाँ बीछू था मौजूद
		नफस उस कें कूँ लड्या जूद
लढ लढ रोना	जमीन पर लोटना,	लढलढ रोय भूई पर पड
लई	बहुत,	दरू दरमन केते लई
लागना	लगना,	तलमल करने लागा सख्त
लाना	लगाना,	कसूत कर हम परमल लाव
लाल	रत्न विशेष,	सोना मोती मानक लाल
लुच	नग्न, साधनहीन,	हसन हुसेन दोनों लुच
लोडना	पसन्द करना, चाहना,	वह जिस लोडे तिस रखे
लोन	लवण,	उनकी अंखो राई लोन
लोहू	रक्त,	लोहू सारा जंगल भर
		पानी होये लोहू सा
ल्होरा (ल्होडा)	छोटा,	ल्होरे बरे औरत मर्द
ल्होडपना	बचपन	ल्होडपने का तेरा शाह
व		
वन्स	वंश,	मेरे वंश थें गुजरे नां
वसाख	इरादा करके,	आया अपने घर वसाख
वाह	आह, शोक,	बाह अंधारी कालीरात
विरास	बे मजा,	तुझ थें आया जीव विरास
वेल	काल,	आई तुझ शहादत वेल
श		
शैरी	शायरी,	कर ऐ अशरफ कुछ शैरी
शंगरफ	इंगुर	शंगरफ सें भी रतरे सख्त
स		
सगला	पूर्ण,	पहने सगले कापड धोये
सच्चें	निस्सन्देह,	होवा नौसरहार
सटना	छोड़ना,	कूफे केरा मार्ग सटन
सत	प्राण, सत्व,	माई बाप के मन की सत
सतां	भूमि, प्रदेस	होर सतां सब आये आत
संघाती	साथी,	पीथ संघाती घर में जोय

सनेव	स्नेह,	जोडे तुज सूं पिरत सनेव
सब्ज रंग	साँवला,	सब्ज रंग होर मौंजूं कद
सबी	लड़का, जवान,	ए मुझ प्यारे हर दो सबी
सरग	स्वर्ग,	जीवड़ा उनका जाय सरग
सरजना	पैदा करना,	जिन यूँ सरज्या भूई असमान
सर तो पा	सर से पाँव तक,	अमरत बोले सर तो पा
		सर लो पायं ऊठी आग
सरसो	सुन्दर,	सरसो गालों सहते जांत
सर्वें	पूरे,	बीछू छड्या सर्वें अंग
सल	चुभन,	तो सल बैठे सोने का
सहना	स्वप्न,	ऐसे में यूँ सहता देख
सहस	सहस्र, हजार	जिसके चाव अठारा सहस
सहसर	हजार,	अठारा सहसर आलम जिन
		उन ही सरज्या ना होर किन
सहक सहक	सिसक सिसककर,	रोवं लागा सहक सहक
सार	अति सुन्दर,	रूपों अगली सूरत सार
सार	समान,	खडवों झमके बिजली सार
सारना	पूरा करना,	मुशरीफ सारूँ तुझ अमोल
सिक्का	प्रसन्न मुद्रा, सुन्दर	सिक्का सूरत खूब अजहद
सियाला	शीत काल,	थंडा शी सियाला सीतल सीवें
सीधें	सरल,	तहाँ लीखे सीथें खोल
सीं	से,	भावी जो है तुझ सों सौत
सीतल	सं. शीतल,	ठंडा स्याला सीतल सीवं
सीना सख्त करना	धीरज रखना,	बाजाँ नबी सीना सख्त
		कर चुप रहे यूँ उस वक्त
सौस	सं. शीश,	फूटन लाग्या सीस कपाल
सुख भोगना	सुख पाना	सब सुख भोग्या देख्या राज
सुजान	सज्जन,	भेदक स्याना परम सुजान
सुद	खबर,	जो लग किस कों नाहीं सुद
सुरात	इच्छा, कामना,	जीव मूं पकड्या अत सुरात
सुरूप	सुन्दर,	आंक मजीरा नाक सुरूप
सुहते	आकर्षण,	सर से गालों सुहते जांत
सौं	शपथ,	अब थीं अंधे यूं सौं खावं

सौंखना	शपथ लेना,	
	निषेध करना,	तेरी तो मैं सौं खाई
सौत	शत्रु,	मावी जो है तुझ से सौत
ह		
हंगांम	ऋतु,	बरसन मरावे तीन हंगांम
हजरत	आदरणीय,	हजरत हक की करनां यश
हन्नोर,	और,	मेरे दिल की हन्नोर हवस
हरकत देना	परेशान करना,	हुसेन कूं केहीं देऊँ हरकत
हल होना	सुलझना,	क्यों होवे यह मुश्किल हल
हस्सा	हसन,	हस्सा हैसेन पहरन दे
हवस (हौस)	इच्छा पूरी करना	अंपडाऊँ तुझ तेरी हवस
हाड	हड्डी,	कहीं हाड हीडा कहीं सीस गाल
हांडना	हींडना, झुमना,	हांडन लागे खुशी सात
हात	हाथ,	कह उस अंधे लगे हात
हात चोरना	हाथ मलना, हात चोलणें,	सीना कूटे चोरे हात
हाल	उस वक्त,	लेकिन मावी बरजे हाल
हुल्लाह	पोषाख,	अल्लाह भेजे यह हुल्ले
हैरान	परेशान,	भूकों प्यासों हैरान मार
हो	होकर,	गोर सिराने उभा हो
होर	और,	उनही सरज्या ना होर किन
हौं	मैं,	तब हौं अछूंगा या नां

पिरतनामा का शब्दार्थ कोष

अ		
अंधे	लागे	अंधे दीन आतां व जाती दुनिया
अछना	होना, रहना,	उनन कूं न तूं जानता अछ खमूश
अजमावना	परखना,	फरिश्ते तुज अजमावने आए जब
अथा	था,	सोता अथा मर्द यक झार तल
अप	अपना,	वली चाव कर पाव अपेसर लिए
अंपड्या	मिलना,	जो मैं धुंडता था सो मुंज अंपड्या
अलम	ध्वज, पताका,	विलायत सूं जब तूं उचाया अलम
अहे	है,	खुदाया जो माशूक तेरा अहे

आ		
आखना	कहना,	छिपाया सो के मंज थे आखना
आदार	आधार,	के आदार मेरा सो तेरा करम
आनता	लाना,	खुदा के खजीने ते तुज आनिया
आसताना	घर, स्थान,	मोहियोदीन का आताना अहे
इ		
इता	इतना,	जो इसका इता मैं अदब राखना
इमाम	नेता, पेशवा,	बुजुर्गी हुसेनी इमामां ममे
उ		
उकालना	निकालना,	मोडते हमन हात देते उकाल
उचाना	ऊँचा करना	विलायत सूं जब तूं उचाया अलम
उजाल	उज्वल, प्रकाशित,	पदक लाल जोती सूं ऊजाल है
उतम	उत्तम, श्रेष्ठ,	उतम वेल मकदूम जो जाइया
उनन	उन,	उनन कूं न तूं जानता अछ खमूश
ए		
एकस	एक,	सुता था जो एकस रात वक्ते सहर
ऐब	दोष,	के ऐ शाह, तूं पाक है ऐब से
क		
कंत	पति,	के जग में वसन हार है एक कंत
कधी	कभी,	न दुनिया, व दीन का कधी दुख उसे
करतार	ईश्वर,	सचा तूं तलब गार करतार का
कीता	किया,	मुनाजात कीता हसन शहसवार
के	क्यों,	छिपाया, सो के मंज थे आखना
कोन	कौन,	के ऐसा कोन मर्द है ऐ खुदा
ख		
खान्दा	कंधा,	कदम राखने तुज खांदे दिये
खिजर	वन का देवता,	हिंडन निकल्या खिचर यक दिन जंगल
ग		
गड़ना, घड़ना	निर्माण करना,	गढता साफ कुंदन जिला मन दिया
गाजना	गर्जन करना,	तबल ढोल उस दार जम गाजना
गोत	गोत्र, वंश,	तू निर्मल दो पंख निर्मला गोत तुज
गैब	परोक्ष, देय लोक,	निदा आइया हजरते गैब तें
गौस	श्रेष्ठ महात्मा,	तुही गौसेआजम जहांगीर है

च		
चंद	चाँद,	सो तूँ चंद जूं सूर तुज नूर तल
चुक	थोड़ा,	उनन का सो दीदार चुक पावने
ज		
जतन करना	प्रबन्ध, रक्षा,	तुज औलाद में एक ऐसा रतन नबी का सो दो जग करेगा जतन
जरम	हमेशा,	अछो मुँज ऊपर छाँव तेरा जरम
जहाँगीर	विश्वविजेता,	तुही गौसेआजम जहाँगीर है
जीव	हृदय, जीवन,	हमें जीव उस पीव सों लागना
जीवना	जीवित रहना,	बराहीम मकसूद जी जीवना
जुमला	कुल,	हिंडे जुमला माशूक इसकी गली
जोती	प्रकाश,	हुसेना मने जग जोती तुही
जोर	बल,	तूँ इस्लाम कूँ जो सरयें दिया
त		
तर्सा	ईसाई, पारसी,	भूलीया देख तरसा की एक पोतनी
तल	तले,	न रोशन दिसे चंद जूँ सूर तल
तले	नीचे,	सोता अथा मर्द यक झार तल
ताइयाँ	के लिए,	घरे तख्त जन्नत में उस ताइयाँ
तारीए	तारिकाएँ,	तुही चाँद बाकी वली तारीए
तिल	पल,	पिला मस्त मुझकूं सके तिल मने
तुहीं	तूं ही,	हुसन के सु दरया का सो मोती तुहीं
तूटना	टूटना,	बजू बिन जो तुज नाव ले सर तुटे
द		
दार	द्वार, दरवाजा,	तब ल ढोल उस दार जम गाजना
दिसना	दर्शन,	तुही अब्दुल कादर सो कादर दिसे
दीन	धर्म,	मुझे दीन माता न माती दुनियां
दुनू	दोनों,	गुनी तूँ दुनूँ जग जग तसरफ करें
ध		
धरना	रखना,	मोहियोदीन कों मैं देख सर भूंई धर्या
धान	तरह, समान,	किये शुक्र हक का बहूत धात तब
न		
नको	नहीं,	दुनिया सू नको कर गिरफ्तार मंज
नादर (नादिर)	अद्भुत,	के कादर की कुदरत में नादर दिसे

निदा	आवाज, संबोधन,	निदा आईया हजरते गैब तें
निरमल दोकपंख	दोनों ओर से पवित्र,	तूं निरमल दो पंख निरमला गोत तुज
निपना	पैदा होना,	ना निपता जो तूँ किस निपाता करीम
निपाना	पैदा करना,	,, ,, ,,
नियाज	प्रार्थना,	कि ऐ खिजर तेरी कुबूली नियाज
नूर	ज्योति,	तुही नूर दीदा नबी का यकीं
नौचन्द	नया चाँद,	हुसेनी अमामां में नौचन्द है
प		
पंत	पंथ, मार्ग,	नबी पास लग निपत उस पंत है
पदक	गले का एक गहना,	हमन दिल पदक में सो तूं लाल है पदक लाल जोती सों ऊजाल है
परम	श्रेष्ठ,	अरे जीव उस हत्त परम मद पीव
परां	पंख,	परां जल पडे थे संजा पाय तब
पारखा	परखने वाला,	मगर शेखे सना हुआ पारखा
पीव	प्रिय,	हमे जीव उस पीव सूँ लागना
पूतनी	बेटी,	भूलिया देख तरसा की एक पूतनी
पैसना	प्रवेश पाना,	भितर पैसे महरम हुआ बारका
फ		
फर्द	एकाकी,	जगाऊँ जो सोया हो उस फर्द कूं
ब		
बंगार	सोना,	के सब खाक मेरी सो बंगार होए
बसनहार	रहनेवाला,	के जग में बसनहार है एक कंत
बाक	वक्र,	उसे दिन दुनिया में क्या बाज है
बार	बारगाह, द्वार,	भितर पैसे मरहम हुआ बार का
बिसलाना	बैठाना,	पदक दिल मने लाल बिसलाईया
बेल	वंश, परम्परा,	उतम बेल मकदूम जी साईयाँ
बैसना	बैठना,	मुंजे बैसने की इशारत दिए
भ		
भितर	भीतर,	मुजे आरजू भितर जावने
भुंई	भूमी,	मोहियोदिन कों मैं देख सर भुंई धर्या
भोडना, बुडना	डूबना,	भेतेड हमन हात देते उकाल
म		
मदद	सहायता,	मदद हो सके तूं न कोई न जिस मदद

मंधीर	स्वर्ग,	के तुज प्यार तें हुए मंधीर जग
मने	में, भीतर,	दिसे तुज मने सब सयादत की सैन
मय	मद्य,	के मय शिर्फ वहदत सदा पीवना
मुंज	मुझे,	कौन मर्द है जो मुंज मानता
मुंजे	मुझे,	मुंजे बैसने की ईशारत दिये
मुनाजात	विनय,	मुनाजात कीता हुसन शहसवार
य		
यक	एक,	सो सहने में दीखा जो यक खूब घर
र		
रावना	चाहना,	मंजे रावने जग रोता जनम
रास	ढेर,	के इसको बसाया सो बाजार रास
रुख	रुक्ष,	के तूं रुख है दीनका बारदार
ल		
लंक, लंग	लगन, प्रेम,	लगी लंक पूजन लग्या भूतनी
लागना	जोड़ना,	हमें जीव उस पीव सूं लागना
स		
सफ	पंक्ति,	अमीना की सफ में अमानत तुजे
सब्ज पोश	खिजर,	नियां यों हुआ के ऐ सब्जपोश
	वन का देवता,	
समन्दर	समुद्र,	परम मद भर्या समन्दर तुज दिल मने
सयादत (सियादत)	प्रतिष्ठा,	दिसे तुज मने सब सयादत की सैन
सरथे	फिर से,	तूं इस्लाम कूं जोर सरथे दिया
सहना	स्वप्न,	सोफिरोज सहने में पाया रतन
साईयाँ	स्वामी	जिसे पीर मकदूम जी साईयाँ
सार	समतुल्य,	सुने सार दिल गाल कुंदन किया
सारखा	समान,	हुआ दीन खो काफिरां सारखा
सिरते	आरम्भ से,	तूं इस्लाम कूं जोर सिरते दिया
सी	भविष्य प्रत्यय,	हमारे जो आशिक न पहचान सी
सीस	शीश,	केती ठार भी सीस हौं रख्या
सुरा	मद्य,	सुरा पीव कूरान ले जा लिया
सूर	सूर्या,	न रोशन दिसे चन्द ज्यूं सूर तल
सेवना	सेवा करना,	उसे सेवते दूइ जग जम रहें
सैन	संकेत,	दिसे तुज मने सब सयादत को सैन
ह		
हत्त	हाथ,	रुखेश राख्य हत्त जोड पावं पड
हशम	नौकर-चाकर,	अलम तुज तले है वले सब हशम
हातिफे गैब	देव वाणी	उठया नाद अज हातिफे गैब तब
हिंडना	घूमना,	हिंडन निकल्या खिजर यक दिन जंगल
हिया	हृदय,	हिया आरसी जिवं जगा जोत तुज

परिशिष्ट–४

संदर्भ ग्रंथों की सूची

१.	डा. धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी भाषा का इतिहास. (प्र. हिन्दुस्थानी एकेडमी, प्रयाग)
२.	डा. उदयनारायण तिवारी	हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास (भारती भंडार, ली. प्रे. इलाहाबाद)
३.	डा. ग्रियर्सन	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया.
४.	डा. मोतीचन्द	सम्पूर्णानंद अभिनन्दन ग्रन्थ.
५.	ज्ञानेश्वर	ज्ञानेश्वरी (अध्याय १८) (सं. वि. का. राजवाडे) (आत्माराम छापाखाना, धुळे.)
६.	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	पर्सियन इन्फ्लुएन्स इन हिन्दी
७.	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास.
८.	डा. श्यामसुन्दर दास	हिन्दी भाषा
९.	डा. भोलानाथ तिवारी	हिन्दी भाषा (किताब महल, इलाहाबाद) भाषा विज्ञान कोश (ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी)
१०.	डा. रामविलास शर्मा	भाषा और समाज
११.	डा. जगदीशप्रसाद कौशिक	भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास.
१२.	मोहम्मद वहीद मिर्जा	अमीर खुसरो
१३.	चन्द्रबली पाण्डेय	उर्दू का रहस्य
१४.	गार्सा–द तासी	हिन्दुई साहित्य का इतिहास.
१५.	डा. भालचन्द्र तैलंग	हिन्दुई (स्वतन्त्र लेख)
१६.	डा. श्रीराम शर्मा	दक्खिनी हिन्दी का साहित्य (दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद) दक्खिनी का उद्भव और विकास. (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
१७.	वजही	कुत्ब मुश्तरी.
१८.	डा. आशा गुप्ता	खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना
१९.	डा. बाबूराम सक्सेना	दक्खिनी हिन्दी.

२०. हजारीप्रसाद द्विवेदी	नाथ सम्प्रदाय (नैवेद्य निकेतन, वाराणसी)
२१. एहतेशाम हुसेन	उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (अंजुमन तरक्की ए उर्दू हिन्द)
२२. बाबूराम सक्सेना	तारीखे अदबे उर्दू (अनु. मिर्जा मुहम्मद अस्करी) (रामकुमार प्रेस, लखनऊ)
२३. ग्रहम बेली	ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर (एसोसिएशन प्रेस, कलकत्ता)
२४. डा. मौ. अब्दुलहक्क	उर्दू की इप-तेदाई नशो व नुमा में सूफिया-एकाम का काम (अंजुमन तरक्की उर्दू, हिन्द अलीगढ़)
२५. डा. गेंदालाल शर्मा	ब्रज और खड़ी बोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन (प्रकाशन प्रतिष्ठान, आनंदपुरी, मेरठ)
२६. इंशाअल्ला खाँ	दरिया-ए-लताफत (उर्दू अनुवाद)
	दास्तान रानी केतकी १८०३ ई०
२७. पीताम्बरदास बडथ्वाल	मकरन्द (प्रथम खण्ड)
	गोरखवानी (हि. सा. सम्मेलन, प्रयाग)
२८. रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास. (प्र. काशी नागरी प्र, सभा. काशी)
२९. राहुल सांकृत्यायन	हिन्दी काव्य धारा (किताब महल इलाहाबाद)
	दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा (बिहार राष्ट्र भाषा-परिषद-पटना)
३०. डा० रामकुमार वर्मा	हिंदनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास.
३१. डा. शिवकुमार शर्मा	हि. सा. युग और प्रवृत्तियाँ
३२. डा० गणपतिचन्द्र गुप्त	हि. सा. वैज्ञानिक इतिहास.
३३. रामानुजलाल श्रीवास्तव	प्रतिनिधि शोक गीत, (लोक चेतना प्र. जबलपुर)
३४. डा. हरदेव बाहरी	हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप (किताबमहल, इलाहाबाद)
३५. प्रेमनारायण टंडन	ब्रज भाषा-व्याकरण की रूपरेखा (लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)
३६. स. मसूरहुसेन खान	कदीम उर्दू (१९६५ भाग १) (उर्दू विभाग, उस्मानिया युनिवर्सिटी, हैदराबाद)

३७. नसीरोद्दीन हाशमी.	दकन में उर्दू (मकतबे इब्राहीमिया, हैदराबाद)
३८. डा. विनय मोहन शर्मा	हिन्दी को मराठी सन्तों की देन (बिहार राष्ट्र भाषा पटना)
३९. कृ. ग. दिवाकर.	महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य.
४०. डा. भगवानदास तिवारी	मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना.
४१. डा. अम्बाशंकर नागर	गुजरात की हिन्दी सेवा.
४२. डा. रामकुमार गुप्त	गुजरात के सन्तों की हिन्दी साहित्य की देन साहित्य
४३. डा. प्रेमनारायण शुक्ल	
४४. धीरेन्द्र वर्मा	ब्रज भाषा व्याकरण (हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग)
४५. डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	आधुनिक साहित्य (हिन्दी) भूमिका.
४६. डा. नामवर सिंह	हिन्दी के विकास में अपभ्रन्श का योगदान (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद)
४७. वररुचि	प्राकृत प्रकाश, व्याख्याकार—रामपाणिवाद सं. डॉ. सी. कुन्दनराज, के. रामचन्द्र शर्मा.
४८. हेमचन्द्र	प्राकृत व्याकरण (श्री हेमचन्द्रचार्य सभा, पटना)
४९. कामताप्रसाद गुरू	हिन्दी व्याकरण (नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी)
५०. किशोरीदास वाजपेयी.	हिन्दी शब्दानुशासन (ना. प्र. स. काशी)
५१. डा. सुनीतिकुमार चटर्जी	ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ द बंगाली लैंगवेज) (प्र. कलकत्ता युनिवर्सिटी, कल.)
	भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (प्र. राजकमल प्रकाशन—बम्बई)
५२. जान बीम्स	ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ द माडर्न आर्यन लैंगवेजेस आफ इण्डिया (प्र. ट्रबनर ऐण्ड कम्पनी, लन्डन)
५३. डा. ए. एफ. रुडोल्फ हार्नली.	ए कम्पेरेटिव ग्रामर आफ गौडियन लैंगवेजेस (प्र. ट्रबनर ऐण्ड कंपनी, लंडन)
५४. डा. एस. एच. कैलाग	ग्रामर आफ दी हिन्दी लैंग्वेज (प्र. ट्रबनर एण्ड कंपनी लन्डन)
५५. बुरहानुद्दीन जानम	इर्शादनामा (हस्तलिखित)
	सुख सुहेता (,,)
५६. अब्दुल	इब्राहिमनामा (हस्तलिखित)

५७. फीरोज बीदरी — पिरतनामा (हस्तलिखित) (इरारे अदबियत हैदराबाद)

५८. डा. शिवराज शर्मा — हिन्दी का राष्ट्र भाषा के रूप में विकास (आत्माराम एण्ड सन्स)

५९. पदमसिंह शर्मा — हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी.

६०. कपिलदेव सिंह — ब्रज भाषा बनाम खड़ीबोली

कोष

६१. वासुदेव गोविन्द आपटे — मराठी रत्नाकर (आनन्द कार्यालय प्र. पुणे)

६२. कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी — मराठी व्युत्पत्ति कोश (लेखन वाघच भंडार, पुणे)

६३. श्रीधर व्यंकटेश केतकर. — महाराष्ट्र ज्ञान कोश.

६४. सं. मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह — उर्दू हिन्दी शब्द कोष. (प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश)

६५. मसूद हुसेन खान तथा गुलाम उमर खान — दकनी उर्दू की लुगत (आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद)

६६. ड. मुहियोद्दीन कादरी जोर — इदारे अदबियत उर्दू—हैदराबाद की ग्रंथ सूची

६७. सम्पादक मण्डल. — हिन्दी साहित्य कोश भा. १ (प्र. ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी)

पत्र-पत्रिकायें

१. उर्दू अदब — प्र. अंजूमन तारिकी उर्दू-हिन्द अलीगढ़

२. मर्यादा माग सं. १ नवम्बर १९१०

३. ओरियण्टल कॉलेज मेग्जीन १९३१ इ.

४. साहित्य संदेश अगस्त १९५८.

